# कंब रामायण

[ महाकवि कंबन-रचित मूल तमिल से अनूदित ]

[ भाग १ ]

अनुवादक

श्री न० वी० राजगोपालन

संपादक

श्रीअवधनन्दन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

# वक्तव्य

सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र की एकात्म भावना और अखण्ड सस्कृति के निर्माण का सारा श्रेय सस्कृत-भाषा को है, जिसने कैलास से रामेश्वरम् तथा पश्चिम समुद्र से पूर्व सागर तक के जनमानस को एक साँचे में ढाल दिया था। आज उसी सस्कृत की तरह राष्ट्र को एक सूत्र में गूँथे रखने की शक्ति यदि किसी भाषा में है, तो वह राष्ट्रभाषा हिन्दी है। राष्ट्रभाषा देश की आत्मा होती है, जिसे राष्ट्र-रूपी शरीर की सभी धमनियो से रक्त-प्राप्ति आवश्यक है। दूसरी बात कि अब हिन्दी को स्वयं इस प्रकार समर्थ होना है, जिसके माध्यम से चाहे तो कोई भी समस्त भारतीय साहित्य और संस्कृति को समझ ले। इन्ही दृष्टिकोणों के अनुसार बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने ग्रन्थ-प्रकाशन का श्रीगणेश किया था और निश्चय किया था कि दक्षिण के चारो भाषाओ (तेलुगु, तमिल, कन्नड और मलयालम) की रामायणों के हिन्दी-अनुवाद यहाँ से प्रकाशित किये जायँ। आज हमें प्रसन्नता है कि परिषद् ने तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण' को प्रकाशित तो किया ही, अब तमिल की 'कंब-रामायण' का भी हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर अपना सकल्प पूरा कर लिया।

यह 'कंब रामायण' परिषद् की अनुवाद-योजना का बारहवाँ ग्रन्थ है। परिषद् ने इसके पहले जर्मन, फ्रेंच, अँगरेजी, संस्कृत और तेलुगु-भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये थे। यह तमिल से अनूदित है, जिसका साहित्य, सस्कृत को छोड़कर, सभी जीवित भारतीय भाषाओं के साहित्य से प्राचीन है। आज भी दक्षिण की सभी भाषाओं के साहित्य से तमिल-साहित्य सुसम्पन्न और सुष्ठु माना जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तमिल का महाकाव्य है, जो बारह सौ वर्ष (कुछ के मतो से आठ सौ वर्ष) पुराना है। इस महाकाव्य की रचना-शैली बाणभट्ट की 'कादम्बरी' की-सी है; किन्तु इसका रचना-आधार वाल्मीकीय रामायण है। यद्यपि 'कंब-रामायण' वाल्मीकीय रामायण का अनुगामी है, तथापि दाक्षिणात्य संस्कृति से यह ओत-प्रोत है, जो वाल्मीकीय में दृष्टिगोचर नही होती। यह एक महान् आश्चर्य है कि काव्य के सौष्ठव की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण से जरा भी घटकर नही है। हमारे ऐसे कथन की यथार्थता प्रबुद्ध पाठक स्वयं इसमे आँकेंगे। किन्तु, आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद आजतक दुनिया के किसी भी भाषा में नही छपा था, यहाँतक कि अँगरेजी-भाषा में भी नही। हिन्दी में इसका अनुवाद कराकर सर्वप्रथम प्रकाशित करने का सौभाग्य परिषद् को ही है।

परिषद् ने जब 'कंब रामायण' के अनुवाद कराने का निश्चय किया, तब एक जटिल समस्या सामने आई कि अनुवाद किससे कराया जाय? क्योंकि दक्षिण की भाषाओं मे भी दुरूह तमिल-भाषा है और उसके काव्यों में भी अत्युच्च महाकाव्य 'कंब रामायण' है, जिसका सजीव हिन्दी-अनुवाद केवल तमिल और हिन्दी जाननेवाला नही कर सकता था। इसके लिए उक्त दोनों भाषाओ के साहित्य - मर्मज्ञ के साथ-साथ सस्कृत-साहित्य के

तत्त्वदर्शी विद्वान् की आवश्यकता थी। किन्तु, इन सारे गुणों के रहते भी यदि वह व्यक्ति लेखन-कला में दक्ष न हुआ, तो भी समस्या उलझी ही रह जाने का भय था। किन्तु, ऐसे उपयुक्त अनुवादक को ढूँढ निकालने का सारा श्रेय श्रीअवधनन्दनजी को है। ये विहार-प्रदेश के ही निवासी हैं, पर उस समय ये दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा ( मद्रास ) के माध्यम से तमिलभाषी क्षेत्र में हिन्दी-प्रचार का काम कर रहे थे। परिषद् के अनुरोध पर इन्होंने तेलगु और तमिल—दोनो की रामायणों के अनुवाद करा देने का जिम्मा लिया और तदनुसार तमिल-रामायण के अनुवाद का काम श्री न० वी० राजगोपालन जैसे योग्य व्यक्ति को सौंपकर इसके सम्पादन का भार स्वयं सँभाला। श्रीअवधनन्दनजी के ऐसे सहयोग के लिए परिषद् सदा इनका आभारी है।

श्री न० वी० राजगोपालन तमिलनाड के तिरुच्चिरापल्ली जिले के निवासी हैं। आपने तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर प्राच्यकला-शाला-जैसी संस्था में संस्कृत-साहित्य के माध्यम से व्याकरण, न्याय और मीमांसा-शास्त्र का अध्ययन किया है। आपने कांचीपुरी में परमहंस-परिव्राजक श्रीरंग रामानुज महादेशिक और उ० वीर राघवाचार्य-सदृश महाविद्वानों से वेदान्त-दर्शन का भी अध्ययन किया। आपने फिर काशी-विश्वविद्यालय से हिन्दी में तथा मद्रास-विश्वविद्यालय से तमिल में एम्० ए० की उच्च उपाधि प्राप्त की। आप तमिल, तेलुगु, संस्कृत, अँगरेजी, हिन्दी और खूबी यह कि उर्दू के भी सुलेखक हैं। आजकल आप केन्द्रीय हिन्दी शिक्षक-महाविद्यालय, आगरा में प्राध्यापक हैं। इसके पहले आप प्रेसीडेंसी कॉलेज ( मद्रास ) और दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा ( मद्रास ) में भी अध्यापन का कार्य कर चुके हैं।

कंब रामायण दस हजार श्लोकों का एक वृहत्काय महाकाव्य है, जो छह काण्डों में विभक्त है। अतः, इसका प्रकाशन हम दो भागों में कर रहे हैं, जिससे ग्रन्थ का आकार-प्रकार सुहावना बना रहे। यह पहला भाग बालकांड से किष्किन्धाकांड तक है। दूसरे भाग में केवल दो काण्ड होंगे—सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड। किन्तु, दोनों भागों के आकार प्रायः समान होंगे, क्योंकि केवल युद्धकाण्ड ही लगभग तीन काण्डों के बराबर है। आज हिन्दी-जगत् के समक्ष 'कंब रामायण' के इस पहले भाग को प्रस्तुत करते हुए हमें पूरा संतोष है और विश्वास है कि हिन्दी के प्रकाशनों में यह चार चाँद लगायेगा। आप इसमें महाकवि कम्बन की कवित्व-शक्ति की पराकाष्ठा का दर्शन कर अपने को निश्चय ही कृतार्थ मानेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। परिषद् का यह प्रकाशन उत्तर और दक्षिण में 'नये सेतु' का निर्माण करेगा और हमारे राष्ट्र की चिर एकात्मनिष्ठा को अधिकाधिक सुदृढ करेगा।

**बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्**
पौष, कृष्णा एकादशी, २०१६ वि०

*भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'*
संचालक

# प्रस्तावना

बहुत दिनो से मेरे मन में यह अभिलाषा थी कि तमिल-साहित्य के कुछ प्राचीन ग्रन्थो का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जाय, जिससे हिन्दीभाषा-भाषी जनता को तमिल-भाषा के प्राचीन साहित्य का रसास्वादन करने तथा वहाँ की समृद्ध संस्कृति एवं विचार-धारा को समझने का अवसर मिले। किन्तु, किसी योग्य प्रकाशक के अभाव में यह कार्य संभव नही था। सन् १९५५ ई० में मेरी भेंट आदरणीय श्रीशिवपूजन सहायजी से हुई। उस समय वे बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के संचालक थे। जब मैंने उनसे इस विषय की चर्चा की, तब वे बहुत प्रसन्न हुए और परिषद् की ओर से ऐसे ग्रन्थो को प्रकाशित करने का आश्वासन भी किया। उसी वर्ष २७ जुलाई को उनका एक पत्र मिला, जिसमे लिखा था कि राष्ट्रभाषा-परिषद् ने दक्षिण भारत की चारो भाषाओ में प्रचलित रामायणो का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया है। योग्य अनुवादक चुनने तथा अनुवाद के संशोधन आदि का भार उन्होंने मुझे सौंपा था। मैं उस समय दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा की तमिलनाड-शाखा के मंत्री की हैसियत से कार्य कर रहा था और तिरुच्चिरापल्ली में रहता था। सहायजी का पत्र पाकर मैं उत्साह से भर गया और योग्य अनुवादको की तलाश करने लगा।

दक्षिण में चार प्रधान भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनका अपना-अपना साहित्य है। वे हैं—तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। तमिल मद्रास-राज्य में, मद्रास नगर तथा उसके दक्षिण में कन्याकुमारी तक बोली जाती है। तेलगु आंध्रदेश की भाषा है और मद्रास के उत्तर मे विजगापट्टम् तक तथा हैदराबाद में बोली जाती है। कन्नड मैसूर-राज्य की भाषा है और मद्रास-राज्य के पश्चिम मे अरब समुद्र के तट तक बोली जाती है। मलयालम केरल-प्रान्त की भाषा है और दक्षिण मे तिरुवनन्तपुरम् (त्रिवेन्द्रम्) से अरब सागर के किनारे-किनारे कासरगोड तक बोली जाती है। ये चारों भाषाएँ द्रविड़-परिवार की हैं और आर्य-परिवार की भाषाओ से बहुत भिन्न हैं। तमिल को छोड़कर शेष तीन भाषाओ पर संस्कृत का बहुत प्रभाव पड़ा है और उन्होंने संस्कृत से बहुत-से शब्द ग्रहण किये हैं। इन चारो भाषाओं में तमिल सबसे प्राचीन है और उसका प्राचीन साहित्य सबसे अधिक समृद्ध है।

उपर्युक्त चारो प्रान्तो मे रामकथा का प्रचार है और चारो भाषाओ मे रामायण की रचना हुई है। किन्तु, मलयालम रामायण एक आधुनिक रचना है और वाल्मीकि रामायण का छायानुवाद-मात्र है। मलयालम रामायण रामानुजन् एषुत्तच्चन् नामक किसी कवि की रचना है, जो ईसवी-सन् १६वी और १७वी शती के मध्य वर्त्तमान थे। उन्होंने अपनी रामायण अध्यात्मरामायण के आधार पर लिखी है, जिसकी भाषा संस्कृत-गर्भित है। कन्नड की सबसे प्राचीन रामायण 'पंप रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है और 'पंप' नामक एक जैनकवि की रचना है। पंप ने रामकथा मे बहुत हेर-फेर किया है और जैन दृष्टिकोण से

उसकी रचना की है, अतएव यह निश्चय हुआ कि इस समय उक्त दोनो रामायणो का अनुवाद स्थगित रखा जाय और तेलुगु से रंगनाथ रामायण तथा तमिल से कंब रामायण का अनुवाद कराया जाय। ये दोनों रामायण वाल्मीकि रामायण की कथा के आधार पर लिखे गये हैं, किन्तु दोनो की रचना मे पर्याप्त मौलिकता प्रदर्शित की गई है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की इसी योजना के अनुसार रंगनाथ रामायण के हिन्दी-अनुवाद का कार्य मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज के हिन्दी-अध्यापक श्री ए० सी० कामाक्षिराव, एम्० ए०, बी० ओ० एल्० को सौंपा गया। प्रसन्नता की बात है कि रगनाथ रामायण का हिन्दी-अनुवाद परिषद् की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

कंब रामायण तमिल-भाषा की एक अत्यन्त लोकप्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है और भारतीय भाषाओ में जितनी रामायणें उपलब्ध हैं, उनमे सबसे प्राचीन है। जनश्रुति के अनुसार कंबन का जन्म ईसा की नवी शताब्दी ( कुछ लोग उनका जन्म बारहवी शताब्दी मे मानते हैं) मे हुआ था। उनकी भाषा अत्यन्त प्रवाहपूर्ण, ओजस्विनी तथा आलंकारिक है। वह तमिल की प्राचीन शैली का एक बहुत सुन्दर नमूना है। कवि ने अपनी रचना में सस्कृत तथा तमिल-अलंकारो और मुहावरों का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। अतः, उसके अनुवाद के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो संस्कृत, तमिल और हिन्दी तीनों भाषाओ का अच्छा ज्ञान रखता हो तथा जो वैष्णव-संप्रदाय की विचारधारा से भी परिचित हो। सौभाग्य से इस कार्य के लिए हमें श्री न० वी० राजगोपालनजी मिल गये, जो सस्कृत मे मद्रास-विश्वविद्यालय के शिरोमणि परीक्षोत्तीर्ण हैं, हिन्दी मे 'प्रवीण' हैं तथा तमिल का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। अभी हाल मे उन्होने तमिल मे भी एम्० ए० की परीक्षा पास कर ली है। उनके अथक परिश्रम का ही यह फल है कि कंब रामायण का हिन्दी-अनुवाद हिन्दीभाषी जनता के संमुख उपस्थित किया जा रहा है।

एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद का कार्य साधारणतः कठिन होता है और किसी काव्य का अनुवाद करने मे तो यह कठिनाई और भी बढ जाती है। कंबन की भाषा नवी शती की है और प्राचीन तमिल शैली की है, जिसे 'शेन् तमिल' कहते हैं। अनुवादक का लक्ष्य यह था कि जहाँतक हो सके, मूल का सौन्दर्य नष्ट न होने पाये और कंबन की वर्णन-शैली में फर्क न पडे। स्वतंत्र अनुवाद करने से मूल की विशेषता नष्ट हो जाने का भय था। इसी कारण अनेक स्थानों में अनुवाद की भाषा उलझी हुई और अस्वाभाविक दिखाई देगी। पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे।

अबतक सपूर्ण कंब रामायण का अनुवाद किसी भी भाषा मे नही हुआ है। यह प्रसन्नता का विषय है कि ऐसे आदरणीय ग्रन्थ का अनुवाद प्रकाशित करने का सर्व-प्रथम गौरव राष्ट्रभाषा हिन्दी को प्राप्त हो रहा है। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद भी बधाई का पात्र है, जिसने सर्वप्रथम इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर उसे सफलतापूर्वक संपन्न किया है।

अवधनन्दन

# भूमिका

तमिल-साहित्य ३००० वर्ष पुराना माना जाता है। ईसा-पूर्व चौथी शती तक उसमें काव्य, नाटक तथा गीति-साहित्य का विस्तृत प्रणयन हो चुका था। इस भाषा का सर्वप्रथम व्याकरण, जो 'तोलकाप्पियम्' के नाम से प्रसिद्ध है, ईसवी-सन् पूर्व तीसरी शती में लिखा गया था। यह एक वृहदाकार लक्षण-ग्रन्थ है और अब उपलब्ध तमिल-ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। इस ग्रन्थ में तमिल-भाषा के व्याकरण के अतिरिक्त काव्य-पद्धतियों, छंद, अलंकार एवं काव्य में वर्ण्य विषय-वस्तु ( जिसे तमिल में 'पोरुल्' कहते हैं ) का विशद विवेचन है। तमिल-व्याकरण में 'पोरुल्' के दो विभाग किये गये हैं—'अहम्' और 'पुरम्'। अहम् में शृंगार-रस का पोषण होता है, और 'पुरम्' में शृंगारेतर रसों का पोषण होता है, विशेष कर वीर रस का। अहम् और पुरम् मनुष्य के जीवन के अंतरंग एवं बहिरंग पक्ष के प्रतिपादक हैं। यह विभाजन तमिल-काव्यशास्त्र की विलक्षणता है, जो अन्य किसी भाषा के साहित्य में प्राप्त नहीं होता।

तमिल-साहित्य का आदिकाल 'संघम् काल' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि साहित्य की अभिवृद्धि के लिए मदुरा के पांडिय राजाओं ने, एक के पश्चात् एक, तीन 'संघम्' स्थापित किये थे। अपने समय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं कवि इस संघम् के सदस्य होते थे। संघम् का कार्य कवियों की रचनाओं की समीक्षा करके उनपर प्रामाणिकता एवं श्रेष्ठता की मुहर लगाना होता था। संघम् द्वारा स्वीकृत रचनाओं को ही लोक में प्रतिष्ठा मिलती थी। यह विश्वास प्रचलित है कि इन तीनों संघमों में कुल ६५७ कवि-सदस्य बने थे और हजारों वर्ष तक इन संघमों ने कार्य किया था। इस काल के कुछ कवियों की रचनाएँ पृथक्-पृथक् पुस्तकों में संगृहीत हैं।

ईसवी-सन् पूर्व तीसरी शती से ईसा की छठी शताब्दी तक तमिल-देश में जैन तथा बौद्ध धर्मों का विस्तार रहा। जैन तथा बौद्ध कवियों ने अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे और उनके द्वारा अपने धर्म का प्रचार तथा तमिल-भाषा की सेवा की। ईसा की दूसरी और तीसरी शताब्दियों में तमिल में पाँच महाकाव्य रचे गये, जिनके नाम हैं—१ शिलप्पधिकारम्, २ मणिमेखलै, ३ जीवकचिन्तामणि, ४ वलयापति तथा ५ कुंडलकेशी। इनमें से प्रथम दो बौद्ध कवियों की रचनाएँ हैं और तमिल की विशिष्ट कला के परिचायक हैं। 'जीवकचिन्तामणि' किसी जैनकवि की रचना है। इसका छंद संस्कृत के वर्णवृत्तों पर आधृत है और अलंकार भी संस्कृत-साहित्यशास्त्र के अनुकूल बने हैं। अपने काव्य-सौन्दर्य के कारण यह ग्रन्थ अपने समय में बहुत लोकप्रिय बना था। 'कुंडलकेशी' और 'वलयापति'—ये दोनों काव्य अब अनुपलब्ध हैं।

ईसा की छठी शती से तमिल-देश में भक्ति का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा और बौद्ध तथा जैनधर्मों का प्रभाव कम होने लगा। छठी तथा तेरहवीं शतियों के मध्य तमिलनाड में अनेक वैष्णव तथा शैव संत उत्पन्न हुए, जिन्होंने अत्यन्त सुन्दर काव्य-रचना

के साथ-साथ विष्णु तथा शिव-भक्ति की पीयूष-धारा बहाई, जिसने दक्षिण भारत-मात्र को ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष को प्रभावित किया और हिन्दू-जनता को मुक्ति का एक नवीन मार्ग दिखलाया। पीछे चलकर इन धाराओ ने हिन्दी-जगत् एव हिन्दी-साहित्य को भी आप्लावित कर दिया।

वैष्णवधर्म के अनुयायी वारह सत हुए, जिन्हें 'आलवार' कहते हैं। आलवार शब्द, का अर्थ होता है 'ज्ञानी'। उन्होंने भगवान् विष्णु को परम तत्त्व मानकर उनकी उपासना की और उनकी प्रशंसा मे सहस्रो सुन्दर तथा मधुर गीत गाये। इन गीतों की संख्या चार हजार है, जो तमिल में 'नालायिरप्रबधम्' या 'दिव्यप्रबधम्' के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्रामानुजाचार्य इन्ही आलवारो द्वारा प्रतिपादित वैष्णव धर्म के अनुयायी थे।

जिस समय वैष्णव संत भगवान् विष्णु को अपना आराध्य देव मानकर उनकी भक्ति का प्रचार कर रहे थे, प्रायः उसी समय शैव सत भगवान् शिव के गुणानुवाद मे अपनी अमृतमय वाणी को सफल बना रहे थे। इस मत में ६३ सत हुए, जिन्हे 'नायनमार' कहते हैं। इन्होने भगवान् शिव की प्रशंसा में हजारो ललित एवं गेय पद रचे, जो आज भी शिवभक्तो की अमूल्य निधि हैं। इनके द्वारा विरचित विपुल साहित्य बारह खडो में विभाजित है।

कबन का स्थान तमिल-साहित्य मे अत्यन्त श्रेष्ठ है और वे कविचक्रवर्त्ती के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी रचना 'रामायण', जो 'कब रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है, १० हजार से अधिक पद्यो का एक विशाल ग्रन्थ है।

कंबन का समय निश्चित नही है। कुछ विद्वान् उन्हे ईसवी नवी शताब्दी का मानते हैं, किन्तु अधिक प्रामाणिक समय बारहवी शताब्दी है।[1] इस समय तक बारह आलवार हो चुके थे और यामुन, रामानुज आदि आचार्यों की परम्परा भी चल पड़ी थी। इन आचार्यों ने भक्ति एव प्रपत्ति का शास्त्रीय विवेचन किया। कंबन वैष्णव थे, प्रमुख आलवार 'नम्मालवार' की उन्होने प्रस्तुति की है और उनके काव्य में यत्र-तत्र इन आलवार की श्रीसूक्तियो की छाया दृष्टिगत होती है, तो भी कबन ने अपने काव्य को केवल साम्प्रदायिक नही बनाया है। प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरम् के अनुसार कंब रामायण केवल वैष्णव सम्प्रदाय का ग्रन्थ नही है। ग्रन्थारम्भ मे तथा प्रत्येक काड के आदि में मगलाचरण के जो पद्य हैं, उनसे यह तथ्य प्रकट होता है। कवि ने परमात्मा का वर्णन शिव और विष्णु के रूप से भी अतीत, केवल सृष्टिकर्त्ता के रूप मे किया है। किन्तु, रामचन्द्र को उस परमात्मा का अवतार ही माना है।

इसका परिणाम यह हुआ कि शैवों और वैष्णवो के मध्य 'कब रामायण' का आदर हुआ और इन दोनों सम्प्रदायो मे जो वैमनस्य था, उसके दूर होने मे सहायता मिली।

कंबन का जन्मवृत्त कुछ निश्चित ज्ञात नही हुआ है। उनके सबध मे अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, जिनकी प्रामाणिकता सदेहास्पद है। कवि ने कही भी अपना

---

१. प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरम्—(तमिल-विभागाध्यक्ष, अन्नामलै-विश्वविद्यालय) इसी को प्रामाणिक मानते हैं।—अनु०

परिचय नही दिया है, किन्तु उन्होने अपनी रामायण मे तिरुवेण्णेयनल्लूर नामक ग्राम के 'शडयप्पवल्लर' नामक एक दानी और यशस्वी व्यक्ति का उल्लेख कई स्थानो पर किया है। अनुमान किया जाता है कि इसी उदार व्यक्ति ने महाकवि कंवन को आश्रय दिया था, जिसकी कृतज्ञता मे महाकवि ने अपने काव्य में उस व्यक्ति का स्मरण किया है। यह ज्ञात होता है कि कवन चोल और चेर राजाओ के दरवार मे गये थे, लेकिन अपनी महान् कृति को किसी राजा को अर्पित नहीं किया।

कवन की रामायण तमिल-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति एव एक वृहद् ग्रन्थ है।[1] तमिल, हिन्दी, अँगरेजी आदि के साहित्यो के वड़े विद्वान् श्री वी० वी० एस्० अय्यर ने लिखा है कि 'यह ( कव रामायण ) विश्व-साहित्य में उत्तम कृति है, 'इलियड' और 'पैरेडाइस लास्ट' और महाभारत से ही नही, वरन् मूलकाव्य वाल्मीकि रामायण की तुलना मे भी यह अधिक सुन्दर है। यह केवल आदरातिरेक से कही हुई उक्ति नहीं है, वरन् अनेक वर्षों तक किये गये गहन अध्ययन से धीरे-धीरे पुष्ट हुआ विचार है।'[2]

कव रामायण वाल्मीकि रामायण का अनुवाद-मात्र नहीं है, उसका छायानुवाद कहना भी सगत नही है। कथानक-मात्र मूल से लिया गया है, लेकिन घटनाओं में सैकड़ों परिवर्त्तन किये गये हैं। प्रत्येक घटना के चित्रण में, परिस्थितियो को उपस्थित करने में, पात्रो के सम्भाषण में, प्राकृतिक दृश्यो के उपस्थापन में एवं पात्रो की मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति मे कंवन ने पर्याप्त मौलिकता दिखलाई है। तमिल-भाषा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी कंवन ने मौलिकता प्रदर्शित की है। छदोविधान में, अलकारों के प्रयोग में तथा शब्द-गुम्फन में अपूर्व सौंदर्य प्रकट किया है। सीता-राम-विवाह, शूर्पणखा-प्रसंग, वालिवध, हनुमान् के द्वारा सीता-सदर्शन, इन्द्रजित् का वध, राम-रावण-युद्ध इत्यादि प्रसंगों में प्रत्येक अपनी विशिष्ट सुन्दरता के कारण अत्यन्त आकर्षक हुआ है। प्रत्येक प्रसंग अपने में सपूर्ण-सा लगता है, प्रत्येक मे काफी नाटकीयता है; प्रत्येक घटना का आरम्भ, विकास और परिसमाप्ति एक निश्चित क्रम से विकसित होते हैं। यह शिल्प-विधान कंवन के काव्य की एक विशिष्टता है।

राम के चरित्र को कंवन ने जिस ढग से चित्रित किया है, वह विशेष अध्ययन का विषय है। वाल्मीकि के सम्मुख यह प्रश्न था कि लोकोत्तर आदर्श पुरुष कौन है? उन्हे 'पुरुषोत्तम' की खोज थी। नारद तथा ब्रह्मा से उन्हें ऐसे पुरुषोत्तम का परिचय प्राप्त हुआ। रामचरित का गान करके वाल्मीकि ने ससार के सम्मुख 'पुरुष पुरातन' की ही नहीं, अपितु एक 'महामानव' का चित्र उपस्थित किया था। कंवन के युग तक आते-आते वही आदर्श महामानव परमात्मा के अवतार के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुका था। यह विश्वास दृढ हो गया था कि केवल राम-नाम का जप-मात्र अपवर्गप्रद हो सकता है। वैष्णव भक्ति का ज्यो-ज्यों प्रचार समाज मे वढ़ा, त्यो-त्यो राम के प्रति आस्था अधिकाधिक वद्धमूल होती गई।

---

१. डॉ० आर० पी० सेतुपिल्लै, ( तमिल-विभागाध्यक्ष, मद्रास-विश्वविद्यालय ) का अँगरेजी लेख 'तमिल लिटरेचर'।

२. श्री वी० वी० एस० अय्यर : 'कव रामायणम्—ए स्टडी'।

कंबन ने समयुगीन भावनाओं को भली भाँति पहचाना था। जनता की भक्तिपूर्ण भावना के कारण राम के चरित्र ने जो महत्ता और परम-परिपूर्णत्व उत्पन्न हो गये थे उन्हें इस कुशल कवि ने अपने काव्य के द्वारा परिपुष्ट कर दिया। यह कोई साधारण कार्य नहीं था। केवल यह कहते रहने से कि राम परमात्मा हैं या स्थान-स्थान पर दैवी विशेषणों को जोड़ते रहने से यह ज्ञान हो सकता है कि राम परमात्मा के अवतार हैं, किन्तु उससे पाठकों पर राम के चरित्र का मानवोचित प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं है। रस-पोषण के मार्ग में इस प्रकार की पुनरुक्ति से बाधा पड़ने की सम्भावना है। राम के दैवी तत्त्व का साहित्यिक प्रभाव उत्पन्न करना, पूरे काव्य में सब प्रसंगों के मध्य उस दैवी तत्त्व का निर्वाह करना एवं साथ ही मानव-जीवन की विविध सुख-दुःखात्मक परिस्थितियों के साथ उस दैवी तत्त्व की संगति बिठाना—यह एक अनन्यसुलभ प्रतिभावान् महाकवि का ही कार्य है। कंबन ऐसे ही कवि थे। कंब रामायण का कोई भी प्रसंग इसका प्रमाण हो सकता है।

कंबन ने बालकांड से युद्धकांड तक छह कांडों की रचना की। पौराणिकों के कारण अनेक प्रक्षेप भी इसमें जुड़ गये हैं। किन्तु, इन प्रक्षेपों को पहचानना उतना दुष्कर नहीं है : क्योंकि कंबन की भाषा और प्रतिपादन की शैली विलक्षण होती है, उनका अनुकरण नहीं हो सकता। अब उपलब्ध ग्रन्थ में १०,०५० पद्य हैं। एक उत्तरकांड प्राप्त हुआ है, जो कंबन के समकालिक एक अन्य महाकवि 'ओट्टक्कूत्तन' - विरचित माना जाता है।

तमिलनाड में ही नहीं, उसके बाहर भी धीरे-धीरे इस रामायण का प्रचार हुआ। तंजाउर जिले में स्थित तिरुप्पणान्दाल मठ की एक शाखा काशी में है। उस मठ में आज से तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व कुमरगुरुपर नामक एक तमिल संत रहते थे, जो तुलसीदासजी के समकालीन थे। वे नित्य प्रति संध्या के समय गंगा-तट पर कंब रामायण की व्याख्या हिन्दी में सुनाया करते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी उन्हीं दिनों काशी में रामचरित-मानस की रचना कर रहे थे। दक्षिण के लोगों में यह विश्वास प्रचलित है कि तुलसीदासजी ने मानस लिखने में अनेक स्थलों पर कंब रामायण से प्रेरणा प्राप्त की थी। इस कथन की प्रामाणिकता निर्विवाद नहीं है। किन्तु, इतना तो सत्य है कि तुलसी और कंबन की कृतियों में कई घटनाओं में आश्चर्यजनक समानता दिखाई पड़ती है।[1]

अनुवाद का काम अनेक कारणों से कठिन होता है। पद्यकाव्य का अनुवाद और भी बहुत श्रमसाध्य है। कंबन की कृति बारहवीं शताब्दी की तमिल-शैली में लिखी गई है, उसका आधुनिक हिन्दी में यह अनुवाद लगभग पाँच वर्ष के अध्यवसाय से सम्पन्न हो सका है। मूल की अभिव्यक्तिगत सौंदर्य को भाषांतर में उसी रूप में प्रस्तुत करना असम्भव है। कंबन के भावगत सौंदर्य की किंचित् झलक-मात्र सम्भव हो सकी है। तमिल-भाषा की एक विशेषता यह है कि उसमें मिश्रवाक्य की रचना नहीं होती। सभी सरल

१ डॉ० एस० शंकरराजु नायडु (हिन्दी-विभागाध्यक्ष मद्रास-विश्वविद्यालय) का प्रबन्ध 'कंबन और तुलसी' पृ० १८७-१९०।

वाक्य होते हैं। पूर्वकालिक कृदन्तो के सहारे लम्बे-से-लम्बे वाक्य लिखे जा सकते हैं। हिन्दी मे ऐसा संभव नही है। हिन्दी में कृदन्त-विशेषण के द्वारा भूत और भविष्य काल को स्पष्ट नही किया जा सकता। इस कारण कंबन के कुछ लम्बे वर्णनो का अनुवाद यथामूल प्रस्तुत करने मे बड़ी कठिनाई का अनुभव हुआ।

मूल में अनेक वृक्षो, लताओ, पशुओ, पक्षियो और विविध वस्तुओ का उल्लेख आया है। कही-कहीं मछलियो की अनेक जातियों और स्वभाव का वर्णन आया है। युद्ध-वर्णन मे अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रो तथा विविध व्यापारो का वर्णन हुआ है। इन सबका हिन्दी-अनुवाद यथामूल उपस्थित करने की भरपूर चेष्टा की गई है, फिर भी हिन्दी में उपयुक्त शब्दो के न मिलने के कारण कही कुछ नये शब्द गढ़ने पड़े हैं, कही तमिल का ही नाम देना पड़ा है।

यदि इस अनुवाद से मूल के सौंदर्य की थोड़ी-सी झलक भी पाठक पा सकेंगे, तो यह लेखक अपने को कृतार्थ समझेगा।

इस अनुवाद-कार्य मे कई विद्वानो के परामर्श मुझे प्राप्त हुए हैं। पं० अवध-नन्दन ने पूरी पांडुलिपि को देखकर उसका संपादन किया और कई सुझाव देने की कृपा की। वे० मु० गोपालकृष्णमाचार्य की कंब रामायण-व्याख्या बहुत उपकारक रही। समय-समय पर अनेक तमिल तथा हिन्दी-विद्वानो ने मुझे इस कार्य में मार्गदर्शन प्रदान किया है। इन सबके प्रति मै हृदय से धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इस अनुवाद को प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया है। इससे न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी की, अपितु तमिल-भाषा की भी सेवा हो रही है। परिषद् को मेरे धन्यवाद हैं।

न० वी० राजगोपालन

# कंब रामायण

## बालकांड

# मंगलाचरण

## *काव्य-पीठिका*

हम उस भगवान् की ही शरण में हैं, जो समस्त लोकों का सर्जन, उनकी रक्षा और उनका विनाश—ये तीनों क्रीडाएँ निरंतर करता रहता है।

बड़े-बड़े आत्मज्ञानी भी उस परमात्मा के पूर्ण स्वरूप को नहीं जान सकते, उस परमात्मा (के तत्त्व) को समझाना मेरे जैसे (मंदबुद्धि) व्यक्ति के लिए असंभव है; फिर भी शास्त्रों में प्रतिपादित त्रिगुणों (सत्त्व, रज और तम) में—जिनका प्रतिरूप बनकर वह परमात्मा त्रिमूर्त्ति के रूप में प्रकट हुआ, उनमें से प्रथम गुण के स्वरूप (विष्णु) भगवान् के कल्याणकारक गुणों के सागर में गोते लगाना तो उत्तम ही है।

जिन ज्ञानियों ने आरंभ तथा समाप्ति में 'हरिः ॐ' कहकर नित्य और अनन्त वेदों को अधिगत (प्राप्त) कर लिया है और जो अपने परिपक्व ज्ञान के कारण संसार-त्यागी बन चुके हैं, वे महानुभाव उस (विष्णु) भगवान् के उन चरणों को, जो सन्मार्ग पर चलनेवाले भक्तों के उद्धारक हैं, छोड़कर अन्य किसी से प्रेम नहीं करते।

अकलंक विजयश्री से विभूषित (श्रीरामचन्द्र) के गुणों का वर्णन करने की अभिलाषा मैं कर रहा हूँ; यह ऐसा ही है, जैसा कि कोई बिल्ली, घोर गर्जन करनेवाले ऊँची तरंगों से भरे क्षीरसागर के निकट पहुँचकर उसके समस्त क्षीर को पी जाने की अभिलाषा करे।

अभिशाप[1] की वाणी से (उस दिन) सप्त तालवृक्षों को एक साथ भेदन कर देनेवाले (श्रीराम) की महान् गाथा आविर्भूत हो गई थी; उस गाथा को मधुर काव्य के रूप में कहनेवाले (वाल्मीकि) की वाणी जिस देश में सुस्थिर हो चुकी है, वहीं मैं भी अपने (अर्थगांभीर्य-हीन) सरल तथा दुर्बल शब्दों में दूसरा काव्य रचना चाहता हूँ—यह भी कैसा (बुद्धिहीन) प्रयास है।

---

१. क्रौंच को मारनेवाले व्याध के प्रति वाल्मीकि के मुँह से जो अभिशाप-वचन निकल पड़ा था, वही रामायण का प्रथम मंगलाचरण भी हुआ।

( मेरी इस मूर्खता पर ) ससार मेरा उपहास करेगा और इससे मेरा अपयश होगा, फिर भी मैं रामचरित का गान करने लगा हूँ ; इसका प्रयोजन यही है कि सत्यज्ञान तथा अलौकिक प्रतिभा से सपन्न ( वाल्मीकि महर्षि ) के दिव्य काव्य का महत्त्व और भी अधिक प्रकट हो।

जिन ( सद्हृदय व्यक्तियों ) के कान विविध प्रकार की रसमय कविता सुनने के आदी हो चुके हैं, उन्हे मेरी कविता उसी प्रकार ( कर्कश ) लगेगी, जिस प्रकार 'याल्'[1] ( वीणा ) के मधुर स्वर को सुनते हुए मुग्ध हो खडे रहनेवाले अशुण[2] के कानो मे 'पटह' ( चमडे के ढोल ) की ध्वनि लगे।

( काव्य, नाटक और संगीत-रूपी ) त्रिविध तमिल-वाङ्मय का जिन्होंने भली भाँति अध्ययन किया है, उन उत्तम विद्वानो और कवियो से मैं निवेदन करना चाहता हूँ— "क्या उन्मत्तो के वचन, मद बुद्धिवालो के वचन तथा भक्तजनो के वचन, इनकी परीक्षा करना उचित हो सकता है ?"

बालक ( खेलते समय ) धरती पर घरौंदे बनाते हैं, जिन मे कोठरियाँ, आँगन, नृत्यशाला आदि स्थानो को कुछ टेढी-मेढी रेखाओ से दिखाने की चेष्टा करते हैं ( उन्हे देखकर ) क्या कुशल कारीगर ( उन घरौंदो के शिल्प-शास्त्र के अनुकूल न होने से ) क्षुब्ध होगे ? किंचित् भी काव्य-ज्ञान से रहित मैं, जो यह क्षुद्र काव्य रचने लगा हूँ, इस पर क्या मर्मज्ञ विद्वान् क्रुद्ध होगे ?

देववाणी ( संस्कृत ) मे जिन तीन महापुरुषो[3] ने रामायण की रचना की है, उनमे प्रथम कवि वाग्मी ( वाल्मीकि ) महर्षि की रचना के अनुसार ही मैंने तमिल-पद्यो मे यह रामायण रची है।

धर्म-रक्षा के लिए, परम पुरुष ने जो अवतार लिये थे, उनमे से रामावतार का वर्णन करनेवाला यह प्रसिद्ध काव्य 'शडैयप्प वल्लर'[4] के ग्राम 'तिरुवेण्णेय नल्लूर' मे निर्मित हुआ। ( १–११ )

●

---

१ 'याल्' एक प्रकार की वीणा। प्राचीन तमिल-साहित्य मे याल् का प्रायः उल्लेख हुआ है। यह माना जाता था कि याल् का स्वर सुनकर हिरन मन्त्रमुग्ध-सा हो जाता था और उसके बाद पटह की कर्कश ध्वनि का वह सहन नहीं कर सकता था और कभी-कभी वैसी ध्वनि सुनने पर अपने प्राण भी छोड़ देता था।

२ हिरन की एक जाति।

३ संस्कृत के तीन रामायणकर्त्ता हैं—वाल्मीकि, वसिष्ठ और बोधायन। कुछ विद्वान वसिष्ठ के स्थान पर व्यास का नाम लेते है, जिन्होने 'अध्यात्मरामायण' की रचना की थी। कंब ने भी कई स्थानों में अध्यात्मरामायण का अनुसरण किया है।

४ शडैयप्प वल्लल एक धनी और उदार व्यक्ति थे। उन्होने महाकवि कंबर को आश्रय दिया था। यद्यपि बाद को महाकवि कंबर चोलराजा के आश्रय में भी रहे थे, तथापि अपने प्रथम आश्रयदाता का ही स्मरण कृतज्ञता के साथ उन्होंने इस प्रबन्ध के आरंभ में कई स्थानों मे किया है।

# अध्याय १

## नदी पटल

[ कोशल देश का वर्णन करने के लिए प्रस्तुत होकर कवि पहले उस देश को हरा-भरा करनेवाली सरयू नदी का वर्णन कर रहा है। ]

कोशल देश में, जहाँ बड़े ही अपराधकर्मी ( पुरुषों की ) पंचेन्द्रिय-रूपी बाण एवं रत्नहारों से विभूषित युवतियों के कटाक्ष-रूपी बाण—ये दोनों सन्मार्ग की सीमा को लाँघकर कभी नहीं चलते, उस समस्त भूप्रदेश को सुशोभित करती हुई सरयू नदी बहती है।

भस्मधारी ( शिव ) के रंगवाले मेघ ने, गगनमार्ग से चलकर, समुद्र के जल का पान किया और ( जल पीकर ) वक्ष पर लक्ष्मी को धारण करनेवाले विलक्षण कांतिपूर्ण विष्णु का रंग पाकर लौटा।

मेघ उमड़कर उठा और हिमाचल के ऊपर छा गया; मानो सागर ही, यह सोचकर कि शिवजी का ससुर यह ( हिमाचल ) पर्वत सूर्यातप से संतप्त हो रहा है और उस ताप से उसकी रक्षा करनी चाहिए, हिमाचल पर फैल गया हो।

मेघ ने जलधाराएँ क्या बरसाईं, एक महान् दाता के सदृश अपनी समस्त संपत्ति को ही लुटा दिया। ( वह दृश्य ऐसा था कि ) आकाश ने जब देखा कि यह भारी हिमाचल[1] ( पर्वत ) स्वर्णमय है, तो उस सोने को खोदकर निकालने के उद्देश्य से अपने चाँदी के बने हथौड़े उस पर मार रहा हो।

वर्षा के जल की धारा बड़े वेग से धरती पर प्रवाहित हो चली और उसने सर्वत्र शीतलता उत्पन्न कर दी, मानो मनु के उपदिष्ट धर्म-मार्ग पर चलनेवाले किसी प्रजावत्सल और गौरव-संपन्न राजा की कीर्त्ति ही सर्वत्र फैल रही हो, अथवा चतुर्वेदों को पूरा अधिगत किये हुए ब्राह्मण के हाथ में प्रदत्त दान ( का यश ) हो।

हिमाचल के ऊपर से वर्षा की धारा प्रबल वेग के साथ नीचे बह चली और किसी रूपाजीवा ( वेश्या ) नारी के समान वह ( पर्वत की ) शिखा, हृदय तथा पाद से संलग्न होती हुई उसकी सीमा से बाहर चली गई; क्षण-भर के लिए वह पर्वत से लगी रही, परन्तु दूसरे ही क्षण वहाँ की सभी वस्तुओं को अपने साथ बहाकर आगे बढ़ गई।

वर्षा का प्रवाह हिमाचल के रत्न, मोर-पंख, हाथियों के दाँत, स्वर्ण, चन्दन आदि अमूल्य पदार्थों को समेटकर ले चला, जिससे वह वाणिज्य करनेवाले व्यक्ति की समानता करने लगा।

वह प्रवाह कभी रंग-बिरंगे पुष्पों से भर जाता; कभी मृदु मकरंद उस पर छा जाते; कभी मधु धारा, कभी हाथियों का मदजल और कभी लोहित धातु उसमें मिले

---

१. प्राचीन तमिल-साहित्य में हिमाचल और मेरु पर्वत दोनों को कभी-कभी एक ही माना गया है, अतः यहाँ हिमाचल को ( मेरु के जैसे ) सोने का पहाड़ कहा गया है।

दिखाई पडते। यों अपने इन विविध रगों के कारण वह ( प्रवाह ) गगन पर चमकनेवाले इन्द्र-धनुष की-सी शोभा दिखाने लगा।

वह प्रवाह कभी बडे-बडे प्रस्तर-खडों को लुढकाता हुआ, कभी गगनचुम्बी वृक्षों को उखाड़ता हुआ और कभी अपने समीप-स्थित पत्र-शाखा जैसी सभी वस्तुओं को उठाये हुए चल रहा था, वह प्रवाह भी क्या था? जब श्रीरामचन्द्र समुद्र पार करके लका मे पहुँचना चाहते थे, तब ( वह प्रवाह ) हिल्लोलों से भरे हुए समुद्र मे सेतु बाँधने का आयोजन करनेवाली वानर-सेना ही जान पड़ता था। ( अर्थात्, पत्थरों तथा वृक्षों से भरा हुआ वह प्रवाह समुद्र पर पुल बाँधनेवाली वानर-सेना के सदृश दीखता था। )

उसके मीठे जल पर भौरों और मक्खियों का झुण्ड मँड़राता हुआ दिखाई पड़ता था, वह प्रवाह किनारों को लाँघकर उद्दाम उमग के साथ बह चला; उसका अन्तर भाग स्वच्छ नही था और ( वह ) सागुवान[1] के बडे-बडे वृक्षों को गिराता हुआ दौडा जा रहा था, जैसे कोई मद्यप डकार लेते हुए भागा जा रहा हो।

उस प्रवाह मे बडे-बडे मृग थे, भारी मुखवाले मत्त गज थे; वह भयकर कोलाहल करता हुआ अपने आगे-आगे ध्वजाओं के समान बहुत-सी लताओं[2] को बहाता चला जा रहा था, ( इन सबसे वह प्रवाह ) ऐसा लगता था, मानो समुद्र पर चढाई करने के लिए कोई बडी सेना को साथ लिये जा रहा हो।

[ वर्षा-प्रवाह का वर्णन करने के पश्चात् अब कवि सरयू नदी का विशेष वर्णन करता है। ]

क्षुब्ध जलधि से परिवृत इस धरती पर जीवन धारण करनेवाले जो प्राणी हैं, उनके लिए सरयूनदी मातृस्तन्य-सदृश है। सूर्यवंश के नरेश जिस महान् सद्धर्म का पालन अनादि काल से करते आ रहे थे, उसी धर्म का पालन वह नदी भी कर रही है।

सरयू की धारा, कोशल देश की रमणियों के बनाये सुगधपूर्ण, कुंकुम, केसर, कोष्ठ ( एक सुगधित द्रव्य ), इलायची, शीतल चंदन, सिन्दूर, नागरमोथा, गुग्गुल, मोम आदि पदार्थों के मिलने से बहुत ही सुगधित रहती है। ( जब स्त्रियाँ नदी में स्नान करती थीं, तब ये वस्तुएँ उसके प्रवाह मे मिल जाती थी और नदी का जल सुगन्धित हो जाता था। )

सरयू की बाढ, अपने जल-रूपी बाणों के कारण, आसपास रहनेवाले व्याध लोगों के छोटे-बडे गाँवों मे बडी हलचल मचा देती है। वह व्याध-नारियों को अपनी छाती पीटकर रोते-कलपते हुए भागने पर बाध्य कर देती है। ऐसे समय में वह नदी शत्रुओं के लिए भयकर ( किसी ) वीर नरेश की सेना का दृश्य उपस्थित करती है।

---

1 मद्यप और जल-प्रवाह दोनों के समान विशेषण दिये गये हैं। सागुवान पेड को तमिल मे 'तेक्कु' कहते है। इस शब्द को क्रिया के रूप मे रखने पर दूसरा अर्थ निकलता है। 'डकार लेते हुए', मद्यप के पक्ष मे, यह अर्थ सगत होता है।

2 तमिल मे 'कोडि' शब्द का अर्थ होता है 'लता'। शब्दश्लेष से उसका दूसरा अर्थ 'ध्वजा' भी होता है। मूल मे इस शब्द का प्रयोग करके कवि ने बड़ा चमत्कार दिखाया है।

वह नदी, किनारे के छोटे-छोटे गाँवों में से, जमा हुआ गाढ़ा और सुगंधित दही, दूध, मक्खन और घी को छींको के साथ ही उठा ले जाती है (बहा ले जाती है), कदंब-वृक्षों को गिरा देती है; हिरनी के समान भीरु नयनवाली ग्वालिनों के दुकूल बहा ले जाती है। प्रबल वेग से बहती हुई वह नदी, कालिय नाग पर, जो अपने फनों और धारियों से भयंकर लगता है—नाचनेवाले कृष्ण की समानता करती है।

सरयू का वह प्रबल प्रवाह अपने मार्ग में (बाँधों) के किवाड़ों को ढकेलकर आगे बढ़ जाता है; कृषक उसे देखते ही आनन्दित हो जाते है और हाथ उठा-उठाकर आनन्द-रव करने लगते हैं, नदी का पूरा भरा हुआ अग्रभाग किनारों से उमड़ता हुआ आगे बढ़ जाता है, उसके ऊपर भौरे झुण्ड-के-झुण्ड मँडराते जाते हैं; वह यत्र-तत्र मोतियों और रत्नों को बिखेर देता है, बाढ़ को रोकने के लिए जहाँ-तहाँ गाड़े हुए खूँटों को वीचि-रूपी अपने विशाल हाथों से उखाड़ता हुआ, लहलहाते हुए खेतों से भरे 'मरुदम्'[१] (कहलानेवाले) प्रदेश में ऐसे आ पहुँचता, जैसे कोई मत्तगज मदजल बहाता हुआ आया हो।

हिमाचल के ऊपर से आया हुआ वह प्रवाह, पर्वत (कुरिंजि) के पदार्थों को पर्वत की तलहटी पर के अरण्य (मुल्लै) प्रदेश में बहा ले जाता है और अरण्य के पदार्थों को खेतों और बगीचों से भरे हुए (मरुदम्) प्रदेश में लाकर फैला देता है तथा समुद्री तट (नेयदल) प्रदेश को अपनी उपजाऊ मिट्टी के द्वारा लहलहाते खेतों में परिवर्त्तित कर देता है। इस प्रकार, वह पर्वत अरण्य, खेतों आदि की वस्तुओं को अपने-अपने स्थानों से हटा-हटाकर दूसरे स्थानों पर रख देता है। देव, मनुष्य, पशु-पक्षी तथा स्थावर—इन चार प्रकार की योनियों में भ्रमण करते रहनेवाले प्राणियों के साथ जिस प्रकार उनके संचित कर्म (पाप और पुण्य) लगे चलते हैं और उन्हें भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होने के लिए बाध्य करते हैं, उसी प्रकार यह नदी भी विभिन्न भू-प्रदेशों के पदार्थों को स्थानान्तरित करती हुई आगे बढ़ती है।

नदी की बाढ़ को बढ़ते हुए देखकर कृषकजन आनन्दित हो उठते हैं और 'पटह'[२] बजाकर उसकी सूचना देते हैं। वह नदी अपनी वीचियों से जल-बिंदुओं तथा स्वर्ण और मोतियों को बिखेरती हुई, धरती को चीरती हुई, नालों की शाखा-प्रशाखाओं में बँटकर बहती हुई इस प्रकार दौड़ चलती है, जिस प्रकार किसी पुण्यवान् मनुष्य की वंशावली विभक्त होकर विकसित हो रही हो।

सरयू का प्रवाह हिमाचल पर उत्पन्न हुआ; वहाँ से चलकर वह समुद्र में जा मिला। वह आरंभ में एक ही रहा, परन्तु धीरे-धीरे असंख्य नालों, नहरों, तालाबों और

---

१. तमिल-लक्षणकार भूमि को पाँच प्रकारों में विभाजित करते हैं—(१) कुरिंजि—पार्वतीय प्रदेश, (२) मुल्लै—अरण्य-प्रदेश, (३) मरुदम्—नदियों के जल से सिंचित समतल प्रदेश, (४) नेयदल—समुद्री तट और (५) पालै—बालूमय प्रदेश या मरुभूमि।

२. प्राचीन तमिल देश में नहरों और नालों की रखवाली करने के लिए 'मल्ल' नामक लोग नियुक्त थे; नदी में जब पानी आता था, तब वे पटह-वाद्यों को बजाकर लोगों को सूचना देते थे, जिससे तट पर के गाँवों के लोग सूचना पाकर सावधान हो जाते थे।

करती हो और कुवलय-पुष्पों का समुदाय अपने विशाल नयनों ( पखुड़ियों ) को खोलकर इस सुमधुर दृश्य को मंत्र-मुग्ध होकर देखता खड़ा है।

वहाँ के विकसित कमल-पुष्पों पर भ्रमर तथा लक्ष्मी देवी विश्राम करती हैं, पुष्पमालाओं से अलंकृत रसिक-जनों पर रमणियों के कटाक्ष तथा कामदेव के बाण आघात करते हैं; बड़ी-बड़ी मेघराशियों से गिरनेवाली जलधाराएँ प्रवाल तथा मोतियों की संपदा उत्पन्न करती हैं: वहाँ के निवासियों की जिह्वा पर सदा सत्यवचन तथा शास्त्र-चर्चा निवास करती है।

शख-कीट तालाबों में ( निर्भय होकर ) विश्राम करते हैं, ( क्योंकि ) भैंसे ( उन्हें कष्ट न देकर ) वृक्षों की शीतल छाया में विश्राम कर रही हैं; भ्रमर ( नगर-निवासियों की पुष्पमालाओं पर ) विश्राम करते हैं · ( क्योंकि ) लक्ष्मी देवी कमल-पुष्प पर विश्राम कर रही हैं: सीपियाँ ( खेत की ) मेड़ों पर विश्राम करती हैं; ( क्योंकि ) कछुए कीचड़ में विश्राम कर रहे हैं; हंस धान के अंखुओं पर विश्राम करते हैं: ( क्योंकि ) मोर ( उन्हें कष्ट न देकर ) उपवनों में विश्राम कर रहे हैं।

( उस देश के वैभव की कितनी प्रशंसा करूँ ? ) वहाँ खेतों में हल जोतने पर सोना निकल पड़ता है, उसको समतल बनाने पर रत्न बिखर जाते हैं: शख मोती उगलते हैं: धान की सुनहली बालियाँ हैं: मछलियाँ हैं और कोमल पत्तेवाले गन्ने हैं: भ्रमरों, कमल-पुष्पों एवं कृषकों के हर्षोत्फुल्ल मुखों से परिपूर्ण वह देश कितना नयनाभिराम है?

प्रभात के समय मधुर स्वरवाले 'याल्'-वाद्य ( एक प्रकार की वीणा ) को हाथ में लेकर, मृदंग की ध्वनि के साथ जब मधु-पान से मस्त गवैये गाने लगते हैं, तब उस संगीत-लहरी को सुनकर रजत-प्रासादों में, सुनहली धूप की छटा बिखेरनेवाले स्वर्ण-पर्यंकों पर निद्रामग्न मयूर-पंख के जैसे नयनवाली तरुणियाँ, जाग उठती हैं।

वहाँ एक ओर कोल्हुओं से गन्ने का रस निर्झर के रूप में बहता है, तो दूसरी ओर नारियल के कटे हुए घौदों से मीठा रस प्रवाहित होता है · कहीं उपवनों में पके हुए फलों का मीठा रस चू रहा है, तो कहीं पुष्पों से मकरन्द झरकर नीचे गिर रहा है। ये सभी रस मिलकर, लहराती हुई धारा बनकर, जब समुद्र में जा गिरते हैं, तब समुद्र के मीन उन रसों को पीकर मस्त हो जाते हैं।

मधु पीकर मस्त हुए कृषक लोग खेत निराने जाते हैं: वहाँ वे खेतों में पौधों के साथ उगे हुए कमल, कुमुद आदि पुष्पों में, मधुर स्वरवाली कृषक-बालाओं के नयन, कर, चरण आदि अंगों की छटा देखते हुए निराना भूल जाते हैं और यों ही इधर-उधर फिरते रहते हैं। नीच जन जब स्त्रियों पर आसक्त हो जाते हैं, तब उस आसक्ति को किसी भी अवस्था में नहीं छोड़ते।

वहाँ की रमणियों के सौन्दर्य का क्या कहना? उनके मधुर स्वर, मनोहर कटाक्ष, जो कटार के जैसे पैने हैं, पुरुषों के मन को हर लेते हैं: उनकी विद्युत् की-सी छटा अवर्णनीय है, उनके केश पुष्प, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों से सुवासित हैं; जब वे नदियों में स्नान करती हैं तो नदी का जल उनके केशों की सुगंधि से सुवासित हो जाता है;

इतना ही नहीं, जब वह जल समुद्र में जाकर गिरता है, तब सारे समुद्र की दुर्गन्ध को अपनी इस सुगंधि से मिटा देता है।

वहाँ पुरुष अतिरूपवान् हैं, उनके कानों और अन्य अंगों में कुण्डल आदि आभूषण शोभा देते हैं, उनके शरीर चन्दन, कर्पूर आदि से लिप्त रहते हैं; जब वे नदियों में स्नान करते हैं, तब नदियाँ उन सुगंधित द्रव्यों से भर जाती हैं और जिन खेतों को वे सींचती हैं, उनकी मिट्टी भी सुवासित होकर कर्पूर आदि की गंध बिखेरती है, जिस कारण से भौंरों के झुण्ड सदा उस मिट्टी पर ही मँडराते रहते हैं।

मीन के समान नेत्रवाली कृषक-बालाओं के पीछे-पीछे राजहंसिनियाँ, उनकी चाल का अनुकरण करती हुई, भटक जाती हैं, तो कमल की सेज पर सोये हुए अपने बच्चों को भी भूल जाती हैं; हंस-शिशु निद्रा से उठकर भूख से चिल्ला उठते हैं, उन्हें देखकर भैंसों को अपने बछड़ों की याद आ जाती है और उनके स्तनों से दूध स्रवित होने लगता है, उस दूध को पीकर हंस-शिशु तृप्त हो जाते हैं, फिर हरे-हरे मेंढक लोरियाँ गाकर उन्हें सुला देते हैं।

वहाँ के उद्यानों में कहीं कोयल का जोड़ा, एक दूसरे को प्यार करता हुआ बैठा है; कहीं सुन्दर मयूर नाच रहे हैं; उन उद्यानों की शोभा, विशालनयन नर्तकियों की नृत्यशालाओं के लिए भी शृंगार है; प्रातःकाल के समय, मधुपान से मस्त भ्रमर भी संध्या-गीत गा उठते हैं ( प्रभात-गीत गाने की सुध उन्हें नहीं रहती ); पंकज-पर्यंकों में सोये हुए राजहंस उस ध्वनि को सुनकर अचानक जाग उठते हैं।

कोशल देश के निवासी मनोविनोदों में अपना समय व्यतीत करते हैं। कहीं सभी गुणों से संपन्न अपने-अपने योग्य सुन्दरियों के साथ युवक विवाह-संबंध करते हैं; कहीं लोग चील के साथ उड़नेवाली परछाईं के जैसे संगीत का रसास्वादन करते हुए मस्त होते हैं ( अर्थात्, संगीत साहित्य का उसी प्रकार अनुसरण करता है, जिस प्रकार छाया उड़नेवाले पक्षी का अनुसरण करती है ), कहीं रसिकजन अमृत से भी श्रेष्ठ काव्य-माधुर्य का पान करने में संलग्न हैं; कहीं अतिथि-सत्कार हो रहे हैं, जहाँ गृहस्थजन अतिथियों की मुखाकृति को देखकर ही उनके मनोभाव समझ लेते हैं और उन्हें उचित उपचार से संतृप्त कर आनन्द प्राप्त करते हैं।

कहीं लोग एकत्र होकर मुर्गों का युद्ध देखते हैं, पूर्व-वैर न होने पर भी, ये कुक्कुट एक दूसरे पर बड़ा क्रोध दिखाते हैं, उनके मन में रोष भरा है, सिर पर की कलँगी उनकी लाल-लाल आँखों से भी अधिक रक्तिम होकर चमकती है, टाँगों में बँधी छोटी-छोटी पैनी छुरियों से वे एक दूसरे पर चोट करते हुए अमन्द उत्साह से घनघोर युद्ध करते हैं, वे कुक्कुट यदि अपने वीरता-पूर्ण जीवन में कोई कमी रखते हैं, तो यही कि वे जीवन की सार्थकता को नहीं पहचानते।

कहीं लोग भैंसों को लड़ाकर उसका तमाशा देखते हैं, लाल आँखवाले वे भैंसे बड़े रोष के साथ एक दूसरे पर आघात करते हैं और एक दूसरे को ढकेलने की चेष्टा करते हैं; ऐसा प्रतीत होता है, मानो विश्व के नाना पदार्थों को एक रूप बना देनेवाला घोर

अंधकार अब दो पक्षों में विभक्त होकर इन भैंसों के भयंकर रूप में आ गया हो और लड़ रहा हो; उस युद्ध को देखनेवाले दर्शक जब प्रसन्नता से अट्टहास कर उठते हैं और सिर हिलाने लगते हैं, तब उनके सिर के फूलों पर बैठे हुए भ्रमर गूँजते हुए उड़ जाते हैं वहाँ जो कोलाहल होता है, उसका शब्द मेघ-मंडल तक गूँज उठता है।

किसान खेतों को हल से जोतते हैं, वे बड़े-बड़े बलवान् बैलों को जोर-जोर से हाँक लगाते हुए ललकारते हैं; उनकी ललकारों की गंभीर ध्वनि से कमल के नाल टूट-टूटकर गिर जाते हैं; मोती और सोना धरती से फूट निकलते हैं; मणियाँ बिखर जाती हैं; 'चलंचल' नामक सीप मुँह खोलकर रो उठते हैं; हल की धारियों में तैरती हुई मछलियाँ छटपटाती हुई उछल पड़ती हैं; कछुए अपने पैरों और सिर को अपने पेट में समेटकर निःस्तब्ध हो पड़ जाते हैं और मीन खेतों से भागकर नालों के गहरे जल में छिप जाते हैं।

बड़ी-बड़ी नौकाएँ, जो अमूल्य वस्तुओं को लेकर विदेशों में गई थीं और वहाँ अपने बोझ उतारकर वापस लौट आई हैं, समुद्र-तट पर पड़ी हैं, मानो भारी बोझ ढोने से दुखती हुई अपनी लंबी पीठ को आराम दे रही हों। ये नौकाएँ भी उस पृथ्वी के ही समान दीखती हैं, जो मनु-नीति का अनुसरण करनेवाले, उचित स्थान पर क्रोध दिखानेवाले, दंड का भी उचित प्रयोग करनेवाले, इच्छाहीन, धर्मज्ञ और प्रजावत्सल राजा के द्वारा सुरक्षित होने के कारण पाप-भार से मुक्त हो गई हो।

धान की कटी बालियों का ढेर आसमान को छूता हुआ पड़ा है: कृषक लोग, (हाँकनेवाले के) संकेतों को समझकर चलनेवाले बैलों के द्वारा उन बालियों की दौनी करके धान निकाल लेते हैं; दरिद्रों को दान देने के बाद बचा हुआ धान गाड़ियों में लादकर अपने घर ले जाते हैं, जिससे अतिथियों तथा कुटुम्ब के संग वे भरपेट भोजन कर सकें। गाड़ियाँ जब धान लादकर चलती हैं, तब भार के मारे पहिये धँस जाते हैं, मानों धरती भी उस बोझ के आगे अपनी पीठ मरोड़ रही हो।

उस देश में सभी आवश्यक पदार्थ उपजते हैं; धान के खेतों में धान, महँकते बागों में पके फल, बाँगर भूमि में चना आदि अनाज, लताओं में फल, कंद-मूल—जो मिट्टी के भीतर से खोदकर निकाले जाते हैं—आदि वहाँ पर होते हैं, जिन्हें कृषक उसी प्रकार बटोर लेते हैं, जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों से मधु को एकत्र कर लेते हैं।

उस देश के सभी प्रान्तों में अन्न का सदाव्रत बड़ी धूम से चलता है; ब्राह्मणों को भोजन देने के उपरान्त गृहस्थजन अपने अतिथियों तथा बंधुओं के साथ स्वयं भोजन करते हैं. भोजन के पदार्थ में तीन श्रेष्ठ फल[1] (आम, कटहल और केला), विविध रसमय दाल, उस दाल को डुबो देनेवाला घी, लाल-लाल दही के टुकड़े, खाँड़ इत्यादि होते हैं और इन व्यंजनों से घिरा हुआ भात होता है।

भ्रमर उस प्रदेश में निरन्तर निवास करते हैं, क्योंकि वहाँ की कामिनियों के

---

१. तमिल देश के तीन प्रधान फल हैं—आम, कटहल और केले। इन्हीं तीन फलों का वर्णन तमिल-साहित्य में प्रायः मिलता है।

पकज समान मुख-मडल पर जो काजल-अंकित रमणीय नयन हैं, उन्हें वे भ्रमरियाँ समझ लेते हैं और उन्ही की सगति की कामना करते हुए सदा वही मँडराते रहते हैं।

कामदेव जिन पुरुषो को विचलित नही कर सकता, उन्हे भी वहाँ की युवतियो का दृष्टि-पात अधीर बना देता है, उनके मनोज्ञ स्तन, सामने आनेवाले पुरुषों का सिर इस तरह झुका देते हैं, जैसे मालिक अपने नौकरों पर क्रोध करके उनका सिर नीचे कर देता है। उधर नारियल के घौदों से जो मधु-धारा वहती है, उसे पीकर मोटे मीन मस्त पडे रहते हैं।

धरती पर चलनेवाले काले बादलो जैसी भैंसें, नदी के ठडे जल में गोता लगाती हुई अपने बछड़ों को याद करती हैं, तो उनके थनों से दूध स्रवित होने लगता है; जब वह दूध नदी के जल से मिलकर खेतों मे पहुँचता है, तब उसी दुग्ध-धारा से सिंचकर धान का शस्य बढ़ता है।

वहाँ की अति समृद्ध पाक-शालाओ में बडे-बडे भांडों में चावल पकाया जाता है, चावल धोने का पानी कल-कल शब्द करता हुआ वहाँ से बहकर क्रमुक-वन में होकर लाल धान के खेतो में पहुँचता है और अंकुरो को पुष्ट करता है।

कूडे के ढेरो पर बैठे हुए और सिर पर कलँगी से शोभायमान लाल मुर्गे जब अपने नखो से कूडे को कुरेदते हैं, तब उसमें से चमकती हुई मणियाँ बिखर जाती हैं; चिडियाँ उन्हे जुगनू समझकर अपने घोंसलो में लाकर रखती हैं।

अहीर तरुणियाँ उज्ज्वल और गाढे दही को अपने सुन्दर करो से हिला-हिलाकर मथती हैं, तब मथानी की ध्वनि रह-रहकर जोर से उमड़ पड़ती है; उनके हाथों में पडे शख के नक्काशीदार सफेद कगन बोल उठते हैं, और उनकी पतली कमर आगे बढ-बढकर लचक जाती हैं।

फुलवारियो मे तोते बोलते हैं; पुष्पो में भ्रमर गाते हैं, जलाशयों में पक्षियो का मधुर कलरव होता है, दानी लोगो के घरो में अतिथियों के भोजन के लिए धान कूटनेवाली औरतें गृहस्थ की प्रशसा मे गीत गाती रहती हैं।

भोली और काली आँखोंवाली बालिकाएँ नदी से मोतियो को अपने चुल्लू मे भर-भरकर ले आती हैं और घर के आँगन मे उनसे घरौंदे बनाकर खेलती हैं; इस तरह बिखरे हुए मोती गुवाक ( सुपारी ) के फलो मे मिल जाते हैं; और गुवाक साफ करनेवाले लोग उन मोतियों को असार वस्तु समझकर फेंक देते हैं।

टेढ़े सींगो और कठोर कपालवाले भेड़ों के बलवान् जोड़े जब परस्पर भिड़कर लड़ते हैं, तब उनके टकराने की कर्कश ध्वनि से उच्चस्थ पर्वत-शृंगो पर रहनेवाले मेघो मे बिजली कौंध जाती है।

पर्वतों के बीच अरण्यों मे जंगली हाथियो को फँसानेवाले वीर शिकारी कठघरे बनाकर उनमे हाथियों के झुण्ड को—बच्चोंवाली हथनियो से उन्हे अलग करके—फँसा लेते हैं; और जब उन मत्त हाथियों को सुदृढ शृंखलाओं मे वे वीर बाँधने लगते हैं, तब वहाँ बडा विकट कोलाहल होता है; उस कोलाहल को सुनकर सरोवर मे हंसिनी के साथ क्रीडा करनेवाले मराल ( हंस ) डरकर भाग खड़े होते हैं।

किसान लोग जब भूमि से कंद-मूल खोदकर निकालते हैं, तब उन कंदो के साथ कई श्रेष्ठ रत्न भी निकल पड़ते हैं ; फलो के भार से झुकी हुई आम्रवृक्षो की डालियो से निरन्तर मधु-धारा बहती रहती है ; सदा कमल-पुष्पो से प्रेम करनेवाले हंस 'पुन्नै' ( नामक ) पुष्पो से आकृष्ट होकर उनके पास अटक जाते हैं।

कृषक-रमणियाँ 'कुरवै' नृत्य ( एक प्रकार का लोक-नृत्य ) करती हुई गाती हैं ; उनके गायन का मधुर स्वर सुनकर ग्वालो के आँगन मे बँधे हुए बछड़े, जो बाँसुरी का नाद सुनने के अभ्यस्त हैं, निद्रा-निमग्न हो जाते हैं, वहाँ की स्त्रियो के राग सुनकर खेतो की रखवाली करनेवाले कृषक बेसुध हो जाते है।

पहाड़ों पर उगे हुए बाँस, हवा के झोंके खाकर टकराने लगते हैं ; उनकी चोट खाकर शहद के बड़े-बड़े छत्तो से शहद बह निकलता है ; ऊँची चट्टानो पर से गिरती हुई मधु की धारा ऐसी लगती है, मानो कोई विशाल सर्प चट्टानो से लटक रहा हो , यह मधु की धारा कुमुद-पुष्पो से भरे सर मे जा गिरती है, तो ( शख ) कीट उसे पीकर तृप्त होते हैं।

वहाँ की सुन्दरियाँ, जिनके विशाल नयन और अर्द्धचन्द्र सदृश ललाट हैं, वे विद्या एवं धन से संपन्न हैं, अतः जो कोई दुःखी पुरुष उनके यहाँ आता है, उसे धन आदि देकर संतुष्ट करती हैं ; वे सदा इस तरह के धर्म-कर्मों में निरत रहती हैं ; उनका अन्य कोई दैनिक कार्य नही है।

भोजनालयो मे, जहाँ रोज अनगिनत अतिथियो को भोजन दिया जाता है, अर्द्धचन्द्राकार कटारो से काटी गई तरकारियो, दालो और मोती के दानो जैसे चावलो की बड़ी-बड़ी राशियाँ लगी रहती हैं।

वहाँ के निवासियो की विभूतियो का वर्णन कौन कर सकता है ? बड़ी-बड़ी नावें विदेशो से अनन्त निधियाँ ला देती हैं ; धरती शस्य के रूप में अनन्त समृद्धि देती है ; खाने श्रेष्ठ रत्न प्रदान करती हैं तथा उनके विभिन्न कुल उन्हे दुर्लभ सदाचार की शिक्षा देते हैं।

वहाँ कही भी कोई पाप-कृत्य नही होता, अतः किसी की अकाल-मृत्यु नही होती ; लोगो के चित्त विशुद्ध रहते हैं, अतः किसी के मन में वैर या द्वेष-भाव नही रहता ; वहाँ के निवासी धर्म-कृत्यों को छोड़ अन्य कोई कार्य नही करते, अतः सदा प्रजा की उन्नति ही होती रहती है।

( उस देश मे ) नदियो के प्रवाह के सिवाय अन्य कोई अपना मार्ग छोड़कर नही चलता ; नारियो की कुंकुमपत्र-रेखाओ से चित्रित ( पुरुषो की ) भुजाओ को छोड़कर अन्य किसी वस्तु का (धान की राशियो पर लगाये गये निशान आदि) चिह्न नही मिटता ; रमणियो के कटि-प्रदेश के अतिरिक्त अन्य कोई क्षुद्र नही होता ; नारियो के पुष्पालंकृत घुँघराले और सुगंधित केशो को छोड़कर और कोई विक्षिप्त ( बिखरा हुआ या पागल ) नही दीखता।

अगरु का धूम, पाकशालाओ का धूम, गुड़ की भट्ठियो का धूम एवं वेद-ध्वनि से गुंजायमान यज्ञशालाओ का धूम—ये सब मिलकर मेघ बन जाते हैं और ( अयोध्या के ) गगन मे फैल जाते है।

उस देश की नारियो की छटा प्राप्तकर मयूर ( गर्व से ) संचरण करते हैं; उनके वक्षो पर शोभायमान रत्नाभरणो की काति पाकर सूर्यातप ( आनन्द से ) सर्वत्र फैल जाता है, उनके केशो की शोभा पाकर मेघ ( अभिमान से ) गगन पर चढ जाते हैं और उनके नेत्रो की छवि प्राप्त कर जलाशयो मे मीन ( हर्ष से ) इधर-उधर तैरते हैं।

सरोवरो मे नारियाँ जब अपनी टूटती-सी सूक्ष्म कटि के साथ लहरों को उद्वेलित करती हुई गोता लगाती हैं, तब उनके रक्ताधर को देखकर कुमुद खिल पड़ते हैं, जल पर चलनेवाले हँस की-सी गतिवाली नारियो के मुख की समता करते हुए कमल खिल जाते हैं।

वहाँ की वनिताओ के कटाक्ष अपने उपमानीभूत सभी वस्तुओं का उपहास करते हैं, उनकी गति हथिनी की गति का उपहास करती है, परस्पर सटे हुए उनके उन्नत उरोज पकज की कलियो का उपहास करते हैं, और उनके सुन्दर मुख षोडश कलाओ से पूर्ण चन्द्रमा का उपहास करते हैं।

वहाँ जो रत्न बिखरे हैं, उनकी काति सूर्य की किरणो से भी विलक्षण है, वहाँ की रमणियो के स्तन नारियल के शीतल फलो से भी विलक्षण हैं, उनके उज्ज्वल दुकूल दूध पर पडे झाग से भी विलक्षण है और उनके विवाहोत्सवो मे बजनेवाले नगाड़े काले बादलो ( के गर्जन ) से भी विलक्षण हैं।

उस देश के हरे-हरे उपवनो की समता कर सकती हैं, केवल काली घटाएँ; खेतो मे लगे धान के अबारो की समता कर सकता है, केवल पर्वत, वहाँ के बाँधो से घिरे हुए विशाल जलाशयो की समता कर सकता है, केवल अपार जलराशि समुद्र; और, अनन्त निधियों से सपन्न उस कोशल देश की समता कर सकता है, केवल देवलोक।

जो धानो की राशियाँ नही हैं, वे मोतियो के ढेर हैं, जो मोतियो के ढेर नहीं हैं, वे समुद्र से निकाले गये नमक के ढेर हैं, जो नमक के ढेर नही, वे नदियो से निकली अमूल्य वस्तुओ के समूह हैं, और, जो उन वस्तुओं के समूह नही हैं, वे सैकत श्रेणियाँ हैं, जहाँ रत्न बिखरे पडे हैं।

बालिकाएँ जहाँ कन्दुक-क्रीडा करती हैं, वे चन्दन के बाग नही हैं, परन्तु चंपक-पुष्पो के उपवन हैं—( बालिकाओ के शरीर की सुगंधि पाकर चन्दन-वन भी चपक-उपवन के समान महँक उठते हैं ), मयूरवाहन सुन्दर सुब्रह्मण्यम् ( कार्त्तिकेय ) के जैसे वहाँ के बालक जहाँ धनुर्विद्या आदि कलाओ का अभ्यास करते हैं, वे नन्दन वन नही हैं, परन्तु मकरन्द-भरे रजनीगधा के वन है – ( उन बालको के शरीर से भी रजनीगन्धा की-सी सुरभि पाकर परिजात-वन भी रजनीगन्धा की फुलवारी के समान महँकने लगता है। )

वहाँ के कोकिल उन सुन्दरियो की कठध्वनि का अनुकरण करते हुए बोल उठते हैं, मयूर उनके नृत्य का अनुकरण करते हुए नाचने लगते हैं और सीप उनके दाँतो के उपमान होनेवाले मोती उगलते हैं।

( उस देश के ) मद्य-विक्रेताओ के यहाँ मद्य पर्याप्त मात्रा मे मौजूद रहता है, उन मद्यो का पान करनेवाले कृषको के यहाँ खेती के उपयुक्त सभी आवश्यक साधन

उपस्थित रहते हैं ; विवाह-मंगल में व्यस्त युवकों के घरों में उस समय के अनुकूल मंगल-वाद्य बजते रहते हैं ; और, संगीत-कला-निपुण 'बाण' ( एक गायक जाति ) लोगों के घरों में घुमावदार 'किलै' ( एक प्रकार की वीणा )-वाद्य विद्यमान रहते हैं।

वहाँ पुष्प-मालाएँ शीतल नव मधु बरसाती हैं; जल-पोत उत्कृष्ट रत्नों को ( विदेशों से लाकर ) बरसाते हैं . हवाएँ प्राणों को स्थिर रखनेवाला अमृत बरसाती हैं और कवियों की वाणी कर्ण-पेय मधुर कवित्व रस बरसाती है।

पुष्पों से अलकृत केशों और मुक्ता-मालाओं से भूषित वक्षों से अतिरमणीय दिखनेवाली कामिनियों को उद्यानों में देखकर बड़े कलापवाले मयूर भ्रम में पड़ जाते हैं कि वे भी मयूरी हैं और इसलिए युवकों के मन के जैसे ही वे मयूर भी उनके पीछे-पीछे चलने लगते हैं।

उस देश में दान का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ कोई भी याचक नहीं है ; शूरता का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ युद्ध नहीं होते : सत्यवचन का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ कोई कभी असत्य-भाषण नहीं करता : और, पंडितों का भी महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ के सभी लोग बहुश्रुत तथा ज्ञानी हैं।

तिल, जौ, मामा, कुलथी आदि धान्यों से भरी हुई गाड़ियाँ और नमक के खेतों से नमक लादकर लानेवाली गाड़ियाँ, वहाँ की गलियों में पहुँचकर एक दूसरे की कतारों में इस प्रकार खो जाती हैं कि उन्हें अलग-अलग पहचानना कठिन हो जाता है।

वहाँ के विभिन्न प्रान्तों में उत्पन्न होनेवाले खाँड, शहद, दही, मद्य आदि पदार्थ दूसरे प्रान्तों में यों स्थानान्तरित होते रहते हैं, जैसे मोक्ष-प्राप्ति के उपाय से वंचित प्राणी अपने किये कर्मों के फल भोगते हुए विभिन्न जन्म ग्रहण कर भटकते रहते हैं।

यज्ञों को देखने के लिए आई हुई जन-मंडली और मेलों को देखने के लिए आई हुई जन-मंडली—दोनों, संगीत और बाँसुरी की ध्वनियों से प्रतिध्वनित होनेवाली गलियों में इस तरह मिल जाती हैं, जैसे अलग-अलग दिशाओं से बहती हुई दो नदियाँ एक स्थान पर आकर मिल जाती हों।

शंख-ध्वनि, मृदंग का नाद, पटहों का रव आदि स्वर, खेतों में बड़े-बड़े बैलों को हाँकनेवाले कृषकों की हाँक में समा जाते हैं।

माताएँ अपने नन्हें बच्चों को दूध पिलाकर अपने हाथ से अन्न उठाकर खिलाती हैं. उन बच्चों के मुँह से लार उनके वक्ष पर गिरती है, जहाँ ( विष्णु भगवान् के ) पाँच आयुधों के चिह्नोंवाली माला पड़ी है, अन्न उठाते समय उन नारियों के मुकुलित होनेवाले कर यों दीखते हैं, जैसे चन्द्र की कांति से पंकज मुकुलित हो रहे हों।

वहाँ के लोग शीलवान् हैं, इसलिए उनका सौन्दर्य नित नवीन रहता है : वे सत्यवादी हैं, इसलिए वहाँ नीति स्थिर रहती है ; वहाँ स्त्रियों का आदर होता है, इसलिए धर्म सुरक्षित रहता है , और, वर्षा समय पर होती है, क्योंकि वहाँ की स्त्रियाँ पवित्र आचरणवाली हैं।

उस विशाल कोशल देश की, जो उपवनों से घिरा हुआ है, सीमा का पता कोई

भी नही लगा सकता ; सरयू नदी अपनी अनन्त शाखा-प्रशाखाओ से बहती हुई उस सीमा को खोज रही है, फिर भी उसे पहचान नही पाई है।

यह कोशल देश इतना पुण्यभूयिष्ठ है कि यदि प्रभजन के आघात से समुद्र की जलराशि भूमि पर चढ़ आवे, तो भी उस देश की कोई हानि नही हो सकती। ऐसे कोशल का वर्णन करने के पश्चात् अब हम अयोध्या नगर का वर्णन करेंगे। ( १—६१ )

## अध्याय २

### नगर पटल

अयोध्या नगरी सस्कृत भाषा के महाकवियो तथा विद्वानो द्वारा रस-भरे, सार-गर्भित, मधुर शब्दो मे वर्णित हुई है , जिस स्वर्गलोक की प्राप्ति की इच्छा से असंख्य लोको के निवासी तपस्या मे लीन रहते हैं, उस स्वर्ग के निवासी भी अयोध्या नगरी का निवास प्राप्त करने की कामना करते रहते हैं।

क्या वह अयोध्या नगरी भूदेवी का मुख है या उसका तिलक है ? अथवा उसके नयन है ? उसके स्तनो पर सुशोभित मनोहर रत्नहार है ? अथवा उस भूदेवी के प्राणो का निवास है ?

क्या वह नगरी लक्ष्मी देवी का आवास-भूत अति सुन्दर कमल है ? या वह स्वर्णमंजूषा है, जिसके भीतर विष्णु भगवान् के वक्ष पर प्रकाशित होनेवाले कौस्तुभ मणि जैसे सुन्दर रत्न रखे हुए हैं ? अथवा वह देवलोक से भी ऊँचा वैकुण्ठधाम ही है ? कदाचित् यह वह स्थान है, जहाँ प्रलय के समय सारी सृष्टि समा जाती है। इस नगर के सम्बन्ध मे और क्या कहें ?

अपने अर्धांग मे उमा देवी को स्थापित करनेवाले ( परमशिव ) दो देवियो ( श्री और भूमि ) के पति अतुलनीय ( विष्णु ) भगवान् तथा कमलासन देव ( ब्रह्मा ) ने भी इस अयोध्या की समानता करनेवाला दूसरा नगर नही देखा। चन्द्र तथा सूर्य भी इसके उपमान हो सकनेवाले एक नगर को देखने की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर ही निर्निमेष नयनो से अभी तक अतरिक्ष मे घूम रहे हैं अन्यथा उनके इस प्रकार भ्रमण करने का दूसरा कारण क्या हो सकता है ?

ब्रह्मदेव ने बहुप्रशसित इस रमणीय अयोध्यापुरी का निर्माण करने के हेतु तीक्ष्ण वज्रायुध धारण करनेवाले ( देवेन्द्र ) की नगरी अमरावती एव कुबेर की राजधानी ( अलकापुरी ) की सृष्टि करके पहले ही नगर-निर्माण का अभ्यास कर लिया था, मय आदि देवशिल्पी भी इस नगर की शोभा देखकर लज्जित हो गये और शिल्प-कला मे अपनी हार स्वीकार कर सकल्पमात्र से सृष्टि करनेवाली अपनी शक्ति को भूल बैठे, तो मेघ-मडल को छूनेवाले इन प्रासादो का वर्णन कैसे किया जाय ?

अपरिमेय वेदो मे यह अर्थ प्रतिपादित हुआ है कि ( इस ससार मे ) 'जो पुण्य

कर्म करते हैं, वे परलोक में आनन्द प्राप्त करते हैं'—वैसे धर्म का पालन करते हुए इस पृथ्वी पर श्रीराघव के अतिरिक्त और किन्होंने बड़ा तप किया है? धर्म के ज्ञाता, अनिर्वचनीय गुणों से भूषित ( रामचन्द्र ) ने जिस नगर में रहकर सप्त लोकों की रक्षा की, उस अयोध्या से भी बढ़कर सुखप्रद स्थान दूसरा कोई हो सकता है– ऐसा मानना भी क्या उचित है?

महान् करुणा ( भगवान् की करुणा ) और धर्म की सहायता से पंचेन्द्रिय-रूपी अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके, उत्तरोत्तर बढ़नेवाली तपस्या और ज्ञान प्राप्त करनेवाले महापुरुष जिस भगवान् की शरण में जाते हैं, वह अरुण नयनवाले विष्णु इस नगर में अवतीर्ण हुए और ( सीता देवी के रूप में रहनेवाली ) लक्ष्मी के साथ यहाँ रहकर अनन्त काल तक लोक-पालन करते रहे, तो इस अयोध्या की समता कर सकनेवाला स्वर्णमय नगर देवलोक में भी कहाँ मिल सकता है?

सभी राज्यों के नरेश उसी अयोध्या में एकत्र रहते हैं सभी श्रेष्ठ आभरण और दुर्लभ रत्न वहीं पर होते हैं, बड़ी जंजीरों से बँधे मत्त गज, तुरंग, रथ आदि इस संसार की सभी श्रेष्ठ वस्तुएँ वहीं पर होती हैं; मुनि, देव, यक्ष, विद्याधर आदि सब उसी नगर में जमा रहते हैं; तो उस नगर की उपमा किसके साथ हो सकती है? ऐसे नगरी के विषय में क्या मुझ जैसा व्यक्ति कुछ कह सकता है?

[ नीचे के छह पद्यों में नगर के प्राचीर का वर्णन है। ]

हिमावृत, अति उन्नत पर्वत-श्रेणियों में भी शिल्प-शास्त्र के अनुसार बने चतुष्कोण आकारवाले पर्वत इस सृष्टि में कहीं नहीं हैं, अतः ( अयोध्या के ) उस प्राचीर का उपमान भी कहीं नहीं है; वे स्वर्णमय प्राचीर उन विद्वानों के उन्नत ज्ञान के सदृश हैं, जिन्होंने बड़ी तत्परता के साथ सर्व शास्त्रों का अध्ययन किया हो।

गभीर ज्ञान से भी उसका स्वरूप तथा अंत नहीं जाना जा सकता, अतः वह प्राचीर वेदों के समान है, उसके अति उन्नत शिखर अपर लोक तक पहुँचते हैं, अतः वह देवों के समान है; पंचेन्द्रिय-तुल्य बलवान् यत्रों को अपने वश में रखने के कारण वह मुनियों के समान है; रक्षा करने में वह हरिणवाहना कन्या ( दुर्गा देवी ) के समान है; शूलायुधों को धारण करने के कारण वह कालिका के समान है, अपनी विशालता के कारण वह सभी महान् पदार्थों के समान है; किसी के लिए भी अगम्य ( पहुँच के बाहर ) होने के कारण वह स्वयं भगवान् के समान है।

ऊपर उठा हुआ वह प्राचीर अंतरिक्ष में पहुँच गया है, मानों वह देखना चाहता है कि क्या देवताओं का निवास ( स्वर्गपुरी ) इस अयोध्या से भी अधिक सुन्दर है, जिस नगर में मधुर-स्वरवाली ऐसी असंख्य रमणियाँ हैं, जिनके पद-नख, लाक्षा-रस से अंकित श्रेणी में रखे हुए चंद्रों के सदृश हैं; पद रक्त-कमल तुल्य हैं; कटियाँ नाल-तुल्य हैं; उरोज छोटे नारियल के समान हैं तथा जिनकी भुजाएँ लचीले कोमल बाँस के सदृश सुकुमार हैं।

वह प्राचीर उस नगर के चक्रवर्ती के ही समान है; क्योंकि वह संसार के मापकदंड से युक्त है—( चक्रवर्ती वेत्रदंड से युक्त हो सारे संसार की रक्षा करता है, उसी प्रकार प्राचीर

भी अपने भीतर दंडों से युक्त है ); वह शत्रुओं के मुकुटधारी शिरों को काट देता है—( राजा अपने शस्त्रों से और प्राचीर अपने भीतर लगे हुए यंत्रों से शत्रु का शिर छेदन करता है। ), वह मानव-शास्त्र के अनुसार स्थित है—( राजा मनु के प्रतिपादित धर्म पर चलते हैं और प्राचीर मानवों के शिल्प-शास्त्र के अनुसार बनता है ), वह इस प्रकार ( नगर की ) सुरक्षा करता है कि कोई ( शत्रु ) आँख उठाकर भी उसे देख नहीं सकता, वह अत्यन्त बलिष्ठ है, वहाँ धनुष, तलवार आदि का अभ्यास होता रहता है, वहाँ कठोर तत्र—( राजतंत्र तथा सेना का प्रबंध ) रहता है, वह शत्रुओं के लिए दुर्जय है, महा औन्नत्य ( ऊँचाई ) से युक्त है तथा चक्र—( शासन-चक्र तथा यंत्र ) चलाता रहता है।

उस प्राचीर में निष्ठुर त्रिशूल, प्राणघातक खड्ग, धनुष, फरसा, गदा, चक्र, तोमर, मूसल, मेघ के गर्जन के सदृश भयंकर 'कवण्कल' ( पत्थर फेंकनेवाला यंत्र ) इत्यादि अनेक कल-पुरजे और यंत्र लगे हैं, जो मशकों को, पक्षिराज ( गरुड ) को, तीव्रगामी हवा को, अहित विचारवाले के मन को भी भग्न करनेवाले हैं।

अष्ट दिशाओं में भी अंधकार को हटाकर सुन्दर रूप में प्रकाश फैलानेवाले सूर्य के कुल में उत्पन्न जो राजा हैं, वे आभरणों की अपेक्षा यश को ही उत्कृष्ट ( आभर आभरण ) माननेवाले हैं, अतः वे अच्छे चरित्रवाले बनकर संसार के प्राणियों की रक्षा में निरत रहते हैं, उनका शासन-चक्र, अनुपम वेत्रदंड तथा आज्ञा, अष्ट दिशाओं में तथा ऊपर के लोकों में भी फैलकर रक्षा करते हैं। इसलिए, उस नगर के चारों ओर जो प्राचीर बनाई गई है, वह अलंकार-मात्र है।

[ नीचे के आठ पद्यों में परिखा ( खाई ) का वर्णन है। ]

अब हम जिस परिखा ( खाई ) का वर्णन करने लगे हैं, वह उस उन्नत प्राचीर को इस प्रकार घेरे हुए पड़ी है, जिस प्रकार उन्नत चक्रवाल पर्वत को घेरकर उत्तुंग तरंगों से भरा सागर पड़ा रहता है। वह ( परिखा ) वारनारी के मन के समान गहरी, असत्कविता के समान स्वच्छता-हीन ( गंदी ), कुलीन कन्याओं के जघन-तट के समान किसी के लिए भी अगम्य होकर सुरक्षित, तथा ऐसे मगरों से भरी है, जो ( लोगों को ) सन्मार्ग से हटाकर बुरे मार्ग पर खींच ले चलनेवाली इंद्रियों के समान प्रबल हैं।

गगन में संचरण करनेवाला मेघ-समुदाय, उस विशाल तथा पाताल तक गंभीर परिखा को देखकर समझता है कि यही भयंकर समुद्र है, और वहाँ उतरकर जल भर लेता है, फिर ऊपर उठकर उस प्राचीर को देखकर समझता है कि यह कोई गगनोन्नत पर्वत है और वहीं पर अपनी जलधाराएँ बरसाने लगता है।

ऊँचे प्राचीर के बाहर स्थित विशाल परिखा में अपनी सुरभि को चारों ओर फेंकता हुआ पंकज-वन खिला हुआ है; वह ऐसा लगता है, मानो माननियों के उज्ज्वल वदनों से जो कमल पहले परास्त हो गये थे, वे अब अपने समस्त बल को एकत्र करके युद्ध करने के लिए आ जुटे हों और उस प्राचीर को घेरकर पड़े हों।

बड़ी कुशलता के साथ लगाये गये यंत्रों से शोभित उस प्राचीर के चारों ओर

( यदि कैकेयी के षड्यन्त्र में मेरा हाथ हो, तो ) दोषहीन प्राचीन वंशों को कलंकित कहकर उनकी निंदा करनेवाला, अकाल के समय में दरिद्र लोगों के कमाये अन्न को बिखेर देनेवाला, सुगंधित भोजन पदार्थों को, समीपस्थ व्यक्तियों को दिये बिना, उनके मुँह में लार टपकाते हुए, स्वयं खानेवाला—जो गति पाते हैं, वही गति मुझे भी मिले।

जो व्यक्ति, धनुष से और करवाल से प्रकट किये जानेवाले पराक्रम को व्यर्थ करके, इस नश्वर शरीर को कुछ समय तक सुरक्षित रखने की लालसा से विरोधियों के घर में उनके द्वारा क्रोध के साथ दिये जानेवाले अन्न को अपने हाथ पसारकर माँगता हुआ रहता है, उसकी जो दुर्गति होती है, वही मेरी भी हो।

कोई व्यक्ति याचक से, उसकी माँगी हुई वस्तु 'मेरे पास है'—कहकर भी उसे न दे और यह भी न कहे कि 'मेरे पास वह वस्तु नहीं है'—ऐसे मूर्ख व्यक्ति को जो नरक मिलता है, वही नरक मुझे भी मिले।

( यदि राम को वन भेजने में मेरा हाथ रहा हो, तो ) जो व्यक्ति शत्रु-भयंकर करवाल को अपने दीर्घ हाथ में लेकर युद्धक्षेत्र में जाय और फिर व्याधियों के आवास, दुर्गंध से युक्त इस क्षुद्र देह को बचाने की इच्छा से, मोती-समान दाँतोंवाली युवती के देखते हुए, शत्रुओं के सम्मुख सिर झुका दे—उस व्यक्ति की जो दुर्गति होती है, वही मेरी भी हो।

विशाल गन्ने के खेतों तथा लाल धान के खेतों से युक्त जल-समृद्ध देश को, शत्रु के द्वारा हरण किये जाते देखकर भी जो व्यक्ति अपने प्राणों को बचाने के लिए बेड़ी में बँधे अपने चरणों के साथ शत्रु के सम्मुख खड़ा रहे, उसकी जो दुर्गति होती है, मेरी भी वही दुर्गति हो।

क्रूर कैकेयी के किये कार्य को यदि मैं जानता ही हूँ, तो मैं भी उन लोगों की दुर्गति को प्राप्त करूँ, जो धर्म से न हटनेवाले अपने पूर्वजों को दुःख देते हुए पाप-कर्म करते रहते हैं।

इस प्रकार अपने मन की निष्कलंकता को प्रकट करनेवाले भरत को देखकर कौशल्या यों आनंदित हुई, जैसे राज्य त्यागकर वन को गये हुए राम को ही लौट आये हुए देख रही हो। उन्होंने आँसू बहानेवाले भरत को अपने गले से लगा लिया।

कपटहीन उत्तम स्वभाववाले भरत के कार्य को, तथा उनकी माता ( कैकेयी ) के पाप-स्वभाव को, पहचानकर दुःख की अधिकता से कौशल्या यों रोईं कि उनके पीन स्तनों से दूध टपकने लगा और उनका मुख सूज गया।

कौशल्या बोली—हे राजाधिराज ( भरत )! तुम्हारे कुल के मनु आदि अति पुरातन पूर्व पुरुषों में भी तुम्हारी समता करनेवाले कौन थे? यों कहकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। भरत बार-बार उनके वचन (अर्थात्, उनका भरत को राजाधिराज कहना) को स्मरण करके द्रवितचित्त होकर रो पड़े।

भरत के अनुज ( शत्रुघ्न ) ने भी, भरत के सद्गुणों को सोचकर प्रेम से पिघलनेवाली माता ( कौशल्या ) के चरणों पर नत हुआ और यथाविधि नमस्कार करके व्याकुल मन से खड़ा रहा। इसी समय वसिष्ठ मुनिवर वहाँ जा पहुँचे।

तब भरत उन महातपस्वी के चरणों पर गिरकर बोला—मेरे पिता कहाँ हैं ? बताइए। तब वसिष्ठ दुःख की अधिकता के कारण कुछ उत्तर न दे सके और व्याकुल हो आँखों से अश्रु बहाते हुए भरत को गले से लगा लिया।

वसिष्ठ ने कहा—हे दोष-रहित कुमार ! उदारगुणवाले तुम्हारे पिता के प्राण छोड़े, आज सात दिन हो गये। तुम पुत्रों के द्वारा किये जानेवाले कार्य ( अंतिम क्रिया ) करो। तब कौशल्या ने उनको ( उस स्थान पर, जहाँ दशरथ की देह रखी थी ) जाने की आज्ञा दी।

पिता की देह को देखने की अनुमति देनेवाली माता ( कौशल्या ) के चरणों को नमस्कार करके भरत, सुन्दर दीर्घ जटाओंवाले पवित्र वसिष्ठ मुनि के साथ चले और अपने प्राण देकर धर्म की रक्षा करनेवाले चक्रवर्त्ती दशरथ के अति प्रशंसित साकार धर्म-जैसे शरीर को देखा।

भरत दहाड़ मारकर रो पड़े और धरती पर गिर पड़े और महिमामय आज्ञाचक्र को प्रवर्त्तित करनेवाले ( दशरथ ) के तैल-पात्र में रखे हुए सोने के रंग के शरीर को अश्रुओं से धो दिया।

चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों ने आदर के साथ दशरथ के शरीर को उस स्थान से अपने हाथ से उठाया और स्वर्ण से निर्मित एक विमान में रखा। तब राजा के योग्य नगाड़े बजने लगे।

नगर के लोग, वेला में बँधे समुद्र के समान रुदन से उत्पन्न ध्वनि करते हुए व्याकुलप्राण हो रहे। राजाओं का समूह चारों ओर हाथ जोड़कर खड़ा रहा। ऐसे समय में, गले में रस्सी से युक्त एक हाथी पर उस देह को रखकर लोग ले चले।

सुन्दर तथा विशाल रथ को चलानेवाले सुमंत्र के साथ, मन्त्रणा करने में निपुण मन्त्री तथा अनुपम सेनापति, मित्रवर्ग तथा अन्य लोग व्याकुल हो चारों ओर से रो रहे थे।

शंख, पटल, शृङ्गी आदि वाद्य सब दिशाओं में उसी प्रकार बज उठे, जिस प्रकार मेघों के आश्रय बननेवाले ऊँचे प्रासादों से युक्त उस नगर की स्त्रियाँ, अपने उमड़ते नेत्रों पर हाथ से मारती हुई रो रही थीं।

घोड़े, हाथी, उज्ज्वल रथ, राजा, चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण, उस देह को लेकर, दशरथ की रानियों के साथ, स्वच्छ वीचियों से पूर्ण जल से समृद्ध सरयू नदी पर जा पहुँचे।

शास्त्रज्ञ पुरोहितों ने यथाविधि सब कर्म कराके चिता सजाई। उस पर दशरथ की देह को रखा। फिर भरत से कहा—हे वीर ! शास्त्रोक्त विधान के अनुसार तुम अपने पिता का अंतिम संस्कार पूर्ण करो।

यों कहने पर भरत पिता का अंतिम संस्कार करने के लिए प्रस्तुत हुए। उस समय उनको देखकर वसिष्ठ ने कहा—तुम्हारी माता के दुर्गुण के कारण चक्रवर्त्ती ( दशरथ ) अत्यंत पीड़ित होकर, तुमको भी त्याग कर ( अर्थात्, तुम्हारे पुत्रत्व-संबंध को तोड़कर ) चल बसे।

हे उत्तम कुमार। मानो यह दिखाने के लिए ही कि तुम्हारे जन्म से परंपरा से आगत धर्म परिवर्त्तित हो गया है, तुमको त्यागकर वे मृत हुए। यह वचन सुनकर भरत मृत-से हो गये। ऐसा लगा कि वहाँ जो खडे थे, असली भरत नही थे, कोई और थे।

महान् तपस्वी यों कहकर निःश्वास भरते खडे रहे। तब, पर्वताकार कधोवाले भरत, 'अच्छा है, अच्छा है।'—कहकर मुस्करा उठे।

जैसे काला सर्प घोर वज्र-घोष से भीत होकर काँप उठा हो, उसी प्रकार भरत काँपकर धरती पर गिर पडे। उनका मन बडी व्याकुलता से तड़प उठा। उनके हृदय का दुःख रोकने पर भी न रुकता था। वे आँसू बहाते हुए कहने लगे—

मृतक-सस्कार करने का अधिकार मुझे नहीं था। ऐसा मैं क्या राज्य का शासन करने की योग्यता रखता हूँ? सूर्यकुल मे उत्पन्न मेरे पिता से पूर्व उत्पन्न राजाओं मे मुझ से बढकर कीर्त्तिमान् कौन हुए?

हे कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ)! मेरे पूर्वज दोषरहित, धर्म के अप्रतिकूल मार्ग पर चलकर स्वर्ग मे गये। पर मैं तो अपने बालकपन मे ही व्यर्थ जीवन धारण करनेवाला हो गया हूँ! हाय!

मैं घने पत्तों से युक्त प्रसिद्ध केतकी-पुष्पों के मध्य स्थित रहकर निस्सार तथा गधहीन वस्तु के समान हो गया हूँ। मुझे जन्म देनेवाली मेरी जननी ने मेरा जो उपकार किया है, वह (उपकार) भी कैसा है!

चारों वेदों मे प्रतिपादित विधान के अनुसार सब कार्य कराने में समर्थ वसिष्ठ उपर्युक्त प्रकार से कहकर दुःखी हो खडे रहनेवाले, पुष्पमाला-भूषित भरत के अनुज (शत्रुघ्न) के द्वारा उस समय यथाविधि प्रेत-सस्कार कराया।[1]

उत्तम पुष्पलता-सदृश राजपत्नियाँ अपने हार, आभरण तथा लचकनेवाली कटि के चमकते हुए, इस प्रकार चिता की अग्नि में प्रविष्ट हुई, जिस प्रकार पर्वत-कदरा मे निवास करनेवाले कलापियों का समुदाय पत्रहीन कमल पुष्पों से भरे जलाशय मे प्रविष्ट हुआ हो। (भाव है, प्रधान महिषी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा इनके अतिरिक्त अन्य सब पत्नियों ने सहगमन किया)।

उन स्त्रियों के वदन कमल-पुष्प तथा चद्र के समान शोभायमान हो रहे थे। चिता की अग्नि, उनके पति (दशरथ) का देह-स्पर्श करके अत्यत शीतल लग रही थी। वे राजपत्नियाँ मन की पीडा से रहित होकर, पति के साथ सहगमन करनेवाली नारियों की सद्गति को प्राप्त हुईं।

इसके पश्चात् भरत ने शत्रुघ्न के द्वारा पिता के सब सस्कार कराये। फिर, माता के क्रूर कृत्य के कारण क्षत्रियोचित जीवन से वंचित होकर उपमाहीन शोक-रूपी समुद्र के साथ अपने निवास मे जा पहुँचे।

---

१. राजा दशरथ ने कहा था कि कैकेयी को मैं त्याग देता हूँ, भरत को भी मैं अपना पुत्र नहीं मानता। इसी कारण से वसिष्ठ मुनि ने शत्रुघ्न से दशरथ का अग्नि-सस्कार कराया।—अनु०

चक्रवर्ती के कुमार ने दस दिन तक किये जानेवाले पितृकर्म को, एक-एक दिन को एक-एक युग के समान व्यतीत करते हुए तथा अत्यन्त वेदना के साथ, शास्त्रोक्त विधान से पूर्ण किया।

सब पितृ-संस्कार पूर्ण कराके, अपने कार्य-भार से मुक्त होकर महान् तपस्वी वसिष्ठ त्रिसूत्रयुक्त यज्ञोपवीत से शोभायमान ब्राह्मणो के द्वारा अनुसृत होते हुए, विजयी भाले को धारण करनेवाले भरत के निकट पहुँचे।

कुल-क्रमागत मंत्री यह विचार कर कि बिना राजा के राज्य का रहना उचित नहीं है, भरत को राजा बनाने का दृढ निश्चय करके, उस राज्य के बडे ज्ञानवान् लोगों को साथ लेकर आये। ( १—१४५ )

●

# अध्याय १०

## वन-प्रस्थान पटल

मन्त्रणा-कुशल मंत्री ( भरत के प्रति ) प्रेम से भरे हृदय के साथ यह सोचते हुए कि परम्परा से प्राप्त वेदो को अधिगत करनेवाले तथा तपस्या के सब तत्त्वो को जाननेवाले वसिष्ठ उस राजसभा मे उपस्थित है, शीघ्र सभा मे आ पहुँचे और भरत को नमस्कार किया।

तपस्या के प्रभाव से गगन मे भी संचरण करने की शक्ति रखनेवाले मुनियो के साथ मंत्री, नगर के लोग, सेनापति, राजा तथा सब बुद्धिमान् एवं विवेकी पुरुष, सुन्दर वीर ( भरत ) को यथाक्रम घेरकर बैठ गये।

जब सब लोग इस प्रकार बैठे हुए थे, तब ज्ञानी तथा रथ चलाने मे दक्ष सुमंत्र ने विजयी चक्रवर्ती के कुमार ( भरत ) को अपने मन के विचार सूचित करने के उद्देश्य से सर्वज्ञ मुनिवर ( वसिष्ठ ) के मुख की ओर देखा।

तपस्वी वसिष्ठ ने सुमंत्र के अपनी ओर देखने से, वचनो के बिना ही, उसके मन के आशय को जान लिया। फिर चक्रवर्ती के कुमार से बोले—राज्य की रक्षा करो। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है।

( वसिष्ठ ने भरत से कहा—) हे दोष-रहित! गुणवान्, वेदज्ञ, अपूर्व तपस्या-सपन्न, वृद्ध, नरेश आदि जो तुम्हारे पास आये है, इनके आगमन का प्रयोजन यही है कि नीति तथा धर्म को स्थिर बनायें ( और उसके लिए तुम्हे राजा बनाये )। तुम इस बात को अपने मन मे समझ लो।

धर्म नामक अनुपम वस्तु का सबसे आचरण कराना तथा उसको स्थापित करना कठिन कार्य है। हे तात! तुम इस विषय को भली भाँति समझ लो। यह धर्म इहलोक और परलोक—दोनो को प्रदान करनेवाला है। स्वच्छ चित्तवाले ही इसका पालन कर सकते हैं।

विचार करने पर विदित होता है कि कटि में दृढ करवाल धारण करनेवाले राजा के अभाव में यह संसार सब की इच्छा के पात्र सूर्य से विहीन दिन-जैसा होता है, नक्षत्रों से घिरे हुए चंद्र से विहीन रात्रि-जैसी होती है तथा अपने अंतर में प्राणों से विहीन शरीर-जैसा होता है।

देवलोक में अत्याचार करनेवाले बलवान् असुरों के देश में, तथा लोक कहलानेवाले सब प्रदेशों में, रक्षा करनेवाले राजा के बिना कोई कार्य नहीं होता है। यह हम देखते हैं।

उचित रीति से विचार करने पर विदित होता है कि ब्रह्मा के द्वारा बनाये गये धरती तथा स्वर्ग में निवास करनेवाले जंगम तथा स्थावर पदार्थ कभी शासक बिना नहीं रहते।

कमलभव ब्रह्मा से लेकर सब पुण्य पुरुषों ने जिस वंश की प्रशंसा की है, ऐसे ( तुम्हारे ) वंश के लोगों ने अबतक इस संसार की रक्षा की है। अब ऐसे रक्षक के अभाव में यह संसार, उज्ज्वल समुद्र में टूटी हुई नौका के समान हो गया है।

हे तात ! तुम्हारे पिता स्वर्ग सिधारे। तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता राज्य छोड़कर चले गये। अनन्त वैभव से युक्त यह विशाल राज्य तुम्हारी माता के वर से तुम्हें मिला है, इस राज्य पर तुम शासन करो। यही हमारी सलाह है—यों वसिष्ठ ने कहा।

ज्यों ही मुनिवर वसिष्ठ ने कहा कि इस राज्य पर तुम शासन करो, त्यों ही भरत अपने नेत्रों से निर्झर के समान अश्रुधारा बहाते हुए, 'विष खाओ' कहने से भयभीत होकर काँपनेवाले से भी अधिक भीत होकर काँप उठे।

( वसिष्ठ के वचन सुनकर ) भरत का मन काँप उठा। कंठ गद्गद हो उठा। नयन मुकुलित हो गये। स्त्रियों के जैसे ही उनका हृदय द्रवित हो उठा। उनके प्राण व्याकुल हुए। कुछ काल यों मूर्च्छित रहने के बाद जब उनमें प्रज्ञा आई, तब वे उस सभा में स्थित लोगों से अपने विचार कहने लगे—

तीनों लोकों के आदिकारण बने हुए, मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर उत्पन्न हुए ( श्रीराम ) के रहते हुए मैं राज्य करूँ। अहो ! यह श्रेष्ठ पुरुषों का धर्मोपदेश हो गया। फिर तो अब मेरी जननी के कार्य में भी कोई दोष नहीं रहा।

क्रूरता से युक्त मेरी जननी ने जो कार्य किया, उसके बारे में, सदाचार में निरत आपलोग कहते हैं कि यह उचित है। क्या इस समय, कृतयुग के पश्चात् आनेवाले दोनों युग ( द्वापर और त्रेता युग ) व्यतीत होकर अंतिम युग ( कलियुग ) ही आ गया है ?

कमलभव ब्रह्मा के सब लोकों में क्या कहीं भी बड़े भाई के रहते हुए छोटा भाई यथाविधि राज्य का शासन करता है ?—राजसभा में रहनेवाले आपलोग ही बतायें।

कदाचित् आपलोग इस कार्य को न्याय-संगत भी प्रमाणित कर दें, तो भी मैं इस संसार के प्राणियों के शासन-भार को वहन करता हुआ जीवित नहीं रहूँगा। किन्तु, मैं उनको ( अर्थात्, राम को ) ले आऊँगा और पुष्पमाला-भूषित किरीट, आदि काल से आगत नीति के अनुसार, उन्हीं को पहनाऊँगा। यह आप देखेंगे।

यदि मैं उन (राम) को नहीं ले आ सकूँगा, तो दुर्गम अरण्य में रहकर यथाविधि कठोर तपस्या करूँगा। यदि और कोई बात कहकर आपलोग मुझे विवश करने का प्रयत्न करेंगे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा—इस प्रकार भरत ने कहा।

महिमा मे श्रेष्ठ चक्रवर्ती ( दशरथ ) जीवित रहते समय भी प्रभु ( राम ) ने रत्नमय किरीट को धारण करना स्वीकार किया। किन्तु, हे उत्तमशील भरत। तुम तो, पिता के स्वर्ग-गमन के कारण प्राप्त हुए राज्य को भी अस्वीकार कर रहे हो। राजकुल के पुत्रों मे तुम्हारे समान ( त्यागी ) कौन है?

आज्ञा-चक्र प्रवर्तित करना ( अर्थात्, न्याय-पूर्ण शासन करना ), धर्म की रक्षा करना, यज्ञ करना—इनके द्वारा तुम्हे अपना यश बढ़ाना आवश्यक नहीं है। चतुर्दश भुवन मिट जाने पर भी तुम्हारा बड़ा यश शाश्वत रहेगा—इस प्रकार कहकर उन सभासदों ने भरत को आशीर्वाद दिये।

भरत ने अपने अनुज ( शत्रुघ्न ) को बुलाकर कहा—मेघ-गर्जन के समान नगाड़े की ध्वनि करके, यह घोषणा कराओ कि इस राज्य के धार्मिक प्रभु ( राम ) को हम लौटा ले आनेवाले हैं और सारी सेना को यात्रा के लिए तैयार करो।

सद्गुण भरत की आज्ञा से शत्रुघ्न ने वैसी घोषणा करा दी, तब दुःख मे डूबे हुए उस विशाल नगर के लोग यों आनन्द-घोष कर उठे कि मानों उनके प्राणहीन शरीरों पर वचनरूपी अमृत छिड़क दिया गया हो।

'रामचन्द्र स्वर्णमुकुट धारण करनेवाले हैं'—यह घोषणा होते ही पंचेन्द्रियों का दमन करनेवाले मुनियों से लेकर सभी लोग महान् आनन्द से भर गये। (रामचन्द्र को लौटा लाने की ) वह समाचार कानों के लिए दिव्य अमृत ही था।

'भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता को ध्वजाओं से अलंकृत नगर में ले आनेवाले है, उनको ले आने के लिए सेनाएँ भी जायेंगी' —नगाडे बजा-बजाकर इस प्रकार की जो घोषणा की जा रही थी, वह उस वैभवपूर्ण अयोध्या नामक महा-समुद्र मे चंद्र के उदय होने के समान थी।

वह बड़ी सेना युगान्त मे उमड़नेवाले सप्त समुद्रों के समान उमड़ उठी और घोर शब्द करती हुई आगे बढ चली। उसमें कैकेयी की कामना समूल विनष्ट हो गई। नगर के लोग भी प्रेम से उमड़ उठे और उनका (रामचंद्र के वियोग से उत्पन्न) दुःख मिट गया।

अलंकारों से सजे हुए घोडे, हाथी और रथ, धरती को ढककर छा गये। सेना की अत्युन्नत ध्वजाएँ आकाश-तल को ढककर छा गई। ऊपर उठी हुई धूल कमलभव ब्रह्मा के भी नयनों को ढककर उन्हें अंधा बनाने लगी।

इन्द्रदेव जिस समय इस सृष्टि का अंत करता है, उस समय उठनेवाली ध्वनि से भी अधिक ( भयकर ) ध्वनि उत्पन्न हुई। अकलंक रामचन्द्र के दर्शन करने के लिए उठनेवाली उमग से भी अधिक उल्लसित होकर वह विशाल सेना उमड़ने लगी।

उस सेना का एक अति विशाल सूँड़वाला हाथी अपनी हथिनी के साथ इस प्रकार जा रहा था, मानो राज्य के जैसे ही उस नगर का त्याग कर विविध वृक्षों से

पूर्ण अरण्य की ओर सीता नामक लता को साथ लिये हुए रामचन्द्र-रूपी मेघ ही जा रहा हो।

कीचड मे उत्पन्न होनेवाले कमल-पुष्प भी जिनके सामने शोभाहीन हो जायें, जैसे मृदु चरणो से युक्त कन्याओ के साथ छोटी हथिनियाँ स्पर्धा करने लगी थी, किन्तु कदाचित् उन सुकुमारियो की मृदुगति से हारकर ही मानो वे (हथिनियाँ) उन सुन्दरियों को ढोये हुए जा रही थी।

वे दीर्घ ध्वजाएँ, जो मेघो के जल-बिंदुओं से इस प्रकार सिंचित हो रही कि पीडादायक सूर्य-किरण भी उन ( ध्वजाओं ) मे शीतल हो जाती थी, विजयमाला-भूषित धनुर्धारी राम के राज्याभिषेक का दर्शन न पाने से दुःखी हुई स्त्रियो के समान कॉप रही थी।

असख्य राजा लोग हाथियों पर आरूढ होकर इस प्रकार जा रहे थे, जैसे महिमामय उष्ण किरणो से युक्त सूर्य, असख्य रूप लेकर, अपने ऊपर धवल चन्द्रमा को ( छत्र के रूप मे ) धारण किये, मेघो पर आरूढ होकर, धरती पर उतरा हो और एक दिशा मे जा रहा हो।

एक समुद्र रथो पर जा रहा था। दूसरा समुद्र लाल चित्तियो से युक्त मुखवाले, मेघ-समान हाथियो पर जा रहा था। अन्य एक काला समुद्र सुन्दर घोडो पर जा रहा था और पदाति सेना-रूपी समुद्र धरती पर सर्वत्र छा गया था।

'तारै' ( एक वाद्य ), ताल, शख, शृङ्गी, चर्म से आवृत 'पवै' ( नामक एक वाद्य ), डमरु, भेरी तथा अन्य वाद्य भी उसी प्रकार मौन होकर जा रहे थे, जैसे मूर्खों के समुदाय मे ज्ञानी पुरुष ( मौन ) रहते हैं।

चिरस्थायी लज्जा के अतिरिक्त शरीर से अन्य आभरणो को भी दूर किये हुए तथा अप्सराओं की भ्रांति उत्पन्न करनेवाली अति सुन्दरी स्त्रियाँ ऐसी लगती थीं, जैसी, पुष्पो के झड जाने पर, लताएँ हों।

उस सेना मे, गरजते समुद्र से घिरी सारी पृथ्वी का शासन करनेवाले ( चक्रवर्ती दशरथ) का परपरा-प्राप्त श्वेतच्छत्र नही था। इसलिए वह सेना, अनेक छोटे-छोटे श्वेतच्छत्र-रूपी नक्षत्रो से युक्त होकर भी कलाओ से पूर्ण चन्द्रमा से रहित रात्रि के समान लगती थी।

वह सेना अपने विस्तार से दिशाओ को बहुत छोटी बना रही थी, ऐसी सेना को जब वह पृथ्वी वहन कर रही थी, तब गरजते समुद्र से आवृत इस भूमि को एक 'स्त्री' कहना क्या सत्य कथन हो सकता है?

उन नारियो के, शीतल चन्दन, अगरु आदि से शून्य, कुकुम-लेप से रहित तथा मुक्ता-मालाओं से हीन, (प्रतिक्षण) बढनेवाले मृदुल स्तन किसी भी प्रसाधन से रहित होकर नारिकेल वृक्ष पर लगे हुए कोमल नारिकेल फलों के समान लगते थे।

यौवन से पूर्ण अपनी पत्नियो के स्तनो पर के चदन-लेप ( के चिह्न ) एव सुगंधित पुष्प-मालाओं से शून्य ( पुरुषो के ) उन्नत कधे, घने लता-कुजों तथा झाडों से शून्य पर्वतों के समान लगते थे।

सुगध के संस्कार से शून्य केशोवाली नारियों की, नित्य के शृङ्गार अब न किये

जाने के कारण, अंजन से अनलंकृत आँखें, युद्ध की समाप्ति पर रक्त को धो देने के पश्चात् यम के करवाल जैसी लग रही थी।

नारियो के जघन-तट, मेखला की मणियो की झनझनाहट से शून्य होकर, घंटियो से रहित रथो के समान लगते थे। भ्रमरो से शून्य कमल-पुष्पो के समान ही उन नारियो के अरुण पद भी नूपुर की ध्वनि से शून्य थे।

नारियो की लचकनेवाली कटियाँ, पहनने योग्य मुक्ताहार आदि के न पहनने से, अब एक प्रकार ( बोझ ढोने के काम ) से विश्राम पाकर रहती थी, मानो कैकेयी को जो वर दिये गये थे, वे इन नारियो की कटि के लिए ही फलीभूत हुए हो।

रामचन्द्र के वन चले जाने से शोभाहीन होकर कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी भी तपस्या करने लगी हो तथा मन्मथ भी अपार दुःख-सागर में डूब गया हो— इसी प्रकार वह सेना भी शोभाहीन और विनोद एवं हर्ष से रहित थी।[1]

'वह सेना-भूमि, आकाश, प्रकाशमान दिशाएँ, इन सबको निगलने के लिए उमड़े हुए प्रलयकालिक समुद्र के समान थी'—ऐसा कहना क्या पर्याप्त होगा? उसकी संख्या का विचार करें, तो यह ज्ञात होगा कि वह सृष्टिकर्त्ता की दृष्टि तथा मन से भी अधिक विशाल थी।

वीचियो से भरे समस्त विशाल नदियो का जल, वह ( सेना ) पी सकती थी। वीचियो से भरे समुद्र के सारे जल को वह ( सेना ) पी सकती थी। वह धरती का संतुलन बनाये रखती थी। ऊँचे उठे हुए पर्वतों को भी अपने पद-भार से धरती में दबा सकती थी। अतः, वह सेना द्रविड-महर्षि ( अर्थात्, अगस्त्य ) की समता करती थी।

वह अयोध्या नगर आबालवृद्ध सब लोगों के तथा समस्त सेना के निकल जाने के कारण, अगस्त्य मुनि के द्वारा समस्त जल के पिये जाने पर समुद्र जैसा लगता था, वैसा ही शून्यता से भराहुआ पड़ा था।

वह सेना, बड़ी वीचियो से भरी नदियो, खेतो, मनोहर वृक्षो, पर्वतो तथा सैकत श्रेणियो को देखती हुई, मार्ग पर जा रही थी। उस समय वह मार्ग अयोध्या की उस वीथी के समान लगता था, जिसकी सफाई नही की गई हो।

मेघ के समान अति क्रोधी मत्त गजो के मदजल की गंध के अतिरिक्त, उस सेना में, पुष्प, चन्दन या अन्य कुंकुम-लेप आदि, किसी प्रकार की गंध नही थी।

जिस विशाल समुद्र को लोग बड़ी-बड़ी नौकाओ से पार करते हैं, उस (समुद्र) से भी विशाल उस सेना-रूपी समुद्र में, उज्ज्वल ललाटवाली सुन्दरियो की कटि के अतिरिक्त, कंधे तक लटकनेवाले कुंडल या अन्य कोई आभरण प्रकाशमान विद्युत् के समान नही चमक रहा था।

सुन्दर मर्दल आदि वाद्यो की ध्वनि से हीन होकर चलनेवाली वह सेना विशाल भित्ति पर अंकित सेना के चित्र के समान लगती थी।

---

१. वैभव की देवी लक्ष्मी है, और स्त्री-पुरुषो की क्रीडाओ का कारण मन्मथ का प्रभाव है। अब लक्ष्मी और मन्मथ के अपने-अपने कार्यों से विरत हो जाने से, उस सेना में न पुराना वैभव था, न स्त्री-पुरुषो की विनोद-क्रीडाएँ ही थी।—अनु०

विष्णु (के अवतारभूत राम) का वन-गमन भी क्या था?—अयोध्या के युवकों के लिए, प्रफुल्ल पुष्पों की माला से विभूषित सुन्दरियों के कटाक्ष-रूपी बाण उन (पुरुषों) के हृदयों को छेदकर उनके प्राणों को पी न डालें—इसके लिए अपूर्व कवच बन गया था।

मन्मथ के पाँच बाणों से पीड़ित होनेवाले पुरुषों के हृदय अब पहले की तरह युवतियों के स्तनों पर आसक्त नहीं होते थे। स्वर्णमय कर्णाभरण से भूषित कैकेयी के प्रति उन (पुरुषों) के मन में जो क्रोधाग्नि उत्पन्न हुई थी, वह (दृष्टि के द्वारा प्रकट होकर) युवतियों के स्तनों को कहीं जला न डालें मानो यह सोचकर ही, उन पुरुषों की दृष्टि उनपर से हट गई थी।

इस प्रकार वह विशाल सेना जा रही थी। महिमा से पूर्ण भरत भी, अपनी सुन्दर कटि में वल्कल पहनकर अपने अनुज (शत्रुघ्न) से अनुसृत होते हुए, एक सुन्दर रथ पर बड़ी व्यथा के साथ बैठकर जाने लगे।

माताओं, तपस्वियों, पितृ-समान गौरव के योग्य वृद्ध मंत्रिगण, असंख्य बंधुगण, पवित्र स्वभाववाले ब्राह्मण-वर्ग—इन सब से अनुसृत होते हुए भरत अयोध्या-नगर के बहिर्द्वार पर जा पहुँचे।

उस समय मन्थरा नामक उस यम (रूपिणी दासी) को भी चलनेवाले लोगों के मध्य धक्काधुक्की करते हुए जाते देखकर शत्रुघ्न का क्रोध भड़क उठा और उन्होंने वेग से दौड़कर, गरजते हुए उसे पकड़कर झकझोरा। तब मनोहर कंधोंवाले भरत ने अपने अनुज को रोककर कहा—

कुल-परम्परा को तोड़कर अपनी कामना को पूर्ण करनेवाली माता को मैं टुकड़े-टुकड़े करके अपना क्रोध शांत कर सकता था। किंतु हे तात! वैसा करने पर मुझे मेरे प्रभु (राम) त्याग देंगे—इसी विचार से चुप रह गया। मैंने उसे अपनी माता नहीं समझा।

अतः, हे दोषहीन सद्-अर्थों के प्रतिपादक शास्त्रों के ज्ञाता! यद्यपि हम इस कुबड़ी से रुष्ट हैं, तो भी प्रभु हमारा यह कार्य पसन्द नहीं करेंगे। अतः इसे छोड़कर हम आगे बढ़ें। यों कहकर कठिनाई से शत्रुघ्न को समझाते हुए उन्हें अपने साथ लेकर वे आगे बढ़े।

समुद्र-जैसी उमड़ती हुई गज आदि की सेना तथा पदाति-सेना के साथ भरत उसी उपवन में जाकर ठहरे, जिसमें पहले (वन-गमन के समय) प्रभु (राम) अपनी पत्नी तथा सिंह-समान भाई के साथ ठहरे थे।

भरत उस रात्रि को, अपने नेत्रों से अश्रुजल का प्रवाह करते हुए ठहरे और पर्वत में उत्पन्न कंद-फल आदि का आहार किया। धनुर्धारी रामचन्द्र ने जिस स्थान में विश्राम किया था, वहीं भूमि पर घास बिछाकर भरत भी पड़े रहे।

पीतवसन रामचन्द्र उस स्थान से पैदल ही मार्ग तय करते हुए गये थे। इस कारण से भरत भी वहाँ से पैदल ही चले और सभी अश्वों सहित सारी सेना उनके पीछे-पीछे चली (१-५६)

# अध्याय ११

## गुह पटल

मनोहर, स्वर्ण-निर्मित वीर-कंकण से भूषित तथा अनुपम सेना-वाहिनी से युक्त भरत, कावेरी नदी से सिंचित चोल देश की ममता करनेवाले और उपजाऊ खेतों से भरे कोशल देश को छोड़कर गंगा नदी के तीर पर ऐसे दुःख के साथ आ पहुँचे कि उनको देखकर स्थावर और जंगम—सब वस्तुएँ द्रवित हो उठीं।

उनकी सेवा में स्थित मत्त गजों का मद-जल अपार जल से पूर्ण गंगा में सर्वत्र बह चला, जिस कारण से वह गंगा-प्रवाह, असंख्य भ्रमरों के अतिरिक्त अन्य प्राणियों के पीने या स्नान करने के अनुपयुक्त हो गया।

उनकी सेना में स्थित अश्वों के खुरों से उठी हुई धूल उड़कर देवताओं के शिरों पर किस प्रकार छा गई, यह हम समझ नहीं सके। वे ( अश्व ) पानी पीते समय दीर्घकाल तक पानी पीते रहते और फिर लंबी श्वास छोड़ते, जल में उतरकर तैरते और धूल पर लोट जाते थे।

( पहले ) गंगा का प्रवाह दूध के रंग से युक्त होकर गरजते हुए समुद्र में जा मिलता था, किन्तु अब वह पहले जैसे वेग से नहीं बह रहा था; क्योंकि पुष्पमाला से भूषित दीर्घ किरीटधारी भरत की सेना-रूपी समुद्र ने उस ( गंगा के जल ) को पी लिया था।

वन को गये हुए वीर ( राम ) का अनुसरण करके जानेवाले भरत के पीछे-पीछे जो सेना उस समय जा रही थी, वह साठ सहस्र अक्षौहिणी परिमाण की थी।

जब वह सेना गंगा के ( उत्तरी ) किनारे पर पहुँची, तब गुह उसे देखकर और यह सोचकर कि यह विशाल समुद्र के जल से भरे मेघ-समान प्रभु ( राम ) से युद्ध करने के लिए ही जा रही है, अत्यन्त क्रोध से भर गया।

गुह नामक यम-सदृश उस पराक्रमी व्यक्ति ने आकाश तक उड़नेवाली धूल से उस सेना की संख्या का अनुमान कर लिया। तब उस ( गुह ) की आँखों से चिनगारियाँ निकलीं। नासिका से धुआँ उठा। वह अट्टहास कर उठा। उसकी भौंहें ऐसे झुक गईं, जैसे युद्ध के उपयुक्त धनुष हो।

पाप करनेवाले सब प्राणियों के प्राणों का अंत करनेवाले, अपने कर में त्रिशूल धारण करनेवाले यम ने ही मानो पाँच लाख वीरों के रूप धारण किये हों—इस प्रकार के थे उस ( गुह ) की सेना के वीर। वह ( गुह ) धनुर्विद्या में निपुण था।

उस ( गुह ) ने अपनी कटि में कटार बाँध रखी थी। अपने ओंठ चबा रहा था। कठोर शब्द कह रहा था, उसकी घूरनेवाली आँखों से अग्नि-कण निकल रहे थे। उसकी सेना में डमरू बज रहे थे, शृङ्गी बज रहे थे और उसकी भुजाएँ यह सोचकर कि अब मुझे युद्ध करने का मौका मिला है ( हर्ष से ) फूल उठी थीं।

उस ( गुह ) ने यह कहते हुए कि 'यह सेना चूहों का झुंड है और मैं उनके लिए

विषधर सर्प हूँ'—बड़े कोलाहल से भरी अपनी सेना को पुकारा। वह सेना ऐसी थी, मानो तीक्ष्ण नखोंवाले समस्त घोर व्याघ्रों को एकत्र कर दिया गया हो।

बड़े कोलाहल से भरे और प्रलय-काल में गरजनेवाले मेघ तथा काले समुद्र ही उमड़ आये हों—इस प्रकार उमड़कर आनेवाली अपनी सेना को लेकर वह (गुह), समीप-स्थित (गंगा के) दक्षिणी तट पर आ पहुँचा।

अपने सैनिकों को देखकर गुह ने कहा—मैंने इस षड्यंत्रकारी सेना को वीर-स्वर्ग पहुँचाने तथा अपने प्यारे मित्र (राम) को महिमामय महान् राज्य देने का निश्चय किया है। तुम सब सहमत हो न?

गुह ने फिर आज्ञा दी—पटहों को बजाओ। रास्तों तथा घाटों को सर्वत्र मिटा दो। एक भी नाव न चलाओ। सुगंध से पूर्ण गंगा-तट पर आनेवाले इन (भरत के) सैनिकों को पकड़ लो और काट डालो।

गुह ने आगे कहा—मेरे प्राणों के नायक, अंजनवर्ण प्रभु (राम) को राज्य से वंचित करके स्वयं (राज्य) लेनेवाले ये राजा यहाँ भी आ पहुँचे, हमारे अग्नि बरसानेवाले तीक्ष्ण बाण क्या इन लोगों पर नहीं चलेंगे? यदि ये मुझसे बचकर चले जायेंगे, तो क्या समाज मुझे कुत्ता नहीं कहेगा?

क्या ये (भरत आदि), गंभीर विशाल और वीचियों से भरी इस (गंगा) नदी को पार करके जा सकेंगे? क्या मैं ऐसा धनुर्वीर हूँ कि इनकी बड़ी गज-सेना को देखकर (डर से) भाग जाऊँगा? उन (राम) ने मुझ से मित्रता की जो बात कही थी, वह भी तो एक बात थी—(अर्थात्, राम का वह वचन आदरणीय है और मुझे मित्रधर्म का पालन करना है। यदि मित्रधर्म का पालन न करूँ, तो) क्या लोग मेरी निंदा यह कहकर नहीं करेंगे कि यह क्षुद्र निषाद मरा क्यों नहीं?

आह! इस (भरत) ने यह नहीं सोचा कि वे (राम) हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं। यह भी नहीं सोचा कि उनके साथ अति बलिष्ठ व्याघ्र-समान उसका भाई भी है। यदि उन्होंने ये बातें न सोची हों, तो न सही, किन्तु इसने मेरी उपेक्षा कैसे की? जो हो, इसका पराक्रम इस सीमा को पार करने पर ही तो ज्ञात होगा। क्या निषादों के द्वारा प्रयुक्त बाण राजाओं के वक्ष में नहीं लगते?

क्या धरती पर राज्य करनेवाले ये क्षत्रिय, पाप, स्थिर रहनेवाला अपयश, शत्रु, मित्र (दूसरों को) दुःख देनेवाले कार्य—इनके बारे में विचार नहीं करते? जो हो, सो हो, मेरे अपूर्व प्राण-तुल्य मित्र (राम) पर इनका आक्रमण तभी तो हो सकता है, जब ये अपनी सेना तथा अपने प्राणों को (हम से बचाकर) अपने साथ ले जा सकें।

जब मेरे प्रिय मित्र (राम) अपूर्व तपस्या कर रहे हों, तब क्या यह (भरत) पृथ्वी का राज्य कर सकता है? (हमारे लिए) अपने प्राण कुछ अमर तो नहीं हैं? (भरत से युद्ध करके यदि मरना भी पड़े, तो) बड़ा यश पाकर मरूँगा। मेरे प्रति गंभीर प्रेम रखनेवाले प्रभु के साथ मैं जो वन में नहीं गया और यहीं रह गया, वह भी अच्छा ही हुआ। अब मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा।

हाथियो और घोड़ो से भरी सेना से युक्त तथा सुगधित पुष्पमाला से भूषित इन ( भरत ) का शस्त्र-पराक्रम तो गंगा को पार करने के पश्चात् ही काम आयगा न ? तुम सब उग्र व्याघ्र यहाँ रहते हो। गगा के घाटो पर नाव चलाना छोड़ दो। ( यदि आज हमे मरना भी पड़े, तो ) हमारे प्रभु ( राम ) से पहले ही ( युद्ध मे ) अपने प्राण छोड देना उचित ही तो होगा ?

हमारे साथ आई हुई सेना के साथ एक वार युद्ध के लिए भी यह ( भरत की ) सेना पर्याप्त नही है, यह कहना अनावश्यक है। यदि देवताओं की सेना भी ( हमारे विरुद्ध ) आवे, तो भी हम अपने धनुष-रूपी काल-मेघो से शरो की वर्षा करके उनकी ( चिर स्थिर ) ऑखो ( पलको ) को हिला देगे और करवाल से सारी गज-सेना को विध्वस्त कर देगे। इस प्रकार, सवको अस्त-व्यस्त करके हरा देगे।

उस दिन (जब राम के राज्याभिषेक का निश्चय हुआ था) उदार, दानशील तथा मेरे प्रेम के पात्र प्रभु के पहनने के लिए जिस क्रूर कैकेयी ने वल्कल दिये थे, उसके इस पुत्र ( भरत ) की सेना को अपने शरीर से निहत करूँगा। चर्वी से भरे शवो की राशि को यह गगा नदी वहा ले जायगी और लहरो से भरी विशाल समुद्र मे डालकर उस समुद्र को पाट देगी।

'निषादो ने फहरानेवाली पताकाओ से युक्त (भरत की) सेना को विध्वस्त करके धर्मरूपी राम को ही शासन करने के लिए राज्य दे दिया'—ऐसा यश क्या हम नही पायंगे। जिन प्रभु ( राम) ने अपना राज्य तक भरत को दे दिया था, वही भरत आज हमारे निवास-भूत इस अरण्य को भी देना नही चाहता और देखो, यहाँ भी चढाई करने आया है।

'महान् तपस्वियो के बंधु होकर अरण्य मे निवास करनेवाले प्रभु ( राम ) क्रोध करेगे'—यह विचार न करके यदि हम युद्ध-क्षेत्र मे इस ( भरत ) पर शर प्रयुक्त करेंगे, तो चाहे यह सेना सप्त समुद्रो के समान ही क्यो न हो, तो भी हम इसे उसी प्रकार मिटा देगे, जिस प्रकार गाय अपने सामने की छोटी और कोमल घास को चवा डालती है।

दृढ तथा वड़े धनुष से युक्त, मल्ल-युद्ध मे निपुण भुजाओ से युक्त तथा युद्ध मे प्रवीण प्रभु ( राम ) के प्रति भक्ति से पूर्ण गुह ने लोहे के जैसे शरीरवाले अपने साथियो के प्रति ये वचन कहे। उसको वहाँ खड़े देखकर, दृढ रथ को चलानेवाले सुमंत्र ने सिह-समान वली भरत के निकट आकर कहा—

यह गंगा के दोनो तटो का नायक है। असंख्य नावो का स्वामी है। तुम्हारे वश मे उत्पन्न अनुपम पुरुष राम का प्राणप्रिय मित्र है। उन्नत भुजाओंवाला ( वीर ) है, मल्ल-गज-तुल्य है। धनुर्धारी सेना-युक्त है। मधुस्रावी प्रफुल्ल पुष्पो की माला से भूषित है। इसका नाम गुह है।

हे वल की सीमा को देखनेवाली मनोहर तथा दीर्घ भुजाओ से युक्त ! हे नील-मेघ-सदृश नीलवर्ण ! यह पर्वत के जैसे दृढता से पूर्ण है। ( राम के प्रति ) असीम प्रेम से पूर्ण है। देखने मे, रात्रि की जैसी सुन्दर देह-काति से पूर्ण है। ऐसा यह हमारे मार्ग मे सम्मुख आकर खड़ा हुआ है। तुम्हे देखने की इच्छा रखकर आया है, यो सुमंत्र ने कहा।

अपने पिता के मित्र सुमन्त्र के द्वारा दूर पर अपने सामने खडे गुह के विषय मे सुनकर, कलक-रहित भरत के मन मे बड़ी उमग उत्पन्न हुई। फिर, वे यह कहकर आगे बढे कि यदि यह प्रभु के आलिगन का पात्र, प्रिय मित्र है, तो उसके यहाँ आने के पहले ही मै स्वय उसके पास जाकर ( उससे ) मिलूँगा।

यह कहकर वे उठे और अपने अनुज तथा उमड़ते हुए प्रेम के साथ गगा के किनारे पर ऐसे जा पहुँचे, जैसे कोई पर्वत चला हो। किनारे पर आये हुए भरत को घने तथा काले केशोवाले गुह ने देखा और उनकी दशा को पहचानकर वह चौका।

गुह ने, वल्कल पहने हुए, धूल-भरी शरीरवाले, सुन्दर कलाहीन चद्र-जैसे मदहास की काति से हीन वदनवाले तथा ऐसे शोक से पूर्ण कि जिसको देखकर पत्थर भी पिघल जाये, भरत को देखा। देखते ही उसके हाथ से धनुष खिसककर नीचे गिर पड़ा। वह व्याकुल हो उठा। स्तब्ध हो गया।

गुह ने सोचा, यह उत्तम पुरुष ( भरत ) मेरे प्रभु ( राम ) के जैसा ही लगता है। उसके पार्श्व मे खड़ा हुआ कुमार ( शत्रुघ्न ) भी प्रभु के अनुज ( लक्ष्मण ) के जैसा ही है। इस ( भरत ) ने मुनि-वेष धारण किया है। इसके शोक की कुछ सीमा नही है। राम की दिशा मे देखकर नमस्कार कर रहा है। अहो ! क्या मेरे प्रभु के भाई कुछ दोष करनेवाले हो सकते हैं ? ( अर्थात् , नही होगे )।

फिर गुह ने यह कहा—यह ( भरत ) गभीर शोक से पीडित है। अचचल प्रेम रखनेवाला है। ( राम के ) धारण किये मुनि-व्रत को स्वय भी अपनाया है। मै वहाँ जाकर इसके मनोभावो को समझकर लौट आता हूँ। तबतक तुम लोग घाटो की रक्षा करते हुए यही रहो और शीतल गगा के घाट पर एकाकी ही एक नाव में बैठकर (भरत के निकट) आया।

सम्मुख ( राम की दिशा मे ) खड़े रहकर प्रणाम करते हुए ( भरत ) के चरणो पर गुह नत हुआ। तब, उत्तम स्वभाववाले, सज्जनो के मन एव शिर पर धारण किये जाने-वाले, पवित्र यशवाले तथा कमल-पुष्प पर आसीन ब्रह्मा के लिए भी वंदनीय उन (भरत) ने अपने चरणो पर पडे ( गुह ) को उठाकर, ( पुत्र से मिलनेवाले ) पिता से भी अधिक आनद के साथ उसका आलिंगन किया।

( भरत के द्वारा इस प्रकार ) आलिंगित निषाद-पति ने, कमल-समान सुन्दर नयनोवाले ( भरत ) से पूछा—हे प्रस्तर-स्तभ-तुल्य भुजाओवाले ! किस प्रयोजन से तुम ( यहाँ ) आये हो ? भरत ने उत्तर दिया—पृथ्वी की रक्षा करनेवाले मेरे पिता ने कुल-परपरा के नियम का उल्लघन किया। उस ( अनियम ) को दूर करने के लिए रामचन्द्र को लौटा ले जाने के उद्देश्य से मै आया हूँ।

असत्य-रहित चित्तवाले किरातपति ने (यह वचन) सुना। सुनते ही उसने दीर्घ निःश्वास भरा। उसके मन मे हर्ष उत्पन्न हुआ। उसकी देह फूल उठी। फिर, वह धरती पर गिर पडा और चित्र मे अकित करने के लिए दुस्साध्य रूपवाले भरत के चरण-कमलो को अपने करों से बाँधकर यह कहने लगा—

हे यशस्विन्! ( तुम्हारी ) माता के वचन मानकर ( तुम्हारे ) पिता ने जो राज्य ( तुमको ) दिया, उसे पाप-कृत्य के समान मानकर तुमने ( उसे ) त्याग दिया और अपने मन में चिन्ता रखकर इस प्रकार यहाँ आये हो। तुम्हारे, इस समय का यह भाव देखने पर, क्या सहस्र रामचन्द्र भी तुम्हारी समता कर सकते हैं?

हे उत्तम गुणशील तथा बलिष्ठ भुजाओंवाले! मैं अज्ञ किरात तुम्हारी क्या प्रशंसा करूँ? जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के पुंज से अन्य ज्योतियों को मंद कर देता है, उसी प्रकार क्षत्रिय-समुदाय के द्वारा प्रशंसित तुम्हारे कुल के सब पूर्वजों की कीर्त्ति को भी तुमने अपनी कीर्त्ति में अंतर्भूत कर लिया।

वीर-कंकण तथा मांस-गंध से युक्त शूल को धारण करनेवाले किरातपति ने इस प्रकार के उचित वचन कहकर भरत के प्रति अपना अनुपम प्रेम दिखाया। उन भरत के प्रति प्रेम न रखनेवाले भी क्या कोई हो सकते हैं? ( रामचन्द्र के ) अचिंतनीय सद्गुणों के कारण ही तो गुह उन ( राम ) का भक्त बना था।

करुणा के समुद्र-जैसे, सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त भरत ने उस समय रामचन्द्र की दिशा की ओर देखकर नमस्कार किया और गुह से पूछा—हमारे ज्येष्ठ (राम) ने किस स्थान पर विश्राम किया था? तब किरातपति ने कहा—हे वीर! मैं ( वह स्थान ) तुम्हें दिखाऊँगा, चलो इस ओर।

तब भरत मेघ के समान चलकर अतिशीघ्र वहाँ गये और पथरीली भूमि पर उस घास की शय्या को देखा, जिसपर रामचन्द्र ने विश्राम किया था। उसे देखते ही भरत तड़पकर गिर पड़े और अपने अश्रुजल से धरती का मंगल-स्नान कराया और शोक-समुद्र में डूब गये।

( भरत कह उठे—) जब मैंने यह सुना कि 'मेरे कारण तुमको यह वनवास का दुःख प्राप्त हुआ है,' तब मैंने अपने प्राण नहीं छोड़े। 'कंद और फलों को ही अमृत मानकर तुमने उनका भोजन किया'—यह सुनकर भी मैंने अपने प्राण नहीं छोड़े। 'दुःख देनेवाली घास की सेज पर तुम सोये'—यह जानकर भी मैंने प्राण नहीं छोड़े। अतः, उज्ज्वल रत्न-जटित मुकुट धारण करने के लिए भी कदाचित् मैं प्रस्तुत हो जाऊँ, तो इसमें आश्चर्य ही क्या होगा?

स्तंभ-समान दृढ भुजाओंवाले भरत ने आगे कहा—यदि उन ( राम ) के विश्राम करने का स्थान यह था, तो कहो कि उनपर अत्यन्त भक्ति रखकर उनके साथ आये हुए अनुज ( लक्ष्मण ) ने कहाँ विश्राम किया? तब किरातपति ने उत्तर दिया—

हे पर्वत-समान ऊँचे कंधोंवाले! रात्रि के समान मनोहर वर्णवाले वे प्रभु तथा वह देवी यहाँ विश्राम करते रहे और वह वीर ( लक्ष्मण ) कर में धनुष लेकर निःश्वास भरते हुए और आँखों से अश्रु बहाते हुए रात्रि के व्यतीत होने तक, एक पलक भी मारे बिना, ( पहरे पर ) खड़े रहे।

यह सुनकर भरत ने कहा—राम के अनुज बनकर एक समान उत्पन्न हुए हम-लोगों में से एक मैं हूँ, जो ( राम के लिए ) अपार कष्ट का कारण बना। और, एक वह

( लक्ष्मण ) भी है, जो मेरे उत्पादित कष्टों को दूर करने के लिए सहायक बना। अहो! प्रेम की भी कोई सीमा हो सकती है? मेरा दासत्व भी खूब रहा![1]

फिर, भरत उस रात को वहीं धूल पर लेटे रहे। प्रातःकाल होने पर उन्होंने गुह से कहा—शत्रु-भयकर नाद से युक्त वीर-वलय धारण करनेवाले हे वीर! यदि तुम इस समय हमलोगों को गगा के उस किनारे पर पहुँचा दोगे, तो तुम हमें दुःख के समुद्र से निकालकर प्रभु ( राम ) के पास पहुँचानेवाले हो जाओगे।

गुह भी 'अच्छा' कहकर अपने सैनिकों के निकट गया और कहा कि तुमलोग शीघ्र जाकर नौकाएँ ले आओ। तब नौकाएँ इस प्रकार आईं, मानों शिवजी का कैलास, उनके द्वारा (धनुष के रूप में) झुकाया गया स्वर्ण-पर्वत मेरु एव कुबेर का पुष्पक विमान—ये तीनों एकाकी ही रहने से लज्जित होकर अब अनेक रूप धारण करके आ गये हों।

उस किनारे से इस किनारे पर तथा इस किनारे से उस किनारे पर लोगों को ले जाने और ले आने के कारण वे नौकाएँ ( पुण्य-पाप-रूपी ), कर्म-युगल से समान थीं, जो जीवों को इस लोक से स्वर्गलोक में तथा स्वर्गलोक से इस लोक में लाते-पहुँचाते रहते हैं। युवतियों की गति एव हसों ( की गति ) को लजाती हुई चलनेवाली वे नौकाएँ गगा नदी में सर्वत्र फैल गईं।

तब शृङ्गवेरपुराधीश ( गुह ) ने भरत से कहा—हे दृढ धनुर्धारी वीर! असख्य नौकाएँ आ गई हैं। अब आप क्या करना चाहते हैं? तब सुन्दर धनुर्धारी भरत ने सुमत्र से कहा—इस सारी सेना को शीघ्र इन नौकाओं पर चढाकर उस पार ले चलो।

भरत की आज्ञा से, अश्व-जुते बड़े रथ को चलाने में चतुर सुमंत्र ने, क्रम को तोडे बिना, पृथक्-पृथक् वर्गों में, गजों, अश्वों, रथों तथा पदाति सेना को उस पार पहुँचाया। वह सेनावाहिनी, उज्ज्वल रत्नों को अपनी वीचियों से बिखेरनेवाली गंगा नदी के दूसरे किनारे पर जा पहुँची।

प्रलय-काल में मानों मेघों के झुड गरजते हुए समुद्र के सारे जल को भरने के लिए उमड़ आये हों, अथवा जल-नौकाएँ ऊँची ध्वजा और मस्तूल के साथ ( जल में ) जा रही हों—इसी प्रकार दीर्घ शुडवाले मत्तगज, अपनी सूँड़ को ऊपर उठाये हुए जल में उतर-कर तैरते हुए नदी को पार कर गये।

अति विशाल हाथियों के द्वारा ढकेला जाकर गगा का जल, शख, मकर, मीन, मुक्ता तथा अन्य रत्नों को बिखेरता हुआ तट को लाँघकर दक्षिण की दिशा में उमड़ चला, जिससे ( दक्षिण का ) समुद्र उसके मार्ग में निकट आ गया, मानों वह गगा-प्रवाह भी रामचन्द्र के दर्शन करने की इच्छा से ही चल रहा हो।

---

१. अतिम वाक्य का यह भाव है कि प्रेम का क्रियात्मक रूप ही दासत्व है। यह वैष्णवों का सिद्धात है। वात्सल्य, दापत्य, सत्य आदि का प्रेम भी क्रिया-रूप में दास्य ही है। अतः, भरत यह कहते हैं कि मैं राम के प्रति प्रेम रखकर भी उनका कुछ दास्य नहीं कर सका, जब कि लक्ष्मण दासोचित कार्य कर रहा है। —अनु०

( गगा के प्रवाह मे जब हाथी तैर रहे थे, तब ) अत्यन्त मदजल बहानेवाले मत्त-गजो के उन्नत कुंभ-मात्र ऊपर दिखाई दे रहे थे। गजो के शरीर के छिपे रहने से, तथा सुन्दर उत्तरीय-जैसी ही वीचियो के, उन कुंभो पर फहराने से, वे कुंभ ऐसे लगते थे, मानो गंगानदी-रूपी युवती के स्तन ही हो।

रथो के चक्र, धुरी, छत, ध्वजाएँ, पीठ आदि उनके सब भाग पृथक्-पृथक् कर दिये गये। अश्व, तथा रथो के भाग, पृथक्-पृथक् नावो पर चढाये गये तथा दूसरे पार पहुँचाये गये। पुनः रथो के सब अंग जोड़े गये। वह ऐसा था, जैसे मनुष्य के शरीर के अंगों को अलग-अलग करके पुनः उन्हे जोड़नेवाली किसी विद्या के प्रभाव से उन्हे जोड़ दिया गया हो।

जैसे दूध हो, वैसे ( उज्ज्वल ) शरीरवाले, जैसे भय ही घनीभूत हो गया हो, वैसे हृदयवाले—(अर्थात्, छोटी-सी ध्वनि से भी भड़ककर दौड़नेवाले), जैसे वायु ही घनीभूत हो गई हो, वैसी टाँगोवाले ( अति वेगगामी ) एवं लगाम लगे हुए आठ करोड़ घोडे, मीन जैसी नावो पर चढ़कर उस पार जा पहुँचे।

कंकणो से भूषित पल्लव-समान करोवाली युवतियाँ, नावो मे परस्पर सटकर और आमने सामने होकर, इस प्रकार बैठी थी कि उनके उभरे हुए स्तन परस्पर यो टकराने लगे, जैसे दीर्घ दतोवाले मनोहर मत्तगजो के झुड मे उनके दाँत टकरा उठे हो।

जब वेग से चलती हुई नावें एक दूसरे से टकराकर हिल उठती थी, तब स्वर्ण-कर्णाभरणो से भूषित युवतियाँ भय से व्याकुल होकर दोनो ओर अपनी दृष्टि फेंकती थी। वह दृश्य ऐसा था, मानो चचल जल-तरगो से फेंके जाकर मीन घबराकर दोनो ओर उछल रहे हो।

वेगगामी नावो के दोनो ओर खेवैयो के द्वारा चलाये जानेवाले डाँड़ो से जल-बिन्दु उड़-उड़कर युवतियो के पतले वस्त्रो को भिगो देते थे और उनके विस्तृत जघनो के आकार को प्रकट कर देते थे। वह दृश्य थके-माँदे वीरो की थकावट को मिटा देता था।

कोलाहल भरी सेना को, इस किनारे से लेकर उस किनारे पर उतारकर खाली लौटनेवाली नावे उन बडे-बडे मेघो-जैसी लगती थी, जो ( मेघ ) समुद्र के जल को भरकर लाये हो और उसे बरसाने के पश्चात् खाली होकर समुद्र की ओर लौट रहे हो।

अगरु-धूम के समान चुने हुए मयूर-पखों से भूषित दंड, मस्तूलो-जैसे लगते थे। मोती की लडी मे सजी हुई ध्वजाएँ, पाल-जैसी लगती थी। यो वे नावें विशाल जल-नौकाओ की समता करती थी।

विशाल गगा नदी आकाश के समान थी। उसमे विखरनेवाले मोती नक्षत्रो के समान थे। कमल-सदृश वदन, अमृत, मधुर रक्त-अधर तथा ( पुष्पो के ) मधु से सिक्त केशोवाली विद्युत्-जैसी सुन्दरियो को ढोकर चलनेवाली नावें उन विमानो के समान थी, जो जल-विहार करके लौटनेवाली देव-स्त्रियो को लेकर चलते हैं।

जल-बिन्दुओ को उड़ानेवाले डाँड़-समान अपने पैरो के साथ वे नावें, जो शीतल जलयुक्त गगा नदी मे चल रही थी, ऐसी लगती थी, मानो हर्ष-भरी, मोर-समान,

घने केशोंवाली तथा मीनाक्षी युवतियों के उज्ज्वल पद-कमलों के स्पर्श से प्राणवान् हो उठी हो।

मुनि, निम्न जाति के लोगों के द्वारा चलाई जानेवाली नावों को न छूकर, सकल्पमात्र से सिद्ध होनेवाले गगन-सचार ( गगन-मार्ग ) से देवों के जैसे गये। स्वर्ग, भूमि और अन्य किसी भी लोक में सत्य-युक्त तपस्या से बढकर और क्या हो सकता है?

साठ सहस्र अक्षौहिणी सख्यावाली वह सारी सेना तथा नगर की सारी प्रजा, वीचियों से पूर्ण गगा नदी को पीछे छोडकर आगे बढ चली।

जब सारी सेना भौंरों से भरी नदी को पार कर गई, तब कपट पूर्ण धन-लिप्सा से रहित होकर अपने त्याग के द्वारा पृथ्वी के पुराने बडे राजाओं को भी नीचा दिखानेवाले भरत, नाव पर आरूढ हुए।

उनका अनुपम अनुज ( शत्रुघ्न ), तीनों माताएँ, उत्तम गुणवाला सुमत्र तथा पवित्र मित्र गुह—ये सब जब आसीन हो गये, तब वह नाव भी डॉड-रूपी अपने पैरों को बढाकर चल पड़ी।

तब गुह ने, बधुजनों तथा देवों के द्वारा भी आवृत होनेवाली अति गभीर कौशल्या देवी को देखकर भरत से पूछा—हे विजयमालाधारी। ये कौन हैं? भरत ने उत्तर दिया—जिन चक्रवर्ती के द्वार पर बडे-बडे राजा लोग भी खडे रहते थे, उनकी ये पट्टमहिषी हैं। जिन्होंने त्रिभुवन के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को भी उत्पन्न करनेवाले को (अर्थात् विष्णु के अवतार को ) अपनी अपूर्व सपत्ति के रूप में पाकर भी मेरे जन्म लेने के कारण खो दिया है।

भरत के यह कहते ही गुह उनके चरणों पर दडवत् हो गिर पडा और रोने लगा। बछडे से बिछुड़ी हुई गाय के समान दुःख से युक्त कौशल्या ने भरत से पूछा—यह कौन है? वीर ककणधारी कुमार ( भरत ) ने उत्तर दिया—यह पुरुष रामचन्द्र का प्रिय मित्र है। लक्ष्मण, उनके अनुज ( शत्रुघ्न ) तथा मैं, हम तीनों का बडा भाई है। पर्वत-समान कधोंवाला इस पुरुष का नाम गुह है।

यह वचन सुनकर कौशल्या ने यह कहकर आशीर्वाद दिया—हे पुत्रो। अब तुम लोग दुःखी मत होओ। पराक्रमी राम-लक्ष्मण का नगर छोड़कर वन जाना भी तो अच्छा ही हुआ। तुम पाँचों पर्वत-समान कधों तथा सूडवाले हाथी के जैसे वीर इस गुह के साथ मिलकर एकता से चिरकाल तक इस पृथ्वी की रक्षा करते रहो।

फिर साकार धर्म-जैसी सुमित्रा के बारे में गुह ने भरत से प्रश्न किया—हे तात। ये करुणामयी देवी कौन हैं? भरत ने उत्तर दिया—सत्य को स्थिर रखकर, सन्मार्ग पर चलकर, अपने प्राण त्यागनेवाले चक्रवर्ती की ये छोटी पत्नी हैं। सबके लिए वदनीय प्रभु ( राम ) का अनुज, जो सदा उनका अनुवर्ती रहता है, उस ( लक्ष्मण ) की जननी हैं।

फिर, उस कैकेयी को, जिसने अपने पति को श्मशान में, पुत्र ( भरत ) को दुःख-सागर में, करुणा-समुद्र राम को घोर कानन में भेजकर, और कपट [illegible]

( विष्णु ) के द्वारा पूर्वकाल मे नापी गई सारी पृथ्वी को अपने मन के षड्यन्त्र से नापा था, देखकर गुह ने भरत से पूछा—ये कौन है ?

तब भरत ने कहा—सब विपदाओं को उत्पन्न करनेवाली, लोकनिंदा ( रूपी ) संतान को पालनेवाली माता, उसके पापी पेट मे चिरकाल तक वास करनेवाले मुझ पुत्र के प्राणों को भार बनानेवाली तथा इस लोक मे, जहाँ के सब प्राणी प्राणहीन शरीर-जैसे लगते है—(अर्थात्, राम-वियोग मे दुःखी है), पीडा के लक्षणों से रहित होकर रहनेवाली वह एकमात्र व्यक्ति है, ऐसी इस स्त्री को क्या तुमने नही पहचाना ? यहाँ खड़ी हुई यही मेरी जननी है।

भरत के वचन सुनकर गुह ने उस दयाहीन स्त्री को भी अपने कर जोड़कर नमस्कार किया। उस समय वह नाव भी पंख-रहित होकर तैरनेवाली हंसिनी के समान किनारे पर आ लगी।

नाव से उतरकर माताएँ पालकियों पर आसीन होकर चली। भरत ने अश्रु-प्रवाह बहानेवाली आँखो के साथ पैदल ही चलकर दीर्घ मार्ग पार किया। गुह भी उनसे पृथक् न होकर उनके साथ चला।

फिर, भरत कर्म-भार से मुक्त भरद्वाज नामक, महान् तपस्वी के आश्रम मे आदर के साथ जा पहुँचे। उस समय वे महर्षि, वृद्ध तपस्वियों के साथ, उनके सम्मुख आये।

( १–७३ )

●

# अध्याय १२

## पादुका-पट्टाभिषेक पटल

भरत ने अपने सम्मुख आये ( भरद्वाज ) मुनि को, पिता-समान मानकर बड़ी विनम्रता से प्रणाम किया। चन्द्रशेखर ( शिव )-सदृश उन मुनिवर ने प्रेम से उन्हे अनेक शुभ आशीर्वाद दिये।

फिर भरद्वाज मुनि ने भरत को देखकर कहा—हे तात। तुमको जो राज्य प्राप्त हुआ है, किरीट धारणकर उसका शासन किये विना क्यो इस प्रकार जटा धारण करके यहाँ आये हो ?

यह वचन सुनते ही भरत घोर क्रोधाग्नि से भड़क उठे। किन्तु क्रोध को दबाकर उन महान् तपस्वी को देखकर कहा—हे ज्ञानी। आपने यह समझकर कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा नही किया, अब यह जो प्रश्न किया है, यह क्या आपके लिए उचित है ?

वेदो के प्रभु ( विष्णु ) के अवतार राम के योग्य भाई भरत ने पुनः कहा—कुल-परंपरा से आगत धर्म का त्याग कर मै राज्य नही करना चाहता। यदि रामचन्द्र उस

( राज्य ) को नहीं स्वीकार करेंगे, तो वनवास की अवधि तक मैं भी उनके साथ वन में ही रहूँगा ।

राम के प्रति अत्यन्त प्रेम से पूर्ण उन महान् तपस्वियों ने, ज्योंही यह वचन सुना, त्योंही उनके फूले हुए शरीर और मन में ऐसी शीतलता व्याप्त हुई, जैसे किसी ने चन्दन लगा दिया हो ।

भरद्वाज महर्षि प्रेम के साथ भरत को अपने पवित्र आश्रम में ले गये और उनके साथ आई हुई सेना का आतिथ्य करने के विचार से अपने अरुण करों से अग्नि में कुछ आहुतियाँ दीं ।

विरागी तपस्वी ( भरद्वाज ) के स्मरण करने मात्र से स्वर्गलोक शीघ्र वहाँ आ पहुँचा । सेना के लोग मानो पुनर्जन्म प्राप्त कर दूसरे लोक में जा पहुँचे हों—इस प्रकार अपनी पूर्वदिशा को भूलकर बड़े आनन्द में निमग्न हो रहे ।

स्वर्ग की अप्सराओं ने यह मानकर कि ये लोग शाश्वत धर्म के आश्रय हैं, उस सेना में स्थित लोगों का प्रेम से स्वागत किया और चन्द्र-मडल के समान स्थित प्रासाद में उन्हें ले गईं ।

उन ( अप्सराओं ) ने उस सेना के लोगों को स्नान के उपयुक्त सुगंध-चूर्णों का लेप कराकर स्वर्ग-गगा के दुर्लभ तथा अपूर्व जल में स्नान कराया । सुरभिमय बड़े कल्प-वृक्षों के दिये हुए पुष्प-सदृश मृदु वस्त्र पहनाये ।

पुष्पित शाखा के समान लचकती देहवाली उन अप्सराओं ने रक्तस्वर्ण के बने मनोहर आभरण पहनकर बड़े प्रेम से उन लोगों को अमृत-समान भोजन कराया ।

फिर, भरत की सेना में स्थित पुरुषों ने अलक्तक-लगे, नूपुरों से भूषित एवं पल्लव-समान चरणों से युक्त तथा विष-समान नयनों से शोभायमान उन अप्सराओं के साथ पंच लक्षणों से युक्त उत्तम शय्या पर सुखनिद्रा की ।[1]

राजाओं से लेकर पालकी ढोने से सूजे हुए कंधोंवाले लोगों तक, सबका उन सुन्दर केशोंवाली अप्सराओं ने यथाक्रम ऐसा ही सत्कार किया, जैसा देवताओं का करती हैं ।

भरत की सेना में आई हुई स्त्रियाँ, बिंबफल-समान रक्त अधरोंवाली तथा निर्दोष वैभव से पूर्ण उन अप्सराओं के सखियों तथा दासियों के समान सेवा करते रहने से, दे-वोचित भोग अनुभव करती रहीं ।

उपवनों में स्थित सद्य विकसित पुष्पों से भरे कल्पवृक्षों से मंद मारुत, रम्भा के हाथ का सहारा लिये हुए, अंधे व्यक्ति के समान, धीरे-धीरे आया ।

मधु-धारा से सिक्त अन्न-पिंडों तथा लाल धान के पत्तों की राशि को कल्पवृक्षों ने दिया, तो उनको खाकर मत्तगज तृप्त हुए और उनके मद-जल से भ्रमर भी तृप्त हुए ।

नरक से मुक्ति देनेवाले पवित्र आकाश-गगा के जल को मत्तगजों ने अपने अंगों पर

---

1. शय्या के पाँच लक्षण हैं—मार्दव, [illegible]

पैरों को पसारकर, लंबी सूँड़ों से भरकर पिया। अश्व-समूह ने मरकत-समान कांति से युक्त घास को खाया।

सब लोग इस प्रकार देव-योग्य भोगों का अनुभव कर रहे थे। किन्तु, भरत ने कंद-मूल और फल खाकर ही, अपनी स्वर्णमय देह को धूल पर डालकर, किसी प्रकार उस रात को व्यतीत किया।

नीलवर्ण अंधकार के हटने से जिस प्रकार स्वप्न भी मिट जाता है, उसी प्रकार उनके स्वर्गिक भोगों के मिटने का कारण बनकर सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे पुण्यानुभव करनेवालों के पुण्य का ही अंत हो गया हो।

संयम के साथ जो धर्म का आचरण नहीं करते, उनके जीवन के समान ही उन सैनिकों का भोग भी मिट गया, मानों उन्हें दूसरा जन्म ही प्राप्त हो गया हो। यों (स्वर्ग-भोग के खो जाने में) चिंता न करते हुए वे पूर्व दशा में पहुँच गये।

उस दिन प्रातः ही निद्रा से उठकर वह सेना उपवनों तथा पर्वतों को धूल बनाकर उड़ाती हुई चल पड़ी और एक मरुभूमि में जा पहुँची, जिसे देखकर देवता भी यह संदेह करने लगे कि यह समुद्र है कि सेना है।

ऊपर उठी हुई धूल से आवृत होकर सूर्य, ताप-रहित हो शीतल पड़ गया। गजों के मद-प्रवाह, धूल-भरे उस मरु-प्रदेश में यों बहे कि आगे चलना कठिन हो गया।

तीक्ष्ण भालेवाले राजाओं के श्वेतच्छत्र, वृक्षों की-सी घनी छाया दे रहे थे, जिससे अग्नि के समान उष्ण एवं कंकड़ों से भरा वह मरु-प्रदेश इस प्रकार शीतल हो गया, मानों उसके ऊपर घनी लताओं से युक्त कोई वितान ही छा दिया गया हो।

'यह विशाल राज्य तुम स्वीकार करो'—यों कहनेवाली माता के प्रति उत्पन्न क्रोध से जिनका मुख लाल हो गया था, ऐसे नीलवर्ण भरत को देखकर सूखे हुए वृक्ष भी प्रेम के कारण द्रवित होकर पल्लवित हो गये।

अपने प्राणों से भी सद्धर्म को ही अधिक श्रेष्ठ मानकर प्राण त्यागनेवाले, शासन में चतुर दशरथ की वह सेना, दुःखदायक मरु-प्रदेश को ऐसे पार कर गई, जैसे शीतल वृक्षों से भरे (मरुद नामक) भू-प्रदेश को ही पार कर रही हो और इस प्रकार चित्रकूट पर्वत के निकट जा पहुँची।

धूलि का समूह, अश्वों, रथों तथा मत्तगजों का शब्द एवं पैदल सेना का कोला-हल—यह सब सूचना दे रहे थे कि एक विशाल सेना आ रही है, जिसे सुनकर—

लक्ष्मण उठे और एक ऐसे पर्वत पर चढ़ गये, जो पृथ्वी के सूज उठने से उभरा-सा लगता था और वीचि-पूर्ण सागर को छोटा बना देनेवाली तथा दृढ धनुर्धारी उस विशाल सेना को देखा।

तब लक्ष्मण, यह सोचकर कि सारी पृथ्वी का राज्य करने की अदम्य इच्छा से प्रेरित होकर ही भरत इस सेना को लेकर व्रतधारी (रामचन्द्र) पर आक्रमण करने आया है—यह सत्य है।—अत्यन्त क्रोध से भर गये।

वे दौड़कर, उस पर्वत को चूर-चूर करते हुए, भूमि पर कूद पड़े और शीघ्र

रामचन्द्र के निकट जा पहुँचे और बोले—भरत आपका आदर किये बिना प्राचीरों से आवृत अयोध्या की सेना को लेकर आप पर आक्रमण करने को आ रहा है।

यों कहकर लक्ष्मण ने ( कटि में ) कटार और ( पैरों में ) वीर-वलय धारण किये। अनेक बाणों से भरा तूणीर लिया। युद्ध-कवच पहना। हाथ में धनुष लिया। और प्रभु के चरणों को प्रणाम करके ये वचन कहे—

इह और पर-लोक दोनों के फलों को खो देनेवाले उस भरत के ऊँचे कंधों के बल को, उसकी सेना के महत्त्व को एवं अपने इस अनुज ( अर्थात्, लक्ष्मण ) के अनुपम पराक्रम को देखकर आप आनन्दित होंगे।

बड़ी पीडा से मरनेवाले हाथियों के ढेरों को लुढ़कानेवाले, रथों को बहानेवाले ( हाथी, अश्व आदि की ) आँतों को बिखेरकर ले चलनेवाले तथा अरण्य में फैलनेवाले रक्त-प्रवाह को आप अभी देखेंगे।

मेरे बाण ( शत्रुओं के ) हथियार, हाथ, कवच से आवृत वक्ष तथा प्राण सबको छिन्न करके उनके शरीर के भीतर प्रविष्ट होंगे। ( मेरे बाण ), उनके रक्त से भी सिक्त न होकर बड़े वेग से सब दिशाओं में जाकर, दिग्गजों को भी भयभीत करेंगे। हे वीर! आप देखेंगे।

अति वेग से फाँदनेवाले अश्वों के मर जाने पर, रथों की स्वर्णमय पीठों पर, टूट-कर गिरे हुए ढालों को अपने हाथ में लेकर भूतों को सगीत के साथ नृत्य करते हुए देखेंगे।

( लक्ष्मण ने राम से कहा—) अलंकारों से युक्त हाथियों से पूर्ण भरत की सेना को मैं एक क्षण में निर्मूल कर दूँगा, जिससे वीर-स्वर्ग भी भार से अपनी पीठ झुकाने लगेगा तथा समुद्र-रूपी वस्त्र से युक्त पृथ्वी भार-मुक्त होकर विश्राम करेगी। हे उदारगुण! यह आप देखेंगे।

उमड़कर चलनेवाले रक्त-प्रवाह में तैरने के कारण लाल हुए भूत और उनके साथ छोटी आँखवाले पिशाच तथा शिर-रहित कबंध, देवों के जैसे ही यह कहते हुए कि 'सारी पृथ्वी आपके अधीन हो गई है', नाचेंगे।

मुख-पट्टों से भूषित मत्तगजों, अश्वों, भारी भुजाओं से युक्त पैदल सेना के वीरों आदि के मरने पर उनके समुद्र-सदृश रक्त से सात समुद्रों को उथलकर गरजते हुए आप सुनेंगे।

आप देखेंगे कि मेरे शरों से कैसे पैदल सेना छिन्न-भिन्न होती है। रथ विध्वस्त होते हैं। वीरों के करवाल टूट जाते हैं। दृढ धनुष टूट जाते हैं। बड़े गजों और अश्वों के पैर, शिर आदि टूट जाते हैं और उनपर आरूढ वीरों के पैर और हाथ कट जाते हैं।

बड़े पंखवाले तथा स्वर्णिम कांति को बिखेरनेवाले मेरे बाणों को, उन दोनों—( अर्थात्, भरत और शत्रुघ्न ) के वक्षों को छेदकर, उनका मांस निकालकर, गगन-मार्ग में उड़ते हुए और ( मांसभक्षी ) पक्षियों को बुलाते हुए, आप देखेंगे।

हे चक्रधारी! एक स्त्री के मोह से संसार-भर को दुःख देनेवाले चक्रवर्ती ( दशरथ ) की आज्ञा से जिस भरत ने राज्य पाया है, उसे अब मेरी आज्ञा से यह राज्य

त्यागकर, पुनरावृत्ति से रहित ( अर्थात्, जहाँ से लौट आना असंभव है ), नरक-लोक प्राप्त करते हुए देखेंगे।

यह देखकर कि आपको राज्य छोड़कर वन मे निवास करने का दुःख प्राप्त हुआ है, जब आपकी जननी रो रही थी, तब उसे देखकर जो कैकेयी आनन्दित हुई थी, उसे अब ( पुत्र के शोक मे ) पृथ्वी पर गिरकर रोते हुए देखेंगे।

सान पर चढाकर तीक्ष्ण किये गये, अग्नि के समान भयकर और विजयमाला से भूषित बरछा धारण करनेवाले ! मै एक क्षण मे एक तीक्ष्ण तथा विध्वंसक बाण से इस सेना-समुद्र को त्रिपुर-दाह करनेवाले शिवजी के समान सुखा दूँगा—इस प्रकार लक्ष्मण ने कहा।

तब रामचन्द्र ने उससे कहा—हे लक्ष्मण ! यदि तुम चतुर्दश लोको को हिला देना चाहो, तो तुम्हारे इस निश्चय को कोई रोक नही सकता। उसके बारे मे कुछ कहने की क्या आवश्यकता है ? ( पर मै तुम से ) एक उचित वचन कहना चाहता हूँ। उसे सुनो।

उज्ज्वल प्रस्तर-स्तंभ के प्रतिरूप बने कंधोवाले ! हमारे कुल मे जो निष्कलक गुणवाले राजा उत्पन्न हुए, उनकी गणना नही हो सकती। हमारे कुल मे कौन ऐसा हुआ, जो अपने कुल-धर्म से हटा हो ?

ताल-वृक्ष जैसी सूँडोवाले हाथियो की सेना से युक्त भरत ने जो कार्य किया है, वह वेद-प्रतिपादित धर्म के अतर्भूत ही है। तुम जैसा कहते हो, वैसा नही है ( अर्थात्, अधर्म-कार्य नही है )। इस सत्य को तुमने मेरे प्रति प्रेमाधिक्य के कारण सोचा नही।

भरत, मुझ अपने ज्येष्ठ भ्राता पर प्रेम के कारण ही यहाँ आयगा और राज्य मुझे सौप देगा—यों सोचने के बदले क्या यह सोचना बुद्धिमत्ता है कि वह ( भरत ) सेना के साथ आकर मुझसे युद्ध करेगा ?

हे विद्युत् के समान चमकते हुए बरछे को धारण करनेवाले ! वीर-वलयधारी भरत यहाँ आकर विशाल सेना को, राज्य-सपत्ति के साथ, मुझे सौपेगा—इसके विपरीत यह कहना भी अनुचित है कि वह मेरे साथ युद्ध करेगा।

हे आभरण-योग्य कधोवाले ! उत्तम धर्म के देवता के समान एव सच्चारित्र्य की धुरी बने हुए उस ( भरत ) के सबंध मे इस प्रकार सोचना क्या उचित है ? उसका यहाँ आना, मुझे देखने के लिए ही है। इसे तुम अभी समझोगे।

प्रभु ने अनुज ( लक्ष्मण ) से यो कहा—उस समय, भरत अपनी सेना को पीछे छोडकर, अपने से कभी पृथक् न होनेवाले प्रेमयुक्त भाई शत्रुघ्न को साथ लेकर, आगे बढकर ( राम के निकट ) आया।

नमस्कार की मुद्रा मे हाथो को उठाये हुए, शिथिल देहवाले, अश्रुपूर्ण नेत्रोवाले तथा साकार दुःख बने हुए चित्र-जैसे आनेवाले भरत को सर्वज्ञ प्रभु ने पूर्ण रूप से देखा—( अर्थात्, शिर से पैर तक दृष्टि फेरकर देखा )।

फिर, काले मेघ-जैसे आकारवाले प्रभु ने लक्ष्मण से कहा—शब्दायमान दृढ धनुष से युक्त हे अनुज ! हे तात ! देखो, रथ आदि की सेना को लेकर यह भरत बड़े क्रोध के साथ युद्ध करने के लिए कैसा युद्धोचित वेष धारण कर यहाँ आ रहा है !

यह सुनकर लक्ष्मण-तपोवेष में, निर्बल हुई भुजाओं से युक्त भरत के संबंध में अपने कहे हुए कठोर वचन भूल गये। उनका क्रोध तथा ज्ञान भी शिथिल हो गये और कांति-हीन वदन के साथ यों खड़े रहे कि उनका धनुष तथा अश्रु दोनों धरती पर गिर पड़े।

उस समय, भरत अपने दोनों हाथों को जोड़कर इस प्रकार राम के सम्मुख आये, मानों रामचन्द्र को, अपने पति के रूप में पाने के लिए तपस्या करके उन्हें प्राप्त करने के समय अकस्मात् उनसे वियुक्त हुई राज्यलक्ष्मी का ( राम के पास ) भेजा हुआ कोई दूत हो।

भरत आये और जैसे अपने पिता के ही दर्शन कर रहे हों—यह वचन कहते हुए राम के चरणों पर गिर पड़े कि आपने धर्म का विचार नहीं किया। करुणा को त्याग दिया और परंपरागत नीति को छोड़ दिया।

उसमें प्राण हैं या नहीं, ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले, अत्यन्त कृशगात्र हुए, भरत को प्रभु ने देखा। देखते ही उनके नयन-रूपी कमलों से ( अश्रु ) जल प्रवाहित होकर ( भरत के ) जटा-मंडल पर गिरकर उसे भरकर फिर उमड़कर बह चला।

दयामय परमात्मा ने धर्म-देवता का आलिंगन किया हो, इस प्रकार ( का भ्रम उत्पन्न करते हुए ) समस्त नीति के एकमात्र आश्रयभूत रामचन्द्र ने निःश्वास भरते हुए तथा वक्ष पर आँसुओं को बहाते हुए द्रवितचित्त होकर भरत का आलिंगन किया।

भरत को गले लगाकर रामचन्द्र ने उनके वेष को बार-बार ध्यान से देखा और विविध भाँति के विचार किये। फिर पूछा—हे तात। तुम दुःख-समुद्र में डूबे हो। संसार का शासन करनेवाले, मल्लयुद्ध में चतुर भुजाओंवाले, हमारे पिता सुखी हैं न?

ज्ञानी ( प्रभु ) का वचन सुनकर भरत ने कहा—हे प्रभु! आपके विरह-रूपी व्याधि से एवं मेरी जननी के वर-रूपी यम से पीड़ित होकर हमारे पिता इस संसार में सत्य को स्थिर करके परलोक में जा पहुँचे हैं।

'( पिता ) स्वर्गलोक को गये'—यह तीक्ष्ण वचन घाव में बरछे के समान उनके कानों में घुसने के पूर्व ही परमपद के निवासी प्रभु ( विष्णु के अवतार राम ) के नयन और मन चरखी के जैसे घूम उठे और वे मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े।

प्रभु विशाल धरती पर गिरे। उनके प्राण अप्रकट हो रहे। बिजली से पीड़ित सर्प के समान वे मूर्च्छित हो रहे। फिर, बड़ी कठिनाई से उनके प्राण लौटे। तब वे निःश्वास भरते हुए बड़ी व्याकुलता के साथ विविध वचन कहकर विलाप करने लगे।

अमंद दीप-सदृश हे शासक। संसार के निवासियों के लिए पितृ-तुल्य। अनुपम धर्म के लिए माता बननेवाले। दया-निलय। मेरे पिता। शत्रुरूपी हाथियों के लिए सिंह बननेवाले। तुम मृत हो गये। अब सत्य का यथार्थ आश्रय और कौन बनेगा?

हे शत्रुओं के लिए भयंकर, विध्वंसक तथा विजयमाला से भूषित तीक्ष्णभाला धारण करनेवाले। प्रसिद्ध तपस्वी ऋष्यशृंग की कृपा से उत्तम यज्ञ संपन्न करके तुमने मुझे पुत्र के रूप में पाया। क्या उसका फल तुम्हारा इस प्रकार से प्राण त्याग करके जाना ही है?

स्वर्णरंग की धूलि विखेरनेवाले पुष्पों से भूषित, तीक्ष्ण सूर्य-किरण की-सी उज्ज्वल कांति विखेरनेवाली धवल माला धारण करनेवाले ! प्रजा का हित करनेवाले शासन का भार मेरे द्वारा लिये जाने पर विश्राम पाने का तुम्हारा ढंग क्या यही है ? मैं तुम्हारे प्राणों के लिए यम बनकर उत्पन्न हुआ। क्या मैं सचमुच संसार का राज्य करने की योग्यता रखता हूँ ?

शंवरासुर को मिटाकर देवेन्द्र को स्वर्ग का शाश्वत राज्य प्रदान करनेवाले हे चक्रधारी ! राज्य का भार मुझे सौंपकर पंचेन्द्रियों पर दमन करके तुम्हारी तपस्या करने की क्या यही रीति है ?

सबके स्पृहणीय राज्य को स्वीकार करके संसार के लिए दुःख उत्पन्न करनेवाला क्षुद्र हूँ मैं। अब यदि मैं अपने प्राण छोड़ने के बदले इस शरीर को रखकर राज्य करने लगूँ, तो वह किसकी तृप्ति के लिए होगा ?

पुष्ट देहवाले शत्रुओं के प्राण हरण करनेवाला भाला रखनेवाले, हे पिता ! मधुस्रावी पुष्पोद्यानों से पूर्ण कोशल देश को छोड़कर मैं वन में आया हूँ—यह बात सुनने मात्र से उसे न सहकर तुम स्वर्ग को चले गये। किन्तु, मैं अभी तक यह ( संसार का ) जीवन चाहता हुआ जीवित हूँ।

गरिमामय चन्द्र को भी शीतलता प्रदान करनेवाले अनुपम छत्र से युक्त हे चक्रवर्ती ! तुम दातृत्व, गौरव, स्वर्गवासियों के लिए भी अविनाशी पराक्रम, न्याय से विचलित न होनेवाली शासन-रीति, अपरिवर्तनीय सत्य तथा अन्य समस्त सद्गुणों को अपने साथ ही ले गये ( अर्थात्, अब इस संसार में वे गुण नहीं रहे )।

इस प्रकार, विविध वचन कहकर विलाप करनेवाले, पुष्ट पर्वताकार दृढ कंधोंवाले, सिंहतुल्य राम को विशाल भुजाओंवाले भाइयों तथा वहाँ आये हुए नरेशों ने जाकर सँभाला। तब महान् तपस्वी वसिष्ठ उन्हें सांत्वना देनेवाले वचन कहने लगे।

उस समय, वर्णनातीत तपःप्रभाव से युक्त भरद्वाज आदि जटाधारी मुनि, सप्त द्वीपों के राजा तथा सभी मंत्री आ पहुँचे। सेनापति भी आ गये।

आने योग्य सब लोगों के आ जाने पर शोक में निमग्न विजयशील पुरुषोत्तम ( राम ) को देखकर कमलभव ( ब्रह्मा ) के पुत्र ( वसिष्ठ ) ने कहा—

संसार के प्राणियों के लिए, संन्यास अथवा (गृहस्थ-जीवन में रहकर) उत्तम धर्म-मार्ग पर चलना—इनके अतिरिक्त अन्य कोई साथी नहीं है। इन प्राणियों के लिए जन्म लेना और मरना स्वाभाविक है। वेदों के पारंगत तुमने क्या इस बात को भुला दिया ?

'प्राणियों के अनित्य जन्म असंख्य कोटि होते हैं, जो सुख और दुःख से भरे रहते हैं'—शास्त्रों में अनेक स्थानों में प्रतिपादित इस सत्य को जानने के पश्चात् भी क्या यह सोचना उचित है कि यम पक्षपात से काम करता है ?

हम देखते हैं कि कुछ प्राणी जन्म लेने के पूर्व ही मर जाते हैं। चक्रवर्ती उत्तम ज्ञान के साथ, साठ सहस्र वर्ष-पर्यंत सारी पृथ्वी का शासन करके स्वर्गवास करने गये हैं। इसके लिए रोना क्या ?

तपस्या, धर्म और सृष्टि एवं त्रिशूल, चक्र और सरस्वती, क्रमशः इनको धारण करनेवाले त्रिदेव ( शिव, विष्णु और ब्रह्मा ) भी काल के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं।

नेत्र आदि इंद्रियों के कारणभूत, अपार विशालता से युक्त एवं सृष्टि के सब पदार्थों के उत्पत्ति-स्थान बने हुए पृथ्वी, जल आदि पंचभूत भी नश्वर हैं, तो अब एक प्राणी के लिए तुम क्यों शोक करते हो ?

हे उत्तम ! पुण्य-रूपी सुगंधपूर्ण तैल में अनुपम काल-रूपी बत्ती, विधि-रूपी ज्योति से दीप्त होकर जलती रहती है। जब तैल और बत्ती समाप्त होती है, तब दीप बुझ जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं।

ये विविध जन्म, इस लोक में दुःख भोगकर, परलोक में यातनाएँ भोगकर, फिर जन्मांतर में भी भाग्य का फल भोगने के स्थान हैं। इनकी गणना कैसे संभव है ?

सबके आदर-योग्य सद्गुणों से पूर्ण ! तुम्हारे पिता बनने के कारण दशरथ कमलभव ब्रह्मा के लिए भी दुर्गम विष्णुलोक में जा पहुँचे। इसके अतिरिक्त तुम अपने पिता का और क्या उपकार कर सकते हो ?

हे तात ! तुम किंचित् भी दुःखी मत होओ। उन दशरथ के लिए इससे बढ़कर उद्धार का मार्ग अन्य कोई नहीं है। अब तुम शास्त्रोक्त प्रकार से उत्तरकृत्य करो तथा अपने अरुण करों से तिलांजलि आदि दो।

मेघ से गिरे हुए जल में जैसे बुद्बुद हो, वैसे ही इस नश्वर शरीर के बारे में सोचकर दुःख करना अज्ञान है। आँखों से आँसू बहाने से हम कुछ नहीं पाते हैं। अतः, अब तुम जाओ और कमल-समान अपने करों से पापहारी तथा पवित्रता उत्पन्न करनेवाला जल-तर्पण करो—यों वसिष्ठ ने कहा।

वसिष्ठ के यह कहने पर रामचन्द्र उठे तथा स्वर्ण के रंगवाली जटा से युक्त और चार वेदों के ज्ञाता वसिष्ठ के साथ घनी लहरों से भरी गंगा पर जा पहुँचे। वसिष्ठ के कथनानुसार राम ने ( अपना दुःख शान्त करके ) कर्त्तव्य का विचार किया।

सब जीवात्माओं में एक ही समान अंतरात्मा के रूप में रहकर उनको ज्ञान देनेवाले विष्णु ( के अवतार राम ) ने, जल में उतरकर स्नान किया, वेदज्ञ वसिष्ठ के बताये ढंग से अपने कर से तीन बार जल लेकर छोड़ा।

जल-तर्पण करने के पश्चात् अन्य सब कृत्य पूर्ण करके राम, बड़े मंत्रियों, राजाओं, महान् तपस्वियों तथा अन्य लोगों के साथ उस पर्णशाला में जा पहुँचे, जहाँ सीता देवी थी।

जब सब लोग पर्णशाला में पहुँचे, तब उत्तम भरत ने अकेली बैठी सीता देवी को देखा और उस पर्णकुटी को भी देखा। दुःख के आवेग से, अपनी कमल-जैसी आँखों को हाथों से आहत करते हुए वे सीता देवी के चरणों पर गिरकर रोने लगे।

महत्ता से युक्त भरत की लाल आँखें शोक के उद्वेग के कारण अत्यधिक अश्रुओं को निरंतर बहाती रहीं, जिससे ऐसा लगा, मानों इन्द्रियों में भी वीचियों से पूर्ण समुद्र रहता हो।

इस प्रकार बड़े शोक से आहत वीर भरत को राम ने अपने दीर्घ करों से सँभाला

और मनोहर केशोंवाली सीता को देखकर कहा—हमारे पिता ( दशरथ ) मेरे चिरकाल के वियोग के कारण उत्पन्न शोक से मर गये।

यह सुनते ही सीता चौंककर काँपने लगी। उनकी दोनों विशाल आँखें समुद्र के समान जल बहाने लगी। भूमि नामक अपनी धाई के ऊपर हाथ रखे, संगीत-मधुर अपने कंठ-स्वर से अनेक वचन कहती हुई विलाप करने लगी।

पर्वत के समान पुष्ट भुजाओंवाले राम के पीछे-पीछे चलनेवाली सीता को अरण्य भी नगर के समान ही लगता था। अब यह सुनने से कि चक्रवर्त्ती मर गये, हंसिनी-जैसी वह सीता भी शोक-समुद्र में निमग्न हो गई।

उस समय दोष-रहित मुनियों की पत्नियों ने माताओं के समान होकर ( प्रेम से) सीता को अपने हाथों से उठाकर सँभाला। गंगा के पवित्र जल में स्नान कराया और उनके शोक को कम करके प्रभु ( राम ) के पास पहुँचाया।

तब सुमंत्र पुष्पमालाधारी चार उत्तम गुणवाले कुमारों को जन्म देनेवाली तीनों माताओं तथा जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के तत्त्व को जाननेवाले गुरुजनों को साथ लिये, सदा धर्म का ही विचार करते रहनेवाले प्रभु (राम) के निकट हाथ जोड़े हुए आया।

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के भी आदिकारणभूत राम, यह कहते हुए कि 'मेरे पिता कहाँ हैं, बताइए'—वहाँ आई हुई उन माताओं के उज्ज्वल चरणों पर अपने अरुण नयनों से अश्रु बहाने लगे।

तब वे माताएँ राम को गले लगा-लगाकर रोने लगी। वहाँ एकत्र सेना के वीर एवं अप्सरा-समान स्त्रियाँ भी आग में पड़े मोम के जैसे पिघल उठीं।

फिर, राम आदि उन वीरों को जन्म देनेवाली वे माताएँ जनक की पुत्री का गाढ़ आलिंगन करके शोक-समुद्र में निमग्न हो गईं।

सेना के वीर, नगर के लोग, प्रेम से पीड़ित पुरुष, अन्य ( स्त्री ) जन, राजा लोग—सब दुःख से व्याकुल चित्त के साथ प्रभु ( राम ) के निकट आ पहुँचे।

शेष-शय्या पर शयन करनेवाले विष्णु ने जिस वंश को अपने अवतार का स्थान बनाया, उसके कुलपुरुष होने के कारण सूर्य भी, मानों अब ( दशरथ की मृत्यु पर ) स्वयं जल में स्नान करके तिलांजलि आदि देने का कर्त्तव्य पूर्ण करने जा रहा हो—यों सूर्य पश्चिमी समुद्र में निमग्न हुआ।

वह दिन बीत गया। दूसरे दिन जब राजा लोग, घनी जटा धारण किये मुनि लोग, बंधुजन, अनुज-वर्ग ( भरत आदि ) सब एकत्र हुए, तब राम ने कहा—

हे भरत। सबके अभीष्ट पूर्ण करनेवाले चक्रवर्त्ती मर गये। उनकी आज्ञा से सारी पृथ्वी तुम्हारी हुई है। तो तुमने किस कारण से मुकुट धारण किये बिना मुनि का वेष स्वीकार किया है? कहो।

राम के यह कहने पर भरत, विकल मन के साथ उठे और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। अनेक क्षण तक प्रभु को देखकर फिर बोले—आपके अतिरिक्त धर्म-मार्ग पर स्थिर रहनेवाले और कौन हो सकते हैं? ऐसे आप भी क्या धर्म से हट जाना चाहते हैं?

अनिष्ट उत्पन्न करनेवाले वरों को माँगकर जिस (कैकेयी) ने आपको, आपके लिए योग्य न होनेवाले इस अरण्य-वास में भेज दिया और चक्रवर्ती के लिए मृत्यु उत्पन्न की, उसी का तो पुत्र हूँ मैं। अतः, विचार करने पर, क्या यह तपस्वी-वेष मुझ-जैसे (पापी) के लिए उचित लगता है?

संसार को दुःख देनेवाली पापिन का पुत्र होकर मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने अपने प्राण-त्याग देने का साहस नहीं किया। तपस्या करने योग्य भी नहीं रहा। अब इस अपयश से किस प्रकार से मैं मुक्त हो सकूँगा?

पातिव्रत्य से स्खलित स्त्रियों का शील; क्षमा-गुण से फिसले हुए तपस्वी का तप, करुणा से हीन हुआ धर्म—ये सब परंपरागत नीति से फिसले राजा के शासन से भी क्या गये-बीते हो सकते हैं? नहीं (अर्थात्, इन सबसे अधिक कठोर है नीति-रहित राजा का शासन)।

(चक्रवर्ती का ज्येष्ठ पुत्र होकर) संसार में उत्पन्न होकर भी आपने न त्यागने योग्य राजपद का त्यागकर बड़ा व्रत अपनाया है। तो क्या मैं भूल से भी, नीति से च्युत होकर, धर्म को करवाल से काटकर खाने के समान, वह राज्य स्वीकार करूँगा?

(आपके प्रति) अपार प्रेम के कारण पिता मृत हुए। आप अति भयंकर धूप से पूर्ण वन में प्रविष्ट हुए। तो क्या मैं ऐसा शत्रु हूँ, जो षड्यंत्र करता हुआ, राज्य-हरण करने के लिए घात लगाये बैठा रहूँगा?

हे हमारे प्रभु! आपके पिता ने जो हानि की है तथा संसार को अति कठोर दुःख देनेवाली माता ने जो हानि की है—इन दोनों हानियों को दूर करते हुए आप अयोध्या वापस चलकर राज्य करें—यों भरत ने अपने मन के विचार प्रकट किये।

भरत के वचनों से उनके मन का निर्णय सुनकर रामचन्द्र ने सोचा—अहो! इसका विचार कैसा है! फिर बोले—हे विजयी वीर! मेरा कथन सुनो और भली भाँति विचार करके ये वचन कहे—

हे तात! सदाचार, सत्य, सबके लिए अनुसरणीय न्याय, उत्तम धर्म इत्यादि वेदों तथा शास्त्रों के अनुकूल चलनेवाले राजा के सुशासन से ही तो उत्पन्न होते हैं।

हे दृढ धनुर्धारी! प्रशंसा के भाजन शास्त्रों का अध्ययन, दोषहीन ज्ञान, रक्षा-कार्य, उत्तम आचरण, ये सब वंदनीय गुरुजन ही हैं (अर्थात्, गुरुओं के कारण ही ये सब दृढ रहते हैं)।

हे प्यारे! ये उत्तम गुरु कौन हैं? यदि परिशुद्ध मन से विचार करके देखा जाय तो (विदित होगा कि) माता और पिता के अतिरिक्त अन्य (गुरु) कोई नहीं है।

शास्त्रों के ज्ञान से युक्त हे भाई! माता ने वर माँगा। पिता ने भी आज्ञा दी। अपने उत्तम कुल की नीति के उपयुक्त कार्य ही मैंने किया। अब तुम्हारी प्रार्थना से इस कार्य को छोड़ना क्या उचित होगा?

हे तात! पुत्रों का कर्तव्य अपने कार्य से माता-पिता की कीर्ति को बढ़ाना होता है, या कभी न मिटनेवाला अपयश उत्पन्न करना होता है?

क्या मेरे लिए यह उचित है कि पिता के वचन को भुलाकर वैभव तथा ऐश्वर्य-पूर्ण राजभोग का अनुभव करता हुआ शासन करूँ और उससे इस लोक में पिता को असत्य-वादी तथा परलोक में कठोर नरक-भोगी बना दूँ ?

'पिता के दिये वर के अनुसार पृथ्वी का राज्य तुम्हारा है। तुम ( उस राज्य का निर्वाह करने योग्य ) शक्ति तथा सामर्थ्य से युक्त भी हो। अतः, राज्य तुम्हारा ही स्वत्व है, तुम राज्य करो'—राम ने जब यों कहा, तब भरत ने कहा—

यह पृथ्वी, जिसपर त्रिभुवन में भी अपनी समता न रखनेवाले आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर अवतीर्ण हैं, यदि मेरी है, तो अब इसे मैंने आपको दिया। हे राजन्! आप लौटकर मुकुट धारण करें।

जब सारा संसार व्याकुल हो रहा है, तब स्तंभ-तुल्य भुजाओं से युक्त आपको क्या यह उचित है कि आप अपने मन के अनुसार कार्य करें ? अतः, संसार की व्याकुलता को शांत करते हुए लौट चलिए और ( संसार की ) रक्षा कीजिए, यों कहकर भरत ने रामचन्द्र के मनोहर चरणों को पकड़ लिया।

तब राम ने भरत से कहा—मुझपर प्रेम होने के कारण यदि तुम संसार को मुझे सौंप दोगे, तो क्या वह न्याय-संगत होगा ? अपयश से डरकर पिता ने जो वर दिया, उसको मानकर जिस वनवास के लिए मैं आया हूँ, क्या ( अब राज्य स्वीकार करने से ) उस ( वनवास ) की अवधि पूरी हो जायगी ?

संसार में क्या सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई पवित्र गुण है ? उस सत्य से दुर्गुण भी मिट जाते हैं, किन्तु सत्य से कुछ हानि नहीं होती है। तुम ठीक विचार कर देखो।

पिता की आज्ञा के अनुसार मैं चौदह वर्ष वन में निवास करूँगा। तुम मेरी आज्ञा से इन चौदह वर्षों तक, सत्य से विचलित न होते हुए, पिता से दिये गये राज्य का पालन करो।

चक्रवर्त्ती के जीवित रहते हुए भी यदि रत्नमय मुकुट को धारण करने के लिए मैं सहमत हुआ, तो वह पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करने के लिए ही था। ( राज्य करने की इच्छा मुझे नहीं थी। ) मेरा उस प्रकार सहमत होने की बात जानकर भी तुम क्यों मेरी आज्ञा का पालन नहीं करना चाहते हो ? हे भ्राता! दुःख को दूर करो। मेरे कथनानुसार कार्य करो। यों राम ने भरत से कहा।

जब शोभा से पूर्ण रामचन्द्र ने ये वचन कहे, तब कुछ उत्तर देने के लिए उद्यत, समुद्र के समान गंभीर भरत को रोककर वसिष्ठ (राम से) बोले—हे उदारगुण! तुम्हारे वंश में उत्पन्न कुछ प्राचीन राजाओं के आचरण के संबंध में तुम्हें सुनाता हूँ। उन्हें ध्यान से सुनो—

विष्णु ने पूर्वकाल में अनुपम वराह-रूप धारण करके, उमड़ते हुए समुद्र से अपने एकदंत के मध्य रखकर भूमि को यों उठाया कि वह बढ़ती हुई चंद्रकला के मध्य कलंक-जैसा दृश्य उपस्थित करने लगा।

पूर्व कल्प के अंत में, जब पंचमहाभूत अपने-अपने तत्त्वों में लीन हो गये, तब विष्णु, विस्तीर्ण जल को उत्पन्न करके उसपर ज्योति-रूप में निद्रित होने लगे।

इस प्रकार (क्षीरसागर मे ) शयन करते रहनेवाले, देवो को अमृत प्रदान करने-वाले समुद्र-जैसे नीलवर्ण विष्णु भगवान् की नाभि से एक शतदल (कमल) उत्पन्न हुआ, जिसमें से सारी सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मा के द्वारा सृष्ट ससार की रक्षा के लिए तुम्हारे कुल का आदि पुरुष सूर्य उत्पन्न हुआ। उस सूर्य-कुल में अबतक कोई ऐसा राजा नही हुआ, जो न्याय से हटा हो। एक बात और सुनो।

हे मत्तगज-सदृश ! हित करनेवाले पाँच प्रकार के गुरुओ मे (अर्थात् माता, पिता, अध्यापक, राजा और ज्येष्ठ भ्राता इनमें ) वही उत्तम गुरु होता है, जो इह और परलोक दोनो में सुख उत्पन्न करनेवाली शिक्षा प्रदान करता है ( अर्थात् , आचार्य ही सर्वोत्तम गुरु हैं )।

( शास्त्रो मे ) इसी प्रकार कहा गया है। मैंने तुम्हे विविध विद्याएँ सिखाई हैं। अतः, हे तात ! इस समय मेरी आज्ञा का उल्लंघन मत करो। लौटकर राज्य का सुशासन करो—यो ( वसिष्ठ ने ) कहा।

यो कहनेवाले वसिष्ठ को अरुणनेत्र राम ने मुकुलित कमलों को शोभाहीन कर देनेवाली अपनी अंजलि से नमस्कार किया और कहा—हे मन पर दमन रखनेवाले। हे ज्ञानी ! आपसे एक निवेदन है—

मधु बहानेवाले कमल पर आसीन ब्रह्मा के पुत्र ! चाहे कोई बड़े हों, गुरु हों। माता आदि हो, सत्य-परायण पुत्र हो, चाहे कोई भी हो, किसी के लिए भी मैं यह कार्य करूँगा—यो प्रतिज्ञा कर लेने पर उस प्रतिज्ञा को तोड़ना उचित नही है।

माता की आज्ञा को तथा पिता के द्वारा अनुमत कार्य को जो पुत्र पूर्ण नही करता है, उसके जैसा पापी बनकर रहने की अपेक्षा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के ज्ञान से हीन श्वान बनकर सर्वत्र भटकते रहना अच्छा है।

पहले से ही माता-पिता की आज्ञा को मैंने अपने शिर पर धारण कर लिया है। उसके पश्चात् अब आप दूसरी आज्ञा दे रहे हैं। हे महात्मन् ! अब मेरा कर्त्तव्य क्या है? आप ही बतायें—यों राम ने वसिष्ठ से पूछा।

तब वसिष्ठ राम की प्रतिज्ञा के विरुद्ध कुछ नही कह सकने के कारण मौन हो रहे। उस समय भरत ने कहा—यदि ऐसी बात है, तो जो चाहे राज्य करे। मैं तो अपने ज्येष्ठ भाई के साथ ही इस भयकर वन मे रहूँगा।

उस समय देवता लोग आकाश-पथ मे एकत्र होकर यह सोचने लगे कि यदि अब भरत रामचन्द्र को अयोध्या लौटा ले जायगा, तो हमारा कार्य पूर्ण नही होगा और फिर बोल उठे—

प्रशसा के योग्य उत्तम गुणो से युक्त राम , पिता का वचन सुरक्षित करते हुए इस वन मे रहे और भरत का कर्त्तव्य है कि वे चौदह वर्ष-पर्यंत, राज्य की रक्षा करें।

देवताओ के यो कहने पर राम ने भरत से कहा—यह वचन उपेक्षा करने योग्य नही है। मेरा भी तुम से यही आग्रह है। अब मेरी आज्ञा से तुम सुचारु रूप से पृथ्वी का

राज्य करो—यों कहकर राम ने भरत के विशाल कमल-जैसे करो को अपने हाथों मे ले लिया।

तब भरत ने कहा—यदि ऐसा हो, तो हे प्रभु! चौदह वर्ष व्यतीत होते ही यदि आप भयकर परिखा से घिरे अयोध्या-नगर में आकर पृथ्वी का शासन नही सँभालेंगे, तो मै प्रज्वलित अग्नि मे प्रविष्ट होकर अपने प्राण त्याग दूँगा।

इस प्रकार कहकर भरत चिंता से विमुक्त हुए। अपने यश से भी महान् स्वभाव-वाले राम ने उन ( भरत ) की मानसिक दृढता को देखकर प्रेम से द्रवित होते हुए चित्त के साथ कहा—'वैसा ही करूँगा।'

भरत अब और कुछ न कह सके। रामचन्द्र से वियुक्त होकर जाना उनके लिए कठिन था। उन्होंने व्याकुल होकर राम से प्रार्थना की कि आप कृपा करके अपनी पादुकाएँ मुझे दे। प्रभु ने भी समस्त सुखो को प्रदान करनेवाली अपनी पादुकाएँ भरत को दी।

अश्रु बहानेवाले नेत्रो तथा धरती की धूलि से धूसर शरीर से युक्त भरत ने ( प्रभु की ) दोनो पादुकाओं को किरीट मानकर अपने शिर पर रख लिया। फिर, धरती पर गिरकर रामचन्द्र के प्रति साष्टाग प्रणाम करके लौट चले।

माताएँ, असख्य बंधुजन, बड़े लोग, मुनिगण, विशाल सेना तथा अन्य सब लोग भरत के साथ चले और यज्ञोपवीत से शोभायमान कंधेवाले वसिष्ठ महर्षि भी चले।

प्राचीन शास्त्रो के ज्ञाता भरद्वाज महर्षि लौट चले। परिखा से आवृत अयोध्या के निवासी लौट चले। आकाश-पथ मे एकत्र हुए सभी देवता लौट गये। मेघ-सदृश राम की आज्ञा लेकर गुह भी लौट चला।

भरत ( प्रभु की ) पादुकाओ को शिर पर रखे, शीतल जल से युक्त गंगा को पार करके, पुष्पों की सुरभि से भरी अयोध्या मे न जाकर रात्रिकाल में भी निद्रा से विहीन हो—

नंदिग्राम नामक स्थान मे ऐसे रहने लगे, मानो प्रभु की पादुकाएँ ही शासन करती रही हो। भरत, रात-दिन अश्रु-विहीन न होनेवाली आँखों के साथ, मन से पंचेन्द्रियों का दमन करके वहाँ रहने लगे।

उधर रामचन्द्र, यह विचार कर कि अयोध्या के निवासी, उनके चित्रकूट पर्वत पर रहने से प्रेम के कारण, बार-बार वहाँ आयेंगे, इसलिए अपने साथी अनुज लक्ष्मण तथा अपनी देवी के साथ (चित्रकूट को छोड़कर) दक्षिण दिशा में चल पड़े। ( १-१४१ )

•

# कंब रामायण

## अरण्यकाण्ड

# मंगलाचरण

आदि ब्रह्म भेद-रहित है तथा उत्पत्ति तथा विकारो से युक्त नाना प्रकार के रूपों (वस्तुओं) मे अनन्य होकर मिला रहता है। वह, उन वेदों के लिए, जो पुनः-पुनः उनका अध्ययन करते रहने से ज्ञान के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट करते हैं, एवं उन वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों और ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी अज्ञेय है; वही परब्रह्म (अब रामचन्द्र के रूप में) हमारे ज्ञान का विषय हो गया है।

●

## अध्याय १

### *विराध-वध पटल*

मनोहर वक्र धनुष को धारण करनेवाले वे राजकुमार (राम-लक्ष्मण), उन सीता देवी के साथ, जिनके दंत ऐसे थे, मानो चुनी हुई मुक्ताएँ पंक्तियों में जड़कर रखी गई हों, अपूर्व तपस्या से संपन्न अत्रि महामुनि के, पत्र-फल से परिपूर्ण घने वृक्षोंवाले वन मे जा पहुँचे।

दिशाओं मे महान् भार का वहन किये हुए रहनेवाले, पीन और मनोहर सूँड़ीवाले तथा छोटी आँखोंवाले पर्वत-सदृश गजों की समता करनेवाले वे (राम-लक्ष्मण), उस वन मे प्रविष्ट हुए और काम आदि तीन दुर्गुणों को दूर करके तपस्या करनेवाले अतिपवित्र अत्रि मुनि को प्रणाम किया।

वे मुनिवर ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे अपने बंधु ही आ गये हों और बोले—हे राजकुमारो! तुम स्वयं यहाँ आकर हमें दर्शन दे रहे हो, ऐसे सौभाग्य सदा सुलभ नहीं होता। यह तो ऐसा है, मानो सब देवता तथा सभी लोक ही यहाँ आ गये हों। न जाने हम में से किसकी तपस्या का यह फल है।

मारे हुए कठोर व्याघ्रों के चर्म को ऐंठकर उसे ( उत्तरीय के रूप मे ) पहन लिया था। हाथियों के चर्मों को कटि मे बाँध लिया था। विजयी दिग्गजों के रत्न-समुदाय को अजगर-रूपी रस्सी में पिरोकर कटि-बंध के जैसे बाँध लिया था।

रक्त नयनों एवं दीर्घ देहवाले अनुपम सर्पों की मणियो को जड़कर अनेक वलय उसने अपने शरीर मे पहन लिये थे। उसके करो में 'चलंचल' नामक शब्दायमान शंखो के वलय चमक रहे थे।

उसके पैर ऐसे थे कि वह उन पैरो से कैलास और मेरु पर्वत को गेंद के समान उछालकर उन्हे परस्पर टकरा सकता था। ऐसे पैरो से गंभीर गति मे वह चल रहा था। यद्यपि वह भूलोक में संचरण कर रहा था, तथापि देवलोक के निवासियो के मन मे भी उसके वल का प्रभाव पड़ता था।

उसका आकार ऐसा था, मानो सब प्राणी एक रूप बनकर और नवीन आकृति धारण करके आ गये हो। उसकी कंठध्वनि वज्रघोष के समान थी। ( उसकी तपस्या से ) प्रसन्न हुए ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से वह सवा लाख हाथियो के बल से युक्त था।

महावज्र-सदृश कार्य करनेवाला विराध नामक वह राक्षस जब आ रहा था, तब ( उसकी गति के वेग से ) उसके दोनो पार्श्वों में वृक्ष उखड़-उखड़कर धराशायी हो रहे थे। बड़े पर्वत ढह जाते थे। यो वह उन धनुर्धारियों के सम्मुख आ पहुँचा, जिनको अपनी वीरता के योग्य युद्ध अभी तक प्राप्त नही हुआ था।

मास चवानेवाले लबे दाँतो, वलिष्ठ खड्ग-दंतो से चमकनेवाले अपने कंदरा-सदृश मुँह को खोलकर 'ठहरो, ठहरो', चिल्लाता हुआ वह आया और घने दलवाले कमल पर आसीन रहनेवाली लक्ष्मी रूपी ( राम की ) देवी को, एक शब्द का उच्चारण करने के समय मे ही, झट उठाकर आकाश-मार्ग से जाने लगा।

वृषभ-सदृश वे दोनो वीर उसकी आकृति को देखकर क्रोध से उग्र हो उठे और कंधे पर के धनुष को वाम हस्त मे लेकर, उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण नोकवाले बाण को दक्षिण कर में लेकर उस राक्षस का पीछा करते हुए बोले—अरे, इस प्रकार धोखा देकर कहाँ जा रहा है? तब उस विराध ने ( कहा—)

ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से मै मृत्यु-रहित हूँ। समस्त लोकों के निवासी भी यदि मेरा सामना करने आयें तो, मै किसी आयुध के विना ही उन सब को जीत सकता हूँ। अरे! मैने तुम्हारे प्राण छोड दिये है। इस स्त्री को छोड़कर सुख से चले जाओ, यो विराध ने कहा। तब—

वीर ( राम ) ने अपने रजत मदहास-रूपी ज्योत्स्ना को प्रकट करते हुए कहा—इस ( राक्षस ) ने युद्ध क्या है—यह जाना नही है। अब इसके प्रताप और बल सब मिट जायेंगे—फिर, मन मे विचार करके अपने भारी धनुष का टकार किया।

वर्षाकालिक मेघ-सदृश रामचन्द्र ने, जो वज्र-सम वरछे एवं अपार पराक्रम से युक्त थे, अपने कोदड की लबी डोरी से जो घोर टकार उत्पन्न किया, वह तरंगायमान समुद्रो से

आवृत तथा भूधरो से भरित पृथ्वी मे, पाताल मे, स्वर्गलोक मे तथा अन्य सब लोको में वज्र-घोष के समान प्रतिध्वनित हो उठी।

तब वह राक्षस, वंचक तथा अत्याचारी मार्जार के मुँह में फँसे हुए तोते के समान चिल्लानेवाली सीता को छोड़कर किंचित् विकल-चित्त-सा खड़ा सोचता रहा। फिर, विक्षुब्ध होकर अंजनपर्वत-सदृश राम के सम्मुख आ खड़ा हुआ।

फिर, उसने अपने त्रिशूल को, जो शत्रुओं के रक्त में डूब-डूबकर पिशाचों की भूख को मिटाता रहता था और जो अपने तीनो नोको से वडवाग्नि के सदृश ज्वालाएँ उगलता था, घुमाकर ( रामचन्द्र पर ) फेंका।

वह त्रिशूल हालाहल विष के समान उज्ज्वल हो अतिवेग से आने लगा, जिसे देखकर अष्ट दिशाएँ, दिक्पाल दिग्गज तथा सर्वलोक काँप उठे। तब राम ने महामेरु और सप्त कुलपर्वत-समान अति दृढ दीर्घ कोदंड मे एक अपूर्व बाण रखकर प्रयुक्त किया।

आज से राक्षस-समूह का नाश हो गया—ऐसी सूचना देते हुए, दिन में ही मानों गगन से नक्षत्र गिर रहे हो—ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए चारो ओर प्रकाश फैलानेवाला वह शूल दो टुकड़े हो गया और दिशाओं के अंत में जा गिरा।

देवताओ का भी दमन करनेवाले उस शूल को टूटकर गिरते हुए देखकर भी उस राक्षस ने युद्ध करना छोड़ा नही। किन्तु, अधिक उत्साह दिखाता हुआ धरती को कँपा देनेवाले अपने हाथो से अनेक पर्वतो को जड़ से उखाड़कर त्वरित गति से वह ( राम पर ) फेंकने लगा।

रामचन्द्र ने अति दृढ तथा अति तीक्ष्ण बाणो को उन ( पर्वतों ) पर छोड़ा, जिससे घेरकर आनेवाले वे पर्वत टूटकर नीचे गिर गये। वह राक्षस एक-एक करके जो पर्वत फेंकता था, वे लौटकर उसी की देह पर गिरते थे, जिससे उसके शरीर में अनेक घाव हो गये।

तब उसने एक बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और उसको लेकर उस राम पर आक्रमण करने के लिए आया, जिनके नामो को ज्ञानी पुरुष जपते रहते हैं, जो धर्म को स्थापित करने के लिए सर्पशय्या को छोड़कर इस धरती पर अवतीर्ण हुए हैं। तब—

उत्तम वीर ( राम ) ने चार बाणो से उस बड़े वृक्ष के टुकड़े-टुकडे कर दिये और ( राक्षस के ) कधों और वक्ष मे बारी-बारी से अत्यन्त वेग से अनेक अति तीक्ष्ण बाण मारे, तब वह राक्षस—

अपने शरीर में अति पैने बाणो के छिद जाने से बहुत पीडित हुआ और त्वरित गति से अपने शरीर को झटकाकर उन बाणो को छितराने लगा, जैसे कोई बहुत बड़ा साही अपनी देह पर के काँटों को फुलाकर खड़ा हो।

तब राम ने और भी अग्नि-समान तीक्ष्ण बाणो को प्रयुक्त किया, जो कही भी रुके बिना ( उसके शरीर को ) भेद देते थे। फिर भी, उस ( राक्षस ) का चित्त पापमुक्त नही हुआ। पर्वत से गिरनेवाले निर्झर के समान उसके शरीर से रक्त बहने लगा। जिससे वह दुर्बल तथा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

वे दोनो ( राम-लक्ष्मण ), जो विना थके हुए मल्लयुद्ध करने मे कुशल थे, यह सोचकर कि इस राक्षस को सत्य ही वर प्राप्त हुए हैं, जिससे यह शस्त्रो के प्रयोग से मर नही सकेगा, अत्यन्त क्रोध से करवाल निकालकर उसकी भुजाओ को काटने के विचार से उसके कंधों पर चढ़ गये।

बहनेवाले रक्त-प्रवाह से युक्त वह ( विराध ) पुनः संज्ञा पाकर उठा। जब उसको यह मालूम हुआ ( कि राम-लक्ष्मण उसके कंधो पर चढ़ गये हैं ) तब वह तुरन्त दंड-सदृश अपनी भुजाओं से उन दोनो को दबाकर अपनी पूर्व गति से भी दसगुने वेग से चल पड़ा।

तब वे दोनो मेरु की परिक्रमा करनेवाले सूर्य-चन्द्र के समान शोभायमान हो उठे। उस राक्षस का सिर गगन-तल से टकरा रहा था। वह अतिवेग से घूमने लगे और उसके शरीर से रक्त-प्रवाह बह चला।

स्वर्णवर्णवाले ( लक्ष्मण ) के साथ कृष्ण वर्णवाले ( राम ) को अपने कंधों पर लिये आकाश तक उठकर वह राक्षस चल पड़ा। तब वह उस पक्षिराज गरुड की समता करता था, जो धर्म-रूपी अपने पखो पर बलराम और कृष्ण को उठाये वेग से जा रहा हो।

उत्तम कुल में उत्पन्न सीता, अति कृपालु अपने पति को वंचक राक्षस के द्वारा दूर उठा लिये जाते हुए देखकर अत्यन्त व्याकुल हुई और उस हंसिनी के समान हो गईं, जिसका जोड़ा ( हंस ) किसी के द्वारा बंदी बना लिया गया हो। वह मुरझाई हुई लता के समान अपने केशो को फैलाये धूल में गिर पड़ी।

फिर वह उठी। उनको सँभालनेवाला व्यक्ति भी वहाँ कोई नही था। उन्हे सात्वना का कोई शब्द भी नही मिला। वह शीघ्रता से ( राक्षस का ) पीछा करती हुई दौड़ी, जिससे उनकी विद्युत्-समान कटि काँप उठी। फिर, उस ( राक्षस ) से कहा—इन मातृ-समान करुणावाले धर्म-स्वरूप कुमारो को छोड़ दो और मुझको खा डालो।

वह रोई। उनका स्वर गद्गद हुआ। उनके प्राण विकल हुए। बड़ी वेदना से वह चित्र-लिखित प्रतिमा के समान स्तब्ध पड़ी रही। उनकी उस दशा को देखकर कनिष्ठ प्रभु ( लक्ष्मण ) ने कर जोड़कर ( राम से ) निवेदन किया—देवी अत्यन्त पीडित हो रही हैं। उनको इस दशा मे छोड़कर यो विनोद करना ठीक नही है। इससे अहित हो सकता है। तब सृष्टि के आदिभूत ( भगवान् के अवतार राम ) कहने लगे—

हे उपमाहीन! मैंने सोचा, इस प्रकार ही सही, हम अपने गंतव्य स्थान को शीघ्र पहुँच जायेंगे। अब इसको मारना कोई बड़ा काम नही—यो कहकर मदहास करते हुए अपने बलिष्ठ पैर से उस राक्षस को धकेला। तब भी वह नीचे गिरा नही।

तब बलिष्ठ भुजावाले ( राम-लक्ष्मण ) ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण करवालो से उसकी दोनो भुजाओ को काट डाला और धरती पर कूद पडे। तब वह राक्षस उन दोनो के निकट इस प्रकार झुक गया, जैसे रक्त नयनोवाला सर्प ( राहु ) भौहो-रूपी भुजाओ को झुकाये, दोनो ज्योति-पिंडो ( अर्थात्, सूर्य-चन्द्र ) को ग्रसने के लिए आया हो।

उस ( राक्षस ) के घावो से अधिकाधिक रक्त बह रहा था। तो भी उसके प्राण

परलोक को नहीं जा रहे थे। उस दशा को देखकर सर्वान्तर्यामी (राम) ने विचारकर कहा—भाई! इसे शीघ्र भूमि में गाड़ देना ही ठीक है।

मत्तगज-सदृश लक्ष्मण ने जो गढा खोदा, दोषहीन रामचन्द्र ने अपने उस रक्त चरण से विराध के शरीर को उसमें ढकेल दिया, जो (चरण) नर्मदा नदी में निमग्न हुआ था, जो पवित्र यज्ञों की आहुतियों को प्राप्त कर संसार के भक्तों को उनके अभीष्ट प्रदान करता था।

वह राक्षस, उस रामचन्द्र के प्रभाव से, जो ब्रह्मांड की सृष्टि करके स्वयं उस ब्रह्मांड में अवतीर्ण हुए थे, पूर्व-शाप से उत्पन्न दुःखदायक राक्षस-शरीर से मुक्त हो गया और गगन-तल में पूर्वज्ञान से युक्त होकर दिव्य देह धारण करके शोभायमान हुआ।

अब उस (दिव्य देहधारी) की बुद्धि, पंचेन्द्रियों के अधीन नहीं रह गई थी और वासनाओं से मुक्त हो सन्मार्ग पर स्थिर हो गई थी। उस (विराध) में पहले से ही अनन्य भक्ति विद्यमान थी। अतः, अब उसको तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया, जिससे प्रभु (राम) को पहचानकर वह उनकी स्तुति करने लगा।

सब वेदों के द्वारा स्तुत्य तुम्हारे चरण ही यदि सब लोकों में व्याप्त हैं, तो तुम्हारे अन्य अंग कैसे और कहाँ रहते होंगे। (कौन जाने?) तुम शीतलता से युक्त समुद्र के निवासी हो, यदि तुम परस्पर असदृश पाँचों भूतों में निवास करने लगे, तो क्या वे (भूत) तुम्हें धारण करने में समर्थ हो सकेंगे? (अर्थात्, नहीं होंगे)।

क्रुद्ध मगर से ग्रस्त होने पर एक गज ने अत्यन्त आर्त्त हो शिथिल शरीर से, अपनी सूँड को ऊपर उठाकर सर्व दिशाओं में फैलनेवाली अपनी ऊँची ध्वनि से तुम्हें पुकारा था कि हे महिमापूर्ण, अनुपम, आदिकारण-भूत, हे परमतत्त्व आओ, मेरी रक्षा करो। उसी क्षण तुम 'क्या हुआ?' कहते हुए दौडकर वहाँ आ गये थे (और उस गज की रक्षा की थी)।

हे मेरे प्रभु! तुम अपने (अर्थात्, परम पद में स्थित नित्य तथा मुक्त जीवात्मा) तथा बाह्य (अर्थात्, लोकों में वर्त्तमान भक्त आदि जीव)—इन दोनों को देखनेवाले हो, पक्षपातहीन हो, कृपा से कभी रहित न होनेवाले हो। हे कमल-सदृश नेत्रवाले! तुम धर्म की रक्षा के लिए, अन्य किसी की सहायता के बिना, एकाकी चक्र के समान घूमते रहते हो; यह तुम्हारा ही कार्य तो है।

जन्म और मरण इन दोनों खेलों को बड़ी उमंग के साथ करते रहनेवाले हे प्रभु! तुम्हारी कृपा से सब प्रकार के जीवों को मुक्ति-पद प्राप्त करना कठिन नहीं है। विरक्ति को सर्वात्मना अपनाये हुए मुनि लोग यदि दूसरा जन्म ग्रहण भी करते हैं, तब भी वे अपने आत्मस्वरूप को नहीं भूलते। इतना ही नहीं, अन्य लोगों के समान (अर्थात्, जो विरक्त नहीं हैं), पुनः-पुनः जन्म भी नहीं पाते (अर्थात्, वे शीघ्र मुक्त हो जाते हैं)।

भयंकर जन्म-सागर के पार पहुँचने के लिए तरणि के समान रहनेवाले जितने धर्म हैं, उन सब धर्मों के अनुयायी जिस परमात्मा की प्रशंसा अनुपम और अवाङ्मनसगोचर कहकर करते हैं, तुम उसी परमात्मा के अवतार हो। अब तुम्हारे सम्मुख अन्य देवों की क्या गिनती है?

हे धर्म के अनुपम स्वरूप ! सृष्टिकर्त्ता कमलभव से लेकर सब देवो तथा उनमे इतर प्राणिवर्ग के लिए माता और पिता दोनो तुम्ही हो ।

आदि परब्रह्म तुम हो, सब लोक तुम्हारे अधीन हैं। विवेचन से परे अनेक धर्म तुम्हारे चरणो के ही आश्रित हैं। फिर, तुम वचक के सदृश क्यो छिपे रहते हो ? यदि तुम प्रकट हो जाओ, तो क्या हानि है ? क्या तुम्हारी यह अनन्त मायामय क्रीडा आवश्यक है ?

हे प्रभु ! तुम अज्ञेय होते हुए भी ( अपने दासो के लिए ) सुलभ-ज्ञेय भी हो। ससार मे ऐसा कोई बछड़ा नही होगा, जो अपनी माता को नही पहचानता हो। ऐसी माता भी नही होगी, जो अपने बछडे को नही पहचानती हो। अखिल सृष्टि की माता बने हुए तुम सबको पहचानते हो। किन्तु, वे सब तुम्हें यथार्थ रूप मे नही पहचानते। यह भी तुम्हारी कैसी माया है ?

संसार के लोग अनेक देवताओ की स्तुति करते हैं। किंतु महात्मा पुरुष तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी को श्रेष्ठ नही मानते। सदाचार मे स्थिर रहनेवाले वे लोग क्या यह नही जानते कि ब्रह्मा आदि वेदज्ञो के द्वारा आराध्य देव तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नही है ?

हे लक्ष्मी से अधिष्ठित सुन्दर वक्षवाले ! हे सदा जागरित रहनेवाले ! अनेक धर्मों के द्वारा आराध्य देवता भी कर्म के बधनो मे पड़े हुए लोगों के समान ही कठोर तपस्या करते रहते हैं। किंतु, तुम्हारे लिए करने योग्य कोई तपस्या नहीं है। अतएव कर्म-बधनो से मुक्त आत्माओं के सदृश तुम योगनिद्रा मे मग्न रहते हो।[1]

तुम स्वयं आदिशेष का रूप धारण करके सुन्दर भूमिदेवी का वहन करते हो। ( वराह के रूप में ) अपने दाँत पर ( इस भूमि को ) धारण करते हो। ( प्रलय-काल मे ) एक ही बार ( एक ही कौर मे ) इस सृष्टि को निगल जाते हो। एक ही पग मे इस सारी पृथ्वी को ढक लेते हो। उस भूमि के प्रति तुम्हारे प्रेम को यदि सुगधित तुलसी-हारो से अलंकृत तुम्हारे मनोहर वक्ष पर आसीन ( लक्ष्मी ) देवी जान लेंगी, तो क्या वह तुम से रूठ नही जायेंगी ?

हे प्रभु ! तुम्हारे द्वारा सृष्ट प्राणी यदि परम तत्त्व को किंचित् भी पहचान लेंगे और मुक्त हो जायेंगे, तो इससे तुम्हारी क्या हानि होगी ? स्वर्ग एवं इस धरती के निवासियो मे ऐसे लोग भी तो हैं, जो पूर्वकाल मे, तुमने शिवजी को जो भिक्षा दी थी, उस घटना को जानकर, सदेह से (अर्थात्, कौन परम-तत्त्व है, इस शंका से) मुक्त हो गये हैं।[2]

---

[1]. भाव यह है कि भगवान् विष्णु, कर्म-बधन में पडे प्राणियो के समान निद्रित नही है, वह सजग हैं। किंतु, ऐसी योग-निद्रा में निरत हैं, जिससे अखिल विश्व की रक्षा होती है।

[2]. भाव यह है कि शिवजी ने एक बार ब्रह्मा के पाँच शिरो में एक को काट दिया, तो वह कपाल शिवजी के हाथ मे सट गया। बहुत कोशिश करने पर भी वह कपाल उनके हाथ से नहीं छूटा। तब आकाशवाणी हुई कि उसमें भीख माँगते रहो। जब वह कपाल भीख से भर जायगा, तब वह छूट जायगा। शिवजी सर्वत्र भीख माँगते रहे, किंतु कपाल भरा नहीं। अत में विष्णु भगवान के पास पहुँचे। जब उन्होने भीख दी, तब कपाल एकदम भर गया और हाथ से छूट गया। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि विष्णु शिवजी की भी रक्षा करनेवाले है। —अनु०

हे वराह-रूप मे पृथ्वी को उबारनेवाले ! तुमने हंस का आकार धारण करके अपूर्व शब्दो का उपदेश ( ब्रह्मा को ) दिया था। पहले तुम्हे उन वेदो को सिखानेवाले कौन थे ? वे सब क्या अब समाप्त हो गये हैं ? तुम ( चर और अचर पदार्थों से ) परे होकर अकेले रहते हो और सबके अतर्यामी हो। तुम्हारी यह स्थिति क्या इन पदार्थों से भिन्न हो रहने से सभव होती है या अभिन्न होकर रहने से ? यह कैसी माया है ?

हे उपमान-रहित ! हे एकनायक ! तुम अपने पूर्व विश्राम-स्थान क्षीरसागर को छोड़कर मेरे सुकृत से ही यहाँ आये हो। मै इस जीवन के सागर को पार कर गया। मै जन्म-हीन हो गया। तुमने अपने प्रवाल-समान चरण-युगल से मेरे कर्मद्वय को पोछ दिया।

विराध इस प्रकार के वचन कहकर देवरूप धारण कर खड़ा हुआ। तब विजय-शील ( राम ) ने कहा—तुम अपना वृत्तांत कहो।

तब विराध ने सारा वृत्तात यो कह सुनाया—असत्य जीवन से मुक्ति देनेवाले, ज्ञान को प्रदान करनेवाले चरणो से युक्त, हे प्रभु ! तुम्हारी जय हो।

कठोर धनुष को हाथ में धारण करनेवाले हे देव ! मेरा नाम तुबुर है। मै कुबेर के लोक का निवासी हूँ। अब मै इस धरती पर जन्म पाने का वृत्तात कहता हूँ।

नर्त्तकी रभा एक बार विशाल नृत्य-शाला मे गायन और नृत्य कर रही थी। ( उसपर अनुरक्त रहने के कारण ) मैं उसके ऊपर कुपित हुआ और ( उसके डराने के लिए ) राक्षस का रूप धारण कर लिया।

मेरी काम-वेदना मुझे भ्रात करती हुई बढ़ने लगी। उस अपराध से ( कुबेर ने ) मुझे शाप दिया, जिससे मै राक्षस ही बना रहा।

हे आदि भगवन् ! उस यक्षराज ( कुबेर ) ने मुझे दुःख से मुक्ति पाने का वर देते हुए, मुझ दुःखी के प्रति कहा—जब मै तुम्हारे चरण का स्पर्श प्राप्त करूँगा, तब यह शाप मिट जायगा।

मै, भयकर शूलधारी और विजयी किलिंज नामक राक्षस का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ तथा इस विशाल लोक के सब प्राणियो को खानेवाला बना।

हे आदिब्रह्म ! अब मै, उस दिन से आजतक, भले-बुरे का विचार किये बिना ( सब प्राणियो को ) खाता हुआ पाप-कर्म करता रहा।

ज्ञान के प्रबोधक, अनादि वेदो के द्वारा प्रशसित तुम्हारे स्वर्ण-वलय-भूषित चरण के स्पर्श से मै आज शाप-मुक्त हुआ।

हे सृष्टि के आदिकारण ! तुमने, प्राणियो की हत्या करने के कारण मेरे (सचित) पापो को मिटा दिया। ज्ञानहीन हो, मैंने तुम्हारे प्रति जो अपराध किया, उसे क्षमा करो—यो प्रार्थना करके वह ( विराध ) वहाँ से चला गया।

देवो को सतानेवाला राक्षस मिट गया !—यो सोचकर आनन्दित हो, धनुर्विद्या मे निपुण राम-लक्ष्मण भी, कमलासना ( लक्ष्मी के अवतार सीता ) को साथ लिये हुए वहाँ से आगे बढ़े।

अपने करों में यम-सदृश धनुष को धारण करनेवाले वे वीर, सत्यमय देव-स्वरूप मुनियों के निवास-स्थानभूत एक घने उद्यान में गये और दिन-भर वहीं रहे। ( १–७२ )

●

# अध्याय २

## शरभंग-देहत्याग पटल

जब रात्रि के आगमन का समय हुआ, तब 'कुरवक' तथा 'कोंगु' नामक पुष्पों से युक्त लता के सदृश सीता के साथ (राम-लक्ष्मण) उस स्थान से चलकर उस सुरभित स्थान में जा पहुँचे, जहाँ शरभंग मुनि तपस्या करते थे और जहाँ कुकुम्बवृक्ष और कोंगु ( नामक ) वृक्ष लहलहाते थे।

मनोहर शूल से युक्त वे वीर जब उस आश्रम में पहुँचे, तब देवेन्द्र वहाँ आया, जो रात्रि में भी मुकुलित न होनेवाले कमल-सदृश पृथक्-पृथक् शोभायमान सहस्र नयनों से युक्त था।

उस ( देवेन्द्र ) की देह-कांति ऐसी थी, जैसे उसको घेरकर रहनेवाली लक्ष्मी-सदृश सुन्दर अप्सराओं के आभरणों की कांति तथा उस ( कांति ) पर फैली हुई विद्युत् की ज्वाला, दोनों मिलकर चमक रही हों।

उसके काले वर्ण के शरीर पर के नेत्र-रूपी भ्रमर, दिव्य स्त्रियों के नयन-रूपी पुष्पित उद्यान में मत्त हो मँडरा रहे थे। उसके कर्ण-रूपी भ्रमर श्रीनारद की वीणा के नाद-रूपी मधु का पान कर रहे थे।

उसने, शास्त्रों में प्रतिपादित अनेक कर्मों के समूह से युक्त एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उसके पैरों के वीर-वलयों पर, त्रिमूर्त्तियों के अतिरिक्त अन्य सब देवताओं के किरीट आकर लगते थे।

वह इन्द्र विशाल रक्तकमल पर आसीन लक्ष्मी के समान रहनेवाली अपनी देवी ( शची ) के साथ, त्रिविध मदजलों से युक्त, आगे-आगे पैर उठा-उठाकर चलनेवाले; अति उष्ण श्वेत ऐरावत गज पर आरूढ़ होता था। वह उज्ज्वल रजतगिरि पर (पार्वती के संग ) आसीन शिवजी की समता करता था।

ऊपर का लोक ( स्वर्ग ) स्वयं श्वेत छत्र का रूप धारण कर उस ( इन्द्र ) के ऊपर यों छाया हुआ था कि उसे देखकर सर्वत्र फैलनेवाली कांति से युक्त शीतकिरण (चंद्रमा), यह सोचकर कि यदि अब मैं चमकता रहूँ तो उससे कुछ प्रयोजन नहीं है, मन्द हो रहा था।

उसके ( दोनों पार्श्वों में ) चामर उज्ज्वल कांति बिखेर रहे थे, जो ( चामर ) ऐसे थे, मानो असुरों की प्रभूत कीर्त्ति ही; दिग्गजों के स्वच्छ मदजलों का स्पर्श कर तथा उन गजों से अनेक युद्धों में टक्कर लेकर और उनसे परास्त हो घनीभूत बनकर वहाँ आ गये हों।

उसका किरीट ऐसा था, मानों निरन्तर संचरण करती रहनेवाली किरणों से युक्त सूर्य ही परिवेष-सहित आ गया हो। युद्ध में अत्यन्त निपुण उस इन्द्र का रत्नहार इस प्रकार उज्ज्वल था, जिस प्रकार चक्रधारी विष्णु के विशाल वक्ष पर लक्ष्मी शोभित हो रही हो।

उसका कंचुक, उसमें जड़े हुए सूर्य के समान उज्ज्वल रक्तवर्ण रत्नों के कांतिपुंज से शोभित था। वह विजयलक्ष्मी के शीतल तथा उज्ज्वल मन्दहास के समान चारों ओर कांति बिखेरनेवाले बाहु-वलयों से विभूषित था।

अनेक सहस्र जगमगाते हुए अति प्राचीन रत्नमय आभरणों की कांति एक साथ चमक उठने के कारण उसकी देह इस प्रकार लग रही थी, जैसे उनके धनुष ( अर्थात्, इन्द्र-धनुष ) से युक्त मेघ ही हो।

वह ऐसे मधुस्रावी, मनोहर पुष्पहारों से अलंकृत था, जिनकी सुगंध नाना लोकों में फैलती थी। उसपर देव-स्त्रियों के, मीन-सदृश तथा श्रेष्ठ विजय से युक्त नयन-रूपी करवाल आघात करते थे।

उसके पास ऐसा वज्रायुध था, जिसकी धार, सूर्य-समान कांति से युक्त विजयमाला धारण करनेवाले रावण पर विजय पाने की आकांक्षा से प्रयुक्त करने पर भी धान की नोक के बराबर भी ( रत्ती-भर भी ) कुंठित नहीं हुई थी।

इस प्रकार का इन्द्र शरभंग के आश्रम में आ पहुँचा। मुनिवर ने सम्मुख जाकर उसका स्वागत किया और उत्तम रीति से सत्कार किया। फिर प्रश्न किया—आपके आगमन का प्रयोजन क्या है? अविनश्वर स्वर्ण-वलयोंवाले इन्द्र ने कहा —

हे स्वर्ण-सदृश जटा से युक्त महान् तपस्वी! ब्रह्मदेव ने, यह विचार कर कि तुम्हारा अति दीर्घ तप उनके लिए भी अवर्णनीय है, तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम उनके लोक में आ जाओ। अतः, अब यहाँ से चलो।

हे महामुने! हे अकुंठित तपस्या से संपन्न! सब लोकों की और सब चराचर प्राणियों की सृष्टि करनेवाले उस ब्रह्मा ने तुम्हें अपने लोक का वास दिया है। यदि तुम उनके लोक में जाओगे, तो वे सम्मुख आकर तुम्हारा स्वागत करेंगे।

हे निर्दोष तपस्या-संपन्न! मेरे कहने की आवश्यकता नहीं है, तुम स्वयं जानते हो कि वह ( ब्रह्मलोक ) सब लोकों में श्रेष्ठ है। अतः, तुम तुरंत वहाँ चले आओ। इन्द्र का यह कथन सुनकर तत्त्वज्ञ मुनि ने अपनी अस्वीकृति प्रकट करते हुए कहा—

हे अति प्रख्यात कीर्त्तिवाले! क्या नश्वर चित्रों के सदृश रहनेवाले लोकों को मैं प्राप्त करना चाहूँगा? मैं ऐसे तुच्छ पदों का विचार तक अपने मन में नहीं लाता हूँ। मेरी तपस्या अनेक कल्पों की है। यह तुम जानते हो न?

हे वीर-कंकणधारी! ऐसा वचन कहना उचित नहीं है। ब्रह्मलोक प्राप्त करना या न प्राप्त करना मेरे लिए दोनों समान हैं। अधिक कहने से क्या प्रयोजन? मैंने यहाँ रहकर अपनी तपस्या पूर्ण की है।

हे देवाधिदेव! ये पंचमहाभूत जो चिरकालिक हैं, सदा स्थिर हैं, संकोच

और विकास से हीन हैं तथा जिनके गुणों में परिवर्त्तन नहीं होता, भले ही वे विनष्ट हो जायँ, तो भी मैं अविनश्वर पद की प्राप्ति का उपाय करना नहीं छोड़ूँगा।

इस प्रकार, जब ( शरभंग ) कह रहे थे, तभी सुदृढ तथा गठीले धनुष को धारण करनेवाले वीर उस आश्रम के निकट आ पहुँचे और वहाँ होनेवाले कोलाहल को सुनकर, उसका कारण क्या है—यह सोचते हुए खड़े रहे।

तब उन्होंने देखा कि उज्ज्वल कांतिवाले हीरक-जटित वलयों से भूषित, परस्पर समान चार दाँतों से युक्त, आलान में बाँधे जानेवाला ( अति महान् ) गज वहाँ खड़ा है। उससे उन्होंने जान लिया कि उस महातपस्वी के पास देवेन्द्र आया है।

हरिणी-सदृश नयनोंवाली देवी के साथ लक्ष्मण को उस पुष्पोद्यान के बाहर छोड़-कर रामचन्द्र ( अकेले ) उस विशाल वन में वृषभ और सिंह के जैसे गये। तब—

देवताओं के स्वामी ने उस स्थान में दर्शन-दुर्लभ, चतुर्वेदों के फल को (अर्थात्, भगवान् के अवतार राम को ) अपने सहस्र नेत्रों से इस प्रकार देखा, मानों कमलसम नयन-वाला एक नीलवर्ण सूर्य को ही देख रहा हो।

इन्द्र उन्हें देखकर मन-ही-मन दुःखी हुआ ( क्योंकि उन देवों की रक्षा के लिए ही रामचन्द्र को वन का दुःख भोगना पड़ रहा है )। फिर, उसने मुनियों के नायक उस पुरुषोत्तम को, नित्य प्रणाम करनेवाले अपने शिर से तथा स्तंभ-समान अपनी भुजाओं से नमस्कार किया।

उस ( नारायण के अवतारभूत राम ) को—जो ध्वजाओं से भरे हुए युद्धों में शत्रुओं का ( असुरों का ) विनाश करके, विशाल समुद्र-समान वेदों के पदों के अर्थ को समझाकर, नित्य धर्म के सन्मार्ग पर ( लोकों को ) चलाकर, संपत्ति और मोक्ष-पद देकर, (प्राणियों की) रक्षा करनेवाला अविनश्वर कवच बनकर, उनके प्राण बनकर, तपस्या बनकर, नेत्र बनकर एव अन्तहीन ज्ञान बनकर ( सब लोकों की ) रक्षा करता है—देखकर वह इन्द्र अपने को भूल गया, द्रवितचित्त हुआ, एक ओर खड़ा रहा और उस ( राम ) की महिमा का एक साधारण व्यक्ति के समान ही गान् करने लगा।

तुम ऐसी ज्योति हो ,जो सब पदार्थों में ( अंतर्यामी के रूप में ) मिली रहती है, तथापि निर्लिप्त रहती है। तुम आसक्ति-हीन ( विरक्त ) व्यक्तियों के बंधु हो। अपार करुणा का आवास हो। वेदोक्त मार्ग से विवेचन करने से उत्पन्न होनेवाले तत्त्वज्ञान के विषय हो। हे हमारी माता एव पिता! हम, तुम्हारे दासों ने जब शत्रुओं से पीडित होकर तुम्हारी प्रार्थना की, तब यथाप्रदत्त वरदान के अनुसार तुम हमारी सहायता करने के लिए ( इस रूप में ) अवतीर्ण हुए हो। अन्यथा, क्या तुम्हारे चरण-कमलयुगल इस विशाल धरती के योग्य हैं?

( तुम्हारी देह की कांति की छाया से ) नीलवर्ण बने ( क्षीर- ) सागर में शयन करनेवाले हे देव! ( तुम्हारे ) शत्रु नहीं हैं। मित्र भी नहीं हैं। ( तुम्हारे लिए ) प्रकाश नहीं, अंधकार भी नहीं है। यौवन भी नहीं, बुढ़ापा भी नहीं है। आदि, मध्य और अंत भी नहीं हैं। तुम्हारी ऐसी दशा हो रही है। किंतु, यदि तुम यों हाथ में धनुष लिये हुए, अपने

अरुण चरणों को दुखाकर पैर रखते हुए हमारी रक्षा करने को न आते, तो उससे तुम्हारा क्या अपयश होता? (जिससे बचने के लिए तुम आये हो) या (हमसे कुछ प्रतिफल की कामना रखते हो, पर) कौन-सा प्रतिफल देना हमारे लिए संभव है?

हे उत्तम! तुम्हारे नाभि-कमल से उत्पन्न चतुर्मुख भी, दोषहीन सब लोकों को गणना-चिह्न मानकर, गिनने लगे, तो उसका एक अंश भी नहीं गिन सकता है। पूर्वकाल में धरती को पात्र, क्षीर सागर को दही और उन्नत (मंदर) पर्वत को मथानी बनाकर अपने कमल-तुल्य करों को दुखाते हुए तुमने मथा था और अमृत निकालकर केवल हम देवों को दिया था। तब असुर लोग भी तुम्हारे दास हो गये थे न?

आदि में तुम एक ही थे। फिर, अनेक रूप हुए और सबके प्राण और प्रज्ञा भी हुए। महाप्रलय के समय तुम विनाश का रूप लेते हो और (सृष्टि के आरंभ में) नाना लोकों का रूप धारण करते हो। हे स्वच्छ ज्ञान का विषय बने हुए भगवान्! हमारे अभीष्टों को पूर्ण करनेवाले प्रभु! तुम पवित्र आत्माओं की रक्षा करते हो तथा पापियों को दंड देते हो। वह विनश्वर पाप भी तो तुम्हारी ही सृष्टि है।

हे मेरे पिता! पूर्वकाल में अपार माया के प्रभाव से जब हम इस शंका में पड़कर कि तुम परम तत्त्व हो या नहीं, विभ्रान्त और दिङ्मूढ हो गये थे, तब हमारे सुकृत के परिणाम से सप्तर्षिगण हमारे सामने प्रकट हुए और शिवजी के पास पहुँचकर, हमने यह निर्णय किया कि समस्त लोक तुम (विष्णु) से ही उत्पन्न होकर बढ़ते हैं। यों हमारी शंका को दूर करने का साधन भी तुम्हीं बने थे।[1]

स्वर्णमय दीर्घ मुकुटवाले इन्द्र ने मन में विचार कर इस प्रकार के अनेक वचन कहकर उनकी प्रशंसा की। फिर, यह सोचकर कि (रामचन्द्र के वहाँ आगमन का) कोई विशेष कारण है, अपना उपमान न रखनेवाले मुनिवर से आज्ञा माँगी और देवलोक को जा पहुँचा।

शरभंग ने इस प्रकार जानेवाले देवेन्द्र का मनोगत भाव जान लिया। फिर, देवाधि-देव (राम) के सम्मुख जाकर स्वागत कर उन्हें ले आये। उस समय राम ने उन मुनि के चरणों को प्रणाम किया, तब वह मुनि जो निःश्रेयस पद पाने की इच्छा से कठिन साधना कर रहे थे, प्रेम के आधिक्य से रो पड़े।

मुनि ने राम से कहा—'सुखी हो और जीते रहो। अपनी पत्नी और अनुज को भी यहाँ आने दो।' तब रामचन्द्र उनको भी ले आये। अनेक युगों से तप करनेवाले

---

१. एक बार मुनियों और देवों में यह विवाद छिड़ा कि कौन परमात्मा है। तब सप्तर्षियों में प्रधान भृगु, क्रमशः कैलास और सत्यलोक में गये। किंतु, वहाँ शिव और ब्रह्मा को अपनी-अपनी देवी के साथ सल्लाप में निरत देखा। वहाँ से निरादृत होने पर वे वैकुंठ में गये। वहाँ लक्ष्मी के संग सर्प-शय्या पर आसीन विष्णु को देखा, पर विष्णु की निगाह भृगु पर न पड़ी। इसपर क्रुद्ध होकर भृगु ने विष्णु के वक्ष पर पदाघात किया। तब विष्णु यह कहते हुए कि ऐसा करने से महर्षि का पैर दुख गया होगा, उनके चरण को पकड़कर दबाने लगे। इस पर भृगु ने पहचाना कि विष्णु ही सात्त्विक देव हैं और अन्य मूर्तियों से श्रेष्ठ हैं। इसी कथा की ओर इस पद्य में संकेत किया गया है।—अनु०

उस मुनि के आश्रम में आकर वे यों आनन्दित हुए, जैसे क्षीरसागर में (शेष) शयन पर ही विश्राम कर रहे हों।

उस स्थान मे, तत्त्वज्ञ मुनि के धर्ममय उपदेश सुनते हुए रामचन्द्र ने हरिणी-समान नयनोंवाली देवी के साथ वह अंधकार-भरी रात्रि व्यतीत की।

तब सूर्य, ससार को आवृत करनेवाले घने अंधकार-रूपी चादर को अपने सब दिशाओ में परिव्याप्त अपरिमेय उज्ज्वल करो के आतप-रूपी धारवाले करवाल से हटाने लगा।

उस समय, तत्त्वज्ञ मुनि ने उन (राम) के सम्मुख ही अग्नि को प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश करने का विचार किया और शास्त्रोक्त विधि से सत्वर अग्नि प्रज्वलित करके रामचन्द्र से प्रार्थना की कि अब मुझे आज्ञा दीजिए।

दृढ धनुष्य (धनुष के प्रयोग मे निपुण) राम ने वेदों मे निपुण (शरभंग) को देखकर कहा—आप क्या करना चाहते हैं, बताइए। तब मुनि ने कहा—हे लक्ष्मी-नायक! मै मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना चाहता हूँ, आप आज्ञा देने की कृपा कीजिए।

रामचन्द्र ने उनसे प्रश्न किया—अजिन (मृगचर्म) से शोभायमान वक्षवाले, हे मुनिवर! मेरे आगमन के समय आप यह क्या कर रहे हैं? तब मन्मथ की विजय को कुठित करनेवाली मानसिक दृढता से युक्त उस मुनिवर ने अपना शरीर त्याग करने के उमंग में यों उत्तर दिया—

हे विजयशील! विविध प्रकार की तपस्यायो में निरत रहनेवाला मै—तुम अवश्य यहाँ आओगे, यह निश्चय करके तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। अब मेरे दोनों प्रकार के कर्मों का बंधन टूट गया। जैसे घटित होना था, वैसे ही हुआ और तुम आये। अब मेरे लिए यहाँ और कोई कार्य नही रह गया है।

हे शक्तिशाली! इन्द्र ने आकर कहा था कि कमलभव ब्रह्मा ने तुम्हे सत्यलोक का निवास प्रदान किया है। प्रलय-काल तक तुम वही रह सकते हो। किन्तु, शाश्वत परमपद की प्राप्ति की कामना करनेवाले मैंने उस सत्यलोक को पाना नही चाहा।

अपौरुषेय वेदों के लिए भी अज्ञेय परमतत्त्व को जाननेवाले (शरभंग) ने कहा कि तुम ऐसी कृपा करो कि मै परमपद प्राप्त करूँ। फिर, अपनी प्रिय पत्नी के साथ उग्र अग्नि में प्रवेश करके अनुपम अपवर्ग-पद में जा पहुँचे।

भावी को जाननेवाले, महिमामय सुगधित कमल मे उत्पन्न ब्रह्मा आदि देव, मुनिगण तथा अन्य लोग भी, दोनों कर्मों के बंधन से मुक्त होकर जिस पद को प्राप्त करने की कामना करते हैं, उस पद में वे मुनिवर जा पहुँचे।

अखिल ब्रह्मांड को अज्ञेय रूप मे निगलनेवाले (भगवान् राम) के एक नाम को जो जानते हैं, उनके पुण्य-फल भी विचार से परे होते हैं। फिर, जो अपने अंतिम समय मे उस भगवान् के दर्शन करते हैं, उनको कौन-सा बड़ा पद प्राप्त होगा, इसको कौन जान सकता है। (१–४४)

# अध्याय ३

## *अगस्त्य पटल*

आनन्द उत्पन्न करनेवाले, वक्र धनुष को धारण किये हुए वे कुमार (राम-लक्ष्मण), उस शरभग की मृत्यु का दृश्य देखकर मन में बहुत दुःखी हुए। फिर, (सीता) देवी के साथ उस पवित्र (मुनि) के आश्रम से धीरे-धीरे चले।

पर्वत, वृक्ष, सुन्दर काली शिलाएँ, तरंगों से भरी नदियाँ, झरनों से युक्त पर्वत-शिखर, घने उद्यान, सुहावने स्थान एव गभीर जलाशय सबको धीरे-धीरे पार करते हुए वे आगे बढ़े।

पुरातन ब्रह्मदेव के पुत्र, मुडे हुए शिखावाले वालखिल्य आदि दंडकारण्य के निवासी मुनि उनके सम्मुख आये और उनके दर्शन करके आनन्दित हुए।

अत्यधिक बढनेवाले क्रोध से युक्त राक्षसो के अत्याचारो से (बचने का) कोई उपाय न देखकर पीडित होनेवाले वे मुनिगण जलते वन के उन सूखे वृक्षों की समता करते थे, जो अमृत-समान जल-धारा से सिंचित होकर जीवित हो उठे हों।

अधिकाधिक बढते हुए बलवाले राक्षसो का नाम लेते हुए भी उनका कठ-स्वर विकृत हो उठता था। ऐसे संकट से अब मुक्त हुए उन मुनियो की दशा उस बछड़े की-सी थी, जो दावानल से जलनेवाले वन में फँस गया हो और फिर अपनी माँ को अपनी ओर दौड़कर आते हुए देखकर आनन्दित हो उठा हो।

किसी के द्वारा प्रतिकार करने को दुस्साध्य, क्रूर कृत्यवाले राक्षसो के साथ युद्ध करके उन्हे मिटाने का कोई उपाय न देखकर वे मुनि मन-ही-मन कुढते रहते थे। अब ऐसे निश्चिन्त हुए, जैसे राक्षस नामक समुद्र के मध्य डूबनेवालों को एक नौका ही मिल गई हो।

उन मुनियो ने (रामचन्द्र को) भली भाँति देखा और ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे अपने महान् तप की महिमा से ज्ञान पाकर, जन्म-रूपी कठोर बंधन से मुक्त हो गये हों और मोक्ष-पद प्राप्त कर लिया हो।

यद्यपि वे (मुनि) ऐसी सत्य तपस्या से सपन्न थे, जो साधको के सब अभीष्टो को पूर्ण करनेवाली होती थी, तथापि उन्होंने क्षमा-शक्ति के कारण उत्तरोत्तर बढ़नेवाले अपने क्रोध को समूल विनष्ट कर दिया था। इसलिए, उस वन के राक्षसो से पीडित होते रहते थे।

वे मुनि उठकर आये। काले मेघ-सदृश स्थित उन राम के निकट उमड़ते प्रेम के साथ आ पहुँचे। ज्यों-ज्यों वे राम उन्हे नमस्कार करते थे, त्यों-त्यों वे मुनि आशीः देते रहे।

वे मुनि उन (रामचन्द्र) को एक सुन्दर पर्ण-शाला में ले गये और यह कहकर कि यहाँ तुम सुख से निवास करो, अनेक सत्कार किये, फिर वे स्वय अन्यत्र जाकर ठहरे। फिर (उचित समय पर) राक्षसो के अत्याचार को कहने के लिए (राम के पास) आये।

प्रभु ने आये हुए मुनियो को प्रणाम करके उनकी प्रस्तुति की और आसीन होने

पर प्रश्न किया कि क्या आज्ञा है? तब उन्होंने उत्तर दिया—हे संसार के रक्षक ( दशरथ ) के पुत्र! अब जो अत्याचार यहाँ हो रहे हैं, उन्हें सुनो।

दया नामक गुण का लेश भी जिनके हृदय में नहीं है, ऐसे धर्म-रहित कुछ लोग हैं, जिन्हें राक्षस कहते हैं। वे ( राक्षस ) हमें अनुचित तथा अधर्म के मार्ग पर चलने के लिए विवश करते हैं, जिससे हम धर्म और तपस्या के सन्मार्ग से भटक जाते हैं।

हे धनुष से युक्त भुजावाले! अनेक व्याघ्र जहाँ संचरण करते हैं, ऐसे वन में रहनेवाले हरिणों के समान, हम रात-दिन व्यथितमन रहते हैं। हमसे अब अधिक सहा नहीं जायगा। प्रख्यात धर्म-पथ से भी हम स्खलित हो रहे हैं। क्या हमें इन दुःखों से मुक्ति मिलेगी?

महिमामय तपोमार्ग में हम नहीं चल पाते। अब वेदों का अध्ययन भी नहीं कर पाते। अध्ययन करनेवालों की सहायता भी नहीं कर सकते। पुरातन यज्ञाग्नि को भी हम प्रज्वलित नहीं कर पाते। सदाचरण से भी भ्रष्ट हो गये हैं। अतः, हम ब्राह्मण कहलाने योग्य भी नहीं रहे।

इन्द्र के बारे में पूछो, तो वह राक्षसों के आदेशों को, अपने शिर आँखों पर धारण कर उनका पालन करता रहता है। हे हमारे प्रभु! तुम्हारे अतिरिक्त हमारे दुःखों को दूर करनेवाला और कौन है? हमारे सुकृत से ही तुम यहाँ आये हो।

संसार-भर में प्रचलित अपने शासन-चक्र से संसार की रक्षा करनेवाले चक्रवर्ती के हे पुत्र! हमारे दिन अवार्य अंधकार से भरे हैं। अब तुम सूर्य के समान उदित हुए हो। हे कृपालु वीर! हम तुम्हारी शरण में हैं—यों मुनियों ने निवेदन किया।

सूर्यकुल में उत्पन्न वीर ( राम ) ने कहा—यदि वे ( राक्षस ) मेरी शरण में आकर क्षमा नहीं माँगेंगे, तो भले ही वे इस ब्रह्मांड को छोड़कर बाहर भी क्यों न भाग जायँ, मेरे बाण खाकर नीचे गिरेंगे। अब आप लोग इस अनुचित पीडा से मुक्त हो जाइए।

मेरी माता का वर माँगना, मेरे पिता की मृत्यु होना, मेरे गौरव-पूर्ण भाई (भरत) का दुःखी होना, मेरे नगर के लोगों का अत्यंत वेदना से दुःखित होना—इन सबके होते हुए भी मेरा वन-गमन मेरे पुण्यों का ही फल है।

यदि मैं उन राक्षसों की शक्ति का समूल नाश न करूँ, जो धर्म से कभी स्खलित न होनेवाले मुनियों के महत्त्व को भूलकर, नीच बनकर उन्हें सताते हैं, तो मेरे लिए यही उचित होगा कि मैं ( उनके हाथ ) मर जाऊँ। अन्यथा, मनुष्य-जन्म पाने से मुझे क्या सुकृत मिलेगा?

उत्तम वेदों के ज्ञाता आपलोग भी उन राक्षसों के कबंधों को नाचते हुए सहर्ष देखें। तभी दृढ धनुष तथा अवार्य बाणों से पूर्ण तूणीरों का वहन करनेवाली मेरी भुजाओं की पीडा दूर होगी।

गो-ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों की रक्षा के लिए जो अपने प्राणों का त्याग करते हैं, वे ही उत्तम स्वर्ग के निवासी देवताओं के लिए भी पूज्य देवता बनते हैं।

शूरपद्म ( नामक असुर ) को मारनेवाले ( सुब्रह्मण्य ), उज्ज्वल चक्रायुध को धारण करनेवाले ( विष्णु ) या त्रिपुरों को मिटानेवाले ( शिव ) भी, उन राक्षसों की रक्षा

करने आयें, तो भी मैं उन अधर्मी (राक्षसों) का समूल विनाश करूँगा। आपलोग डरें नही।

(राम के द्वारा) कथित ये वचन सुनकर वे आनंदित हुए। उनका प्रेम उमड़ उठा, उनकी पीडा दूर हुई। वे अपने दंड उछालने लगे। मधुर वेद-वाचन करने लगे। नाचने लगे। फिर यों बोले—

हे सृष्टि के नायक। यदि तुम क्रोध करो, तो इन तीनों लोकों के जैसे तीस कोटि लोक भी यदि तुम्हारा सामना करने आयें, तो वे भी तुम्हारे लिए कुछ नही होगे। सब वेद, (हमारी) तपस्या और ज्ञान इसके साक्षी हैं।

अतः, तुम (वनवास के) दिनों हमारी रक्षा करते हुए, यही इस आश्रम में आराम से रहो—यों मुनियों ने कहा। तब राम ने उन महान् तपस्वियों के चरणों को नमस्कार करके वही निवास किया।

वे कुमार (राम-लक्ष्मण) उस स्थान में बिना किसी कष्ट के दस वर्ष-पर्यंत रहे। फिर, उन तपस्वियों ने विचार करके इनसे कहा कि तुम अगस्त्य के पास जाओ। तब वे अर्धचंद्र-सम ललाटवाली सीता देवी के साथ वहाँ से चल पडे।

दरारों से भरी तथा उबड़-खाबड़ धरती को और बाँस आदि के झाडों से भरे स्थलों के संकीर्ण मार्गों को धीरे-धीरे पार करके वे उज्ज्वल शरीरवाले कर्म-बंधन से रहित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुँचे।

गर्व-रहित चित्तवाले उन कुमारों ने वहाँ पहुँचकर, सूर्य के समान तेजस्वी उन मुनिवर के अरुण चरणों को प्रणाम किया। तब मुनि ने उनका सत्कार करके कहा—तुम लोग यही विश्राम करो। तब वे वीर उस सुगंधित उद्यान में ठहरे।

जब वे वहाँ ठहरे हुए थे, तब उन मुनिवर ने उनका सब प्रकार से उपचार करके कहा—हे श्रीमन्। यह मेरे सुकृत हैं, जो तुमने यहाँ आने की कृपा की। प्रभु ने भी बड़ी भक्तिपूर्वक उन मुनिवर से कहा—

प्रख्यात चतुर्मुख के वंश में उत्पन्न मुनिश्रेष्ठों मे तुम्हारे समान पूर्ण तपस्या से संपन्न अन्य कौन हैं? और, तुम्हारे-जैसे महान् तपस्वी की कृपा का पात्र मैं बना हूँ। इसलिए, मेरे समान (भाग्यशाली) गृहस्थ भी कौन है?

चिरकालिक तपस्या से संपन्न मुनिवर ने उपमान-रहित (राम) को उत्तर दिया—तुम आतिथ्य स्वीकार करके उसे सफल बनाओ। मै अपनी समस्त तपस्या दक्षिणा के रूप मे तुम्हे अर्पित करता हूँ।

वदान्य (राम) ने उस वेदज्ञ मुनि को उत्तर दिया—हे स्वामिन्! तुम्हारी यह करुणा ही किस तपस्या से कम है? फिर कहा—अब मुझे एक बात निवेदन करनी है। अगस्त्य महर्षि के दर्शन अभी मैने किये नही। यही एक कमी रह गई है।

तब मुनि ने कहा—तुमने ठीक सोचा है। मैने पहले ही यह कार्य निश्चित किया था। तुम उन मुनि के आश्रम में उनके निकट जाओ। वहाँ जाने पर तुम्हारे लिए कोई सुफल अलभ्य नही रह जायगा।

इतना ही नही। वे अबतक तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करते हुए रहते होंगे।

अतः, हे समस्त कल्याणों से युक्त महानुभाव ! तुम उन मुनिवर के निकट जाओ। इससे देवों तथा अन्य सब का हित होगा।

फिर, मुनि ने (अगस्त्य के आश्रम को जाने का) मार्ग बताकर अनेक आशीर्वाद दिये। तब उन तपस्वी के कमल-समान चरणों को प्रणाम करके वे वीर वहाँ से चले और मधु की स्वच्छ धाराओं को बहानेवाले एक उद्यान में शीघ्र आ पहुँचे।

विशाल (या चिरंतन) तमिल भाषा से सारे लोक को चक्रपाणि (विष्णु) के जैसे नापनेवाले (अगस्त्य) मुनि ने जब यह सुना कि पौलस्त्य के शत्रु कुमार (राम-लक्ष्मण) वहाँ आये हैं, तब उनके मन में जो आनन्द उमड़ा, वह समुद्र के जैसे उमड़कर सातों लोकों में भर गया। वे महिमावान् वरद (राम) की शरण में जाने के लिए आगे बढ़े।

वे अगस्त्य ऐसे हैं कि पूर्वकाल में जब देवताओं ने, समुद्र में असुरों के छिप जाने पर उनसे प्रार्थना की कि हे तपस्वी ! हम पर कृपा करो; तब उन्होंने सारे समुद्र को एक चुल्लू में भरकर पी लिया था और जब उन (देवों ने) प्रार्थना की कि समुद्र को लौटाने की कृपा करें, तब उसे उगल दिया था।

उन वामनाकार मुनि ने स्वच्छ समुद्र के जल को पीकर उसे उगल दिया था और मायावी राक्षस (वातापि) को खाकर उसके कठोर शरीर को पचा लिया था, एवं संसार के दुःख को दूर किया था।

जब विंध्याचल ने बढ़कर अंतरिक्ष को भर दिया था, उन समस्त लोकों में स्थित रहनेवाले मुनियों ने (अगस्त्य) से प्रार्थना की कि आप हमारे जाने का कोई बाधा-रहित मार्ग बनाइए। तब अगस्त्य ने मेघों की पंक्तियों में उठे हुए गगनोन्नत विंध्याचल पर अपना पद रखा और हाथी के जैसे उसपर बैठकर उसे ऐसा दबाया कि वह पाताल में धँस गया।

पूर्वकाल में एक बार उत्तर दिशा नीचे झुक गई और दक्षिण दिशा ऊपर उठ गई। तब सर्पों को धारण करनेवाले शिवजी ने अगस्त्य को आज्ञा दी कि हे निश्चल तथा निर्दोष तपस्यावाले ! तुम (दक्षिण दिशा में) जाओ। उस आदेश के अनुसार वे गगनोन्नत मलय पर्वत ('पोदियमलै' नामक पर्वत) पर आ पहुँचे और शिवजी के समान ही दक्षिण दिशा में रहकर भूमि के संतुलन को बनाये रखा।

कांतिमय पदयुग तथा सुन्दर ललाट में अग्नि-उगलनेवाले नेत्रों से शोभित, अग्नि-सदृश तेजःस्वरूप भगवान् (शिव) के द्वारा उपदिष्ट तमिल (व्याकरण) को उन्होंने लोक-परंपरा, काव्य-रूढ़ि एवं अपनी बुद्धि के द्वारा यथाविधि सुसंस्कृत करके परिश्रम से अध्ययन किये जानेवाले चार वेदों से भी श्रेष्ठ बना दिया।[1]

---

१. यह कथा प्रसिद्ध है कि अगस्त्य शिवजी द्वारा तमिल व्याकरण को लेकर दक्षिण में 'पोदियमलै' पर आकर रहे थे। वहाँ पेरगत्तियम—(बृहद् अगस्तीयम्) और सिट्रगत्तियम—(लघु अगस्तीयम्) नामक दो ग्रन्थ रचकर अपने बारह शिष्यों को सिखाया, जिनमें तोलकाप्पियर मुख्य थे। उन्हीं तोलकाप्पियर ने आगे चलकर समग्र तमिल-भाषा का एक बृहद् व्याकरण लिखा, जो अब तमिल-साहित्य में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ है। अगस्त्य का लिखा हुआ व्याकरण अब उपलब्ध नहीं है, किन्तु उसके व्याकरण के उद्धरण अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य बालकाण्ड (अनुवाद), पृ० ४, की पादटिप्पणी। —अनु०

जिस परम तत्त्व के बारे मे सब लोग यह सोचते रहते हैं कि वह स्वर्ग मे है, भूलोक मे है, अन्य किसी लोक मे है, (योगियो के) हृदय मे है अथवा वेदों मे है, उस तत्त्व को मै अपनी ऑखो से देख सकूँगा—यह सोचकर अगस्त्य आनन्दित हुए।

ब्रह्मा आदि भी, प्रसिद्ध वेदो तथा अन्य (दर्शन-ग्रन्थो) का सम्यक् अध्ययन करने से तीक्ष्ण बने हुए अपने ज्ञान की कसौटी पर अनेक युगो तक कस-कसकर भी जिस तत्त्व को ठीक-ठीक पहचान नही पाते, वही परम तत्त्व अब मेरे सम्मुख स्थित होकर मुझसे बोलनेवाला है—यो सोचकर अगस्त्य अत्यन्त आनन्दित हुए।

असाध्य तथा क्रूर बलवाले राक्षस-रूपी विष को, जड़ से उखाड़ देनेवाला वैद्य अब आ गया है। अब देवता लोग बच गये। तपस्वियो के प्राण भी सुरक्षित हो गये। ब्राह्मण भी धर्म-मार्ग में स्थिर हुए—यो अगस्त्य ने विचार किया।

अब प्राणियो को (उनकी आयु के) मध्य मे ही चबाकर खा जानेवाले राक्षसो के वज्र को भी जलानेवाले क्रोध-रूपी अग्नि को शीघ्र मिटाकर ससार की रक्षा करने के लिए गगन के मेघ के समान ये (रामचन्द्र) आये हैं—इस प्रकार सोचकर उमंग-भरे हृदय से अगस्त्य आगे बढ़े।

उस मुनि ने, जो अपने कमडलु मे भरकर अनुपम कावेरी को लाये थे और उसके द्वारा अष्ट दिशाओ, सप्त लोकों तथा सब प्राणियो को सद्गति प्रदान की थी, राम को आते हुए देखा, तब प्रेमाधिक्य से कमल-समान कातिवाले उनके नयनो से आनन्दाश्रु बह चले।

वहाँ स्थित मुनि को श्रीराम ने आकर प्रणाम किया। तब शाश्वत रहनेवाली मधुर तमिल-भाषा (के व्याकरण) को प्रचलित कर यशस्वी बने मुनि ने प्रेम से उनका आलिगन किया और आनन्दाश्रु बहाये। फिर 'तुम्हारा स्वागत है।' कहकर अनेक मधुर वचन कहे।

महान् तपस्वी तथा ब्राह्मणजन घिरकर वहाँ आये, वेद-पाठ किया तथा कमडलु-जल का प्रोक्षण कर पुष्प बरसाये। फिर अगस्त्य, पुष्पो की सुरभि से पूर्ण शीतल उद्यान मे (राम, लक्ष्मण और सीता को) ले गये।

अमल (राम) ने हर्ष के साथ उस सुन्दर उद्यान मे प्रवेश किया। मुनि ने उनका आतिथ्य किया। फिर कहा—हे करुणामय! यह मेरे बडे सुकृत का फल है, जो तुम मेरी कुटी मे आये। तुमने मेरी अपूर्व तपस्या को सफल बना दिया।

यो कहने पर रामचन्द्र ने अगस्त्य से कहा—देवता और महान् तपस्वी मुनि भी आपकी कृपा को (सुलभता से) नही प्राप्त कर सकते। मै आपकी कृपा का पात्र बना, अतः मै समस्त लोको का विजयी हो गया हूँ। अब मुझे प्राप्त करने को क्या शेष रह गया?

तब अपने उत्तम शिर पर चन्द्रकला को धारण करनेवाले (शिव) की समता करनेवाले उन मुनि ने कहा—हे प्रशसनीय गुणो से विभूषित! मैंने सुना था कि तुम

दंडकारण्य में आये हो। इस पर मैं यह सोचकर आनन्दित हुआ कि तुम इस स्थान पर भी अवश्य आओगे। फिर आगे कहा—

हे प्रभु! अब तुम यहीं निवास करो, यहाँ रहने से आवश्यक तथा स्पृहणीय महान् तपस्या को पूर्ण कर सकोगे। बढ़ते हुए क्रोध से युक्त क्रूर राक्षस जब आयेंगे, तब युद्ध में उन्हें निहत करके हमारे मन के क्लेश को दूर करना।

हे चक्रवर्ती-कुमार। (अब) वेद जीवित रहेंगे। मनु-विहित नीति जीवित रहेगी। धर्म जीवित रहेगा। हीन बने हुए देवता उन्नति प्राप्त करेंगे। असुर अवनति प्राप्त करेंगे। इसमें कुछ संदेह नहीं है। यह निश्चित है। सप्त लोक जीवित रहेंगे। तुम यहीं निवास करो—यों अगस्त्य ने कहा।

तब राम बोले—हे वेद-ज्ञान से युक्त मुनिवर। गर्वीले राक्षस, जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें मिटाने एवं उनके गर्व को दूर करने के हेतु उनका शीघ्र हनन के लिए मैं सन्नद्ध हूँ। अतः, मैं सोचता हूँ कि वे जिस दिशा से आते हैं, उसी दक्षिण दिशा में मेरा आगे बढ़ जाना उचित है। आपकी क्या सम्मति है?

तब अगस्त्य ने यह कहकर कि, 'तुमने सुन्दर वचन कहे' आगे कहा—यह जो धनु मेरे यहाँ है, यह पूर्वकाल में विष्णु के पास था। त्रिलोकी के लोग तथा मैं इसकी पूजा करते रहे हैं। इस धनुष को तथा अक्षय बाणोंवाले इन (दो) तूणीरों को लो। यह कहकर धनुष एवं तूणीर राम को प्रदान किये।

अगस्त्य ने राम को एक ऐसा करवाल दिया, जो यदि त्रिभुवन को तराजू के एक पलड़े में रखकर और दूसरे में उस करवाल को रखकर तोलें, तो त्रिभुवन भी उसकी समता नहीं कर सकते। फिर, एक (वैष्णव नामक) शर दिया, जिसे अग्नि-रूपी हर ने महान् मेरु को धनुष बनाकर उस पर रखकर प्रयुक्त किया था और उससे त्रिपुरों को मिटाया था। उन दोनों शस्त्रों को देकर—

अगस्त्य ने कहा—हे तात! उन्नत वृक्षों, पर्वत शिखरों, सिकता-श्रेणियों तथा पुष्प-राशियों से शोभायमान, आसपास में शीतल उद्यानों से शोभित और तरंगायमान नदियों से घिरे हुए पर्वत में पंचवटी नामक एक स्थान है।

उस स्थान में फल देनेवाले बालकदली-वृक्ष, रक्त धान की बालियों से पूर्ण सस्य, मधुस्रावी पुष्प तथा दिव्य कावेरी के समान नदी का प्रवाह है। वहाँ इस देवी (सीता) के कौतुक के लिए सारस एवं हंस भी हैं।

अब तुम उसी स्थान में जाकर निवास करो—यों। (अगस्त्य ने) कहा। घनश्याम ने भी उन्हें प्रणाम किया, उनकी आज्ञा ली और आगे चले। उनके पीछे खाँड़ के रस के समान मीठी बोलीवाली (सीता) तथा उनके अनुज चले और उनका अनुसरण करता हुआ उन मुनिवर का मन चला। वे सत्वर आगे बढ़ चले। (१–५६)

# अध्याय ४

## जटायु-दर्शन पटल

वे ( राम, सीता और लक्ष्मण ) कई कोस चले और बहनेवाली अनेक नदियो, स्थिर रहनेवाले कई पर्वतों, क्रमशः स्थित घने वनो आदि को पार करके गये और एक स्थान पर गृद्धो के राजा ( जटायु ) को देखा।

वह जटायु इस प्रकार शोभायमान था, जैसे उदयगिरि पर स्थित पिघले स्वर्ण-सदृश बाल रवि हो, जो इस विशाल धरती की सब दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली अपनी घनी किरणो-रूपी पंखो को फैलाये हुए बैठा हो।

वह (जटायु) एक ऊँचे पर्वत के शिखर-मध्य बैठा हुआ ऐसा था, मानों देवताओ ने अपार शब्दायमान क्षीरसागर के मध्य चंद्र की काति से सयुत मदर पर्वत को खडा कर दिया हो।

वह जटायु, विशाल प्रदेशवाले उस नीलवर्ण पर्वत पर ( अपनी देह-काति से ) नीलवर्ण गगन की कांति को आवृत किये हुए, दीर्घ प्रवाल-लता के समान सुन्दर वर्ण से युक्त अपनी मनोहर टाँगों की अरुण काति के साथ शोभायमान था।

वह पवित्र था। अपार शिक्षा तथा ज्ञान से युक्त था। सत्यपरायण था। दोषहीन था। सूक्ष्म बुद्धिवाला था। अपनी विवेचन-शक्ति से ( बातों को ) जाननेवालों के जैसे ही दूर की वस्तुओ को भी अपनी छोटी आँखो से देख सकता था।

वह क्रूर राक्षसो को मारकर यम को भोजन देकर तदनतर बचे हुए मास को स्वयं खानेवाला था, नित्य रगड़ खाने से उसकी चोंच इन्द्र के छोटी आँखवाले ( ऐरावत ) हाथी के अकुश के समान चमक रही थी।

वह नवग्रहो और इनसे घिरे हुए ध्रुव नक्षत्र का-सा दृश्य उपस्थित करनेवाले रत्नहार से शोभित था। उसके शिर पर किरीट इस प्रकार शोभित हो रहा था, जिस प्रकार मेरु के शिखर पर उज्ज्वल रवि हो।

वह शब्दों की शक्ति को कुठित करनेवाले (अर्थात्, शब्दों के द्वारा प्रकट करने मे असभव ) महान् यश से उदित होनेवाले अरुणदेव का पुत्र था और उसने अनेक कल्पो को दिनो के समान व्यतीत होते हुए देखा था।

वह एक अत्युन्नत पर्वत पर खड़ा था। वह इतना बलवान् था कि उसके भार को न सँभाल सकने के कारण वह पर्वत धरती मे धँसकर नीचा हो गया था। ऐसी वीरता से पूर्ण उस ( जटायु ) के निकट, वे ( राम-लक्ष्मण ) आशका-युक्त मन के साथ जा पहुँचे।

बडे वीर-ककण को पहने हुए उन वीरो ने, यह सोचते हुए कि कोई ज्ञान-रहित राक्षस हमारी हानि करने के विचार से पक्षी का वेष धारण करके आया है, सदेह के साथ उसे देखा।

वह ( जटायु ) भी, वीर-कंकणो से भूषित तथा दृढ धनुष को धारण करनेवाले उन वीरों को देखकर सदेह करने लगा कि जटायुक्त शिरवाले ये ( पुरुष ), कर्म-बंधन से मुक्ति-प्राप्ति का साधन तप करनेवाले ( तपस्वी ) मात्र नही दिखते , क्योंकि इनके हाथ में धनुष है। शायद ये स्वयं देव ही तो नही हैं ?

मै तो इन्द्र आदि सब देवताओं को देखता हूँ। चक्रधारी ( विष्णु ), अभीष्ट वर देनेवाले ( ब्रह्मा ) और परशुधारी ( शिव ) भी मेरे लिए अदृश्य नही हैं। मै उन्हे सदा देखता हूँ।

मन्मथ को भी मैने अपनी आँखो से देखा है। वह, कमल-सदृश अरुण नयनो तथा विशाल हाथो से युक्त इन वीरो की चरण धूलि की भी समता नही कर सकता। फिर, ये वीर कौन हैं ?

इनके शरीर मे तीनो लोको को अपना स्वत्व बनानेवाले उत्तम पुरुष के लक्षण विद्यमान हैं। कमलभव देवी ( लक्ष्मी ) का उपमान कहने योग्य एक रमणी इनके साथ चल रही है। मै नही जानता कि ये धनुर्धारी वीर कौन हैं।

ये नील तथा रक्तवर्ण पर्वतो के जैसे रूपवाले हैं। विजयलक्ष्मी से शोभित वक्ष-वाले हैं। अरुण नयनवाले हैं। ये दोनो वीर, मेरे सुहृद् अपूर्व सद्‌गुणो से पूर्ण चक्रवर्त्ती ( दशरथ ) के जैसे हैं।

वह ( जटायु ) मन में इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क कर रहा था। उसके मन मे कठोर शस्त्रधारी उन वीरो के प्रति प्रेम उमड़ आया। उसने प्रश्न किया—उत्तम तथा दृढ धनुष को धारण करनेवाले, वृषभ-सदृश ( बलवान् ) आप कौन हैं ?

उसके यो प्रश्न करने पर, पुष्प-मालाओ से अलंकृत, सत्य के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का वचन न बोलनेवाले इन वीरों ने उत्तर दिया—शब्दायमान विशाल सागर से आवृत धरती की रक्षा करनेवाले वीर-कंकणधारी चक्रवर्त्ती ( दशरथ ) के हम पुत्र हैं।

उनके यो कहने पर, उमड़ते हुए हर्ष-रूपी समुद्र मे निमग्न होकर प्रेम से उनका आलिंगन करने के लिए वह ( उस पर्वत पर से ) नीचे उतर पड़ा और बोला—हे सुरभित हारो को धारण करनेवाले वीरो। उस चक्रवर्त्ती की पर्वत-समान विशाल भुजाएँ बलशाली तो हैं न ?

ज्योंही ( उन वीरो ने ) यह कहा कि वे ( चक्रवर्त्ती ) अविस्मरणीय सत्य की रक्षा करते हुए स्वर्ग सिधार गये, त्योंही उनकी मृत्यु का हाल जानकर वह शोकोद्विग्न हो उठा और फिर मूर्च्छित हो गिर पड़ा।

तब उन दोनो ने अपने विशाल हाथों से उसे उठाया तथा अपने अश्रुओ से उसके मुख को धोया। अपने प्राण ( सज्ञा ) लौट आने पर जटायु शिथिलमन होकर रोने लगा।

हे राजाओ के राजा। हे असत्य के शत्रु। हे सत्य के आभरण! हे यश के प्राण। तुम्हारी अवर्णनीय दानशीलता, उज्ज्वल श्वेतच्छत्र तथा क्षमा के सम्मुख जो उडुपति ( चद्रमा ), समुद्र से आवृत धरती तथा उदार कल्पवृक्ष अपनी गरिमा को खो बैठे थे, अब आनद से जीवित रहेंगे। इस प्रकार तुम याचको को, सद्‌धर्म को एव मुझको यह शोक भोगने के लिए छोड़कर चले गये।

हे महाराज। शोभा बढ़ानेवाले तथा लोकों को अमृत प्रदान करनेवाले श्वेतच्छत्र से युक्त। समुद्र से आवृत इस धरती की रक्षा का भार त्याग कर क्या मेरे अस्थिर प्रेममय मित्र की परीक्षा करने के लिए ही तुम यों चले गये हो? हे नायक। हाय। पापकर्मी मैं, मित्र-धर्म से स्खलित होकर अभी तक जीवित हूँ।

हे दोष से रहित परिशुद्ध मनवाले। दही को मथनेवाली मथानी के समान लोकों को दुःख देनेवाले शबरासुर को जब तुमने परास्त किया था, तब तुमने सूक्ष्म मृत्तिका से भरी इस धरती के सब लोगों के सम्मुख अपने को देह और मुझे प्राण कहा था। तुम्हारे वचन अयथार्थ नहीं होते। विवेक-रहित यम प्राणों को छोड़कर शरीर को ही स्वर्ग ले गया है।

मैं अब अपनी कीर्त्ति को बढ़ाते हुए प्रज्वलित अग्नि में गिरूँगा। अन्यथा, भीरु स्त्रियों के समान धरती पर गिरकर विलाप करना क्या मेरे लिए उचित होगा? यों कहकर आत्मज्ञानी के जैसे वह उठा और उन (राम-लक्ष्मण) को देखकर बोला—सप्त लोकों को अपने अधीन बनानेवाले हे कुमारो। सुनो—

दक्ष प्रजापति की पचास पुत्रियाँ थी, जो पीन स्तनोंवाली सुन्दरियाँ थी। उनमें तेरह पुत्रियों से काश्यप ने विवाह किया। उनमें से अदिति ने तैंतीस करोड़ सुरों को जन्म दिया औरकाजल-लगी आँखोंवाली दिति ने उन (सुरों) से दुगुने असुरों को जन्म दिया।

दनु ने दानवों को जन्म दिया। मति ने मनुष्य जातियों को जन्म दिया। सुरभि ने गायों, अश्वों और अन्य जन्तुओं को जन्म दिया। क्रोधवशा ने गर्दभों, हरिणों और ऊँटों को जन्म दिया।

मेघतुल्य केशोंवाली विनता ने घन की विद्युत् को, अरुण ने गरुड़ को पल्लव-तुल्य पखवाले उलूक को तथा चील आदि पक्षियों को जन्म दिया। (स्त्रियों में) रत्न-तुल्य ताम्रा ने गोरैया, कौदारी, 'काडै' आदि (छोटे) पक्षियों को जन्म दिया। कला नामक लता-सदृश महिला ने लता-गुल्मों को जन्म दिया।

कद्रू नामक विद्युल्लता-सदृश स्त्री ने अनेक भयकर फनोंवाले सर्पों को जन्म दिया। सुधा ने एक शिरवाले नागों को जन्म दिया। अरिष्ठा ने गोह, गिरगिट, गिलहरी आदि जन्तुओं को जन्म दिया। इडा ने जलचरों को जन्म दिया।

अदिति, दिति, दनु, अरिष्ठा, सुधा, कला, सुरभि, विनता, मति, इडा, कद्रू, क्रोधवशा, ताम्रा—इन्होंने भी क्रमशः इन सब को जन्म दिया। विनता के पुत्र अरुण के कोमल भुजाओं तथा बाल-चन्द्र तुल्य ललाटवाली रभा से हम (अर्थात्, सपाति और जटायु) उत्पन्न हुए।[1]

यौवन की शोभा से युक्त हे कुमारो। मैं अरुण का पुत्र हूँ। जिन-जिन लोकों मे वे (अरुण) व्याप्त होते हैं, उन-उन लोकों में जाने की शक्ति मैं रखता हूँ। उन दशरथ का, जिन्होंने (लोकों के) अधकार को दूर करते हुए शासन-चक्र को चलाया था, मैं प्राण-प्रिय मित्र हूँ। जिस समय देव तथा अन्य जातियों का विभाजन हुआ था, उसी समय मैं उत्पन्न हुआ। मैं गृद्धराज सपाति का अनुज जटायु हूँ।

---

१. ऊपर के पाँच पद प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। —अनु०

उस (जटायु) ने जब ये वचन कहे, तब पर्वत-सदृश कंधोंवाले उन (राम-लक्ष्मण) ने अपने कमल-करो को जोड़कर प्रणाम किया। उस समय प्रेम के कारण उत्पन्न अत्यधिक वेदना से अपने कमल-सदृश नयनो से अश्रु बहाते हुए इस प्रकार हुए, मानो धरती पर अपार यश को छोड़कर स्वर्ग मे पहुँचे हुए अपने पिता ( दशरथ ) को ही पुनः लौटे हुए देख रहे हो।

सुन्दर गुणोंवाले उन वीरो को अपने दोनो पखो से आलिंगन करके ( जटायु ने ) कहा—हे पुत्रो! अब तुम ही मुझ पापकर्मवाले की भी अंतिम क्रिया करके मेरा उपकार करो। हमारे दो शरीरो के लिए एक ही प्राण बने हुए वे ( दशरथ ) जब चल बसे, तब भी यह मेरा शरीर सुखपूर्वक अबतक जीवित है। यदि मै इस शरीर का मोह छोड़कर अभी इसे अग्नि मे न डाल दूँ, तो इस दुःख को मै कभी भूल नही सकूँगा।

इस प्रकार कहनेवाले गृध्रराज को देखकर घनी पुष्प-मालाओ से विभूषित उन वीरो ने उसे प्रणाम किया और अपने नयनो से मोती-जैसे अश्रुओ को अधिकाधिक बहाते हुए ये वचन कहे—

जबतक चक्रवर्त्ती जीवित रहे, वे हमारी रक्षा करते थे। वे अपने सत्य की रक्षा के लिए, ( अपने शरीर का ) कुछ भी विचार न करके स्वर्ग सिधार गये। अब हे महाभाग! तुम भी यदि हमे छोड़कर चले जाओगे, तो हमारा अवलब कौन रह जायगा?

हे धर्म का कभी त्याग न करनेवाले! जिनका वियोग असह्य होता है, ऐसे पिता, माता तथा सुखद नगर से बिछुड़कर भी तुम्हारे कारण हम वन मे आने के दुःख से मुक्त हुए हैं। अब क्या तुम भी हमे छोड़कर जाना चाहते हो?

जब वे वीर इस प्रकार प्रार्थना करते हुए, दुःखी मन के साथ खड़े रहे, तब उन्हें देखकर जटायु ने कुछ विचार कर कहा—हे तात! यदि मेरा इस समय मर जाना तुम्हे स्वीकार नही हो, तो तुमलोग जब अयोध्या वापस पहुँचोगे, तब मै उन चक्रवर्त्ती ( दशरथ ) के पास जाऊँगा।

यदि चक्रवर्त्ती स्वर्ग सिधार गये, तो तुम वीर राज्य का भार वहन किये बिना इस वन मे क्यो आये हो? तुम्हारे इस कार्य से मेरी बुद्धि चकरा रही है। अतः, सारा वृत्तात ठीक-ठीक कहो।

पत्राकार अति तीक्ष्ण मनोहर तथा रक्त के चिह्नो से युक्त शूल को धारण करनेवाले हे वीरो! बलवान् देव हो, दानव हो, नाग हो अथवा अन्य कोई भी हो, यदि वे तुम्हे कुछ कष्ट देगे, तो मै उनके प्राण हरूँगा और तुम्हे राज्य प्रदान करूँगा।

तात (जटायु) के यो कहने पर सीता-पति ने अपने अनुज की ओर देखा। तब उस ( लक्ष्मण ) ने अपनी विमाता के कारण उत्पन्न सारी घटना को सपूर्ण रूप से कह सुनाया।

तब जटायु ने राम से कहा—तुम अपने पिता के सत्य-वचन की रक्षा के लिए अपनी विमाता की आज्ञा को शिरोधार्य करके पृथ्वी ( के राज्य ) को अपने भाई ( भरत ) को सौंपकर यहाँ आये हो। हे वदान्य! मेरे तात! तुमने जो साहसपूर्ण कार्य किया है, उसे और कौन कर सकता है?

यों कहकर कमल-समान नयनोंवाले ( राम ) का प्रेम से आलिंगन करके उनका सिर सूँघा और आनन्दाश्रु बहाते हुए कहा—हे समर्थ कुमार । तुमने उन चक्रवर्ती को तथा मुझको अपार यश दिया है ।

फिर, उस महात्मा ( जटायु ) ने कंकणों से भूषित हंस-सदृश देवी ( सीता ) को देखकर ( राम से ) पूछा—हे चक्रवर्ती कुमार ! यह स्त्री कौन है ? कहो ।

तब राम के अनुज ने पूर्वकाल में साकार अंधकार-सदृश ताडका के वध से लेकर शिव-धनु का भंग करने तक की सारी घटनाएँ तथा वन-गमन तक के अन्य प्रसंग भी कह सुनाये ।

उज्ज्वल शिरवाले वयोवृद्ध ( जटायु ) ने सब सुनकर आनन्दित होकर कहा—पुष्प-मालाओं से भूषित हे कुमारो ! समृद्ध देश को त्यागकर आये हुए तुमलोग उज्ज्वल ललाटवाली ( सीता ) के साथ इसी वन में निवास करो। मैं तुमलोगों की रक्षा करूँगा।

तब सबके हृदयों में निवास करनेवाले ( राम ) ने ( जटायु से ) कहा—हे तात ! अगस्त्य महर्षि ने विचार करके, एक अति सुन्दर नदी के तट पर स्थित एक स्थान के बारे में कहा है ।

तब जटायु ने कहा—वह महिमापूर्ण स्थान बहुत ही अच्छा है । तुमलोग वहाँ रहकर अपने धर्म का निर्वाह करो । आओ । मैं तुम्हें वह स्थान दिखाता हूँ—यों कहकर उनपर अपने विशाल पंखों की छाया करता हुआ वह गगन-मार्ग से उड़ने लगा ।

परिशुद्ध चित्तवाले तथा दोषहीन गुणवाले उस जटायु ने उन्हें ( पंचवटी नामक ) उस स्थान को दिखाया और फिर चला गया । उन धनुर्धारी वीरों ने उस सुन्दर उद्यान में अपना निवास बनाया ।

वहाँ के राक्षसों के बल को असंदिग्ध रूप से जाननेवाला जटायु उचित ढंग से विचार करके कंचुकाबद्ध स्तनोंवाली वधू ( सीता ) की एवं अपने पुत्र ( सदृश राम-लक्ष्मण ) की, घोंसले में रहनेवाले अपने बच्चों की तरह रक्षा करता रहा । ( १-४८ )

●

## अध्याय ५

### शूर्पणखा पटल

उन वीरों ( राम और लक्ष्मण ) ने उस गोदावरी नदी को देखा, जो धरती का आभरण थी, उत्तम पदार्थों को प्रदान करनेवाली थी, अनेक धाराओं में प्रवहमाण थी। उष्णता को शांत करनेवाले घाटों से शोभित थी ; एवं पंचविध भंगिमाओं से युक्त थी। ( अर्थात्, १. पर्वत, २. अरण्य, ३. नगर, ४. समुद्र, एवं ५. मरु नामक पाँचों प्रदेशों में बहती थी तथा पूर्वोक्त पाँच प्रदेशों में होनेवाले मनुष्य के व्यापारों का वर्णन

करनेवाली थी )। बहुत स्वच्छ थी। शीतल गुणवाली थी। यों वह नदी उत्तम कवि की कविता के समान थी।[1]

वह दिव्य नदी भ्रमरों से गुंजित, कमलपुष्प-रूपी अपने वदन को विकसित किये, सुरभित नीलोत्पल-रूपी नयनों से एकटक देखती हुई, क्रमशः एक के पश्चात् एक करके आनेवाली लहरों के करो से उत्तम पुष्पों को बिखेर रही थी, मानों उन प्यारे कुमारो के चरणों की पूजा करके उनको प्रणाम कर रही हो।

चंचल जल से पूर्ण वह नदी, निरपराध तथा सत्य-युक्त उन कुमारों को वन-जीवन के कष्ट उठाते देखकर, उमड़ते हुए प्रेम से, सद्योविकसित नीलोत्पल-समुदाय-रूपी अपने मनोहर नेत्रों से अश्रु-बिंदु बहाती हुई, अत्यन्त द्रवित होकर मानो दहाड़ मारकर रो रही थी।

दीर्घ धनुर्धारी ( राम ), नाल-संयुक्त कमलपुष्प-रूपी शय्या पर युगल नयनो के जैसे विश्राम करनेवाले चक्रवाक-मिथुन को देखते और अपनी प्रियतमा ( सीता ) के वक्ष की ओर दृष्टि फेरते तथा उत्तम आभरणों से भूषित सीता महिमावान् प्रभु ( राम ) के कंधो मे रमे हुए अपने मन के साथ उन्ही ( कंधों ) के जैसे शोभित होनेवाले रत्नमय पुलिनो की ओर देखती।

उत्तम प्रभु ( राम ), हंसो को ( उनके आने की आहट पाकर ) वहाँ से हट जाते हुए देखकर अपने समीप मे आनेवाली सीता की पदगति को निहारते हुए मंदहास करते। तब वहाँ पर आकर, जल पीकर लौट जानेवाले मत्तगजो को देखती हुई वह देवी भी एक नवीन मंद-मुस्कान से खिल उठती।

धनुष को अपने विशाल कर में धारण करनेवाले वीर ( राम ), जब जल से समृद्ध उस नदी में लताओ को हिलते हुए देखते और अपनी प्रियतमा की कटि को देखते, तब सीता अंधकार-सदृश कांतिवाले मनोहर कुवलय-पुष्पो के मध्य अरुण कमल को विकसित देखती और ( उस दृश्य में ) अपने प्रभु के सौंदर्य को देखती।

राम, इस प्रकार चलकर उस नदी के निकट, शीतल 'पंचवटी' नामक पुष्पभरे उद्यान में जा पहुँचे और वहाँ अनुज के द्वारा निर्मित एक सुन्दर पर्णकुटी मे निवास करने लगे। फिर एक दिन—

( शूर्पणखा उस आश्रम मे आ पहुँची ) जो नीलरत्न-समान कांतिवाले राक्षस—

---

१. तमिल काव्य-लक्षणो के अनुसार कविता मे 'तुरै' और 'तिणै' नामक दो लक्षण होने चाहिए। तुरै का अर्थ है 'अहम्' और 'पुरम्'। ये क्रमशः मनुष्य के आंतरिक भाव और बाह्य-व्यापार को व्यक्त करते हैं। पुरम् की अपेक्षा अहम् को व्यक्त करनेवाली कविता अधिक सुन्दर होती है। नवरसो मे शृंगार को अहम् में और अन्य रसो को पुरम् मे अंतर्भूत किया जा सकता है। 'तुरै' शब्द में श्लेष से घाट का अर्थ भी है। तिणै का अर्थ है पाँच प्रकार के प्रदेश। इन्ही पाँच प्रदेशो की भूमिका पर मनुष्य-जीवन की सुख-दुःखात्मक विभिन्न दशाओं का चित्रण करना प्राचीन तमिल कवियों की परिपाटी रही है। नदी और कविता—दोनों का संबंध इन पाँच प्रदेशों से दिखाया गया है। यह पद कंबन की कविता-कौशल का एक सुन्दर नमूना है। —ले०

राज ( रावण ) के समूल विनाश का कारण बननेवाली थी और किसी के जन्मकाल में ही उसके प्राणों के साथ उत्पन्न होकर, अपना प्रभाव दिखाने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा करती हुई किसी व्याधि के सदृश थी ;

जो ताँबे के जैसे लाल और घने केशोंवाली थी। राहु को भी मद कर देनेवाले शरीर से युक्त थी। स्वर्ग के देवों, तपस्वियों तथा समुद्र से आवृत धरती के लोगों का एक साथ विनाश करने की शक्तिवाली थी ,

किसी क्रूर कार्य के हेतु अकेले ही उस वन में निवास करनेवाली थी। वह ऐसी दक्ष थी कि इस सारे संसार में सर्वत्र अनायास ही घूम सकती थी। ऐसी वह ( शूर्पणखा ) राघव के निवासभूत उस आश्रम में आई।

अपने बंधुजनों का अंत खोजनेवाली उस शूर्पणखा ने, पूर्वकाल में पूजनीय देवताओं की इस प्रार्थना पर कि—'राक्षस लोग हमारा विरोध करते हैं, इसलिए आप उनका नाश करें', आदिशेष पर योगनिद्रा छोड़कर संसार में अवतीर्ण हुए प्रभु को देखा।

वह सोचने लगी—मन में रहनेवाले ( मन्मथ ) के आकार नहीं होता। देवेन्द्र के सहस्र नयन होते हैं। शिवजी के कमल-तुल्य नयन तीन होते हैं। अपनी नाभि से सारी सृष्टि की रचना करनेवाले ( विष्णु ) के चार भुजाएँ होती हैं। ( अतः, यह उनमें से कोई नहीं है। )

वह फिर विचार करने लगी—तो क्या जटा-जूट से शोभित (शिव) के (ललाट) नेत्र से देखे जाने से जलकर अनंग बना हुआ वह ( मन्मथ ) ही, श्रेष्ठ तप करके अब पहले से भी अधिक सुन्दर रूप प्राप्त करके यहाँ आया है।

वह सोचने लगी—इसकी मनोहर बाहुएँ, उत्तम लक्षणों से पूर्ण हैं। ( आजानु ) लंबी होकर सुषमा का निवास-स्थान बनी हैं। वृक्ष भी इनकी समता नहीं कर सकते। पर्वत भी इनके सम्मुख क्षुद्र हैं। तो क्या ये बल से प्रभूत दिग्गजों की सूँड़ें ही हैं?

धनुर्युद्ध में निपुण इस व्यक्ति के वीरतापूर्ण कंधों की समता शिलामय पर्वत भी नहीं कर सकते। किसी अत्युन्नत इन्द्रनील रत्न के पर्वत को छोड़कर, प्रख्यात मेरु-पर्वत भी, स्वर्णमय होने से, इन ( कंधों ) की समता नहीं कर सकता।

नाल पर उठे हुए रक्तकमल के दलों की समता करनेवाले इसके नयनों तथा पर्वत के समान उन्नत आकार से शोभायमान इस पुरुष की, एक कंधे से दूसरे कंधे तक फैले हुए ( वक्ष ) प्रदेश को दृष्टि-पथ में लाने की चेष्टा करूँ, तो मेरे नेत्र इतने विशाल नहीं हैं कि इस विशाल वक्ष को पूर्णतया एक साथ देख सकें।

यह सुन्दर अति-उज्ज्वल वदन क्या प्रफुल्ल कमल के जैसा है? ( नहीं, उससे भी अधिक सुन्दर है )। क्या किरणों से पूर्ण चन्द्र को ( इसके वदन का ) उपमान कहें? पर उस ( चन्द्र ) की कलाएँ तो क्षीण होती रहती हैं। वह जब पूर्ण रहता है, तब भी उस में कलंक रहता है ( अतः, वह इसके वदन का उपमान नहीं हो सकता )।

ऐसे मनोज्ञ सौंदर्य से पूर्ण यह पुरुष किस प्रयोजन से, व्यर्थ ही अपने सुन्दर शरीर

को कष्ट देता हुआ यों व्रताचरण कर रहा है ? न जाने तपस्या ने स्वयं कैसी तपस्या की है कि ऐसे नवीन कमल-तुल्य नयनों से युक्त यह पुरुष उस ( तपस्या ) को अपनाये हुए है ?

समुद्र-रूपी वस्त्र से शोभित, सुन्दर रूपवाली, गज की गति से युक्त पृथ्वी का स्त्रीत्व भी कैसा ( सार्थक ) है ? उसपर उगी हुई हरियाली ऐसी है, मानो इस पुरुष के पदतल के स्पर्श से वह ( पृथ्वी ) पुलक से भर गई हो।

कटि में बँधे हुए करवाल से शोभित इस पुरुष की उज्ज्वल कांति को दिनकर ने कदाचित् देखा ही नहीं है। इसीलिए, मन में लज्जा का अनुभव न करके, वह दूर तक अपनी किरणों को प्रसारित करता हुआ सचरण करता है।

दुर्लंघ्य महान् पर्वत को भी जीतनेवाले उन्नत कंधों से युक्त इस पुरुष के अधर का ससार में उचित उपमान क्या दूँ ? हे मन। यदि प्रवाल से इसकी उपमा दूँ, तो तू मेरा धिक्कार करेगा ( क्योंकि वह उपमान-योग्य नहीं है )। अब किस उत्तम पदार्थ को इसका उपमान बताऊँ ?

सब कलाओं से पूर्ण चंद्रमा के समान शोभायमान इस सुन्दर की, सूर्य को भी ( अपनी कांति से ) विचलित करनेवाली कटि को प्राप्त करने के लिए, न जाने, इन वल्कलों ने कौन-सा तप किया था , दोषहीन पीतांबर ने कदाचित् वैसा तप नहीं किया।

लंबे, घुँघराले, झुकी हुई मेघ-पंक्तियों के समान दीखनेवाले, मध्य में टेढ़े एवं काले केश-पाश को, यदि इसने जटा बनाकर न पहन लिया होता, तो उसे देखकर सब युवतियों के प्राण निकल गये होते।

प्रकट प्रकाशवाले उत्तम आभरण भी यदि ( इसके शरीर को ) प्राप्त करें, तो क्या वे इसके सौंदर्य को बढा सकेंगे ? क्या अच्छे लक्षणों से युक्त अनुपम रत्न किसी दूसरे रत्न को धारण करके और अधिक प्रकाश से चमक उठेगा ?

जो इन्द्र, वर प्राप्त करके भी इसके परस्पर तुल्य, चरणों की धूलि की भी समता नहीं कर सकता, वह सब लोकों पर शासन करता है। ( किन्तु ) इस ( राम ) में ब्रह्मा ने सब उत्तम लक्षणों को प्रकट किया है, फिर भी यह अरण्य में निवास करता है। इस कारण ब्रह्मा भी निन्दा का पात्र हो गया है।

उस ( शूर्पणखा ) के मन में ऐसी वासना उमड़ी कि नदी का प्रवाह और समुद्र भी उसके सम्मुख छोटे पड़ गये। उसकी बुद्धि ( उस वासना-प्रवाह में ) निमग्न हो गई, जिससे उसका शील इस प्रकार क्रमशः घटने लगा, जिस प्रकार धर्म-कार्य के लिए कुछ दान दिये बिना अपने धन को बचाकर रखनेवाले व्यक्ति का यश घटता है।

उस समय वह शूर्पणखा गगन पर अंकित चित्र-प्रतिमा के समान थी। उसका मन मलिन हुआ। उसमें वेदना उत्पन्न हुई। प्रभु की प्रकाशमान सुन्दर भुजाओं में अपनी दृष्टि गड़ाये, उस ( दृष्टि ) को फिर खींच लेने में असमर्थ होकर वह स्तब्ध खड़ी रही।

वह इसी प्रकार खड़ी रही। फिर, यह विचार कर कि इसके विशाल वक्ष का आलिंगन करूँगी, अन्यथा अमृत पीने पर भी मेरे प्राण नहीं बच सकेंगे। अब और कोई उपाय नहीं है—उन ( राम ) के सम्मुख जाने का उपाय सोचने लगी।

'खड्गदंतवाली यह राक्षसी सब प्राणियों को अपने उदरस्थ करनेवाली (राक्षसी) है'—यों सोचकर कहीं वे मेरा तिरस्कार न कर दें, इसलिए उस ( शूर्पणखा ) ने कोकिल-तुल्य मधुर वाणीवाली तथा बिंब-समान रक्ताधर से शोभित कलापी-तुल्य सुन्दर रमणी का वेष धारण किया।

उसने रक्तकमल पर आसीन लक्ष्मी का अपने मन मे ध्यान किया। अपने वश में स्थित किसी मन्त्र का जप किया और चंद्र से भी अधिक सुन्दर वदनवाली सुन्दरी का रूप लेकर गगन-तल मे अपनी कांति को बिखेरती हुई नीचे उतर आई।

रूई को एवं रुचिर पल्लव दल को भी दुखानेवाले अरुण मनोहर कमल-दल-से लगनेवाले उसके छोटे-छोटे पैर थे। वह मायाविनी ( शूर्पणखा ), मधुर बोलीवाली पिक-वयनी-सी, कलापी-सी, हंसिनी-सी, उज्ज्वल वंजि लता-सी एवं विष-सी बनकर वहाँ आई।

स्वर्ण-पराग से युक्त कमल में वास करनेवाली ( लक्ष्मी ) देवी के सौंदर्य को तथा शुक के सौंदर्य को भी परास्त कर देनेवाले उत्तम सौंदर्य से युक्त होकर, दो चमकते करवालों ( अर्थात्, नयनों ) से शोभायमान वदन के साथ, वह (गगन-तल से ) यों उतर आई, मानो विद्युल्लता ही मेखला-भूषित विशाल तथा मनोहर रथ (अर्थात्, जघन तट) से युक्त होकर, एक मुग्धा का रूप धारण करके उतर रही हो।

मानो अति सुरभित कल्पवृक्ष की कोई प्रकाशमान लता, एक सुन्दरी का वेष धारण करके, अधिकाधिक बढ़नेवाली कामुकता तथा मधु-सदृश मधुर बोली को पाकर, नेत्रों को आनन्द देनेवाले लावण्य से युक्त होकर, अनुपम हरिणी की चितवन प्राप्त करके कलापी के समान चली आई हो।

( उस शूर्पणखा के ) नूपुर, मेखला, हार, काली सिकता के समान केशों में गुँथे हुए पुष्पों पर मँडरानेवाले भ्रमर—इन सबकी ध्वनि यह सूचना दे रही थी कि कोई युवती आ रही है। चक्रवर्ती कुमार ( राम ) ने उस ध्वनि की दिशा मे दृष्टि डाली।

'स्वर्ग के द्वारा प्रदत्त कोई अनुपम मधुर अमृत हो'—ऐसी वह सुन्दरी, मनोज्ञ स्तनों के भार से कमर लचकाती हुई आ रही थी। अज्ञान को दूर करके उत्तरोत्तर बढ़नेवाले सत्य-ज्ञानरूपी नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् ( के अवतार राम ) ने अपने दोनों नयनों से उसे अपने सम्मुख देखा।

विशाल प्रदेशवाले नागलोक में, स्वर्गलोक मे एवं भूलोक में भी अप्राप्य उस उपमा-रहित स्त्री-लावण्य को देखकर राम ने सोचा—यह कौन है? इसकी सुन्दरता की भी कोई सीमा है? आभरण-भूषित सुन्दरियों में इसका उपमान कौन हो सकता है?

उस समय, कामना से पूर्ण हृदयवाली उस ( शूर्पणखा ) ने ( राम का ) वदन देखा। अपने अरुण करों से उनके चरणों का स्पर्श किया। फिर अपने दीर्घ तथा तीक्ष्ण नेत्र-रूपी शूलों को उनपर फेंककर कटाक्ष-पात करती हुई, हरिणी के समान लज्जा-सी दिखाती हुई, एक ओर खड़ी रही।

वेदों के आदि ( प्रकाशक ) उन ( राम ) ने उससे प्रश्न किया—हे लक्ष्मी-समान देवी! गौरवर्ण सुन्दरी! तुम्हारा आगमन मंगलप्रद हो। यह हमारा पुण्य ही तो है कि

तुम्हारा आगमन हुआ है। तुम्हारा स्थान कौन-सा है? नाम क्या है? बंधु-जन कौन है? तब उस मुग्धा ने अपना वृत्तांत यो कहा—

कमलभव ( ब्रह्मा ) के पुत्र ( पुलस्त्य ) के कुमार ( विश्रवसु ) की मै पुत्री हूँ। त्रिपुर-दाह करनेवाले वृषभ-वाहन ( शिव ) के मित्र रक्त करोंवाले ( कुबेर ) की भगिनी हूँ। दिग्गजो का बल चूर-चूर करके रजत-पर्वत को उठानेवाले, त्रिलोक का शासन करनेवाले रावण की कनिष्ठा ( बहन ) हूँ। मै कामवल्ली कहलाती हूँ।

ये वचन सुनकर वीर ( राम ) ने संशय-भरे चित्त के साथ सोचा कि इसका कार्य कपट-रहित नही है। इससे और कुछ प्रश्न पूछकर इसका हाल जानना चाहिए। फिर, प्रश्न किया—यदि यह कथन सत्य है कि तुम रक्तनेत्रवाले, भयकर आकारवाले (रावण) की बहन हो, तो तुम्हे यह मनोहर रूप कैसे मिला?

उन पवित्र पुरुष ( राम ) के यो पूछने के पूर्व ही, स्फूर्त्ति के साथ कह उठी— मायावी तथा क्रूर राक्षसो के साथ रहना अनुचित समझकर, विवेकशील होकर मैने धर्म को अपनाया और उसी पर स्थिर रहने लगी। फिर ऐसा तप किया, जिससे मेरे पाप मिट गये और देवो का अनुग्रह प्राप्त हुआ।

तब राम ने प्रश्न किया—हे सुन्दरी! देवताओ का अधिपति भी जिसकी सेवा करता रहता है, ऐसे त्रिभुवन के शासक ( रावण ) की तुम बहन हो, तो समृद्धि-वैभव के साथ न आकर, किसी को साथ लिये विना एकाकी यहाँ क्यो आई हो?

वीर के यह पूछने पर सत्यरहित ( शूर्पणखा ) ने कहा—हे विमल! हे प्रभु! मै असज्जन ( रावण आदि ) लोगो के समीप नही जाती हूँ। देवताओं तथा उत्तम मुनियों के संग में रहती हूँ। यहाँ एक काम से तुम्हारे दर्शन करने आई हूँ।

उसके यह कहने पर प्रभु ने यह सोचकर कि सुन्दर ललाटवाली स्त्रियो का हृदय सुलभता से ज्ञात नही होता, इसका हृद्गत भाव पीछे प्रकट होगा, कहा—हे कंकन-भूषित हाथोवाली! मुझसे तुम्हे क्या कार्य है? बताओ। यदि उचित होगा, तो वह कार्य पूर्ण करके तुम्हारा उपकार करूँगा।

कुलीन स्त्रियो के लिए यह सभव नही है कि वे अपने हृदय के काम-भाव को स्वयं ही प्रकट कर सकें। फिर भी, मै ऐसी हूँ कि मेरा कोई नही है। पर मैं क्या करूँ? काम नामक एक ( दुष्ट ) के अत्याचार से तुम मेरी रक्षा करो।—यो उस स्त्री ने कहा।

दूर तक जाकर अवरुद्ध हो लौट आनेवाले, बिखरी हुई लाल-लाल रेखाओ से युक्त, नानाविध भंगिमाएँ दिखाते हुए, चमचमानेवाले काले रंगवाले तथा करवाल-सदृश नेत्रो एवं आभरण-भूषित स्तनो से शोभित उस ( शूर्पणखा ) के ये वचन कहने पर, प्रभु ने विचार किया—यह लज्जाहीन है। नीच स्वभाववाली है। मायाविनी है। इसमें किंचित् भी सद्गुण नही है।

मौन रहनेवाले उदार प्रभु के हृदय का भाव वह नही जान सकी। भ्रमर-समुदाय के गुंजारो से युक्त कुंतलोवाली यह ( शूर्पणखा ) 'मेरे वचनों से मुझपर अनुरक्त हुआ है

अथवा मुझे 'नाहीं' कहनेवाला है ?' यों संकल्प-विकल्प में डोलायमान चित्तवाली होकर आगे इस प्रकार कहने लगी—

चित्रित करने के लिए दुस्साध्य सौंदर्य से पूर्ण ! तुम्हारे यहाँ आगमन का समाचार नहीं जानने से मैं सर्वज्ञ मुनियों के आज्ञानुसार उनकी सेवा में ही निरत रह गई। मेरे कलंकहीन शील एवं यौवन यों ही व्यर्थ व्यतीत हुए। यों ही एक-एक दिन एवं उसका प्रत्येक पल व्यर्थ ही चले गये।

यह सुनकर प्रभु ने मन में यह विचार कर कि यह नीच राक्षसी नीति-रहित है, अनैतिक कार्य करने का निश्चय करके यहाँ आई है, उससे कहा—हे सुन्दरी ! तुम्हारी इच्छा परंपरागत आचार के अनुकूल नहीं है। तुम ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हो और मैं क्षत्रिय वंश का हूँ।

( तब शूर्पणखा ने कहा— ) हे युद्ध के अलंकारभूत भाले को धारण करनेवाले ! मेरे पिता ब्राह्मण हैं, किंतु अरुंधती-सदृश पातिव्रत्यवाली मेरी माता धरती का राज्य करनेवाले 'मालकटकट' के वंश में उत्पन्न है। यदि मुझे स्वीकार करने में यही ( अर्थात्, मेरा ब्राह्मण-जन्म में उत्पन्न होना ही) कारण है, तो मेरे प्राण अब बच गये। भाव यह है कि मेरा पिता ब्राह्मण है; किंतु माता क्षत्रिय है, अतः मैं अनुलोम जाति में उत्पन्न हूँ और शास्त्र-विधान के अनुसार कोई क्षत्रिय मुझसे विवाह कर सकता है।

उस कामुकी ( शूर्पणखा ) के यह कहने पर, अंतर के मंदहास की उज्ज्वलता बाहर प्रकट करनेवाले नीलवर्ण मेघ-सदृश उन प्रभु ने विनोद-पूर्ण चित्त से कहा—हे स्त्रीरत्न ! दुःखहीन राक्षसों के साथ हम, दुःखी मनुष्य, विवाह करें यह उचित नहीं है। यह बुद्धिमानों का कथन है।

तब उसने कहा—अवर्णनीय प्रेमाधिक्य से युक्त मेरी भक्ति-भावना को न देखकर मुझे रावण की बहन कहना ही अनुचित है। आदिशेष पर लेटे हुए अमल ( विष्णु ) जैसे हे सुन्दर ! मैंने पहले ही कहा था कि उस गर्हणीय राक्षस-वंश से पृथक् होकर मैं देवताओं की स्तुति में लगी रहती हूँ।

वेदों के लिए भी अतीत उन भगवान् ( के अवतार राम ) ने तब उससे कहा—हे सुन्दरी ! यदि विचार करके देखें, तो तुम्हारा एक भाई त्रिभुवन का नायक है, दूसरा कुबेर है, यदि उनमें से कोई तुम्हें प्रदान करे, तो हम विवाह करेंगे। अन्यथा, एकाकी आई हुई तुम किसी दूसरे स्थान में जाओ। मुझे तो ( तुमसे बात करने में भी ) आशंका हो रही है।

तब उस ( शूर्पणखा ) ने कहा—हे पर्वत-समान सुन्दर कंधोंवाले ! जो पुरुष और स्त्री, अनुराग से एकीभूत हृदयवाले हो जाते हैं, उनके लिए वेद-विहित विवाह एक गांधर्व विवाह ही है न ? यह विवाह हो जाय, तो मेरे भ्राता भी इसे स्वीकार करेंगे और एक बात कहती हूँ—

मेरा भाई ( रावण ) पहले से ही मुनियों से गहरा वैर रखता है। वह ( शत्रुओं का विनाश करने में ) नीति का भी विचार नहीं करता। अतः, तुम एकाकी रहनेवाले का

उसके साथ मित्रता हो जाय, इसके लिए यही उपाय है ( कि तुम मुझसे विवाह कर लो )। मेरे भाई तुमसे स्नेह करेंगे और चाहो. तो स्वर्ग का राज्य भी तुम्हें दे देंगे और स्वयं तुम्हारा आदेश पूरा करते रहेंगे।

राक्षसों की कृपा मुझे मिल गई। तुम्हारी संगति भी मिली। अब मैं तुम्हारे संग शाश्वत वैभवपूर्ण जीवन सदा व्यतीत करनेवाला हो गया। उत्तम अयोध्या को त्यागने के पश्चात् मेरे पूर्वकृत तप अनेक रूप में फलित हुए हैं। यों कहकर दृढ धनुष के प्रयोग में अभ्यस्त भुजावाले प्रभु अपने दाँतों के उज्ज्वल प्रकाश को दिखाते हुए हँस पड़े।

इसी समय, स्त्रियों की रानी, धरती का रत्न, 'वंजि' लता समान सुन्दरी देवी ( सीता ) सुगंधित पर्णशाला के भीतर से, देवताओं के सुकृत के फलस्वरूप, उस मूर्त्ति के पास आ खड़ी हुई, जो ऐसे प्रकाशमय रूपवान् है, जिसे देखने पर देवलोक, मनुष्यलोक एवं पाताल-लोक के निवासी तथा ब्रह्मा प्रभृति देवों की आँखें भी चौंधिया जाती हैं।

मांस को पकाकर खाने के लिए ललचानेवाले बिल-सदृश मुँह से युक्त उस ( शूर्पणखा ) ने दिव्य ज्योति के समान एक रूप को ( राम और उसके) मध्य में आकर खड़े होते हुए देखा, मानो उसने नक्षत्रों से प्रकाशमान आकाश और धरती में फैले हुए वीर राक्षस-रूपी वन को जलाने के लिए उत्पन्न हुई पातिव्रत्य-रूपी अग्नि-ज्वाला को ही देखा हो।

तब वह ( शूर्पणखा ) यह सोचती हुई कि सुरभिपूर्ण केशोंवाली (अपनी पत्नी) को यह पुरुष वन में नहीं लाया होगा, इतनी सुन्दरता से पूर्ण कोई रमणी इस अरण्य में भी नहीं है, लक्ष्मी अरविंद का आवास छोड़कर क्या अपने चरण-युगल को धरती पर रखती हुई यहाँ आ सकती है ?

वह ( शूर्पणखा ) तन्मय होकर विलंब तक ( सीता को ) देखती खड़ी रही। वह यह सोचती रही—सृष्टिकर्त्ता की कुशलता की सीमा हो सकती है। किंतु मन से कभी न हटनेवाली ( अर्थात्, मन में स्थिर रूप में अंकित रहनेवाली ) सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है। फिर सोचा—इसे देखने पर मुझ स्त्री-जन्म में उत्पन्न हुई की आँखें भी अन्य वस्तुओं पर नहीं जा रही हैं। जब मेरा ही मन ऐसा हो रहा है, तब अब दूसरों की ( अर्थात्, इसे देखनेवाले पुरुषों की ) क्या दशा होगी ?

फिर, उसने युद्ध में निपुण प्रभु को देखा और शुकी-तुल्य देवी को देखा और वैसी ही ( स्तब्ध ) खड़ी रह गई। फिर, वह सोचने लगी—अब अन्य कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। कमलभव ने स्वयं सारी सृष्टि का अवलोकन करके, त्रिभुवन के निवासियों में दोनों प्रकार के (अर्थात्, स्त्री और पुरुष) व्यक्तियों की सुन्दरता की पराकाष्ठा बनाकर इन दोनों को उत्पन्न किया है।

उसने विचार किया—स्वर्ण के जैसे प्रकाश फेंकनेवाले तथा अतसी-पुष्प के जैसे रंगवाले इस पुरुष का शरीर, इस विद्युत्-समान सूक्ष्म कटिवाली के साथ संयुत नहीं है ( अर्थात्, यह पुरुष इस स्त्री का पति नहीं है )। अपनी समता न रखनेवाली, पल्लव-समान चरणोंवाली यह सुन्दरी, मेरे जैसे ही बीच में ( इस पुरुष पर आसक्त होकर ) आई हुई कोई स्त्री है। इसका तिरस्कार ( इस पुरुष से ) कराऊँगी।

तब उस ( शूर्पणखा ) ने ( राम से ) कहा—हे उत्तम ! हे वीर ! यह माया में चतुर है। यह वंचक राक्षसी है। इसका हृदय दुर्जय है। इसे सद्गुणवती समझना उचित नही है। इसका यह रूप सत्य नही है। यह मास खाकर जीवित रहनेवाली है। इसे देखकर मैं डर रही हूँ। इसे मेरे निकट आने से रोको और मेरी रक्षा करो।

यह सुनकर वीर ( राम ) बोले—हे विद्युत्-समान स्त्री ! तुम्हारा ज्ञान खूब है। तुम्हे धोखा देने की शक्ति किसमें है ? यह ज्ञात हुआ कि तुम्हारी मति स्वच्छ है और तुम सद्गुणवाली हो। अहो ! यह ( सीता ) कदाचित् क्रूर राक्षसी ही है। इसे तुम भली भाँति देख लो और अपने उज्ज्वल दाँत-रूपी मोतियों को दिखाकर हँस पड़े।

उस समय, अमृत के जैसी आई हुई, अरुन्धती के सदृश पातिव्रत्यवाली, मधुर बोली एव बाँस के जैसे सुन्दर कंधोंवाली देवी ( सीता ) वीर ( राम ) के निकट आ पहुँची। तब भड़कती अग्नि के सदृश वचकगुण से पूर्ण चित्तवाली ( शूर्पणखा ) यह कहकर ( सीता को ) धमकाने लगी कि हे राक्षस-कुल में उत्पन्न स्त्री, तू क्यों बीच मे आ पड़ी है ?

हंसिनी-तुल्य वह ( सीता ) भीत हुई। भीत होकर झट ( राम की ओर ) यो दौड़ी कि उसकी विद्युत्-समान सूक्ष्म कटि लचक गई और कोमल चरण दुखने लगे। यो दौड़कर वह कुंजर-समान वीर की पुष्ट भुजाओं से ऐसे लिपट गई, जैसे वर्षाकालिक जल से भरे बादल के मध्य कोई प्रवालमय लता कौंध गई हो।

तब वीर ( राम ) ने यह सोचकर कि वक्र खड्गदतवाले राक्षसो के साथ विनोद करना भी बुरा ही होगा, उस ( शूर्पणखा ) से कहा—तुम कोई अहितकारी कार्य न करो। (मेरा) अनुज यदि तुम्हारा समाचार जान लेगा, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होगा। हे स्त्री ! तुम शीघ्र यहाँ से चली जाओ।

लावण्य से युक्त उस राक्षसी ने कहा—कमल मे, जल मे और कैलास मे निवास करनेवाले करुणा-पूर्ण हृदयवाले देव ( ब्रह्मा, विष्णु और शिव ), अनग तथा अन्य देवता भी मुझे प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं। ऐसी हूँ मैं। मेरी उपेक्षा करके तुम क्षमाहीन इस मायाविनी को चाहते हो, यह कैसे उचित है ?

तब पवित्र चित्तवाले (राम), यह सोचकर कि यह शिलातुल्य कठोर चित्तवाली ( राक्षसी ), मेरे यह कहने पर भी कि मै तुमसे सबध रखना नही चाहता हूँ, हटती नही है, किन्तु कपट-वचन कह रही है—मिथिलापति की पुत्री के साथ विद्युत् के साथ चलनेवाले मेघ के जैसे उस सुन्दर उद्यान के बीच स्थित कुटी मे चले गये।

उनके चले जाने के बाद, यह जानकर कि वे चले गये हैं, शूर्पणखा शरीर से निकले हुए प्राणो के साथ श्वासहीन हो गई। मन में अत्यत विह्वल हुई। उसे कुछ अवलबन नही मिला। मन में क्रुद्ध हुई और सोचने लगी—अंजन-समान काले केशोंवाली उस नारी पर यह पुरुष गहरा प्रेम रखता है।

इस प्रकार चिंतित होकर, वह वहाँ खड़ी नही रह सकी। वह उस पुरुषोत्तम की सगति प्राप्त करने का उपाय सोचती हुई वहाँ से चली गई। यह सोचकर कि यदि मैं इसके शरीर का आलिगन नही करूँगी, तो अपने प्राण खो दूँगी, स्वर्ण-पराग से पूर्ण सुन्दर उद्यान

में स्थित अपने स्फटिकमय आवास मे जा पहुँची। सूर्य भी पश्चिम दिशा मे जा पहुँचा और लाली छा गई।

वह ( शूर्पणखा ) इस प्रकार प्रज्ञाहीन और शिथिल हो गई, मानो काल-सर्प के छेदवाले दत से निकला हुआ विष उसकी देह में संचरण कर रहा हो। प्रख्यात कामाग्नि ( उसके शरीर में ) भड़क उठी।

युद्धकुशल मन्मथ के तीक्ष्ण बाण उसके वक्ष में ऐसे जा लगे, जैसे ताडका नामक क्रूर राक्षसी के विशाल वक्ष में पुरुषोत्तम ( राम ) का तीक्ष्ण शर लगा था; इससे उसके भीत प्राण काँप उठे।

वह ( काम-वेदना से पीडित ) राक्षसी यह विचार करके उठी कि कलाओ से पूर्ण चन्द्रमा को साग बनाकर दृढ धनुर्धारी मन्मथ को ही चबा डालूँ, किन्तु मलय पर्वत से आनेवाला पवन, जब यम के दीर्घ शूल के समान उसके वक्ष पर लगा और पीडा उत्पन्न करने लगा, तब वह निष्क्रिय होकर गिर पड़ी।

( तरंगायमान समुद्र जब अपने शब्द से उसे सताने लगा, तब ) उसने तरंगपूर्ण उस समुद्र को पर्वतो से पाट देना चाहा; किन्तु स्थिर गगन में प्रकाशित होनेवाले पूर्णचंद्र की दीर्घ किरणें उसे भयभीत कर रही थीं, जिससे वह बलहीन होकर कुढ़ती हुई पड़ी रही।

( कभी ) वह क्रुद्ध हो सोचती कि मै इस धरती के सब उद्यानो को विध्वस्त कर, सब पुष्पो को चूर-चूर कर दूँगी; किन्तु अपने पति के सग रहनेवाली लाल मुकुटवाली क्रौंची की ध्वनि सुनकर वह अपने मन मे काँप उठती।

( कभी ) वह क्रोध के साथ सर्प ( राहु ) को लाने का विचार करती, जिससे वह अपने प्रतिकूल रहनेवाले चद्र को निगल जाय, किन्तु उसके पीन स्तनो पर शीतल-मंद पवन के लगने से उसके प्राण तप्त हो उठते और वह व्याकुल हो पड़ी रहती।

( अपने ताप को शात करने के लिए ) वह अपने करो से अति शीतल हिम-खंडो को लेकर अपने पुष्ट स्तनो पर रख लेती, किन्तु ( उसके स्तनो से ) उत्पन्न होनेवाली अग्नि मे, तप्त पत्थर पर रखे हुए मक्खन के समान वे (हिमखंड ) पिघल जाते।

कभी वह कामाग्नि से पीडित होकर निःश्वास भरती हुई अपने शरीर को शीतल जल मे निमग्न करती, किन्तु वह जल ( उसके शरीर के ताप से ) उष्ण हो उठता। वह चिता करती, किन्तु गरजनेवाले समुद्र एवं क्रूर मन्मथ से बचकर रहने का स्थान कहाँ है ?

उसका शरीर इतना तप उठा कि शीतल चंद्रकात की शिला भी उसके स्पर्श से पिघलने लगी। वह काले मेघ को देखती या उत्तम नील रत्नमय स्तभ को देखती, तो ( रम का स्मरण कर ) उन्हे हाथ जोड़ देती।

वह कभी सोचती कि मै किसी भयकर, क्रूर दाँतोवाले सर्प से सुरक्षित पर्वत की बड़ी गुहा मे जाकर रहूँगी, जहाँ मनोहर पूर्णचद्र, शीतल पवन और मदन मुझे पहचान नही सके।

उस समय, उष्णता बढ़ानेवाला मद पवन पहले से भी तिगुने वेग से बढ़कर

उसको तपाने लगा। उसके स्तन उत्तप्त हो उठे। वह क्या उपचार करना है—यह न जानती हुई स्वर्ण रंग के नवपल्लवों की शय्या पर करवटें लेने लगी।

वीर (राम) का आकार उस क्रूर स्त्री की दृष्टि में कालमेघ के समान दिखाई पड़ता। तब वह लज्जित हो उठती, शिथिल हो उठती, चौंक पड़ती; जैसे वह उनको अपने सम्मुख ही देख रही हो। जब वह आकार अदृश्य हो जाता, तब वह कठोर विरहाग्नि में फँस जाती।

अंजन-समान काले मेघ को प्रभु (राम) ही समझकर वह उसे पकड़कर अपने स्तनों से लगा लेती। किन्तु, उस मेघ को भुलसकर मिटते हुए देखकर रो पड़ती। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी की काम-वेदना की कोई सीमा भी थी?

वह यों तप रही थी, जैसे प्रलय-काल की भीषण अग्नि में फँस गई हो। फिर भी, वह मूढ स्त्री चक्रधारी (राम) को प्राप्त कर जीवित रहूँगी—इस आशा-रूपी ओषधि से अपने प्राणों को रोके रही।

कभी वह (राम से) प्रार्थना करने लगती—तुम क्रूर माया को अधिकाधिक बढ़ाने की शक्ति रखनेवाले मेरे विष-सदृश हृदय में आ जाओ और मेरी वेदना को दूर करो। कभी कहती—हे अंजन पर्वत! मुझपर कृपा करो। वह इस प्रकार पीड़ित हुई, जैसे उसने विष पी लिया हो।

प्राण जाने पर भी कामना को न त्यागनेवाली वह (स्त्री) सोचती—(उस स्त्री के नयन) नीलोत्पल हैं? या मीन हैं?—ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले नयन-युगल से युक्त वह स्त्री (सीता) लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दर है। ऐसी दशा में वह (राम) क्या मुझ पापी की ओर दृष्टि भी फेरेगा?

वह सोचती—इस पुरुष के पास रहनेवाली सुन्दरी उत्तम पातिव्रत्यवाली है। रक्त कमल में वास करनेवाली लक्ष्मी ही है, फिर सोचती—मैं उस (पुरुष) पर अनुरक्त होऊँ, तो भी वह इस वेदना से तप्त नहीं होता।

जब उसकी काम-वेदना इस प्रकार बढ़ रही थी, तब सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे तीनों लोकों में भरे हुए राक्षस-रूपी गाढ अन्धकार को दूर करने के लिए राम ही उदित हुए हों।

उस क्रूर राक्षसी ने प्रभात को देखा और अपने प्राणों को भी सुरक्षित देखा। उसने विचार किया—जबतक वह अनुपम सुन्दरी उसके समीप रहेगी, तबतक वह पुरुष आँख उठाकर भी मुझे नहीं देखेगा, अतः मैं शीघ्र जाकर उस स्त्री को उठा ले आऊँगी और कहीं छिपा दूँगी। फिर, उस पुरुष के साथ सुखी जीवन व्यतीत करूँगी।

उसने (पर्णशाला में) आकर देखा—राम गोदावरी के सुन्दर घाट पर सन्ध्योपासना में मग्न हैं, पर उसने यह न देखा कि समीपस्थ घनी छाया से पूर्ण सुरभित उद्यान में रहकर उनके अनुज, चंद्र-समान ललाटवाली देवी (सीता) की रक्षा कर रहे हैं।

उसने सोचा कि यह (सीता) अकेली है, मेरा उद्देश्य सफल हुआ, अब सोचते हुए विलम्ब करना उचित नहीं है। और, कलंकित चित्तवाली वह, कलापी (तुल्य सीता को)

पकड़ने के लिए उनका पीछा करती हुई गई। फल-भरे उद्यान में स्थित लक्ष्मण ने यह देख लिया।

उन्होंने क्रुद्ध होकर गरजते हुए कहा—अरी! ठहर। फिर, झट उसके निकट आकर देखा—यह स्त्री है, हाथ में धनुष लिया नहीं है; फिर उस (शूर्पणखा) के भड़कती आग-जैसे दीखनेवाले केशों को अपने अरुण कर से ऐंठकर पकड़ लिया। उसके पेट पर शीघ्रता से एक पदाघात किया और अपने कर में उज्ज्वल करवाल धारण किया।

तब वह उन (लक्ष्मण) को भी उठाकर आकाश-मार्ग से उड़ जाने का प्रयत्न करने लगी। इतने में (लक्ष्मण ने) उसे झट नीचे ढकेल दिया और 'अब-आगे कभी ऐसा कार्य न करना'—कहते हुए उसकी नाक, कान और कठोर स्तन के चूचुकों को एक-एक कर के काट दिया। फिर शांतकोप होकर उसके केशों को छोड़ दिया।

उस क्षण, वह (शूर्पणखा) अपना मुँह खोलकर चिल्ला उठी। वह ध्वनि सब दिशाओं में व्याप्त हो गई और देवताओं के कानों में भी जा पड़ी। अब उसकी दशा का क्या वर्णन करना है? उसकी नाक के छेद से प्रवाहित रक्त से धरती गल गई।

उसकी हत्या न करके, लक्ष्मण ने अपने उज्ज्वल करवाल से उस क्रूर (राक्षसी) के नाक-कान काट दिये। वह कार्य ऐसा था, जैसे रावण के रत्नमय मुकुट-भूषित शिरों को काटने के लिए सुदिन का निर्णय करके, उसका प्रारंभ करते हुए पर्वत-शिखर को ही उन्होंने काट दिया हो।

वह धरती पर धड़ाम से गिर पड़ी और पैर उछालती हुई दहाड़ मारकर रोने लगी। वह ऐसी दिखाई पड़ती थी, मानो यम के समान कठोर शूल को धारण करनेवाले क्षुब्ध हो युद्ध करनेवाले खर प्रभृति राक्षसों के विनाश की सूचना देता हुआ कोई कालमेघ रक्त की वर्षा कर रहा हो।

दुःख स्वयं जिनसे डरकर दूर भागता था, ऐसे राक्षसों के कुल में उत्पन्न वह स्त्री, आकाश में उछलती, धरती पर गिरती, लोट जाती, शिथिल पड़ जाती, व्याकुल हो हाथ मलती, मूर्च्छित होती, मूर्च्छा से जग पड़ती, बार-बार कहती—मुझ स्त्री-जन्म पानेवाली का आज कैसा पराभव हुआ?

हाथ से नाक दबाती, लुहार की भाँथी के जैसे निःश्वास भरती, धरती पर हाथ मारती, अपने युगल स्तनों पर हाथ रखती, उसकी देह स्वेद से भर जाती, अपने बलवान् पैरों को लिये चारों ओर दौड़ती, फिर रक्त बहाती हुई शिथिल पड़ जाती।

सोत से उमड़नेवाले जल के समान बहनेवाले लहू से जो कीचड़ बन गया, उसमें लोटती हुई वह राक्षसी पीड़ा को नहीं सह सकी और अपने कुल के लोगों के नाम पुकार-पुकारकर रोने लगी, जिससे यम भी भयभीत हो गया और देवता भय से भागने लगे।

अग्नि-ज्वाला को कर में धारण करनेवाले (शिव) के पर्वत (कैलास) को उखाड़कर उठानेवाले, हे पर्वत (सदृश रावण)! तुम्हारे धरती पर जीवित रहते हुए ये मुनिवेषधारी धनुष लेकर घूम रहे हैं। क्या यह तुम्हारे लिए अपमानजनक नहीं है?

'देवता लोग आँख उठाकर भी तुम्हारी ओर नही देख सकते—क्या यह कहने मात्र से तुम्हारा काम हो गया ? आओ, यहाँ की दशा भी तो देखो।'

हे प्रलय-काल में भी न डिगनेवाले त्रिमूर्त्ति एव देवो से भी अधिक बल से युक्त ( रावण )! 'बाघिन के पीछे-पीछे जाते हुए उसके बच्चे कभी पीडित नही होते'—समुद्र से आवृत धरती के लोगों का यह कथन भी क्या असत्य है ? आओ, मेरी इस वेदना को भी तो देखो।

हे रावण ! जब देवेन्द्र ऐरावत पर आरूढ हो देवताओ की सेना के साथ गर्जन करता हुआ युद्ध करने के लिए सम्मुख आया था, तब तुमने उसे परास्त करके भगा दिया था। हे इन्द्र की पीठ को देखनेवाले ! आओ, मेरे अपमान को भी तो देखो।

हे शिव के द्वारा प्रदत्त बड़े करवाल को धारण करनेवाले ! तुम पवन, जल, अग्नि, कालातक यम, स्वर्ग एवं ग्रहों से अपनी सेवा कराने में समर्थ हो। क्या अब इन दो नरो के बल से परास्त हो निर्बल होकर बैठे हो ?

चलते समय जिनके भारी पैरों के पद-तल से चिनगारियाँ निकलती हैं, ऐसे मद-भरे दिग्गजों के दाँतो को तोड़नेवाले तथा पर्वतों को फोड़नेवाले कंधो से युक्त, हे बलवान् ! रूप में मन्मथ के समान होने पर भी ये मनुष्य तुम्हारे जूते के नीचे की धूल के बराबर भी नही हैं, क्या इनपर तुम क्रोध न करोगे ?

हाय ! क्या मधुपूर्ण सुगन्धिक पुष्प-मालाधारी देवो को मिटाने की, रावण एवं उसके भाइयो की शक्ति अब नष्ट हो गई है ? क्या अब वह शक्ति मांसमय शरीरवाले, हमारे कुलवालों का आहार बननेवाले मनुष्यो के पास चली गई है ?

युद्ध में सम्मुख पड़नेवाले, जिसे देखकर यों सदेह कर उठते हैं कि यह हर है, विष्णु है अथवा ब्रह्मा है—हे ऐसे शक्ति से संपन्न खर ! घने वृक्षों से भरे विशाल वन में एकातवास करनेवाले मुनिवेषधारी मनुष्यो की शक्ति से, अथवा पराक्रमी राक्षसों के निर्वीर्य हो जाने से मुझपर जो विपदा आ पड़ी है, उसे तू देख।

इंद्र, हर, ब्रह्मा तथा अन्य देव जब तुम्हारी सेवा में निरत रहते हैं, सप्तलोकों के निवासी तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं, तब तुम्हारे पूर्णचन्द्र-सदृश श्वेतच्छत्र की छाया में आसीन रहते समय, तुम्हारी सभा के मध्य मे निर्लज्ज-सी आकर किस प्रकार अपना मुख दिखा सकूँगी ?

शिव के आसन कैलास को उखाड़नेवाले हे मेरे भाई। मेरे बल को चूर करते हुए, पदाघात से मुझे नीचे गिराकर जिस ( मनुष्य ) ने मेरी नाक काट दी, वह जीवित रहकर अपनी भुजा को ( गर्व से ) देखे और मै नीचे गिरकर रोती रहूँ—क्या यह उचित है ? यह वन खर का है न ? तो भी क्या मुझे ये कष्ट भोगने पड़ेंगे ?

दिग्गजो के क्रोध को कम करते हुए, उनके साथ युद्ध करके उनके दाँतो को तोड़नेवाले और उससे प्राप्त यश से फूले हुए कंधोवाले हे रावण। कामना के वशीभूत होकर मैंने नाक खोई और निर्लज्जता से जिस अपमान का भागी हो गई हूँ, इससे क्या तुम्हारा यश कलंकित नही होगा ?

दानवों के कुल को मिटाकर, इन्द्र को वन्दी बनाकर, देवों को दास बनाकर उनसे सेवा करानेवाले हे मेरे भतीजे! अरण्य में दो मनुष्यों ने मेरे कान और नाक काट दिये हैं। क्या, मैं पापिन इस अपमान से यहाँ यों ही मिट जाऊँ?

पूर्वकाल में, हाथ में एक ही धनुष लेकर सप्तलोकों को जलानेवाले, अशमनीय क्रोध के साथ सब दिशाओं को परास्त करनेवाले तथा इन्द्र के दोनों चरणों में शृंखला डालनेवाले हे मेरे भतीजे! क्या इन मनुष्यों का पराक्रम देखने के लिए नहीं आओगे?

शिलाओं को भेदनेवाले शस्त्रों को धारण करनेवाले विशाल करों से युक्त, हे पराक्रमी खर-दूषण आदि! हे अंधकार को मिटानेवाले प्रकाश से युक्त रत्नाभरणों को धारण करनेवाले राक्षसों के कुल में उत्पन्न लोगो! लुहार के द्वारा पैनाये गये शस्त्रोंवाले कुंभकर्ण-जैसे ही क्या तुम लोग भी धरती में कहीं सोये पड़े हो? मेरी पुकार तुमलोग सुन क्यों नहीं रहे हो?

यों अनेक वचन कह-कहकर वह बलवान् राक्षसी शोक-मग्न हो रोती हुई वहाँ की मनोहर आश्रम-भूमि पर लोटती रही। उस समय, अपने कर में दृढ धनुष लिये, विशाल भुजावाले, मरकत पर्वत (सदृश राम), (गोदावरी) नदी पर सध्या आदि नित्यकर्म समाप्त करके वहाँ आये।

तब वह (शूर्पणखा), वहाँ आनेवाले (राम) को मार्ग के मध्य देखकर, अपनी छाती पीटती हुई, आँखों से अश्रु की वर्षा करती हुई, अपने शोणित के प्रवाह से वहाँ की सुन्दर भूमि को कीचड़ से भरती हुई, यह कहकर कि—'हे प्रभु! हाय! मैं तुम्हारे सुन्दर रूप पर आसक्त होने के अपराध में इस दुर्दशा को प्राप्त हुई हूँ। यह देखो।'—उन (राम) के सामने गिर पड़ी।

प्रभु ने अपने उपमाहीन मन से समझ लिया कि बिखरे केशोंवाली इस (राक्षसी) ने कोई क्रूर कार्य किया होगा। यह भी समझ लिया कि अनुज ने ही इसके दीर्घ कान-नाक काटे हैं। फिर उस (राक्षसी) से पूछा—तू कौन है?

उस प्रश्न को सुनकर क्रूर राक्षसी ने उत्तर दिया—क्या तुम मुझे नहीं पहचानते? वैर के नाम तक को धरती पर से मिटा देनेवाले क्रोध से युक्त, भयंकर पत्राकार भाले को धारण करनेवाले, त्रिभुवन के शासक रावण की मैं बहन हूँ।

तब (राम के) यह प्रश्न करने पर कि, पराक्रमी राक्षसों के स्थान को छोड़कर हमारे तप करने के इस स्थान में तू क्यों आई? उसने उत्तर दिया कि, हे अग्निकण के समान तपानेवाली काम-वेदना के लिए उत्तम ओषधि-समान! मैं कल भी आई थी न?

(तब राम ने प्रश्न किया—) क्या रक्त मीन के समान चंचल, काले वर्ण से युक्त दीर्घ नयनोंवाली, मधुपूर्ण कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी का भ्रम उत्पन्न करनेवाली, जो स्त्री कल आई थी, वह तुम्ही हो?—(राम के) यों प्रश्न करने पर उस राक्षसी ने उत्तर दिया—सुन्दर नेत्रोंवाले हे राजन्! स्तन, ताटंक-भूषित कान और लतातुल्य नासिका को काट देने पर सुन्दरता कहाँ रह जाती है?

यह सुनकर प्रभु, दाँतों को किंचित् खोलकर, मुस्कराये और अनुज का मुख

देखकर पूछा—हे वीर ! इसने क्या अपराध किया था कि तुमने झट इसके कान-नाक काट दिये ? तब शूर तथा उदार गुणवाले ( लक्ष्मण ) ने उनके चरणों पर नत होकर कहा—

अपने तीक्ष्ण दाँतों से ( मास ) खाने के उद्देश्य से या क्रूरकर्मा राक्षसों के उभाड़ने से, न जाने किस कारण से, यह दुर्गुणवाली राक्षसी अपनी आँखों से चिनगारियाँ उगलती हुई अज्ञात रूप से आई और उत्तम गुणवाली देवी (सीता) की ओर क्रोध करके झपटी।

धनुर्धारी लक्ष्मण के अपना कथन समाप्त करने के पूर्व ही, वह क्रूर राक्षसी बोल उठी—हे ऐसे देश के अधिपति, जहाँ के जलाशयों मे कीचड़ मे स्थित शंखकीट को अपने पति के सग रहते देखकर गर्भिणी मंडूक-स्त्री (ईर्ष्या से) क्रुद्ध हो जल को हिलाने लगती है! अपनी सौत को देखने पर किस स्त्री का मन क्रुद्ध नही होगा ?

( तब राम ने कहा—) भीरुता से ( माया ) युद्ध करनेवाले क्रूर राक्षसों के विशाल कुल को एक साथ मिटाने के लिए हम यहाँ उनके स्थान को खोजते हुए आ पहुँचे हैं। अब तू कुछ निंदा-वचन कहकर हमारे हाथ से अपने प्राण न गँवा। सत्य के आवासभूत इस वन को छोडकर तू दूर भाग जा। राम के ये वचन सुनकर भी वह राक्षसी बोल उठी—

जिस बुढापे मे बाल पक जाते हैं और ( शरीर मे ) झुर्रियाँ पड़ जाती हैं—ऐसे बुढ़ापे से रहित ब्रह्मा आदि सब देवता, रावण को कर देते हैं। अतः, तुमने जल्दी मे जो यह काम कर दिया है, वह उचित नही किया। यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो, तो सुनो, मै एक बात कहती हूँ।

वह दशमुख इतना क्रोधी है कि जो कोई जाकर उससे यह कहे कि तुम्हारी बहन की नाक कट गई है, तो वह उस कहनेवाले की जीभ काट ले। अतः, मेरी नाक काटकर तुमलोगों ने अपने कुल की जड़ ही काट दी है। अब तुम्हारे प्राण नही बच सकते। हाय! अपने इस सारे सौंदर्य को तुमने धूल मे मिला दिया।

अब स्वर्ग के रक्षकों ( देवताओ ), पृथ्वी के रक्षको ( राजाओ ) और नाग-लोक के रक्षको में ऐसा कौन है, जो अपने शिरों की रक्षा करते हुए तुमलोगो की देह की भी रक्षा कर सके ? यदि तुम मेरे प्राणो की रक्षा करो ( अर्थात्, विरह-पीडा से मेरी रक्षा करो ) तो मै तुम्हारी रक्षा करूँगी। अन्यथा वे रावण हैं ( जो तुम्हारा विनाश करेंगे )—यों उस ( शूर्पणखा ) ने कहा।

उसने आगे कहा—चारित्र्य की रक्षा करनेवाले अचचल पातिव्रत्य-धर्म से युक्त स्त्रियाँ, अपने महत्त्व को स्वय नही कहती हैं। तो भी मै, तुम पर अधिक प्रेम होने के कारण, यह कह रही हूँ। क्या तुम अपने इस अनुज को नही बतलाओगे कि मै देवताओं से भी अधिक बलवान् ( रावण ) की बहन हूँ और ससार के सब प्राणियो से अधिक बलवान् हूँ।

बडे युद्धो मे भी मै तुमलोगो की रक्षा कर सकती हूँ। तुम्हें उठाकर गगन-मार्ग से जा सकती हूँ। मास-सदृश स्वादवाले अनेक फल लाकर तुम्हे दे सकती हूँ। तुम्हारे

मन में जो भी इच्छा उत्पन्न हो, उसे मैं पूरा करूँगी। जो रक्षा कर सकते हैं, उनसे द्वेष करने से क्या लाभ? और, सुमन के जैसे कोमल स्वभाववाली इस नारी से ही क्या प्रयोजन है? कहो तो सही।

उत्तम कुल, उत्तम स्वभाव, उद्दिष्ट वस्तुओं को लाने की शक्ति, बुद्धि, आकार, यौवन—सब विषयों में मेरी समता करनेवाली कोई स्त्री पृथ्वी के निवासियों में या स्वर्ग के निवासियों में भी कौन है?—यदि तुम समर्थ हो तो कहो।

तुमने मेरी नाक काट दी। उससे क्या हानि है? यदि तुम मुझे स्वीकार करो, तो मैं एक क्षण में उसे उत्पन्न कर लूँगी। मेरा सौंदर्य पूर्ण हो जायगा। यदि तुम्हारी कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो गया, तो नासिका के लोप से क्या हानि होगी? अत्युन्नत दीर्घ नासिका भी तो स्त्रियों के लिए (सौंदर्य का) लोप करनेवाली ही होती है न?

मन न मिलने पर ही तो द्वेष उत्पन्न होता है? यदि मन में प्रेम हो और मैं तुम्हें स्वीकृत हो जाऊँ, तो मेरे प्राण भी तुम्हारे अधीन हो जायेंगे। देखनेवाले सब लोग मुग्ध होकर प्रेम करने लगें, ऐसा सौंदर्य भी विष-समान ही तो होता है, विवाह करनेवाला पति जितना सौंदर्य चाहे, केवल उतना ही सौंदर्य हो, तो क्या (तुम) उसे स्वीकार नहीं करोगे?

शिव, कमलभव चतुर्मुख, विष्णु, विनाशकारी वज्र को धारण करनेवाला इन्द्र सब मिलकर एक रूप धारण करके खड़े हों—ऐसे रूपवाले, हे सुन्दर। सब लोकों के प्राणियों को अपने अनुपम बाणों से सतानेवाला मन्मथ भी क्या तुम्हारा भाई ही है? वह (मन्मथ) भी तुम्हारे इस अनुज-जैसा ही करुणाहीन है।

हे स्वर्णमय वीर-कंकण से भूषित वीरो! तुमने यही सोचकर कि यह (शूर्पणखा) सदा के लिए इस सुन्दर रूप में हमारे पास ही रहे, अन्य कहीं नहीं जा सके और कोई इसे देखकर मोहित न हो जाय—तुमने मेरे कान-नाक काट दिये। तुमने कुछ बुरा नहीं किया। अन्यथा, मेरी नाक काटकर बड़ा छेद कर देने में तुम्हारा अन्य क्या प्रयोजन हो सकता है? तुम्हारा वह उद्देश्य जानकर ही अब मैं पहले से दुगुना प्रेम करने लगी हूँ। मैं क्या ऐसी निर्बुद्धि हूँ (जो इतना भी नहीं समझ सकूँ)?

उग्र कोपवाले, शस्त्रधारी राक्षस, यह समाचार जानकर यदि लाल आँखें करेंगे, तो सारा संसार ही तुम्हारे कारण विनष्ट हो जायगा। उत्तम कुल में उत्पन्न व्यक्ति धर्म का विचार करके ऐसा विनाश नहीं होने देंगे। तुम यह विचारकर यह अपवाद दूर करो और मेरा उपकार कर मेरे संग रहो—यह कहकर वह विनय करती खड़ी रही।

तब रामचन्द्र ने कहा—हे क्रूर राक्षसी! संसार के सब प्राणियों को दुःख देनेवाली क्रूर राक्षसी तुम्हारी माता की जननी ताडका के प्राण जिस शर ने हर लिये थे, वह अभी तक मेरे पास ही है। इतना ही नहीं, भुजबल से युक्त तथा पुष्प-मालाओं से भूषित क्रूर राक्षसों के कुल का विनाश करने के लिए ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ। तू अपना क्षुद्र व्यवहार त्याग दे। यह कहकर रामचन्द्र ने आगे कहा—

हम, सारी पृथ्वी का शासन करनेवाले चक्रवर्ती दशरथ के पुत्र हैं और माता की आज्ञा से सुगंधित वन में आये हुए हैं। वेदज्ञों तथा तपस्वियों के कहने से हम, अपार सेना-समुद्र से युक्त राक्षसों के वंश का विनाश करेंगे और उसके पश्चात् ही पर्वत-सदृश सौधोंवाली अयोध्या नगरी में प्रवेश करेंगे—इसे ठीक समझ ले।

राक्षसों के सम्मुख सन्मार्ग पर चलनेवाले देवता लोग खड़े नहीं रह सके और पराजित हो भाग गये, तो यहाँ ये दो मनुष्य क्या कर सकेंगे?—ऐसा विचार मत कर। यदि तू शक्तिमान् है, तो जा, क्रोधी, तीक्ष्ण शस्त्रधारी राक्षसों में तथा बलवान् यक्षों में, जो अत्यन्त शक्तिमान् हैं, उन्हें ले आ। हम उन सबका विनाश कर देंगे।

तब उस राक्षसी ने कहा—हे धान आदि अनाजों को अधिकाधिक उत्पन्न करने-वाली जल-समृद्धि से पूर्ण देशवाले! सुनो, यदि तुम मुझे मुँह के ऊपर ओंठ से बाहर उभरे हुए दाँतोंवाली, विकृत रूपवाली कहकर मेरा तिरस्कार न करो और मुझसे प्रेम करो, तो उन राक्षसों को अवश्य मिटा सकोगे। (उनकी) माया को यथातथ रूप में जान सकोगे। उनको संपूर्ण रूप से परास्त कर सकोगे। उनके क्रूर कृत्यों से तुम बच सकोगे। फिर उसने कहा—

तुम इस बाँस-सदृश कंधोंवाली को न त्यागो, तो भी मैं क्या तुम्हारे लिए भार हो जाऊँगी? यदि तुम मायावी तथा सद्ज्ञान-हीन राक्षसों से युद्ध करने का विचार करते हो, तो पंचेंद्रियों के समान विविध माया करनेवाले, उनके यंत्रों को समझकर मैं उनसे तुम लोगों की रक्षा करूँगी। 'साँप के पैर साँप ही जानता है' वाली कहावत को जानते हो न?

यदि तुम यह सोचते हो कि हृदय से प्रेम करके ही इस (सीता) ने तुमसे विवाह किया है, तो अपने इस अनुज के साथ—जिसने इतना भी विचार न किया कि राक्षसों के साथ युद्ध करना पड़े, तो हम तीनों एक साथ मिलकर रक्त की नदियाँ बहा देंगे और राक्षसों पर विजय प्राप्त करेंगे (और मेरा अंग-भंग कर दिया)—मेरा विवाह करा दो। दो ग्रहों (सूर्य और चन्द्र) को बन्दी बनानेवाले रावण से मैं बल में कुछ कम नहीं हूँ।

जब तुम उत्सव के दृश्यों से युक्त अपने बड़े नगर में प्रवेश करोगे, तब मैं (अपनी मायाशक्ति से) मनचाहा रूप धारण करूँगी। तुम्हारा यह अनुज, शांतमन होकर भी यदि यह कहे कि इस नाककटी स्त्री के साथ कैसे रह सकता हूँ? तो हे प्रभु! तुम इसे समझाकर कहना कि चिरकाल से मैं कटिहीन[1] स्त्री के साथ रहता हूँ।

उस (शूर्पणखा) ने जब ये वचन कहे, तब अत्यन्त क्रुद्ध हुए अनुज लक्ष्मण ने पत्राकार बरछे की ओर दृष्टि करके (राम से) कहा—हे प्रभु! यदि इसे अभी न मार दें, तो यह बहुत पीडा उत्पन्न करेगी। कहिए, आपकी क्या आज्ञा है? प्रभु ने कहा—यदि अब भी यह हमें छोड़कर न जाये तो वैसा ही करेंगे। तब उस राक्षसी ने यह सोचकर कि ये मुझ-पर कुछ दया नहीं करेंगे और यहाँ रहूँगी, तो मेरे प्राणों की हानि होगी।

---

१. शूर्पणखा सीता को 'कटिहीन' कह रही है। —अनु०

फिर, यह कहकर कि—अपनी नाक, कानों और स्तनों को खोकर भी ( तुम लोगों के साथ ) मैं कैसे रह सकती हूँ ? तुम्हारे मन को समझने के लिए ही तो मैने यह माया की थी । अब मै पवन से भी तेज अग्नि से भी क्रूर खर को बुला लाऊँगी, जो तुम लोगों के लिए यम बनेगा—अशमनीय वैर के साथ वहाँ से चली गई । ( १–१४३ )

●

# अध्याय ६

## खर-वध पटल

रक्त की धारा बहाती हुई, बिखरे केशोंवाली, नाली-जैसे छेद से युक्त नाकवाली और विशाल मुँहवाली वह (शूर्पणखा), जाकर ( जनस्थान में ) स्थित भयंकर खर के चरणों पर ऐसे गिरी, जैसे कोई लालिमा से युक्त बादल हो ।

'( राक्षसों के ) विनाश का यह दिन है'—इस बात की सूचना देते हुए, यम की आज्ञा से बजनेवाले नगाड़े के समान, अकेली चिल्लाती हुई वह ( शूर्पणखा ), इस प्रकार धरती पर लुढ़कती रही, जिस प्रकार गरजते मेघ से गिरे हुए वज्र की अग्नि से जलता हुआ कोई नाग हो ।

उस खर ने उसे देखा, जिसके मुँह से कठोर वचनों के अनुकूल धुआँ निकल पड़ता था और पूछा—'निर्भय होकर इस प्रकार तुम्हारा रूप विकृत करनेवाले कौन हैं ?' तब नासिका-द्वार से बहनेवाले रक्त से रुँधी हुई आँखोवाली उस ( शूर्पणखा ) ने कहा—

दो मनुष्य हैं, जो मुनिवेषधारी हैं, हाथों में दृढ धनुष एव करवाल धारण करनेवाले हैं, मन्मथ के समान सुन्दर रूपवाले हैं, धर्मस्वभाववाले हैं, दशरथ के पुत्र हैं, राक्षसों के साथ युद्ध करने के विचार से उनको ढूँढते रहते हैं ।

वे तुम्हारे बल की कुछ परवाह नहीं करनेवाले हैं । धर्म-मार्ग पर स्थिर रहकर उसकी रक्षा का विचार करनेवाले हैं, विजयशील भाले रखनेवाले राक्षसों का विनाश करने का दृढ़ निश्चय रखनेवाले हैं ।

उनके साथ एक मुग्ध ( स्त्री ) है, जो इतनी महिलोचित सुन्दरता से पूर्ण है कि पृथ्वी में, दुर्लंघ्य स्वर्ग-लोक मे तथा अन्य ( पाताल ) लोक में, कहीं अन्वेषण करने पर भी उसकी समता करनेवाली स्त्री नहीं मिलेगी । मैंने अपनी आँखों से उसे देखा है । लेकिन, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती ।

उसे देखकर मैंने सोचा—अन्यत्र दुर्लभ सुन्दरता से युक्त इस रमणी को मैं लकाधीश के लिए ले जाऊँगी और उस पर झपटी । तब उन मनुष्यों ने क्रुद्ध होकर मेरी नाक काट डाली ।—उसने यों कहा ।

उस खर ने, जो अपने आकार से संसार को भय-विकंपित करनेवाला था और

जिसको सामने से देखनेवालों की आँखें झुलस जाती थीं, जिसने उस ( शूर्पणखा ) को पहले ठीक-ठीक नहीं देखा था, अब उसके वचन सुनते ही, यह कहकर उठा कि उन विनाश को प्राप्त होनेवाले मनुष्यों के द्वारा, ताल-फल के कोए के जैसे उखाड़ी गई अपनी नाक को मुझे दिखाओ।

वह उठकर खड़ा हुआ। उसका मन ऐसे क्रोध से बोखला उठा, जो सब लोकों को जलाकर भस्म कर सके, और बोला—'मनुष्य-मात्र मर गये, केवल इतना कह देने से ही हमारा यह अपमान नहीं मिटेगा।'[1]

तब ज्योंही उसने 'रथ लाओ' कहा, त्योंही उसके निकटस्थ रहनेवाले, एक ही हाथ से सारी धरती को उठाने की शक्ति रखनेवाले, दो हाथवाले ऊँचे पर्वतों के जैसे लगनेवाले, चौदह वीरों ने ( खर से ) निवेदन किया कि यह ( युद्ध का ) कार्य हमें सौंपो।

त्रिशूल, करवाल, तोमर, चक्र, कालपाश, गदा आदि शस्त्र हाथों में लेकर व चले, तो उनके कोलाहल से समुद्र से आवृत धरती के सब प्राणी भयभीत हो उठे। उनके आकार ऐसे थे, मानों विष ही साकार बन गया हो।

जलती क्रोधाग्नि से युक्त, उन राक्षसों ने ( खर से ) कहा—हे वीर। हमारी सेवा आज धन्य हुई। क्या तुम देवों से युद्ध करने जा रहे हो? हमारे जीवित रहते यदि तुम मनुष्यों से युद्ध करने जाओगे, तो हमारा जीवन व्यर्थ होगा। यों कहकर उन्होंने उसे रोका।

तब खर ने कहा—ठीक है। अच्छा कहा, यदि मैं इन क्षुद्र मनुष्यों से युद्ध करने जाऊँ, तो देवता लोग हँसेंगे। तुम लोग जाओ। उनको मारकर उनका रक्त पियो और उस सुकुमारी को साथ लेकर आओ।

( खर के ) यह आज्ञा देते ही, आनंदित होकर उन वीरों ने उसे प्रणाम किया और समाचार देनेवाली निर्लज्ज ( शूर्पणखा )-रूपी यम के दूत को आगे करके, उसके पीछे-पीछे चलकर दशरथ के पुत्रों के निवास पर गये।

उस ( शूर्पणखा ) ने कोलाहल के साथ युद्ध के लिए आये हुए उन राक्षसों को कमल-समान नेत्रवाले उन राम को अपनी उँगली उठाकर दिखाया, जो अकलंकगहननाम धारी चक्रपाणी ( विष्णु ) के ध्यान में मग्न थे।

कुछ राक्षस कह रहे थे कि ( उन मनुष्यों को ) पकड़कर ऊपर उछालेंगे। फिर हाथों में लोक लेंगे। और, कुछ कहते थे कि इन्हें दीर्घ पाश से हम बाँधेंगे। यों सब राक्षसों ने, अपने नायक ( खर ) की आज्ञा के अनुसार कार्य को पूर्ण करने के विचार से, पहाड़ों के जैसे आकर उन ( राम-लक्ष्मण ) को घेर लिया।

प्रख्यात शक्तिवाले राम ने अपने अनुज को यह आदेश देकर कि देवी की रक्षा करो, उज्ज्वल कल्पवृक्ष के पुष्प-समान अपने अनुपम करों से डोरी से युक्त पर्वत-सदृश विनाश कारी धनुष को उठा लिया।

कमल-सदृश नयनोंवाले प्रभु, यों ( धनुष को ) उठाये, करवाल के साथ बाणों से

---

1. भाव यह है कि संसार के सारे मनुष्यों को मार देने से भी हमारा यह अपमान न मिटेगा। —अ०

पूर्ण तूणीर को भी लिये, उस पर्णकुटी से बाहर निकले और 'अरे! इधर आओ।'—यों वीर-वाद कहते हुए भुजाओं को फुलाये युद्ध करने लगे।

परशु, करवाल, उज्ज्वल फलवाला त्रिशूल तथा भयंकर प्रलयकालाग्नि की समता करनेवाले उन राक्षसों के स्तंभ-सदृश हाथों को लक्ष्य-वेधक शरों से काट-काटकर उन्हें धराशायी कर दिया।

बड़े-बड़े शस्त्रों-सहित अपनी भुजाओं के, बड़े-बड़े वृक्षों के समान कटकर गिर जाने पर भी अपने वलिष्ठ वृक्षों को लिये हुए वे राक्षस युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। तब बलवान् (राम) के द्वारा प्रयुक्त शर, वेग से उनसे आ लगे, जिससे उनके शिर कटकर गिर पड़े। (यह दृश्य देखकर) पापिनी (शूर्पणखा) वहाँ से भाग चली।

गरजनेवाले, क्रोधी तथा पराक्रमी सिंह के द्वारा मत्त हाथियों के मारे जाने पर जिस प्रकार हथिनी अपनी सूँड़ को उठाकर सिर पर रखे हुए चिल्लाती हुई भाग रही हो; उसी प्रकार वह (शूर्पणखा) भी भागकर खर के पास गई और उज्ज्वल शूलधारी खर को उसने सब वृत्तांत सुनाया।

वृषभवाहन (शिव) के लिए भी अजेय पराक्रम से युक्त क्रूर खर नामक वह (राक्षस), यह समाचार सुनकर कि सब राक्षस मारे गये, यों क्रुद्ध हो उठा कि उसकी आँखों में रक्त उमड़ पड़ा।

कन्दरा में रहनेवाले क्रूर सिंह भी जिससे डर जायँ, ऐसा गर्जन करते हुए खर ने यह आज्ञा दी—'हे सेवको! मेरा रथ, मेरे चढ़ने के लिए अभी लाओ। मैं युद्ध करूँगा। क्षणमात्र में सेनाओं के निवास में जाओ और मेघ के जैसे बड़े नगाड़ों को हाथियों पर घुमाकर बजवाओ।'

ज्योंही नगाड़ों की ध्वनि हुई, त्योंही रथारूढ़ राक्षसों की सेना एकत्र हो आई, मानों वर्षाकालिक बड़े-बड़े मेघ अपार रूप में घिर आये हों—यह देखकर स्वर्ग और नागलोक भी काँप उठे।

युद्ध की सूचना देनेवाले बड़े नगाड़ों की ध्वनि समुद्र गर्जन के सदृश थी। (राक्षसों की) दीर्घ भुजाएँ समुद्र की वीचियों की जैसी थीं। महान् गर्जन और मेघ-सदृश काले वर्णवाला समुद्र, प्रलयकालिक पवन से प्रताडित होकर उमड़ पड़ा हो—यों वह (राक्षसों की) सेना बड़ा कोलाहल करती हुई उमड़ आई।

घना वन ही उड़कर गगन-तल को ढक रहा हो, (ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए) सर्वत्र उठी हुई ऊँची ध्वजाएँ यों नाच रही थीं, जैसे भूत ही 'हमारी भूख मिट जायगी', इस विचार से आनन्दित होकर—नाच रहे हों।

आलान से अभी छूटे हुए, किसी की परवाह न करनेवाले, बड़ी और लम्बी दो-दो सूँड़ोंवाले मत्त हाथियों के झुंड-सदृश वह राक्षस-सेना चल पड़ी। उनके घने शस्त्र एक दूसरे से टकरा उठते थे, तो उनसे जो चिनगारियाँ निकल पड़ती थीं, उनसे सारे वन में आग लग जाती थी।

दोनों पार्श्वों में 'मुरड्डु' (नामक वाद्य) बज रहे थे। उनकी ध्वनि, पहियों के

घूसने से आगे बढ़नेवाले रथो की ध्वनि मे दब जाती थी। उस सेना ने, करुणा की मूर्त्ति के समान स्थित रामचन्द्र-रूपी सूर्य को, फैले हुए अन्धकार की तरह घेर लिया।

वह दृश्य ऐसा था, जैसे सप्त लोकों में ऊँचे बढ़े हुए सब पर्वत एक ही स्थान पर इकट्ठे हो गये हो, जिससे बड़े-बड़े सर्पों के द्वारा अपने शिरो पर धारण की हुई यह धरती डोल-डोलकर अपनी पीठ झुकाने लगी।

व्याघ्र-समूह है? घनघटा है? गरजते हाथियो का झुड है? ऊँचे पर्वत हैं? नही तो सिंहो की सेना है?—यो सदेह उत्पन्न करते हुए शस्त्रधारी राक्षसों की सेना हजारों की सख्या में आ पहुँची।

( जब राक्षसो की उस सेना मे ऐसे रथ थे, जिनमे ) कुछ मे शरभ जुते थे, कुछ मे सिह जुते थे, कुछ में बलवान् हाथी जुते थे, कुछ में बाघ जुते थे, कुछ मे श्वान जुते थे, कुछ में शृगाल जुते थे, कुछ में भूत जुते थे, कुछ मे घोडे जुते थे।

कुछ मे वृषभों के झुंड जुते थे, कुछ मे शूकर जुते थे, कुछ मे वायु-रूपी पिशाच जुते थे, कुछ में गर्दभ जुते थे, कुछ मे बाज जाति के पक्षी जुते थे। वे ( रथ ) ऐसे थे कि क्षण-भर मे ही सारे ससार मे घूम आ सकते थे।

इस प्रकार के रथों के समुदाय घिर आये। छोटी आँखो और लाल मुखवाले हाथियो के झुंड घिर आये। अपने पैरो से वायु के जैसे अतिवेग से दौड़नेवाले घोड़े घिर आये। उस समय शख बज उठे।

परशु, बरछे, करवाल, वक्रदड, तोमर, भाले, भुशुडि, जो ( शत्रु के ) शरीर-भर को आवृत करनेवाले थे, गदाएँ, त्रिशूल, मूसल, काल-पाश—

कुंतक, कुलिश, दंड, भिंदिपाल, असख्य धनुष, शर, चक्र, 'वलै', उज्ज्वल शखो के समुदाय, 'कप्पण' पाश—

इत्यादि शस्त्र ऐसे प्रकाशवाले थे कि सूर्य और अग्नि भी उन्हे देखकर मंद पड़ जाते थे, जिनमे ( शत्रुओ का ) मास और रक्त लगे थे, जो देवो को पीडा देनेवाले थे, जो विजयसूचक पुष्प-माला से अलंकृत थे, घिर आये।

अनेक सहस्र हाथियों के बल से युक्त, विशाल पृथ्वी को निगल सकनेवाले मुँह से युक्त, और अग्नि उगलनेवाली आँखोवाले चौदह राक्षस उस सेना के नायक थे।

विद्वानो का कथन है कि इस सेना-वाहिनी मे एक-एक दल की सख्या साठ लाख थी और उसमे ऐसे चौदह दल थे।

वे सेना-नायक अपार बल से युक्त थे, वज्र-समान घोष करनेवाले मुँह से युक्त थे, सब शस्त्रो के प्रयोग मे कुशल हाथोंवाले थे। वे इतने ऊँचे थे कि मेघ, पर्वत-शिखर की भ्राति से, उनके शिर पर विश्राम करते थे। वे गर्वी थे और उत्साहित मनवाले थे।

उनके आकार अंतरिक्ष को मापते थे। उनके वक्ष नेत्रों की परिधि मे नही आते थे। अपने पैरो से सारी धरती को नाप सकते थे। बड़े पराक्रमवाले थे। देवों के साथ असख्य युद्धों मे उन्होंने विजय प्राप्त की थी।

उनके कंधे इतने दृढ तथा बलवान् थे कि इन्द्र आदि के द्वारा फेंके गये बड़े शस्त्र उनपर लगकर चूर-चूर होकर छितरा जाते थे। उनकी कठोर आज्ञा ऐसी थी कि यम भी उनके चरणों पर गिरकर उनकी अधीनता स्वीकार करता था। वे ऐसे थे, मानों भयंकर अग्नि ही साकार हो गई हो।

वे शूल, पाश, घने लाल केश, क्रूर नेत्र और खड्ग दंतों से युक्त थे। वे इतने काले थे कि उनके सन्मुख विष भी सफेद जान पड़ता था। अपनी शक्ति से काल भी उन्हे अपना काल समझकर डरता रहता था। वे ऐसे रूपवाले थे।

वे वीर-कंकणधारी थे। पुष्पमालाधारी थे। कवच से आवृत वक्षवाले थे। उज्ज्वल आभरण-भूषित थे। कुंचित भृकुटिवाले थे। अग्नि-सदृश (लाल) केशवाले थे। उनके मन युद्ध की कामना से उसके लिए उमंग से भर जाते थे। अपने में वे लोग बड़ी एकता रखते थे।

अतिदृढ दंत और मद-स्रावी हाथीवाला इन्द्र भी उनके सम्मुख आ जाय, तो वह भी भयभीत होकर, पीठ दिखाकर, भाग खड़ा होगा। तीनो नश्वर भुवनो में युद्ध करने का मौका न पाकर उनके पर्वत-जैसे कंधे खुजलाते रहते थे।

हाथी, घोड़े, भूत, वानर, बलवान् सिंह, क्रोधी भालू, श्वान, व्याघ्र, शरभ— ये अग्नि-सदृश चमकते तथा भयजनक मुखवाले तथा क्षीर-समुद्र में उत्पन्न हलाहल के समान नयनवाले थे।

कोई आठ हाथोंवाले थे। कई सात हाथोंवाले थे। कई नेत्रों से अग्नि उगलनेवाले सात-आठ मुखोंवाले थे। बलिष्ठ टाँगोंवाले थे। प्राणियो को अपने दीर्घ करो से उठाकर मुँह में ठूँसकर चबा जानेवाले थे। विनाशहीन थे।

यक्षो से छीनकर लाये गये, असुरो से दिये गये, देवो को डराकर उनसे बलात् लिये गये, अश्रान्त गन्धर्वों को भगाकर उनसे छीनकर लाये गये, करुणालु सिद्धो को सताकर उनसे लिये गये—

मयूर-पंख, ध्वजा, छत्र, चामर, हाथियों पर रखने योग्य बड़ी पताकाएँ, वितान तथा अन्य अनेक राजचिह्न, बिना व्यवधान के, सर्वत्र शोभायमान थे और गगनतल मे व्याप्त होकर ससार-भर में सूर्य का-सा प्रकाश फैला रहे थे।

वे चौदह सेनापति चौदहो भुवनों को जीतनेवाले थे। वे सैनिक परशुधारी थे, करवालधारी थे, उज्ज्वल त्रिशूलधारी थे और सिंह और व्याघ्र के समान हिंस्र क्रोधवाले थे।

वे धनुर्धारी थे। बडे खड्गो से युक्त थे। ओठो पर रखे (ओठों को चबाते हुए) दाँतोंवाले थे। मेरु पर्वत को भी उखाड़ने की शक्ति रखते थे। अश्व-जुते रथोंवाले थे। अपने कहे अनुसार करने की धृति और इच्छा-शक्ति रखते थे। ऐसे सैनिक सब दिशाओं से आकर एकत्र हुए।

शत्रुओं के प्राणो को उनके शरीरो से पृथक् करनेवाले और विजयमाला से भूषित त्रिशूलों को धारण किये हुए, दृढता से युक्त दूषण, त्रिशिरा इत्यादि अनेक राक्षस-नायक कोलाहल से भरी, नगाड़े बजानेवाली सेनाओं को लेकर आ पहुँचे।

समुद्र तथा शत्रुविनाशक सेना-रूपी विशाल समुद्र जब खर-रूपी गगनस्पर्शी मेरु को घेरकर चला और जब उस सेना के मध्य मे रथारूढ होकर वह ( खर ) निकला, तब उस दृश्य को देखकर सब कॉप उठे।

निर्झरो के सदृश मद-स्रावी हाथी, अश्व, स्वर्ण-कलशो से भूषित रथ, राक्षस—इन ( चतुर्विध ) सेनाओ के अभियान से जो धूलि आकाश मे व्याप्त हुई, उससे सूर्य का स्वर्ण-रथ और हरित अश्व भी श्वेत वर्ण हो गये।

क्रोध-भरी, विशाल समुद्र के समान फैली हुई सेना के चलने से जो धूलि-समुदाय उठा, उससे सब कानन धूलिमय हो गये। पर्वतो पर एव गगन मे स्थित बादल भी धूसर हो गये। समुद्र पट गये। अब और क्या कहा जाय।

हत्या करने में, विष के समान उग्र मनवाले राक्षस, भूमि पर एव आकाश मे रिक्त स्थान न रहने से पर्वतो के शिखरो को ऐसे लॉघते चले आये, जैसे उन पर्वतो पर दूसरे पर्वत चल रहे हो।

माया-बधन के कारण उत्पन्न कर्म-परिणाम को मिटा देनेवाले, आसक्तिहीन महा-पुरुषो के लिए भी अवार्य, शरीर के साथ उत्पन्न होकर उनके प्राणो को यम के हाथ सौपने-वाली व्याधि के समान वह राक्षसी (शूर्पणखा) आगे-आगे आ रही थी। वह राक्षस-वाहिनी उदार महाप्रभु ( राम ) के निकट आ पहुँची।

उनके वाद्यो की ध्वनि से आकाश के बादल भी कॉप उठते थे। दीर्घ धनुषो के टंकार से वज्र भी भय-विकपित हो उठते थे। कोलाहल से समुद्र भी डर से उपशान्त हो जाता था। यो वह राक्षस-सेना उस वन मे स्थित दोनो वीरो के आवास पर आ पहुँची।

( उस वन के ) पक्षी तथा मृग ( उस सेना को देखकर ) भय से व्याकुल हुए। उनके मुँह सूख गये। उनके शरीर शिथिल पड़ गये। वे उसास भरने लगे। उनकी ऑखो पर अँधेरा छा गया। यो वे कही भी रुके बिना भागते चले आये और वे क्रूर राक्षसो की सेना के आगमन की सूचना देनेवाले गुप्तचरो के समान लगते थे।

उस वन के शरभ, सिंह आदि ऐसे डरकर भाग रहे थे कि धूलि-पुज उड़कर सर्वत्र छा गये। उनके पैरो-तले दबकर वृक्ष और झाड़ चडचड़ाहट के साथ टूट गये। उन मृगो को देखकर पुष्ट भुजाओवाले राम-लक्ष्मण ने सोचा कि राक्षस-सेना उनपर चढाई करने आ रही है।

विद्युत् के जैसे प्रकाशमान धनुषवाले, अतिदृढ कवचवाले, कटि मे बँधे करवाल-वाले, स्वर्णमय किनारे से युक्त तूणीरधारी और क्रोधाग्नि से जलते मनवाले लक्ष्मण, स्वय पहले युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर राम के निकट आये और यह कहकर खडे हो गये कि आप यही रहे और मेरे युद्ध-कौशल को देखें। तब अपने अनुज को देखकर प्रभु कहने लगे—

हे वीर! सन्मार्गगामी महातपस्वियो को मैने पहले वचन दिया है कि मै राक्षसो के प्राण हरूँगा, उसको अयथार्थ न करने के लिए इस राक्षस-दल को मै ही मारूँगा। सहज सुवासित तथा पुष्पालकृत कुतलोवाली देवी सीता की रक्षा करते हुए तुम यही रहो। मै यही चाहता हूँ—यो ( राम ने ) कहा।

जिस सेना के आगमन से वृक्षों से भरे कानन में बड़ा मार्ग हो गया था, उस ( सेना ) को खर की सेना समझकर, कालवर्ण कमल-सदृश नेत्रवाले प्रभु ने अशिथिल बल-युक्त अपने कंधे पर बाणों से पूर्ण तूणीर बाँध लिया। कर में चाप धारण किया। सुदृढ कवच को भी पहन लिया और खड्ग भी ( कटि में ) बाँध लिया।

फिर, लक्ष्मण ने राम से प्रार्थना की—हे सिंह-सदृश बलशाली! यदि युद्ध में अजेय स्वर्गलोकवासी और इस लोक के सब प्राणी भी अधिकाधिक संख्या में युद्ध करने आये, तो भी उन सबकी आयु ( मेरे हाथों ) समाप्त हो जायगी। यह बात अब मुझे आप से कहने की आवश्यकता नहीं है न? यह युद्ध मेरे लिए छोड़ दें और मेरी भुजाओं को सतानेवाले आलस्य को दूर कर दें।

लक्ष्मण ने यह कहा। किंतु, राम इससे सहमत नहीं हुए। तब लक्ष्मण, जो राम की उन्नत पर्वत-सदृश भुजाओं के बल को पहचानता था और अपने भाई की आज्ञा को टाल नहीं सकता था, अपने सुन्दर करों को जोड़कर सीता देवी के निकट उनकी रक्षा के लिए खड़ा हो गया, जो अपनी आँखों से अश्रुधारा को धरती पर गिराती हुई खड़ी थी।

वह सीता, जो उस लता के सदृश थी, जिसमें ताटंकों से शोभित एक चन्द्रमा पुष्पित हुआ था, व्याकुल हो खड़ी रही और अनुपम धनुर्धारी मेरु-जैसे रामचन्द्र, मेघों के समान गर्जन करनेवाले, खड्ग-दंतोंवाले राक्षसों के सामने पर्णकुटीर से यों निकल आये, जैसे कोई सिंह पर्वत की कंदरा से निकल पड़ा हो।

गगन तक बढ़े हुए बाँसों की झुरमुट में उत्पन्न होकर उनको जला देनेवाली अग्नि के समान अपने कुल का सर्वनाश करनेवाली वह राक्षसी ( शूर्पणखा ), पर्णशाला से निकले हुए राम की ओर संकेत करके बोली कि हमारा शत्रु यही राम है।

स्वर्णमय रथ पर, गगन को छूते हुए खड़े रहनेवाले, पर्वत-सम कंधोंवाले उस विजयी खर नामक राक्षस ने, जिसको देखकर सहस्रकिरण भी भय से हट जाता था, ( राम को ) देखा और अपने सैनिकों से कहा—मैं अकेला ही इनसे युद्ध करके, इस मनुष्य के बल को मिटाकर विजय-माला धारण करूँगा।

यह मनुष्य तो अकेला ही है और यहाँ पर आई हुई बलवान् राक्षस-सेना इतनी विशाल है कि इसके लिए वन में स्थान ही नहीं है। जब संसार के लोग इस दशा पर 'अहो!' कहेंगे ( अर्थात्, आश्चर्य प्रकट करेंगे ) तब मेरी विजय क्या रह जायगी? अतः, तुम सब लोग यहीं देखते हुए खड़े रहो। मैं अकेले ही ( हमारे लिए ) भोज्य मांस से विशिष्ट इस मनुष्य के प्राणों को पी जाऊँगा।

तब अकंपन नामक विवेकवान् राक्षस, यह वचन सुनकर उसके निकट आया और कहने लगा—हे स्वामी! हे वीरों में महावीर! मेरा एक निवेदन है। युद्ध में अत्यन्त उग्र होना उचित ही है। तो भी इस समय अनेक दुःशकुन हो रहे हैं।

हे वीर! मेघ, गरजकर रक्त की वर्षा कर रहे हैं। सूर्य के चारों ओर परिवेष-मंडल पड़ा है। कौए लड़ते और रोते हुए आपकी ध्वजा से टकरा रहे हैं और धरती पर गिर रहे हैं। इन बातों पर ध्यान दीजिए।

खड्गों की धार पर मक्खियाँ भनभना रही हैं। सेना के वीरो की वाम भुजाएँ और वाम नेत्र फड़क रहे हैं। वलिष्ठ भुजाओवाले सेनापतियो के अश्व ऊँघते हुए गिर पड़ते हैं। श्वानो के साथ शृगाल-दल भी मिलकर आये हैं और रो रहे हैं।

हथिनियाँ मद-जल वहा रही हैं। विशाल गंडवाले हाथियो के दाँत टूटकर गिर रहे हैं। धरती काँप रही है। उन्नत आकाश से बिजलियाँ गिर रही हैं। दिशाएँ अकस्मात् जल उठती हैं। सबके शिरो की पुष्प-मालाओ से मास की दुर्गंधि निकल रही है।

ऐसे लक्षणों के उत्पन्न होने के कारण, इसे अकेला मनुष्य कहकर इसकी उपेक्षा न कीजिए। मेरा कथन सत्य है। यदि हमसब एक साथ युद्ध करने लगें, तो भी इसे परास्त नही कर सकते। हे विजयमालाधारी ! मेरे वचनो को क्षमा कर दो। यो अकंपन ने कहा।

यह वचन सुनते ही खर हँस पड़ा, जिससे सारा संसार काँप गया। फिर, वह बोला—मेरा दृढ पराक्रम पत्थर का वह सिल है, जिसपर देवता पिस चुके हैं। युद्ध की कामना से फूली हुई मेरी भुजाएँ क्या एक क्षुद्र मनुष्य के आगे नीची होकर रहेंगी ?

खर के इस प्रकार कहते ही क्रोधभरी राक्षस सेना ने दशरथ पुत्र को ऐसे घेर लिया, जैसे घुँघराले केसरों से शोभायमान सिंह को क्रुद्ध गज-समूह ने घेर लिया हो। उस समय उनके भयकर शस्त्र एक दूसरे से टकराकर वज्र-सी ध्वनि कर उठे।

यो उस सेना के घेरते ही राम के हाथ में स्थित धनुष के सिर झुक गये। उस समय जो युद्ध हुआ और उसका जो परिणाम हुआ, इसका वर्णन हम करेंगे। राम के वेगवान् वाणों की नोक से दौड़नेवाले अश्व छिद गये और धरती पर लोट गये। लाल बिंदियो से भरे मुखवाले हाथी ऐसे गिरे, जैसे वज्र से आहत पर्वत हो।

( राक्षसो के ) त्रिशूल छिन्न हुए। अग्नि-ज्वाला उगलनेवाले फरसे टूट गये। करवाल टुकड़े-टुकड़े हो गये। गदाएँ चूर-चूर हुई। भिंदिपाल मिट गये। वाण विनष्ट हुए। शरीर को चीर देनेवाले भयकर भाले तहस-नहस हुए। धनुष एव बरछे भी चूर-चूर हो उड़ गये।

वीर-कंकण टूटे। हाथो के साथ तोमर भी टूटे। गजों के पैर टूटे। धुरियो के साथ रथ और उनपर की ध्वजाएँ टूटी। अश्व टूटे, (शरभ आदि) जन्तुओ के दलो के शिर टूटे। मूसल जड़ से टूट गये।

रामचंद्र के वाण, जीनवाले अश्वो तथा काले वर्णवाले मदजल-स्रावी, दीर्घ सूँड़वाले, पर्वत-समान हाथियो को भेदकर पार कर जाते थे और सब दिशाओं मे छितरा जाते थे। निरंतर बरसनेवाली वर्षा के जल के समान रक्त, धरती पर फैल गया। राक्षसो के शोभाहीन वक्ष खुल गये। उनके शिर कटकर ( धड़ से ) पृथक् हो गये।

राघव ने एक, दस, सौ, सहस्र, कोटि—यों गणना के लिए दुसाध्य कठोर शरो के सिलसिले को जारी रखा। उन बाणो ने राक्षसो को मारकर पर्वत-शिखरो एवं अनेक पर्वतो के समुदाय के समान शव-राशियों की पंक्तियाँ लगा दी।

तड़पते हुए कबंधो की राशियाँ, वहती हुई रक्त-धारा के साथ, ऐसा दृश्य उपस्थित करती थी, जैसे अरण्य के घने वृक्षों की शाखाएँ दावाग्नि मे जल रही हो, गगन मे उड़नेवाले राम-वाण ऐसे लगते थे, जैसे मृत (राक्षसों) के प्राणो का भी पीछा करते हुए जा रहे हो।

युवतियो के दीर्घ नयनो के समान ही राम के वाण, करवालो के साथ ही राक्षसो के करो के गिरने पर, उनके कंठों के कट जाने पर, कवच से आवृत देहो के छिद जाने पर, उनके शिरो को भी भीषण रूप मे छितराते हुए जलकर दिगंतो को भी पारकर जाते थे।

वर्षा के सदृश राम-बाण, पर्वत-समान राक्षसों के विशाल शरीर-रूपी तटो के मध्य तालाव वना रहे थे, नदियाँ वना रहे थे, रण में रक्त-प्रवाह को भर रहे थे और यों उस स्थान में वन के दृश्य को मिटा रहे थे (अर्थात्, वहाँ के वन को रक्तमय जलाशयो मे परिवर्त्तित कर रहे थे)।

उस समय, विशाल रक्त-समुद्र तरगायमान हो उठे। राक्षसों के शिर उस (समुद्र) मे उतराने लगे। उनकी दीर्घ मांस पेशिया उतराने लगी। दीर्घ सूँड़वाले पर्वत-जैसे हाथी उतराने लगे। झपटकर चलनेवाले घोड़े उतराने लगे। ध्वजाओ के साथ रथ भी उतराने लगे।

उस समय, अनेक वलवान् राक्षस, ज्वाला उगलनेवाली दृष्टि से देखकर, गरजकर, किसी विशाल अचल पर्वत को घेरकर, वरसनेवाले मेघ-जैसे, तीक्ष्ण वाण आदि उग्र शस्त्रो को (राम पर) वरसाने लगे।

राम ने अपने वाणो से वरसनेवाले शस्त्रों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये, अनेक शस्त्रों को विभिन्न दिशाओं में छितरा दिये और विखरे रक्त-केशोवाले काले राक्षसो के शिरो को काट-काटकर यों गिरा दिया, जिससे भूमि (उन शिरों के भार से) अपनी पीठ को झुकाने लगी और वन (उन शिरों से) भर गया।

उस समय कवध नाच उठे, हाथी लाल शोणित की धाराओ में गोते लगाने लगे, भयंकर भूत, वैर-भरे क्रोधवाले एवं क्रूर कार्य करनेवाले राक्षसों की चरवी को भर पेट खाकर आनन्द मनाने लगे, (मृत हो स्वर्ग मे आये हुए वीर) प्राणियों के भार से देवलोक की भी देह झुक गई।

मायावी, हर्ष तथा कपट से भरे, वक्र दंतोवाले राक्षसों की उन आँखो की पुतलियो को, जिनको देखकर गरुड भी भयभीत हो जाता था, अव काक निकाल-निकालकर खाने लगे। अधकार के समान वंचको के मध्य विनाश अनायास ही पहुँच जाता है; क्योकि कृपामय धर्म को छोड़कर अन्य कौन-सी वस्तु वलवान् हो सकती है?

तब (अनेक राक्षसो के) घने अधकार को मिटाकर प्रकाशित होनेवाले सूर्य के जैसे धनुर्धारी (राम) को क्रोधी राक्षसों ने चमकते वरछे-जैसे अपने नेत्रों से देखा और काली तथा विशाल घनघटा-जैसे युगान्त मे पत्थरो की वर्षा करे, वैसे ही सर्व प्रकार के शस्त्रो को उन (राम) पर वरसाकर युद्ध किया।

धनुर्धारी (राम) ने झुड वाँधकर आये राक्षसो को; पृथक्-पृथक् आकर सामना करनेवाले (राक्षसों) को; अत्यत क्रोध से झपटनेवाले (राक्षसो) को, पहले पराजित हो

भागकर दुबारा युद्ध करने के लिए आनेवाले (राक्षसों) को, अपने तीक्ष्ण बाणों से इस प्रकार काटकर गिरा दिया कि यह विदित नहीं होता था कि किसने भाला फेंका, किसने तीर छोड़ा, किसने प्रयुक्त करने के लिए शस्त्र उठाया, किसने कौशल से कार्य किया या किसने नहीं किया।

काकुत्स्थ ( राम ) ने बाणों से जो शिर काटे, उनमें से कुछ मेघ-मंडल में जा पहुँचे, कुछ समुद्र के किनारे के प्रदेशों में जा गिरे, कुछ चंद्र को घेरे हुए नक्षत्रों में जा पहुँचे, कुछ उज्ज्वल कुंडल-भूषित मिथुन नामक राशि में जा पहुँचे, कुछ भीषण अरण्यों में जा गिरे, कुछ पर्वतों पर जा गिरे और कुछ दिशाओं की सीमाओं पर स्थित दिग्गजों के निकट जा गिरे।

वे ( राम के ) बाण, जो राक्षसों के, मेरु का भी उपहास करनेवाले, अतिदृढ वक्षों को भेदकर आर-पार हो जाते थे और क्षतों से बहनेवाली रक्त-रूपी ऊँची तरङ्गों से पूर्ण नदियों को उमड़ा देते थे, कुछ मेघों पर जा लगते थे, कुछ चंद्र से युक्त गगन में जा लगते थे और कुछ समुद्रों के बाहर एवं भीतर जा लगते थे।

सुन्दर मालाधारी एवं अग्नि-ज्वालाओं को उगलती आँखोंवाले सब राक्षस, सुदृढ तथा तीक्ष्ण शस्त्रों को प्रयुक्त करके, ( राम के ) शर से आहत होकर अपने राक्षस-शरीर को समुद्र में छोड देते थे और अविनश्वर ( देव ) शरीर को पाकर देवों के साथ मिल जाते थे और यह कहकर कि राक्षस लोग मिट गये, आनन्द-ध्वनि करने लगते थे।

वहाँ विशाल तरंगों से भरे अनेक ऐसे रक्त-समुद्र उत्पन्न हो गये, जिनमें (राक्षसों के ) यकृत्-रूपी कमल थे, रथ-रूपी पुलिन थे, बलवान् गज-रूपी मगरों के झुंड तैर रहे थे, भारी आँत-रूपी घने तथा हरे कमल-पत्र ऊपर की ओर फैले थे और जिनमें भूत स्नान करते थे।

*प्राणहारी अग्रभागों* से युक्त ( रामचन्द्र के बाण-रूपी ) बौछार के गिरने से कुछ ( राक्षस ) हाय-हाय कर उठे, कुछ मूर्च्छित हो गिर पडे, कुछ मिट गये, कुछ उसास भरने लगे, कुछ लौट गये, कुछ लुढक गये, कुछ कीचड़-भरे एवं गहरी लहरों से युक्त रक्त-समुद्र में डूब गये, कुछ धरती पर पड़े रहे, कुछ टुकडे-टुकडे हो रहे।

तब विष के समान क्रूर चौदहों सेनापति ऐसे उठ आये, जिससे विशाल क्षीर-समुद्र को मथनेवाले ( देव तथा असुर ) भी भयभीत हो उठे। वे (सेनापति) निहत होकर गिरे हुए राक्षसों का उपहास करने लगे। दृढ पहियोंवाले रथों पर आरूढ होकर बरछे और करवाल लिये हुए तथा धनुष धारण करके अपार समुद्र-जैसी सेना-वाहिनी को लेकर एक साथ आ पहुँचे।

पूर्व समय में एक बार पर्वत को धनुष बनाकर आये हुए शिव को त्रिपुरासुरों ने जिस प्रकार घेर लिया था, उसी प्रकार प्रभु ( राम ) का आदर न करनेवाले वे राक्षस, मन की क्रोधाग्नि को आँखों से निकालते हुए आये और कालमेघ-सदृश धनुर्वीर ( रामचंद्र ) को घेरकर युद्ध करने लगे।

चन्द्रकला-समान खड्गदंतोंवाले राक्षसों में से कुछ ने बाण का प्रयोग किया, कुछ ने वक्र दंडों का प्रयोग किया। कुछ ने अनेक शस्त्रों से प्रहार किया। कुछ ने भिन्दि-

वचन कहे। कुछ ने धमकियाँ दी। यों सबने पर्वतों के जैसे आकर ( राम को ) घेर लिया।

( रामचन्द्र के ) धनुष पर चढ़कर निकले हुए वाणों से ( उन राक्षसों के ) रथो में जुते घोड़े सब धराशायी हो गये। सब मत्तगज बलि चढ़ गये। मजीर-भूषित घोड़ो के सिर उनकी धड़ों से अलग हो गये। जिस प्रकार उष्णकिरण ( सूर्य ) को घेरनेवाला परिवेष-मडल शीघ्र ही मिट जाता है, उसी प्रकार बचे-खुचे राक्षसों के पैर उखड़ गये और वे काँपते हुए भाग खड़े हुए।

मूर्च्छित हुए क्रूर राक्षसों के शरीरों में जहाँ-जहाँ शरों की बौछार लगने से छेद हो गये थे, वहाँ-वहाँ से रक्त के प्रवाह उमड़कर वह चले और उज्ज्वल धरती को आवृत करने लगे। विस्तृत गगन में स्थित देवताओं ने अपनी आँखों को ( करों से ) ढक लिया। यम के दूत, अतिवेग से आनेवाली हवा के समान आकर ( उन राक्षसों के ) प्राण हरने लगे।

भूतों के अधिक संख्या में आने का कारण बननेवाले उस घोर युद्ध के उन्माद से भरे उन ( राक्षसों ) के कदराओं-जैसे मुँहों में श्वान आ घुसे। उनके शिरों पर शृगाल आ चढ़े। अग्नि के जैसे, बलिष्ठ सिंहों के जैसे और मेघ में उत्पन्न होनेवाले वज्र के जैसे जो राक्षस घेरकर आये थे, वे (राम के) अग्नि उगलनेवाले तीक्ष्ण मुखों से युक्त वाणों की सहायता से स्वर्ग में चढ़ गये।

उन ( राक्षसों ) के शिर बिखर गये। अग्निकण बिखेरनेवाली आँखें बिखर गईं। धरती पर पहाड़ों के समान हाथी बिखर गये। ( राम के ) मेघ-सदृश धनुष से विच्छिन्न वाण सब दिशाओं में बिखर गये और चिनगारियाँ बिखेरनेवाले पृथ्वी-जैसे राक्षसों के शरीरों से प्राण बिखर गये।

वे चौदह बड़े सेनापति, उनके रथ एव उनके बड़े शस्त्र—इनके अतिरिक्त, बड़े कोप के साथ ( राम के ) सम्मुख आये हुए सब राक्षस उन वीर के वाणों से निहत होकर दुर्गंध-भरे भीषण रक्त- प्रवाह में डूब गये।

उन चौदहों सेनापतियों ने चारों ओर देखा। किंतु, अपने साथ आई सेना में एक भी ऐसे सैनिक को नहीं देखा, जिसका सिर उसकी धड़ से अलग न हुआ हो। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने दाँतों को पीसते हुए अपने रथों को बड़े वेग के साथ चलाते हुए रामचन्द्र को घेर लिया।

तब राम ने एक क्षण में अपने वाणों से उनके चौदहों रथों को विध्वस्त कर दिया। तब वे विध्वस्त रथ, चक्र, घोड़े, सारथि, सब प्रलय-काल में प्रभजन से फेंके गये पर्वतों के जैसे फैल गये।

उनके रथ जब नष्ट हो गये, तब वे चौदहों सेनापति पृथ्वी पर ऐसे कूद पड़े कि धरती धँसने लगी। वे अपने हाथों में दृढ धनुषों को लेकर, अपनी आँखों से सबको भस्म कर देनेवाली अग्नि-ज्वालाएँ उगलते हुए वज्र-जैसे शरों को लगातार बरसाने लगे।

राम ने अपने तीक्ष्ण वाणों से उनके विध्वसकारी शरों को चूर-चूर कर दिया। उनके चौदहों धनुषों को तोड़कर उनकी युद्ध की उग्रता को शान्त कर दिया।

तब वे सब सेनापति धनुषो के खो जाने से अत्यन्त क्रुद्ध होकर, बड़ी शिलाओं को लेकर, आकाश में उड़ गये और सूर्य की कांति के समान ज्वाला उगलनेवाली शिलाओं को ( राम पर ) बरसाने लगे।

शास्त्र-रूपी समुद्र को पार करनेवाले ज्ञानवान् प्रभु ने, प्राणहारी धनुष के साथ अपनी भौंहों को भी झुकाकर उनपर पत्राकार चौदह भयंकर बाण छोड़े, जिससे वे पर्वत-खंड एवं उन सेनापतियों के शिर पृथ्वी पर आ गिरे।

इस प्रकार वे चौदहो सेनापति मरकर गिर पड़े। तब अन्य एक राक्षस-सेना, अनेक शस्त्रों को उछालती हुई तथा अपनी आँखों से अग्नि उगलती हुई रामचन्द्र के सम्मुख आ गई और पृथ्वी पर, गगन मे एवं सब दिशाओं में फैल गई। यह देखकर देवता काँप उठे।

तब बड़े नगाड़े गर्जन कर उठे। बड़े हाथी गर्जन कर उठे। दृढ धनुषों की डोरियाँ गर्जन कर उठी। शखो के साथ अश्व भी गर्जन कर उठे। मेघ-गर्जन के समान राक्षसो की गर्जन-ध्वनि भी होने लगी।

राक्षसो के द्वारा फेंके गये, गगन-मार्ग से आनेवाले शस्त्र, वीर ( राम ) के बाणों से कटकर कही अपने ऊपर न आ गिरें, यह सोचकर देवता लोग भाग जाते थे। समस्त लोक काँप रहे थे। निष्कप रहनेवाले दिग्गज भी आँखें बंद कर लेते थे।

उस उत्तम सेना का सेनापति तीन शिरोंवाला (त्रिशिर नामक) राक्षस था। जो अपार बल-सपन्न था स्वर्ण-मुकुटधारी था, अपने धनुष से तीक्ष्ण नोंकवाले बाणों की वर्षा करनेवाला था और त्रिनेत्र के हाथ में रहनेवाले त्रिशूल के जैसा आकारवाला था।

उस राक्षस-वीर के साथ, प्रलयकालिक महासमुद्र के समान सब दिशाओं से उमड़कर आई हुई उस राक्षस-सेना के बीच में धनुष को लिये, अपनी समता स्वयं करनेवाले वीर ( रामचन्द्र ) ऐसे लगते थे, जैसे घने अंधकार के मध्य दीप हो।

उज्ज्वल करवालधारी, वज्र-सदृश घोषवाले, भारी कवच से आवृत, तथा क्रूर नेत्र-वाले उस राक्षस ( त्रिशिरा ) की सेना पर राम अपनी शरवाहिनी चलाते हुए खडे रहे।

तब उन राक्षसों के पैर, भुजाएँ, करवाल, परसे, उनकी कटि और उनके छत्र—सब-के-सब कटकर गिर गये।

जब ध्वजाएँ और कठोर क्रोधवाले अश्वों की पक्तियाँ विध्वस्त हो गइ, तब बडे-बडे रथ धरती पर गिर गये और भारी तथा वलिष्ठ मत्तगज वज्रपात से टूटकर गिरनेवाले पर्वत-शिखरों के समान लुढक गये।

शिर कट जाने पर कुछ राक्षस यह न समझते हुए कि उनके शिर कट गये हैं, अपने विजयी धनुष से शर छोड़ते ही रहे। जिनके शिर अभी कटे नही थे, वे गगन में छाये मेघों के समान अपने शस्त्र चला रहे थे।

ढाल लिये हुए विशाल हाथों, पर्वत-समान भीम आकारवाले तथा स्वर्णमय कवच धारण करनेवाले महावीरों के शिरोहीन धड़ तड़पते, उछलते हुए ऐसे नाच उठे कि नूपुरों से भूषित अप्सराएँ भी वह नाच देखकर मुग्ध हो गईं।

चामर एवं श्वेतच्छत्र-रूपी फेनवाले, गज-रूपी ऊँची पीठवाले, डूबते-उतराते मीनो से युक्त भँवरवाले तथा शीतल घाटो मे विविध रत्न-समुदाय को लाकर छितरानेवाली जीन, हौदा आदि नौकाओवाले रक्त के प्रवाह मे जा मिलते थे और उसे नया रूप ( अर्थात्, रक्तवर्ण ) दे देते थे।

दृढ वक्र दतोवाले कुछ राक्षस ( राम के ) अति तीक्ष्ण बाणो से मृत होकर देवता बन गये और भ्रमरो को आकृष्ट करनेवाली पुष्पमालाओ से शोभित केशोवाली अप्सराओ के साथ रहकर अपने ही कबंधो का नाच देखने लगे।

कुछ राक्षस देवो के संघ मे मिल गये और उत्तम कंकणों से भूषित अप्सराओं के साथ रहकर यह देख रहे थे कि उनकी ही मृत देह की छिन्न भुजाओ को किस प्रकार एक ओर से भूत पकडकर खाने लगते हैं और दूसरी ओर श्वान उन्ही टुकड़ों को पकड़कर खीच रहे हैं। यह देख-देखकर वे हँस पड़ते थे।

कुछ राक्षस, जिनके वक्ष, चुनकर प्रयुक्त किये गये रामचंद्र के बाणो के लगने से छिद गये थे और जो ( राक्षस ) कर्म-बधन से मुक्त होकर देवता बन गये थे, यह सोचकर मन में भय करने लगे कि अहो! राक्षसो की सेना विशाल है और राम तो एकाकी हैं, अब क्या होगा?

शुडधारी गज-सदृश वीर (राम) के वे बाण, जो कंटको (राक्षसो) के शरीरों को छिन्न-भिन्न कर रहे थे, नीच तथा काले मनवाले, झूठी गवाही देनेवाले व्यक्ति के वचनों के जैसे थे।

जिस प्रकार मनोहर पंखवाला भ्रमर अपनी शरण में पडे हुए कीड़ों को अपने रूप मे परिवर्त्तित कर देता है, उसी प्रकार उदार प्रभु ने मायावी राक्षसो को घेरकर अपने उत्तम शरों के पवित्र प्रभाव से देवो में परिवर्त्तित कर दिया।

वहाँ की रक्त की नदियाँ, मानो यह विचार कर कि एक बलवान् मनुष्य ने अनेक राक्षसो को मार दिया है, यह समाचार विजय-माला से भूषित रावण को देना चाहिए— क्रोधी राक्षसो के शवों को बहाती हुई (समुद्र मे गिरकर) लका में जा पहुँची।

चारो ओर जुटी हुई राक्षस-सेना को (राम के) बाणो ने सर्वत्र छिन्न-भिन्न करके उनके प्राणों को पी लिया, जिससे वह ( सेना ) धरती पर लोट गई, यह देखकर त्रिशिर ने क्रुद्ध होकर भी विलब किये बिना, रक्त-प्रवाह में निमग्न अपने रथ को गगन-मार्ग से चलाता हुआ गर्जन किया।

स्थिर रथवाले उस राक्षस ने, सबके लिए दृढ सत्य का साक्षी बनकर रहनेवाले, उस धर्म-स्वरूप चक्रवर्त्ती के कुमार (राम) के शरीर को, गगन की वर्षा की तरह अपने तीक्ष्ण बाणो की वर्षा से ढक दिया।

राम ने, (राक्षस के द्वारा) बरसाये गये उन सब बाणो को अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर, चौदह बाणो से ( उस राक्षस के ) उज्ज्वल स्वर्णमय रथ को ध्वस्त कर दिया और उसके सारथी को भी निहत कर दिया।

इतना ही नही, उसी क्षण, देवो के कोलाहल-ध्वनि करते समय, ( राम ने )

स्वर्ण के जैसे चमकते हुए तीक्ष्ण फलवाले अनुपम बाणों से क्रूर कार्य करनेवाले उस राक्षस के मुकुटधारी ( तीन ) शिरों में से, एक को छोड़कर, दो को काट गिराया।

तब वह राक्षस रथ-हीन हो गया और उसका त्रिशिर नाम भी निरर्थक हो गया। तो भी उसकी क्रूरता नहीं मिटी। जैसे गगन से काला मेघ उतरा हो, त्योंही उसने अपने वक्र धनुष से बाण-पुंज ( राम पर ) उतारे।

त्रिशिर, ललाट पर भौंहों को चढ़ाकर, प्रलय-काल की वर्षा की तरह शरों की घनी वर्षा करनेवाले धनुष को लेकर युद्ध करने लगा। तब जिस प्रकार प्रभंजन मेघ को बिखरा देता है, उसी प्रकार राम ने अपने अवार्य बाणों से उस (राक्षस) का धनुष काट दिया।

यद्यपि उस (राक्षस) ने अपना धनुष खो दिया, तथापि घूरनेवाले उसके चमकते मुख का प्रकाश कम नहीं हुआ। उसकी मेघ-गर्जन की-सी ध्वनि भी मंद नहीं पड़ी। उसका भुजबल मंद नहीं पड़ा। उसके द्वारा राम पर बरसाये जानेवाले पत्थर भी कम नहीं हुए और चाक के जैसे उसका परिभ्रमण भी मंद नहीं पड़ा।

गगन में स्वयं एकाकी रहकर भी उसने ऐसा माया-युद्ध किया, जैसे दो सौ व्यक्ति मिलकर युद्ध कर रहे हों। तब उसके दोनों पैरों को राम ने दो तीक्ष्ण बाणों से काट दिया और दो बाणों से उसकी भुजाओं को भी काट दिया।

भुजाओं और पैरों से हीन होकर वह ( राक्षस ) तीक्ष्ण दाँतों को बाहर किये, पर्वत-कंदरा समान एवं मांस-दुर्गंधि से युक्त अपने मुख को खोले हुए, रामचन्द्र पर गिरकर उन्हें निगलने को आया। उसे देखकर राम ने किंचित् भी दया किये बिना, अपने दीर्घ विजयशील धनुष से एक बाण प्रयुक्त कर उसके एक शिर को भी काट दिया।

त्रिशिर पर्वत-शिखर की भाँति ज्यों ही भूमि पर गिरा, त्योंही, सूर्य के जैसे चमकते हुए करवाल धारण किये, अपने विशाल हाथों में ढालों को लिये हुए, बाकी बचे हुए राक्षस, दूषण नामक सेनापति के मना करने पर भी वहाँ रुके नहीं, किंतु भाग खड़े हुए। उनके दीर्घ पैर, विशाल रक्त प्रवाहों में आँतों के मध्य उलझ जाते थे।

यह दृश्य देखकर, आकाश में झुंड बाँधकर स्थित देवता ताली बजाकर कोलाहल कर उठे। कुछ राक्षस, आदिशेष के फन पर स्थित धरती को दबाते हुए भाग चले और वहाँ फैली हुई चर्बी में फिसलकर उसमें डूब गये। कुछ राक्षस अपने सुरक्षित प्राणों के साथ भागे और शव के ढेरों से टकराकर लुढ़क गये।

कुछ राक्षस भागते हुए, धरती पर पड़े बरछे और करवाल की धारों से उनके पैर कट जाने से ढेले हो पड़े। कुछ, मृत राक्षसों के रक्त-प्रवाह में पैर फिसल जाने से डूब गये। कुछ, भय के मारे रक्त-धाराओं में कूदकर तैरने लगे, किंतु वे कहीं स्थिर खड़े नहीं रह सके।

कुछ ऐसे भाग रहे थे कि उनके कटि के वस्त्र और खड्ग खिसककर गिर जाते थे और उनके पैरों में उलझकर उन्हें काटने लगते थे, तो भी वे उनपर ध्यान न देते थे। वे भय की मूर्ति-से बने हुए, आश्चर्यचकित होकर जली-जली शवों के वक्ष पर लगे हुए उग्र वीर ( राम ) के बाणों को देखते थे, वहाँ से बेतहाशा दौड़कर भाग निकलते थे।

अतिवेग से भागनेवाले कुछ राक्षस, बड़े हाथियों के पेट में पड़े क्षतों के द्वार-रूपी कंदराओं में अपने खड्ग-सहित घुस जाते थे और पास खड़े कवध को देखकर यह कहकर सिर पर अपने हाथ जोड़ लेते थे कि—हे मेरे साथी, तुम यही कहना कि तुमने हमको नहीं देखा है।

इस प्रकार भागनेवाले राक्षसों को देखकर, अति वेगवान् अश्वों से जुते रथ पर आरूढ दूषण ने कहा—हमारे पराक्रम के योग्य युद्ध-कौशल से हीन इस मनुष्य को देखकर मत डरो। मैं जानता हूँ कि डर का कोई कारण नहीं है। मैं कुछ कहना चाहता हूँ, उसे सुनो।

जो लोग अपयश देनेवाले भय को मन में रखकर जीते हैं, उनसे सुन्दर कंगन पहननेवाली स्त्रियाँ भी नहीं डरती हैं। धैर्य-रूपी कवच ही वास्तव में रक्षा कर सकता है। भय प्राणों की रक्षा कभी नहीं कर सकता।

पूर्वकाल में, तीक्ष्ण भाले को धारण करनेवाले इन्द्र तथा अविनाशी त्रिदेवों के साथ हुए युद्ध में कौन राक्षस डरकर भागा था? कदाचित् तुम लोगों ने, तुमसे डरकर भागनेवाले देवों से अब यह (डरकर भागना) सीख लिया है, इसीलिए अब यों भ्रांत हो रहे हो।

तुम इतने बड़े वीर हो। फिर भी एक मनुष्य से हारकर, अपने हाथ में शस्त्र रखे, नगर में जाकर छिपने के लिए भाग रहे हो। तुम अपनी मदमाते नयनोंवाली पत्नियों के वक्ष से वक्ष मिलाकर आलिंगन का सुख भोगने जा रहे हो?

हे वीरो। (क्रोध से) ताम्रवर्ण रहनेवाली तुम्हारी आँखें अब दूध के समान श्वेत पड़ गई हैं। अहो! क्या तुम लोग अपनी स्त्रियों को, घने वन में भागते समय वृक्ष की शाखाओं के टकराने से अपनी पीठ पर लगे क्षतों को दिखाओगे, या अपने वक्ष पर लगे शरों के क्षत को दिखानेवाले हो।

'इस हमारे शत्रु, मनुष्य का युद्ध-पराक्रम उन देवों के लिए भी दुष्प्राप्य है'—(शत्रु की) ऐसी प्रशंसा का कारण बनकर, इस प्रकार पीठ दिखाकर तुम्हारा भागना—अजेय भुजबल से युक्त, तुम्हारे कुल के नायक (रावण) की बहन (शूर्पणखा) की नाक कटने की बात छोड़ भी दो, तो भी यह हमारे अपयश का कारण बन रहा है। अब इससे बढ़कर दयनीय दशा और क्या हो सकती है?

अद्भुत शस्त्र-प्रयोग में निपुण, धीरता-पूर्ण युद्ध-कार्य से जीविका-निर्वाह करनेवाले, शत्रुओं से छीनकर लिये गये करवालों को धारण करनेवाले, हे राक्षसो। अब क्या तुम लोग मोती आदि को बेचकर वणिक्-वृत्ति करनेवाले हो? या तीक्ष्ण बरछे, करवाल आदि से पृथ्वी को जीतकर कृषक-वृत्ति करनेवाले हो? बताओ तो सही।

यों कहकर उसने आगे कहा—तुम लोग कुछ समय तक खड़े रहकर मेरे दीर्घ धनुष का प्रभाव देखो। फिर, वह (दूषण) स्वयं अपनी तरंगायमान समुद्र-सदृश सेना को लेकर (राम के) सम्मुख जाकर आक्रमण करने लगा। वह दृश्य देखकर देवता लोग भी मूर्च्छित हो गये। तब राम ने भी उससे यह कहकर कि—'अपने को भली भाँति बचाओ'—आगे पग बढ़ा दिया।

तब ( राम के बाणों से सैनिकों के ) हाथ खड्गों-सहित कटकर गिर गये। हाथियों के ऊँचे बढे हुए दंत कटकर गिर गये। पवन-गति से जानेवाले रथ, ध्वजाओं-सहित, कटकर गिर गये। घोड़ों के शिर ऐसे कटकर गिरे, जैसे लाल धान की बालियाँ कटकर गिर रही हों।

( राम के द्वारा ) प्रयुक्त शरों में से कुछ ( राक्षसों के ) मर्म-स्थानों को खोजते हुए चले। कुछ उनके कवच और वस्त्रों को उड़ाकर चले और कुछ शर उनके ढालों और शरीर को भी ऐसे भेद कर चले कि उनके शरीर से रक्त की नदियाँ, पर्वत-निर्झरों के जैसे बह चलीं।

चुनकर प्रयोग किये गये कुछ कंकपत्र ( बाण ), शरीरों में प्रविष्ट होकर राक्षसों के मर्म-स्थानों में घुस गये। अर्धचन्द्राकार बाण, उनके मर्म-स्थानों में न घुसकर उनके शिरों को काटकर उड़ गये। कुछ अति तीक्ष्ण शर उनके कवचावृत वक्षों को भेदकर गये, और 'भल्ल' ( नामक कुछ शर ) मायावी राक्षसों के हृदय को भी छेदकर चले गये।

युद्ध की लीला रचनेवाले ( श्रीराम ) ने, दूषण के द्वारा प्रयुक्त सब बाणों को काटकर, उसके निकट स्थित राक्षसों के द्वारा प्रयुक्त अन्य शस्त्रों को भी ध्वस्त कर, अपरिमेय बल से युक्त उस राक्षस-सेना रूपी शब्दायमान समुद्र को कुछ क्षणों में ही सुखा दिया।

तब देवता लोग आनन्द-ध्वनि कर उठे। रक्त की बड़ी-बड़ी नदियाँ बड़े पर्वतों एवं वृक्षों को बहा ले चलीं। रामचन्द्र के द्वारा प्रयुक्त उग्र बाण दिग्दिगंतों में भी जाकर, उन दिशाओं को आवृत कर रहनेवाले क्रूर राक्षसों को आहत कर धरती पर लिटा दिया।

युद्ध करने की इच्छा से जो राक्षस रण-क्षेत्र में खड़े रहे, वे सब मर मिटे। यम, उन ( राक्षसों ) के शरीरों से निकलनेवाले प्राणों को ढोते-ढोते बहुत थक गया। अब उन भूतों के बारे में क्या कहा जाय, जो उन ( राक्षसों ) की चरबी को पेट-भर खाकर ऊँचे पर्वतों के जैसे लगते थे?

उस समय, दूषण अत्यन्त क्रुद्ध होकर, हाथियों, रथों, अश्वों, क्रोधी राक्षसों के मुकुट-भूषित शिरों, कबंधों, उज्ज्वल शस्त्रों से सुसज्जित शरीरों, उनकी श्वेतरंग की चरबी—इन सबके ढेरों के ऊपर से होकर कोलाहल-पूर्ण रथ को शीघ्र चलाता हुआ आया।

धर्महीन ( राक्षसों ) के शरीरों के ढेर की कोई संख्या नहीं थी। अतः, वह दूषण, यद्यपि चरखी के जैसा वेगवान् था, तथापि उसका रथ उन शव-राशियों पर चढ़ता-उतरता हुआ बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ा। उस कठिनाई के बारे में हम क्या कहें?

सुसज्जित केसरोंवाले पच्चीस अश्व जुते तथा लुढ़कते चक्रोंवाले एक विलक्षण रथ पर वह ( दूषण ) आरूढ था। भूमि के अंधकार को मिटानेवाले चन्द्र के सदृश स्थित रामचन्द्र के उज्ज्वल शर-रूपी यम के सम्मुख मानो स्वयं उसके प्राण आ पड़े हों, ऐसी शीघ्रता से वह आया।

उस रथ को तथा उसपर धनुष को हाथ में लिये हुए पर्वत के जैसे खड़े दूषण को, देखकर अकलंक रामचन्द्र ने अपनी कृपा के कारण किंचित् उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'तुम्हारा साहस भी धन्य है।' उस समय उस क्रूर राक्षस ने तीन बाण प्रयुक्त किये।

अतिदीर्घ तथा वर्त्तुलाकार अट दिशाओं तथा पृथक्-पृथक् उनका भार वहन करनेवाले अष्ट दिग्गजों को ढोने रहनेवाले दो में से एक ( पादुका )[1] को, जिन ( राम ) ने ( अयोध्या को ) लौटा दिया था, उनके ललाट पर गज के मुख पर बँधे मुखपट्ट के समान पट्ट पर वे तीनों शर जा लगे, जिस दृश्य को देखकर सभी देवता भयभीत हो गये।

राम ने सोचा कि ( दूषण के द्वारा ) शर-प्रयोग की गति एवं उनका बल भी प्रशंसनीय है। फिर, मनोहर कांतिमय मंदहास से युक्त होकर तीक्ष्ण बाण चुन-चुनकर त्वरित गति से प्रयुक्त किये और उस ( दूषण ) के शीघ्रगामी अश्वों से युक्त रथ को विध्वस्त कर दिया। उसके धनुष को छिन्न कर दिया और उज्ज्वल कवच को भी नष्ट कर दिया।

तब देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे। सभी दिशाओं में ऋषियों की आशीर्वाद-ध्वनि समुद्र-गर्जन के समान शब्दायमान हो उठी। फिर, राम ने यह कहकर कि—'यदि तुम वीर हो तो इनसे अपने को बचा लो', एक बाण प्रयुक्त किया। उससे उस ( दूषण ) का खड्ग-दंतयुक्त बड़ा शिर कटकर गिर गया।

मुख पर दंतों से शोभायमान दिग्गजों की समता करनेवाला, अति-तीक्ष्ण तथा विविध प्रकार के शस्त्रों को धारण करनेवाला खर, यह जानकर कि दशरथ-पुत्र के बाणों ने राक्षस-सेना का विनाश कर दिया, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

वह खर, राक्षसों के साथ हाथियों, अश्वों और रथों को सब दिशाओं में फैलाता हुआ यों चल पड़ा कि उसे देखकर यम भी भयभीत हो गया। उसकी सेना ने चन्द्र को आवृत करनेवाले मेघों के समान आकर दृढ धनुष को हाथ में धारण किये हुए मत्तगज ( सदृश राम ) को घेर लिया।

अदम्य क्रूर कृत्यवाले राक्षस, मदजल बहानेवाले बड़े-बड़े हाथियों को, रथों को और अश्वों को अत्यधिक संख्या में धरती पर ले आये, जिससे धरती को वहन करनेवाले आदिशेष का फण भी फटने लगा। फिर, वे भयंकर युद्ध करने लगे। महिमामय राम ने भी अति तीक्ष्ण बाणों को प्रयुक्त किया।

( रामचन्द्र के शरों से ) मत्तगज तड़पकर गिरे। रथों में जुते अश्व तड़पकर गिरे। अंगद-भूषित भुजाएँ तड़पकर गिरीं। आँतें तड़पकर गिरीं। मांस से लगे चर्म के टुकड़े तड़पकर गिरे। पैर तड़पकर गिरे। और ( उन राक्षसों की ) वाम भुजाएँ भी तड़प उठीं ( अर्थात्, फड़ककर विपदा की सूचना देने लगीं )।

करवालों के समूह, भालों के समूह, धनुषों के समूह, बलिष्ठ भुजाओं के समूह—इन सबसे संकुल होकर राक्षस-वीरों का समूह सम्मुख आया। जिसे ( रामचन्द्र के ) शर-समूह-रूपी विध्वंसक सेना ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

धर्म-स्वरूपी ( राम ) से चुनकर प्रयुक्त किये जानेवाले बाण नक्षत्रों को भी भेदकर जा सकते थे। मेरु पर्वत को भी भेदकर निकल जा सकते थे। ऊँचाई पर स्थित ऊपर

1. धरती का भार वहन करनेवाली दो वस्तुएँ हैं—आदिशेष और महाकूर्म। रामचन्द्र की पादुका, जिसे उन्होंने भरत को दिया था, आदिशेष का ही अवतार मानी गई है। —अनु०

के लोकों को भी पार कर जा सकते थे। धरती को भी भेदकर जा सकते थे। तो अब क्या यह भी कहने की आवश्यकता है कि वे ( बाण ) करवालों को उठाये, उपस्थित राक्षसों के शरीर को भी भेदकर जा सकते थे?

उस समय, उनको घेरकर आनेवाले सब राक्षसों का एक साथ विनाश करने के लिए राम ने जो बाण चुन-चुनकर चलाये, उन्होंने उन राक्षसों को उसी प्रकार अति शीघ्र मिटा दिये, जिस प्रकार किसी बलवान् व्यक्ति के द्वारा किसी बलहीन को अत्याचार से मारकर चुराया गया धन (उस अत्याचारी बलवान् को ) शीघ्र ही मिटा देता है।

सब राक्षस-वीरों के मिट जाने पर वीर-कंकणधारी, अतिक्रुद्ध क्रूर खर, उत्तरोत्तर बढ़ आनेवाली मज्जा और रक्त की धारा में ऐसे ही अकेले खड़ा रहा, जैसे विशाल समुद्र के मध्य मंदराचल खड़ा हो।

मन में क्रोधाग्नि से जलता हुआ वह ( खर ), अपनी लाल आँखों से चिनगारियाँ उगलता हुआ और अपने दृढ धनुष से बाणों को उगलता हुआ, बढ़ती हुई रक्त-धारा के मध्य से समुद्र-मध्य जानेवाली नौका के सदृश रथ पर आया। काक और गिद्ध भी उसको घेरकर आये।

युगांत में सारे संसार को जलानेवाली अग्नि के समान वैर एवं क्रूरता से युक्त, एकाकी रहनेवाले उस राक्षस के अपने निकट आने के पूर्व ही, नीलकंठ ( शिव ) के धनुष को तोड़नेवाले प्रभु, उत्तम बाणों को लिये हुए उसके सम्मुख बढ़ आये।

अग्नि के जैसे तीक्ष्ण रूपवाले, पवन के जैसे वेगवाले तथा अन्य सब लक्षणों से युक्त तीक्ष्णाग्र बाणों को उस राक्षस-पति ने छोड़ा। किंतु राम ने उन सबको वैसे ही सहस्रों उत्तम बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया।

सप्त लोकों के प्रभु राम ने प्रलयाग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण, नौ बाणों को प्रयुक्त किया। किन्तु, चक्र के रूप में झुके हुए धनुषवाले खर ने अग्नि उगलनेवाले बाणों को चलाकर राम के बाणों को रोक दिया।

फिर, खर ने माया-युद्ध करते हुए, शरों की वर्षा उत्पन्न की और रामचन्द्र के शरीर को उन बाणों से ढक दिया। इससे देवता भयभीत होकर भागे, तब महावीर राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनके उज्ज्वल दाँत और उन (दाँतों) को ढकनेवाले ओंठ दोनों व्यत्यस्त हो गये (अर्थात्, उनके दाँत ओठों को चबाते हुए उन ओंठों को ढकने लगे।)

राम ने यह सोचकर कि अब एक तीक्ष्ण बाण से इस राक्षस को मिटा दूँगा, एक शर को धनुष पर चढ़ाकर उसे आकर्ण खींचा, तब उनके हाथ का धनुष, विशाल आकाश में उत्पन्न मेघ-गर्जन के सदृश घोष के साथ टूट गया।

( राम की ) जय-जयकार करनेवाले देवताओं ने देखा कि राम का धनुष टूट गया है और उनके पास अन्य कोई दृढ धनुष नहीं है और यह सोचकर कि हमारी शक्ति अब नष्ट हो गई है, भय से काँप उठे और व्याकुल हो उठे।

इसी क्षण राजाधिराज के पुत्र ( राम ) ने अपने अकेलेपन की एवं अपने धनुष

के टूट जाने की किंचित् भी चिन्ता किये बिना ही प्राचीन संकेत[1] के अनुसार अपनी विशाल बाँह को पीछे की ओर पसारा।

वरुणदेव ने यह दृश्य देखा और उनके मन की बात जानकर परशुराम से पूर्व में प्राप्त विष्णु-धनुष को उस देवाधिदेव ( राम ) के हाथ में लाकर रख दिया।

वरुण के द्वारा लाये हुए उस धनुष को नीलमेघवर्ण प्रभु ने अपने हाथ में लिया और अपने बायें हाथ से उसे पकड़कर दायें हाथ से खींचकर झुकाया, तो धर्महीन राक्षसों के वाम नेत्र और वाम भुजाएँ फड़क उठीं।

यों एक पलक-भर में राम ने उस धनुष को लिया, और उसे ऐसा झुकाया कि यम भी भयभीत हो गया। उनके बाद डोरी चढ़ाई और सौ बाण प्रयुक्त किये; जिनसे खर का दृढ़ चक्रवाला रथ चूर-चूर हो गया।

खर दृढ़ चक्रवाला अपना रथ खो बैठा। तब वह बड़ा कोलाहल करता हुआ आकाश में उछल गया और सुन्दर तथा अनुपम धनुर्धारी राम की भुजा-रूपी मंदराचल पर बाणों की घोर वर्षा करने लगा।

राम ने उन बाणों को रोक लिया और अपने तूणीर से तीक्ष्ण बाणों को निकाल-निकालकर चढ़ानेवाले खर के दक्षिण हाथ को एक बाण से काटकर धरती पर गिरा दिया।

खर ने, अपने दाहिने हाथ के कट जाने पर, अपने बायें हाथ से एक भयंकर वज्र के समान मूसल को उठाकर, उसे राम पर फेंका। तब लक्ष्मण के अग्रज ने उसे एक ही बाण से दूर फेंक दिया।

जैसे कोई सर्प अपने विष-दंत के टूट जाने के पश्चात् फुफकार रहा हो, ऐसे ही वह खर एक बड़े वृक्ष को हाथ में लेकर झपटा। तब राम ने एक अनुपम बाण का उसपर प्रयोग किया।

यद्यपि उस खर ने अनेक वर प्राप्त किये थे, बड़ा मायावी था और बड़ा बलवान् था, तथापि राक्षसराज ( रावण ) के सप्त लोक के प्राणियों का विनाश करने के पाप के कारण, उसके दक्षिण हाथ के जैसे ही उसका कंठ भी कट गया।

उस समय, देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे, नाचने और गाने लगे और पवित्र पुष्प बरसाने लगे। पवित्रमूर्त्ति (राम) भी सब दिशाओं में फैले कुहरे को मिटाकर निखरनेवाले सूर्य के समान ही चमकने लगे।

अनेक मुनि आये और राम का अभिनन्दन करने लगे, फिर पवित्र हृदयवाले ( राम ) उन सीताजी के समीप जा पहुँचे, जो अपने प्राणों ( रामचन्द्र ) के राक्षस-सेना के साथ युद्ध करने के लिए चले जाने पर प्राणहीन शरीर बनकर पर्णशाला में रहती थीं।

लक्ष्मण और सीता ने रामचन्द्र के चरणों को अपने अश्रुजल से इस प्रकार धोया कि उन चरणों पर लगा हुआ, युद्ध में मृत राक्षसों का रक्त और धूल धुल गये।

---

१. प्राचीन संकेत यह है—पहले धनुर्भंग के समय परशुराम ने राम से पराजित होकर अपने पास का विष्णु-धनुष उन्हें दिया था। राम ने वह धनुष वरुण को सौंपा था और कहा था कि जब उन्हें उसकी आवश्यकता पड़ेगी, तब वह धनुष उन्हें मिल जाना चाहिए।—अनु०

एक मुहूर्त में मरे हुए राक्षसों का रक्त-प्रवाह सब दिशाओं में भर गया। इधर श्रीरामचन्द्र विश्राम करने लगे और देवता समुद्र में, पक्तियों में उठनेवाली लहरों के समान, घोष करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

इधर जो वृत्तात कहना शेष रह गया है, अब उसे कहेंगे। रावण की बहन, अपनी छाती पीटती हुई, अधकार समान खर का आलिंगन करके, दूर तक फैले हुए उसके उष्ण रक्त-प्रवाह में लोटने लगी।

मैंने अपने मन में (राम को पाने की) जो इच्छा की थी, हाय! उस इच्छा को अपनी नासिका के साथ ही मैंने नहीं खोया। मैंने अपने वचनों के कारण तुम लोगों (खर-दूषण) के जीवन को भी मिटा दिया। मैं अत्यन्त क्रूर हूँ—यों रोती कलपती हुई वहाँ से चली गई।

विजयमालाधारी (लका में रहनेवाले) राक्षस-समूह का भी नाश करने के विचार से, ससार के प्राणियों को भयभीत करनेवाली आँधी के समान, वह शीघ्र लका में जा पहुँची। (१–१६२)

●

## अध्याय ७

## मारीच-वध पटल

शूर्पणखा, कोलाहल से पूर्ण समुद्र की जैसी राक्षस-सेना के विनष्ट होने की बात को भूल-सी गई। रामचन्द्र के पर्वत-सदृश कधों के प्रति आकर्षण उसके मन को व्यथित करने लगा। उससे अत्यत व्याकुल हो वह यह सोचकर चल पड़ी कि, तरगों से भरे समुद्र-रूपी परिखा से आवृत विशाल लंका में शीघ्र जा पहुँचूँगी और (रावण से) सीता के सौंदर्य के बारे में कहूँगी। अब उस लका में स्थित रावण का वर्णन करेंगे।

वह (रावण) एक ऐसे अति मनोहर अनुपम रत्न-मडप में आसीन था, जो (मडप) इस नश्वर संसार में स्थावर-जगम पदार्थों की सृष्टि करनेवाले कमल-भव, चतुर्मुख (ब्रह्मा) के लिए भी विरचित करने को असभव था और जो सूक्ष्म ज्ञान से उत्पन्न अनुपम दक्षता से युक्त तथा निष्कलक धर्म के जैसे ही, सकल्प-मात्र से सब वस्तुओं का सर्जन करनेवाले (विश्वकर्मा नामक) देव-शिल्पी के द्वारा निर्मित होकर, उसके समस्त शिल्पशास्त्र-ज्ञान को प्रकट करता था।

भ्रमरों से गुंजित शिरवाले दिग्गजों के दाँतों को भी अपने कठोर आघात से तोड़ देनेवाले (उस रावण के) मनोहर कधे, आकाश तक उन्नत होकर ऊँचे उदयाचल के समान शोभित हो रहे थे। उन कधों पर (रावण के बीस) कुण्डल इस प्रकार प्रकाशमान थे, जैसे उज्ज्वल किरण-पुज से युक्त द्वादश सूर्य-मडल, मेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए, बीस मडलवाले होकर चमक रहे हों।

देवताओ मे व्याघ्र-चर्म धारण करनेवाले (शिव), स्वर्णमय वस्त्र धारण करनेवाले (विष्णु) और कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) भी उस रावण को कुछ पीड़ा नही दे सकते थे, तो अब इस ससार में दूसरो के सबध मे क्या कहा जाय। (अर्थात्, दूसरे कौन उससे युद्ध करने की शक्ति रखते हैं)? सूक्ष्म कटि, पीन स्तनों, कोमल बाँस-समान कंधो, रेखाओ से युक्त नेत्रो तथा सबको आकृष्ट करने की शक्ति से युक्त सुदरियो के साथ दुस्सह प्रणय-कलह मे भी न झुकनेवाले उसके किरीटो की पंक्ति अत्यन्त उज्ज्वल थी।

(उसके आभरणो के) उज्ज्वल तथा बड़े-बडे रत्न प्रकाश-पुज बिखेर रहे थे। (उसके) वज्रमय पर्वताकार कधे, धरती का भार वहन करनेवाले विषमय सर्पराज के फनो के समान शोभित थे। (उसके वक्ष पर) के उज्ज्वल रत्नहार भयकर समुद्र से घिरी लका के मध्य स्थित उस कारागार का दृश्य उपस्थित करते थे, जिसमे (रावण) के द्वारा बंदी बनाकर लाये गये नवग्रह तथा उनके पार्श्वों मे नक्षत्र रखे गये हो।

अरुण कातिवाले, उत्तम रत्नों से खचित उसका वीर-वलय, उसके चरण मे शब्दायमान हो रहा था और अवर्णनीय महाबल से युक्त राक्षस-नायको के गौरवमय रत्न-किरीटो की रगड़ खा-खाकर नव काति बिखेर रहा था।

सुरो तथा असुरो ने सब दिशाओ से ला-लाकर जो सुरभित पुष्प (रावण के चरणो पर) बरसाये, वे पुष्प त्रिभुवन के राजाओ के द्वारा निरन्तर ला-लाकर समर्पित धन-राशियों के समान भरे पड़े थे।

बिजली के जैसे चमकते हुए किरीटोवाले विद्याधर-नरेश, यह न जानने से कि वह (रावण) किस समय, किस ओर अपनी दृष्टि डालेगा, सदा अपने शिर पर हाथो को जोड़े हुए सभा-मंडप मे उसके समीप पंक्ति बाँधे खड़े रहते थे।

सिह-सदृश बलशाली सिद्ध लोग, उस (रावण) के समीप शिर झुकाये, हाथ जोड़े और संकोच-से भरे मन के साथ विनम्र होकर खडे रहते थे। यदि वह रावण किसी दासी को भी कोई आज्ञा देता, तो भी (ये सिद्ध लोग) यह समझकर कि वह उनको ही आज्ञा दे रहा है, झट उसे करने के लिए दौड़ पड़ते थे।

यदि वह रावण उस सभा-मडप मे मन्त्रियो को देखकर कोई वचन कहता, तो भी किन्नर (यह सोचकर कि वह उन किन्नरो को कुछ दड देने की ही बात कर रहा है), व्याकुल तथा भयभीत होकर शिर झुकाकर खडे रहते थे।

नागलोग, रावण को देखकर, विशाल (दक्षिण) दिशा के प्रभु तथा भयकर दड-धारी यम को देखनेवाले नरक-वासियो के समान ही, गद्गदकंठ एवं भय-व्याकुल मन होकर घेरे खडे रहते थे।

तुबुरु नामक ऋषि अपनी सगीतमय वीणा के साथ रावण की उन भुजाओ का यशोगान कर रहे थे, जिन भुजाओ ने दिग्गजो के बल को कुंठित कर दिया था, कैलाश गिरि को उखाड़कर महादेव के लिए अपवाद उत्पन्न किया था और इन्द्र के साथ युद्ध करके सभी स्वर्ग-वासियों को भयभीत किया था।

नारद मुनि, स्वर्ग मे प्रचलित सगीत-पद्धति मे किंचित् भी स्खलित हुए बिना,

अपने करों से वीणा का नाद करते हुए, सरस्वती के समान ही, दोषहीन राग में मधुर वेद का गान करते थे और उसके कानों को तृप्त करते थे।

मकर-मीन से पूर्ण समुद्र का अधिपति वरुण, देव-तरुओं तथा विद्याधर-लोक के वृक्षों के पुष्पों से झरे हुए मधु को, स्वच्छ जल के साथ मिलाकर, मेघ नामक पिचकारी में भरकर, डरते-डरते उस रावण पर बूँदों में बरसा रहे थे कि कहीं (पिचकारी का जल) मयूर और हरिणी-सदृश रमणियों के वस्त्रों पर न पड़ जाये।

वायुदेव, सुगन्धित पुष्पों से झरनेवाले पराग और मधु को, एवं (उस सभा में स्थित) राजाओं के ऊँचे-ऊँचे किरीटों के (एक दूसरे से) रगड़ने से झरनेवाले रत्नों और मुक्ताओं के टुकड़ों को, धरती पर उनके गिरने के पूर्व ही, इधर से उधर और उधर से इधर दौड़-दौड़कर इस प्रकार बटोर लेता था, मानों वह उस स्थान पर झाड़ू-सा लगा रहा हो।

बृहस्पति और शुक्राचार्य—दोनों अपने हाथों में बिजली के जैसे चमकनेवाले दंड लिये हुए, सारे शरीर को ढकनेवाले दीर्घ कंचुक धारण किये हुए, अथक रूप से घूम-घूमकर (रावण के सभा-मंडप में) इन्द्र आदि देवताओं को यथोचित आसन दिखाने का कार्य कर रहे थे (अर्थात्, रावण की सेवकाई कर रहे थे)।

काल त्रिशूल आदि अपने शस्त्रों का त्याग कर, अपने शरीर के वस्त्र से अपना मुँह ढककर, जब-जब चर्म से आवृत भेरी-वाद्य बजने का समय होता था, तब-तब आकर, ठीक समय की सूचना देता था। (भाव यह है कि कालदेव रावण के सभा-मंडप में समय की सूचना देने का कार्य करता था)।

उज्ज्वल अग्निदेव, दीपों में सुगंधित घृत को भर-भरकर, उत्तम कर्पूर-वत्ती को तथा कपास की वत्ती को जलाकर, जलाशयों में स्थित रक्त-कमल के समान दीपों को प्रकाशित कर रहा था।

नवीन पुष्पों से पुष्पित कल्पवृक्ष, असन्द कांति से पूर्ण (चिंतामणि आदि देव-लोक के) रत्न, दुधार (कामधेनु आदि) गायें तथा (शंख, पद्म आदि) निधियाँ, (रावण के) मन के कोमल भावों को पहचानकर क्रम-क्रम से अनेक वस्तुओं को लाकर उसके सामने रख देता था और उसे आश्चर्य में डाल देता था।

(रावण के पहने हुए) कुंडल आदि आभरण, अपनी घनी कांति को इस प्रकार फैला रहे थे कि ऐसा लगता था, मानों सत लोकों में रात्रि नामक पदार्थ ही कहीं नहीं रह गई है, न अष्ट दिशाओं में कहीं अँधेरा रह गया है।

गंगा आदि नदी देवियाँ, अपने स्तन-भार से लचकनेवाली लता-समान कटि के साथ, उस सभा-मंडप में आतीं और (रावण पर) अपने अरुण करों से अक्षत एवं पुष्प बिखेरती तथा बारी-बारी से प्रशस्तियाँ गातीं।

(नारायण मुनि के) उरु से उत्पन्न उर्वशी[1] नामक अप्सरा को आगे किये हुए

---

१ पुराणों में एक कथा प्रसिद्ध है—बदरिकाश्रम में विष्णु के अंशभूत नर और नारायण क्रमशः शिष्य और गुरु के रूप में तपस्या करते थे। उनकी तपस्या को भंग करने के लिए इन्द्र के द्वारा प्रेषित अप्सराओं को आया हुआ देखकर नारायण ने अपने उरु से उन अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर स्त्री को उत्पन्न किया, जिसे देखकर वे सब अप्सराएँ लज्जित होकर चली गई—उसका नाम उर्वशी पड़ा।

अनेक स्त्रियाँ, कलापी के समान चर्ममय वाद्यों (अर्थात् , मर्दल आदि) के ताल के अनुसार अत्युत्तम नृत्य करती थीं, जिसे वह ( रावण ) देखता रहता था।

वह रावण, जिसने अपूर्व तपस्या के प्रभाव से त्रिभुवन को भी अपने अपार बल के अधीन कर रखा था, अब (उस सभा-मंडप में) भ्रू-रूपी धनुष को धारण करनेवाली काले तथा विशाल नयनोंवाली रमणियों की दृष्टियों के प्रवाह में (तैर रहा) था।

उस समय, रावण की बहन ( शूर्पणखा ), अपने लाल हाथों को शिर पर रखे हुए, स्तनों से लाल रक्त बहाते हुए, नाक और कानों से रहित होकर, अपना मुँह खोलकर मेघ के जैसे गरजती हुई, दौड़ी आई।

वह ( शूर्पणखा ) अपने अत्यन्त दुर्गन्ध-पूर्ण मुँह से रोती गरजती हुई, युगांत-कालिक समुद्र-घोष के समान शब्द करती हुई, व्याकुल-चित्त होकर, पश्चिम दिशा में दीख पड़नेवाली संध्याकालीन लालिमा के जैसे केशों के साथ, (लंका के प्रासाद के ) उत्तरी द्वार से होकर प्रकट हुई।

उसके इस प्रकार प्रकट होते ही, उस पुरातन ( लंका ) नगर की राक्षस-स्त्रियाँ उस ( शूर्पणखा ) के सम्मुख जाकर अपनी छाती पीट-पीटकर रोने लगीं। हाय! त्रिभुवन के शासक की बहन नककटी होकर, निस्सहाय इस प्रकार आवे, तो वे स्त्रियाँ कैसे उस दृश्य को सह सकती थीं ?

राक्षस, (शूर्पणखा को) हठात् उस दशा में आती हुई देखकर स्तब्ध रह गये। उनके मुख से कुछ वचन नहीं निकला, फिर वज्र-घोष के जैसा गर्जन करके, एक हाथ से दूसरे हाथ को पीटते हुए, आँखों से चिनगारियाँ निकालते हुए और ओठ चबाते हुए खड़े रहे।

कुछ राक्षस यह कहकर क्षुब्ध हो रहे कि क्या यह कार्य इन्द्र का है ? नहीं तो सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने किया है ? या चक्रधारी विष्णु का यह कार्य है ? अथवा चंद्रशेखर का ही यह कार्य है ?

कुछ राक्षसों ने कहा—(इस ब्रह्मांड में) कहने योग्य शत्रु कोई (रावण का) नहीं है। अतः, त्रिभुवन को अपने अन्तर में रखे हुए इस ब्रह्मांड में रहनेवाले) किसी भी व्यक्ति के द्वारा यह कार्य नहीं हुआ है, इसे करनेवाले इस ब्रह्मांड से परे रहनेवाला कोई होगा।

कुछ राक्षसों ने कहा—'अरे, यह रावण की बहन है!'—यह वचन सुनते ही सब लोग इसे 'हे माता!' कहकर इसके चरणों को नमस्कार करते हैं। कोई इसके अपमान की बात सोच भी नहीं सकता। अतः, इस (शूर्पणखा) ने स्वयं ही अपने कान-नाक काट लिये होंगे।

कुछ राक्षस कहते थे—देवेन्द्र युद्ध में पराजित होकर अब ( रावण की ) सेवकाई कर रहा है, तीक्ष्ण धारवाले चक्र को धारण करनेवाला विष्णु, शक्तिहीन होकर समुद्र में जा-कर रहने लगा है। अग्नि को हाथ में धारण करनेवाला शिव ( रावण से डरकर ) पर्वत पर जाकर रहने लगा है. फिर ऐसा कार्य करनेवाला व्यक्ति कौन है ?

यशस्वी कुल में उत्पन्न कोई भी व्यक्ति ऐसा कार्य करने का साहस नहीं कर

सकता, न वह खर से ही। यह सोचकर कि यह (शूर्पणखा) उत्तमकुल की स्त्रियों के लिए उचित कार्य न करके चरित्र-भ्रष्ट हो गई है, इसे सौन्दर्य से हीन कर दिया है।

कुछ राक्षस कहते थे—शिथिल एवं व्याकुल दिखनेवाले देवताओं में से किन्हीं तत्त्वज्ञ ऋषियों ने, जगज्जन के साथ, जीवित रहने के लिए अनुपयोगी विकार से (अर्थात्, बिना सुन्दरी विकार से), त्रिलोक का विनाश करने के लिए ही, इस प्रकार का कार्य किया है।

कुछ राक्षस कहते थे—दूसरा कल्प आने पर है; किन्तु इस कल्प में ऐसा कौन वीर-पराक्रमी तथा कुशलभाषी वीर है, जो इस प्रकार ऐसा कार्य करने की क्षमता रखता है? भयंकर अरण्य में, तपोनिष्ठ तपस्या में लिप्त ऋषियों के क्रोध का ही यह परिणाम है।

अपार शोभावाले सुन्दर उस लंका-नगर में, काले नयनोंवाली राक्षस-स्त्रियाँ (शूर्पणखा की यह दशा) देखकर, वलय-पंक्तियों से भूषित अपने हाथों को मलती हुई, नाचते हुए के समान अस्तव्यस्त दशा में पड़ी हुई, गद्गद वचन कहती हुई, एक के आगे एक होती हुई, दौड़ी चली आईं।

उस नगर में, मर्दल, वीणा, मधुर नादवाले वाद्य-वाद्य, मनोमोहक वंशी, शंख, (तारे) (नागक वाद्य)—इनकी ध्वनि अब नहीं रही; किन्तु जैसी रुदन-ध्वनि इसके पहले कभी उत्पन्न नहीं हुई थी, वैसी रुदन-ध्वनि होने लगी।

समुद्र को भी लज्जित करनेवाले विशाल नयनों से शोभित राक्षस-स्त्रियाँ, मधु-पात्रों को, मद-कलशों को एवं अपने वस्त्रों को एक ओर ढकेलकर दौड़ी चली आईं; तब उनकी कटि लचकने लगी, जिससे वे एक दूसरे को ढकेलती हुई आईं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो कलह के समय अपने पतियों को (प्रणय-कलह में हुए उनके अपराधों के लिए) दंड देने में निरत थीं और अपने उद्विग्न मन में क्रोध उमड़ने के कारण लालिमा से भरे अपने नेत्रों से अश्रु बहा रही थीं, [illegible] आ गिरीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो स्वर्णमय फलों से युक्त मकरन्द बरसाते कल्प-वृक्षों में बाँधी गई मरकतमय डोरियों से लटकनेवाले झूलों में झूल रही थीं, वे झूलना छोड़कर अधीर चित्त के साथ, अपनी सूक्ष्म कटियों को दुखाती हुई, वीथियों में आ पहुँचीं।

और कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो (अपने पतियों के) स्वर्ण और पर्वत-तुल्य कंधों के आलिंगन में बँधी थीं, अपनी वलय-विभूषित बाँहों को शिथिल करके, अपने कमल-तुल्य वदन पर के दो नयनों से जल की धारा बहाती हुई, सिसक-सिसककर रोने लगीं।

क्षीण-कटिवाली कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, यह कहती हुई कि शत्रु विध्वंसक और (शत्रुओं के) रक्त में डूबे हुए शूल को धारण करनेवाला राजा (रावण) यदि इस बात को जान लेगा, तो उसकी क्या दशा होगी! अपनी अंजन-लगी आँखों से मेघ की वर्षा करती हुई, मोती-करधनी धरती पर लोटने लगीं।

विद्युत्-सी चमकती कुछ राक्षस-युवतियाँ, मधुर पान के आनन्द को भूल गईं। मेघ की समता करनेवाले केशों को अस्त-व्यस्त किये हुए, शिथिल वस्त्रों तथा कम्पित स्तनों के साथ घर से निकल पड़ीं और दुःख से रोने लगीं।

खुले केश-पाशवाली कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, यह कहकर कि शिव के कैलास को अपने विशाल करों में उठानेवाले हमारे पराक्रमी प्रभु की बहन की यह दशा हो गई है। हाय! शोक से उद्विग्न हुई, स्तनों पर अपने करों से आघात करने लगीं और उस स्त्री (शूर्पणखा) के पैरों पर आ गिरीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, यह कहकर कि 'अपने हाथ में शूल को रखनेवाले हमारे प्रभु के रहने के कारण लंका के पशुओं ने भी कभी ऐसा दुःख नहीं भोगा, अब क्या हमारे सब सुकृत मिट गये हैं?' दुःखी हुई और अपने अति सुन्दर नयनों से अश्रु की धारा बहाने लगीं।

जब लंका-नगर इस प्रकार दारुण दुःख में निमग्न हो रहा था, तब शूर्पणखा, पर्वत-सानु पर आकर झुकनेवाले मेघ के समान सभा-मंडप में प्रविष्ट होकर राक्षसराज (रावण) के स्वर्णमय विशाल वीर-कंकण से भूषित पैरों पर आ गिरी। अकस्मात् उसको उस रूप में देखकर उस मंडप में बैठे हुए और खड़े हुए सब लोग भय से भाग निकलने का मार्ग देखने लगे।

तीनों लोकों में अंधकार छा गया। (धरती का भार वहन करनेवाला) शेषनाग भयभीत होकर अपने फनों को झुकाने लगा, कुलपर्वत हिल उठे, सूर्य कांतिहीन हो गया, दिग्गज अपना स्थान छोड़कर भागने लगे, देवता भय से यत्र-तत्र छिपने लगे।

उज्ज्वल-वलयभूषित (रावण की) भुजाएँ फूल उठीं, उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, दाँतों से अग्नि-ज्वालाएँ फूट निकलीं, कुंचित भौंहें ललाट के मध्य जा पहुँचीं। (रावण का क्रोध देखकर) सब भुवन डाँवाडोल हो उठे, देवता किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर खडे रहे।

दक्षिण दिशा के शासक यम के साथ सब देवता, यह सोचकर कि अब हमारे विनाश का समय आ गया है चुपचाप पड़े रहे। स्वर्गलोक के निवासी तथा इहलोक के निवासी भी भ्रांत होकर थर-थर काँपते हुए, उसासे भरते हुए घबराई हुई दशा में अवाक् हो खड़े रहे।

रावण के (कोप के कारण) दाँतों से दबे हुए ओंठवाले बिल-समान मुँहों से धुआँ निकलने लगा। उसने श्वास छोड़ा, तो पंक्तिशः रहनेवाली उसकी मूँछों में आग लग गई, उसके तीक्ष्ण तथा उज्ज्वल दंत बिजली के जैसे चमक उठे, यों मेघ के गर्जन के समान गरजकर उसने पूछा—'यह किसका कार्य है?'

शूर्पणखा ने उत्तर दिया—अरण्य में मीनकेतन (मन्मथ) के समान रूपवाले, स्वर्ग-वासियों एवं पृथ्वी के निवासियों में अपना उपमान कहीं भी न पानेवाले दो मनुष्य राजकुमार आये हैं। उन्होंने ही करवाल से (मेरे अंगों को) काट दिया है।

शूर्पणखा के यह कहते ही कि मनुष्यों ने यह कार्य किया है, रावण ने ऐसा ठहाका भरा कि सारी दिशाएँ गूँज उठीं। उसकी बीसों आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं। फिर शूर्पणखा से बोला—मनुष्यों का पराक्रम तो अतिक्षुद्र होता है, क्या तुम्हारा कथन सत्य है? असत्य कहना छोड़ दो; भय को दूर करो और यथार्थ घटना बताओ।

तव शूर्पणखा कहने लगी—वे अपने रूप-सौदर्य मे मन्मथ की समता करनेवाले है, अपनी पुष्ट भुजाओ के वल से मेरु पर्वत की दृढता को भी मिटाने मे समर्थ हैं, एक क्षण-भर मे सप्त लोको के निवासियो के पराक्रम को मिटा सकते हैं। उनके गुणो का वर्णन मै अव कैसे कर सकती हूँ ?

वे लोग मुनियो के प्रति आदर-भाव दिखाते है। गगन के चद्र के सदृश मुखवाले है। तरंग-भरे जल मे नाल पर शोभायमान सुरभित कमल के दल-सदृश नेत्रवाले हैं, वैसे ही (अर्थात्, कमल-तुल्य ही) कर-चरणवाले हैं, अपार तपस्या से सपन्न हैं। उनकी समता करनेवाले कौन हैं ? (अर्थात्, नही हैं।)

वे वल्कलधारी हैं। विशाल वीर-वलयधारी हैं। वक्ष पर सुन्दर सूत्र (यज्ञोपवीत) से शोभायमान हैं। धनुर्विद्या में निपुण हैं। वेद के आवास वाणी से युक्त हैं। कोमल पल्लव-सदृश (मृदुल) शरीरवाले हैं। तुमसे भयभीत नही होनेवाले हैं। तुम्हे धूलि के समान भी नही समझनेवाले हैं। शब्द-रूप शास्त्रो के समान ही अक्षय रहनेवाले तूणीर धारण करनेवाले हैं।

उत्तम चरित्रवाले मुनियो ने उन दोनो के निकट आकर निवेदन किया कि अपने मन को सयम मे रखनेवाले हमलोग राक्षसो से आशंकित है। इसपर उन मनुष्यो ने शपथ की कि सब लोको को जीतनेवाले रावण के कुल का हम समूल विनाश करेंगे।

हे प्रभु। क्या एक ही लोक मे दो मन्मथ निवास करते हैं ? क्या धनुर्विद्या मे उनसे अधिक निपुण कोई है ? क्या उनकी समता करनेवाला कोई एक भी व्यक्ति है ? उन दोनो मे से प्रत्येक, अकेले ही, त्रिमूर्त्तियो की समता करता है।

सारे भूमडल में अपना शासन-चक्र प्रवर्त्तित करनेवाले दशरथ नामक प्रशस्त राजा के वे दोनो पुत्र हैं। किंचित् भी दोष से रहित हैं। अपने पिता की आज्ञा से दुर्गम अरण्य मे आकर निवास कर रहे हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं।—यों शूर्पणखा ने कहा।

अमृत-सदृश प्यारी बहन (शूर्पणखा) की नासिका को तीक्ष्ण करवाल से काटनेवाले, मनुष्य हैं। काटने के पश्चात् भी वे जीवित हैं। ऐसा होने पर भी नवीन खड्ग को धारण किये हुए रावण, किंचित् भी लज्जित हुए विना, नयन खोलकर देखता हुआ अभी तक प्राण रखे हुए है।—इस प्रकार रावण कहने लगा।

सर्वत्र विजय पाकर, अपने पराक्रम से राज्य को प्राप्त करने पर भी अन्त मे मुझे यही (अपयश) मिला है। मेरा सारा यश मिट गया। संसार के समस्त वीरो के शिर कट जाने पर भी, मेरा खोया हुआ मान किस प्रकार लौटकर आ सकता है ?

मुझे इस प्रकार अपमानित करनेवाले मनुष्य भी अभी तक जीवित हैं। उनके प्राण अभी स्थिर हैं और मेरा यह खड्ग भी अभी मेरे हाथ मे वर्त्तमान है। समुद्र मे उत्पन्न विष को पीनेवाले (शिव) के द्वारा प्रदत्त मेरी आयु भी बनी हुई है। मेरी भुजाएँ भी हैं तथा मैं भी (वैसा ही) हूँ।

हे मेरे मन। क्या यह सोचकर कि ऐसा अपवाद शूल बनकर तुम में चुभ गया है, तू लज्जित हो छटपटा रहा है, तू व्याकुल न हो। इस अपवाद को ढोने के लिए मेरे दस

शिर है। उन (शिरो) से भी अधिक संख्या में मेरी भुजाएँ हैं। फिर, तुझे क्या क्लेश हो सकता है?

यों कहकर वह (रावण) हँसने लगा और अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालने लगा। फिर पूछा—ऊँचे पर्वतों से भरे दडकारण्य में रहनेवाले खर आदि राक्षसों ने क्या इन निस्सहाय मनुष्यों को अपने शस्त्रों से मिटा नहीं दिया?

रावण के ये वचन कहते ही, शूर्पणखा निर्झर के समान अश्रु बहाती हुई, अपनी छाती पीटती हुई, धरती पर लोट-लोटकर रोने लगी और बोली—हे तात! हमारे वे बन्धु भी शीघ्र उन (मनुष्यों) के द्वारा ध्वस्त हो गये। फिर, सिर पर हाथ धरकर सारा वृत्तांत कहने लगी।

खर आदि वृषभ-सदृश वीर, मेरे मुँह से घटित वृत्तांत को सुनकर अपनी सारी सेना को लेकर बड़े कोलाहल के साथ वहाँ गये और सूर्य-किरणों का स्पर्श पाकर विकसित कमल की समता करनेवाले अरुण नयनों से शोभित राम नामक वीर के धनुष से तीन घड़ी के अन्दर ही वे स्वर्ग में जा पहुँचे—यों शूर्पणखा ने कहा।

'उसके भाई (खर और दूषण), एकाकी राम के साथ के युद्ध में, अपनी विजय माला-भूषित सेना के साथ मारे गये'—यह वचन उसके कानों में पहुँचने के पूर्व ही रावण की विशाल आँखें, वज्र और जलधारा को गिरानेवाले मेघ के समान अश्रुओं के साथ अग्निकण उगलने लगीं।

उस समय रावण के मन में जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उससे दबकर उसका दुःख, अग्नि में पड़े घृत के जैसा काम करने लगा। उसने प्रश्न किया—वे मनुष्य तुम्हारी नाक और कान काटें—ऐसा तुमने कौन-सा अपराध किया?

शूर्पणखा ने उत्तर दिया—किसी के द्वारा चित्रित करने के लिए असभव रूपवाले उस (राम) के साथ (एक स्त्री आई हुई है, वह) कमल के आवास को छोड़कर आई हुई लक्ष्मी के समान है, बिजली के तुल्य कटि से शोभित है, बाँस के जैसे कोमल कंधोंवाली है एवं स्वर्ण के रंग की देहवाली है। उस नारी के निकट मैं गई थी, बस इतना ही मेरा अपराध था।

यह सुनकर रावण ने पूछा—वह नारी कौन है? तब उस राक्षसी ने कहा—हे प्रभु! उस नारी का जघन-तट चक्रवाला रथ है, उसके स्तन रक्त-स्वर्ण के कलश हैं, जिनपर इगुदिक धातु के सपुट लगे हैं, यह भूमि का बड़ा सौभाग्य है कि उस नारी के पद-तल का स्पर्श उसे मिला है। अहो! उसका नाम सीता है।—यों कहकर शूर्पणखा सीता के रूप का वर्णन करने लगी।

उसकी वाणी भ्रमरों की गुंजार तथा मधु के समान रस-भरी है, उसके केशपाश मधुपूर्ण पुष्पों से सुवासित हैं। अप्सराओं के लिए भी पूजनीय, कमल में निवास करनेवाली सुन्दरी लक्ष्मी उसकी दासी बनने के लिए भी योग्य नहीं है। यह कहना भी कि हम उसके सौंदर्य का वर्णन करेंगे, अज्ञान का कार्य होगा।

हे प्रभु। अपनी वाणी को अमृत से भर-भरकर लानेवाली (अर्थात् . अमृत-समान

मीठी बोलीवाली) उस नारी के अलक, मेघ-समान हैं। सुसज्जित केश-पाश, झुके हुए सजल घन की समता करते हैं। उसकी उँगलियाँ, रक्त-प्रवाल के तुल्य हैं। उसका वदन, यद्यपि निर्दोष कमल-पुष्प के परिमाण का है, तथापि उसके नयन समुद्र से भी अधिक विशाल हैं।

'मन्मथ शिव के नेत्र की अग्नि से जल गया'—यह कथन सत्य नही है। सत्य बात तो यह है कि उस मन्मथ ने, स्वाभाविक सुगंधि से भरे केश-पाशवाली उस सीता को देखा, किन्तु उसके सौंदर्य को अपनाने मे असमर्थ रहा, जिससे अवर्णनीय पीडा से दुःखी होकर उसका शरीर क्षीण हो गया, इसीलिए वह अनंग बन गया।

हमारे शत्रु-देवों के लोक मे जाकर ढूँढ़ो, फनवाले नागो के लोक मे जाकर ढूँढ़ो, कही भी वैसी रूपवती नही मिलेगी। लुहार की गरम भट्ठी मे तपाकर बनाये गये बरछे और करवाल को भी परास्त करनेवाले नयनो से शोभित वह नारी इसी धरती पर है, किन्तु किसी के लिए भी उसका चित्र अंकित करना असंभव है।

क्या मै उसके कंधों की सुन्दरता का वर्णन करूँ? या उसके उज्ज्वल मुख पर स्पंदित होनेवाले मीनो (अर्थात्, नयनों) का वर्णन करूँ? या अन्य अति मनोहर अंगो का वर्णन करूँ? मै पुनः-पुनः चकित रह जाती हूँ, किन्तु उसका वर्णन नही कर पाती हूँ। तुम तो कल स्वयं ही उसे देखनेवाले हो तो फिर मै क्यो तुमसे उसका वर्णन करके बताऊँ।

यदि यह कहे कि उसकी भौंहे धनुष के समान हैं, उसके नेत्र बरछे के समान हैं, उसके दाँत मोतियों के समान हैं, उसका अधर प्रवाल के समान है, तो यह केवल कथन-मात्र होगा। वास्तव मे वे सब उपमान उसके अवयवों के योग्य नही हैं। अतः, कहने योग्य उपमान कुछ भी नही है। इस प्रकार का उपमान देने की अपेक्षा तो यही कहना अधिक संगत होगा कि धान धान के समान ही है (अर्थात्, धान की उपमा धान से ही दी जा सकती है।)

हे प्रभु, इन्द्र ने शची देवी को पाया है। षण्मुख (कार्त्तिकेय) के पिता (शिव) ने उमा को पाया है। कमलनयन ने (विष्णु) ने सुन्दर लक्ष्मी को पाया है। यदि तुम सीता को पा लोगे, तो फिर वे (इन्द्र, शिव और विष्णु) तुम से छोटे रह जायँगे। इससे तुम्हारा महत्त्व उनसे अधिक बढ़ जायगा।

गगनोन्नत कंधोंवाले हे वीर। एक (अर्थात्, शिव) ने (अपनी देवी को) अर्धांग मे रख लिया। एक (विष्णु) ने कमलभव लक्ष्मी को अपने वक्ष पर रख लिया। ब्रह्मा ने वाणी देवी को अपनी जिह्वा पर रख लिया, यदि तुम घन की विद्युत् को परास्त करनेवाली सूक्ष्म कटि से शोभित उस सीता को पाओगे तो उसे कहाँ रखोगे? (भाव यह है—सीता तुम्हारे लिए शिर पर धारण करने योग्य है।)

हे प्रभु। हे सरदार। शिशु की सी मधुर बोलीवाली उस सीता को पाने पर तुम कुछ भी कमी का अनुभव नहीं करोगे। तुम अपनी इस संपत्ति को, जिसे दूसरों पर लुटा रहे हो, उसी को दे दोगे। मैं तुम्हारा हित करनेवाली हूँ, किन्तु तुम्हारे अन्तःपुर मे रहने-वाली शुक की-सी बोलीवाली सब युवतियों का अहित अवश्य कर रही हूँ।

रथ-तुल्य जघन-तट से शोभित वह सीता, देवलोक मे या इस लोक मे किसी कचुक-बद्ध स्तनवाली स्त्री के गर्भ से उत्पन्न नही है। पूर्वकाल मे, शंख के समान श्वेत जलवाले समुद्र ने, देवासुरो के द्वारा मथे जाने पर प्रफुल्ल कमल मे आसीन लक्ष्मी को उत्पन्न किया था। अब भूमि, उस लक्ष्मी को भी परास्त करनेवाली सीता को देकर धन्य हुई है।

मीनकेतन के आनन्द को बढ़ाते हुए, ससार की प्रशंसा का पात्र बनते हुए, भ्रमरो से आवासित पुष्पो से विभूषित कुन्तलोवाली तथा सूक्ष्म कटिवाली सीता को तुम अपना स्वत्व बना लो और अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके राम को मेरे वश मे दे दो।

हे मेरे प्रभु। यद्यपि भाग्य हमे (जीवन के) फल प्रदान करता है, तो भी महान् तपस्वियो को भी वे फल, समय पर ही प्राप्त होते हैं। उसके पूर्व नही मिलते हैं। दस मुख, बीस नयन, बीस हाथ, सुन्दर रूप और मनोहर वक्ष से शोभायमान तुम अब आगे चलकर ही बडा गौरव प्राप्त करनेवाले हो।

इस प्रकार की सीता को तुम्हारे पास पहुँचाने के विचार से मै उसके निकट गई, तब उस राम के भाई ने बीच मे पड़कर चमकते हुए कटार से मेरी नाक काट दी। मेरा जीवन तो तभी समाप्त हो गया। फिर भी, इस विचार से कि तुम्हारे सम्मुख आकर सारा वृत्तात बताने के पश्चात् ही अपने प्राण त्याग करूँगी, यहाँ आई हूँ, यो शूर्पणखा ने कहा।

(शूर्पणखा के वचन सुनते ही रावण के मन मे) क्रोध, वीरता, अभिमान के कारण उत्पन्न ताप—ये सब इसी प्रकार मिट गये, जिस प्रकार पाप के रहने के स्थान से धर्म मिट जाता है और जिस प्रकार एक दीप, दूसरे दीप के स्पर्श से प्रज्वलित होता है। उसी प्रकार रावण के मन मे काम-व्याधि और उससे उत्पन्न होनेवाले ताप ने घर कर लिया।

रावण खर को भूल गया, अपनी बहन की नाक को काटनेवाले वीर के पराक्रम को भूल गया, उससे उत्पन्न अपने अपयश को भूल गया, शिव को जीतनेवाले मन्मथ के बाणो के प्रभाव के कारण वह पूर्वकाल मे प्राप्त अपने वरो को भी भूल गया, किन्तु सीता, जिसके रूप के विषय मे उसने अभी सुना था, उसको नही भूल सका।

सूक्ष्म कटिवाली सीता का नाम और रावण का मन दोनो एक होकर रह गये। अब सीता के अतिरिक्त अन्य किसी विषय के बारे मे सोचने के लिए भी उसके पास दूसरा मन कहाँ था? सीता को भूलने का कोई उपाय ही उसके पास नही था। पढ़े-लिखे व्यक्ति भी जबतक आत्म-ज्ञान नही प्राप्त करते, तबतक वे काम को कैसे जीत सकते हैं?

उन्नत प्राचीरवाली लका का अधिपति, कलापी-तुल्य रूपवाली सीता का हरण करके बदी बनाने के पूर्व ही उसको अपने मन-रूपी कारागार मे बदी बना लिया। धूप के स्पर्श से मक्खन जैसे पिघलता है, उसी प्रकार शूलधारी रावण का हृदय धीरे-धीरे पिघलने लगा।

विधि की विडबना के कारण, भावी की प्रबलता के कारण एव उस लका का विनाश निकट आने के कारण रावण की काम-व्याधि उसकी सब इन्द्रियो मे उसी प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार विद्याविहीन मूढ व्यक्ति का छिपकर किया हुआ कोई पाप-कर्म सर्वत्र प्रकट हो जाता है।

अत्यन्त शिथिल हो गया। तब उसने अपने परिजनों को आज्ञा दी कि तुमलोग जाकर शीघ्र चंद्रमा को ले आओ, क्योंकि लोग कहते हैं कि वह शीतल होता है।

परिजनों ने जाकर उस पूर्णचंद्र से, जो दारुण क्रोधवाले राक्षस (रावण) के द्वारा शासित उस विशाल लकापुरी के ऊपर जाने से भी डरता था, कहा कि—डरो नहीं, शीघ्र आओ। राजा तुझे बुला रहा है। इसपर चंद्र अपने मन की अधीरता को छोड़कर आकर प्रकट हुआ।

युद्ध मे परास्त होकर वैर को छिपाकर दबे रहनेवाले लोग, अपने शत्रु के कमजोर पड़ने पर जिस प्रकार उस (शत्रु) को सताने के लिए आगे बढ जाते हैं, उसी प्रकार मडलाकार चद्र रावण के प्राणो के लिए यम-जैसा बनकर, सूक्ष्म सिकता से युक्त जल-भरे समुद्र से उदित हुआ।

चंद्रमा, अपनी अवर्णनीय किरणों को सब दिशाओ मे फैलाकर ऊपर उठा और स्वर्ग तथा धरती के निवासियो में से किसी के लिए भी प्रिय न होनेवाले उस रावण को सताता हुआ (वह चंद्र) इस प्रकार दिखाई पड़ा, जैसे आदिशेष पर शयन करनेवाले विष्णु के द्वारा रावण के वध के लिए भेजा गया चक्रायुध ही हो।

क्षीर-सागर के अमृत को छक-छककर पान करनेवाला चद्रमा, अपनी शीतल किरणो के समुदाय को चारों ओर व्याप्त करने लगा।' वह चंद्रिका टेढी भौहों और लाल आँखोवाले रावण को ऐसी लगी, जैसे आग में पिघली हुई चाँदी भर-भरकर चारों ओर छिड़की जा रही हो।

चद्र-किरणें, जो धरती पर सचरण करनेवाली बिजली-सी लगती थीं, लाल धान के मनोहर खेतो से आवृत मिथिला नगर के राजा की पुत्री के सौदर्य का वर्णन सुनकर विरह-पीडा से तप्त होनेवाले रावण को उसी प्रकार जलाने लगी, जिस प्रकार कभी पराजित न होनेवाले शत्रु की कीर्त्ति किसी वीर को जलाती है।

वीर-ककणधारी यम भी जिसको देखकर भयभीत होता है, उस रावण ने पूछा—मैंने कहा था कि शीतल किरणोवाले चद्र को ले आओ, तो जलानेवाली आग और दारुण विष मे बुझी हुई तपती किरणो से युक्त सूर्य को कौन ले आया?

उस समय, कुछ दासो ने भय के साथ निवेदन किया—हे प्रभु! यह कथन सत्य नही है कि जिसे लाने की आज्ञा नही हुई थी, उसे हम लाये है। अरुण किरणवाला सूर्य सदा रथ पर ही आता है। यह चद्रमा यद्यपि आपको उष्ण किरण-सा लगता है, तो भी विमान पर ही आरूढ है।

सर्प के फन के जैसे जघन-तट तथा शीतल वचनो से युक्त रमणियो के प्रति होनेवाले प्रेम की वेदना को उस (रावण) ने इससे पहले कभी नही जाना था। वह अब चंद्रमा से अत्यन्त पीडित हुआ। अब उसे ज्ञात हुआ कि शीतल और मनोहर कमल-पुष्पों का शत्रु चद्रमा, यही है। फिर, उस चद्र से प्रार्थना करने लगा कि हे चद्र! तू मेरे प्राणों को ला दे।

रावण कहने लगा—हे नक्षत्रों के पति! तू क्षीण होता है। तेरा शरीर श्वेत

पड़ गया है। तेरा अन्तर काला हो गया है। अपना सहज गुण—शीतलता—छोड़कर तू तप रहा है, क्या तू भी अकेला रहता है और किसी सुन्दरी को देखे हुए व्यक्ति से उस ( सुन्दरी ) के सौंदर्य की चर्चा सुनी है ? ( जिससे यों विरह से पीड़ित हो रहा है )। मेरे हृदय में पुष्पबाण बिना रोक टोक के लग रहे हैं। उनसे मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। अब मेरे प्राणों को कौन बचायेगा ?

मेरे प्राणों के लिए यम बनी हुई उत्तम कुलजात उस सीता के दो कुवलयों-जैसे शोभायमान कमल ( जैसे वदन ) से तू पराजित हो गया है, इसीलिए तू काला पड़ गया है, क्षीण हो गया है और तप्त हो उठा है। यदि शत्रु की संपत्ति को देखकर ही इस प्रकार मिट गये, तो तू विजय कैसे पा सकता है ? बुद्धिमान् व्यक्ति (शत्रु को हराने के) पराक्रम से रहित होते हैं, तो विवेक से अपने ऊपर संयम रखते हैं।

इस प्रकार, अनेक वचन कहकर वह पीड़ित होता रहा। फिर, उसने परिजनों को आज्ञा दी कि इस चंद्र को रात्रि-सहित यहाँ से हटा दो और सूर्य को दिन सहित ले आओ। उसके यह कहने के पूर्व ही उपेक्षित चन्द्रमा और रात्रिकाल हट गये। एक क्षण काल में ही अवर्णनीय सूर्य तथा दिन का समय आ पहुँचा।

वेद की ऋचाओं को जाननेवाले (ब्राह्मण) अग्नि में घृत डालकर जब होम करते हैं तब जिस प्रकार वह अग्नि प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार पिघले हुए ताँबे के जैसी किरणों-वाला सूर्य प्रकाशमान हुआ। उसमें रक्त-कमल विकसित हुए। सूर्य के आगमन से रक्त कुमुद दबकर निर्जीव-से हो गये। वे उन क्षुद्र व्यक्तियों के जैसे थे, जिन्होंने अपने लिए अयोग्य उत्तम पदार्थों को प्राप्त कर उससे गर्वित होकर फिर उन्हें खो दिया हो।

विश्व के आभरण-जैसे रहनेवाला सूर्य एक दिशा में आकर प्रकट हुआ, तो चन्द्रमा लज्जित हो, कांतिहीन हो, काँपता हुआ और अपनी पत्नी—रात्रि द्वारा अनुगत होता हुआ, दूसरी दिशा में गगन-मध्य से हट चला। वह उस क्षुद्र राजा के समान था, जो किसी यशस्वी तथा पराक्रमी शासक की आज्ञा से अपने स्थान को छोड़कर चला जाता है।

विविध कर्णाभरणों से भूषित जो राक्षस-सुन्दरियाँ पुष्प-पर्यंकों पर अपने पतियों के समागम का सुख उठाती हुई प्रणय-कलह में क्रुद्ध हो गई थीं, अब हठात् रात्रि के हट जाने पर भी उस बात को न जानकर, स्वप्न में भी मान करती हुई ( निद्रित ) पड़ी रहीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, अर्धरात्रि में ही हठात् रात्रि के समाप्त हो जाने के कारण, मुमूर्षु-प्राण सी हो गईं, थरथराती हुई काँप उठीं और उनकी आँखों से आँसू इस प्रकार बह चले, जिस प्रकार प्रफुल्ल नीलोत्पल से मधु-बिंदु बह चलते हैं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो रूई के कोमल पर्यंक पर काम-सुख का आनन्द प्राप्त कर चुकी थीं, वृक्ष की पुष्ट शाखा से लिपटी हुई लताओं के समान, अपने प्राण-पतियों के पुष्प-सदृश दोनों बाहों द्वारा दृढ़ता से बँधी हुई, निद्रित पड़ी थीं।

उत्तम मत्तगज, जो उनके कुंभों पर गुंजार करते हुए मँडरानेवाले भ्रमरों के झुंड को और उज्ज्वल सूर्य-प्रकाश को न जानते हुए सोये पड़े थे, उन मद्यपों के समान थे जो कोमल शय्या पर प्रज्ञाहीन होकर निद्राग्रस्त रहते हैं।

जिस प्रकार कुल-नारियाँ, विद्या-बुद्धि से युक्त अपने प्रियतमों से वियुक्त होकर कांतिहीन हो जाती हैं, उसी प्रकार, वहाँ के प्रासादों में रखे हुए दीप, तेल के न घटने पर भी, निष्प्रभ हो गये।

प्रभात-काल में विकसित होनेवाले पुष्प, उनके सुन्दर दलों को खोलनेवाले सूर्योदय के होने पर भी, प्रफुल्ल न होकर, विशाल पर्यंक पर सोई हुई सुन्दरी के बन्द नयनों के जैसे बंद पड़े रहे।

सब लोग गहरी निद्रा में सो रहे थे। अतः, उनकी आँखें सचमुच प्रभात होने पर भी नहीं खुलीं। वे आँखें किसी को भिक्षा देने का विचार न करनेवाले लोभियों के बड़े घरों के दरवाजों के समान बंद थीं।

चक्रवाक दिन के निकल आने से विष-सदृश वियोग-पीड़ा से मुक्त हुए और कठोर कारावास से मुक्ति पानेवाले अपराधी के हृदय के समान आनंद से भर गये।

चन्द्र के कर-स्पर्श के अतिरिक्त अन्य किसी भी उपाय से विकसित न होनेवाले पुष्पों की ओर संगीत गानेवाले भ्रमर झपटे थे। लेकिन ( इतने में चन्द्र के अस्त होकर सूर्य के उदित हो जाने से, उन बंद हुए पुष्पों से निकट ) कला की महत्ता को नहीं जाननेवाले लोगों के दरवाजे पर दुःखी होकर खड़े रहनेवाले भाट लोगों के समान वे भ्रमर दुःखी होकर रह गये।

सूर्य की उष्ण किरणें, अपूर्व रत्नों से जटित वातायनों के मार्ग से ( प्रासादों के ) भीतर पहुँचकर निद्रा-मग्न सुन्दरियों को जगाने लगीं। किन्तु, वे ( स्त्रियाँ ) सत्य को स्पष्ट न जाननेवाले लोगों के समान, तंद्रा और जागरण की मिश्रित दशा में पड़ी रहीं।

रावण की कठोर आज्ञा से परिचय न रखनेवाले विद्वान्, जो ज्योतिष-शास्त्र लिख रखा था, उसे भली भाँति जानकर कुछ गणित-शास्त्र में कुशल व्यक्ति अभी तक सोये पड़े थे। ( प्रभात-काल में ) टेर लगानेवाले कुक्कुट भी सो रहे थे।

संसार में इस प्रकार के व्यापार हो उठे थे। ऐसे समय में शब्दायमान वीर-कंकणधारी रावण ने आँख उठाकर सूर्य को देखा और बोला—यह ( सूर्य ) उसका ध्यान करनेवाले के मन को भी तपाता है। अतः, पहले यहाँ आकर जिस चन्द्र ने हमको तपाया था, यह भी वही है।

तब कुछ दासों ने निवेदन किया—हे ईश। यह चन्द्र नहीं है। यह अरुण-किरणवाला सूर्य ही है। देखिए, इसके रथ में दीर्घ केसरोंवाले मनोहर हरित अश्व जुते हैं। उष्ण किरणवाला सूर्य शरीर को तपाता है। किंतु, शीतल रहनेवाला चन्द्र नहीं तपाता।

शिखरों से शोभित नील पर्वत के जैसे रावण ने उन ( दासों ) से कहा कि यह सूर्य विष से अधिक दारुण है। अतः, इसे यहाँ से हटा दो। समुद्र के गर्जन को भी बन्द कर दो और संध्या-वेला में, पश्चिम दिशा में, प्रकट होनेवाली चन्द्र-कला को शीघ्र ले आओ।

राक्षस-राज ने यह वचन कहा। यह कहते ही, षोडश कलाओं से शोभायमान

चन्द्र तुरन्त तृतीया का चन्द्र बनकर एक ओर प्रकट हुआ। अब कहो तो सदा प्रभावशाली रहनेवाली तपस्या से बढकर योग्य कार्य दूसरा कौन-सा है?[1]

पश्चिम दिशा में उदित उस चंद्रकला को देखकर, क्रूर गुणवाला रावण कहने लगा—यह (चंद्रकला) वडवाग्नि है, वह नहीं, तो यह धरती का वहन करनेवाले शेषनाग का विष-दन्त है, अगर वह भी नहीं है तो, सन्ध्या-काल मुझे मारने के लिए ही इस (चंद्रकला-रूपी) कटार को लेकर आया है।

पूर्वकाल में जब शीतल तरंगों से पूर्ण समुद्र से दारुण विष उत्पन्न हुआ, तब उसे अपने कंठ के भीतर रखनेवाले शिव ने इस चंद्रकला को भी पुष्प-रज से पूर्ण अपने जटाजूट में रख लिया था। शायद वह इसी कारण से होगा कि यह (चंद्र-कला) भी विषमय है।

वज्र के समान भयंकर रूप में सञ्चरण करते हुए जिस चंद्र ने मेरे प्राण पी लिये थे, उससे, उसका यह परिवर्त्तित लघु रूप, कठोरता में कुछ कम नहीं है। दारुण कोप से भरे विषमय सर्प के बड़े आकार की अपेक्षा उस (सर्प) का छोटा रूप क्या अपने विष के प्रभाव में कुछ कम होता है?

(फिर, रावण कहने लगा) अति घोर अंधकार का गुण कैसा होता है—यह भी देखें। इस चंद्रकला से तो पूर्व आगत सूर्य ही अच्छा था। इस (चंद्रकला) को शीघ्र हटा दो। पराक्रम में प्रसिद्ध रहनेवाले मुझ को ही यह (चंद्रकला) तपाती है, तो अब यह कैसे कहा जा सकता है कि सप्त लोकों में कोई इसकी पीडा से बचकर जीवित रह सकता है?

उस समय, उस चंद्रकला के हट जाते ही अंधकार इतना घना होकर आ पहुँचा कि उसे छुआ जा सकता था। उसपर किसी भी वस्तु को रगड़ा जा सकता था। चाहे तो कोई उसे (अर्थात्, अंधकार को) खड्ग से काट सकता था या उसे (अंधकार को) खराद पर चढ़ाकर उसके खंभे बनाकर रखा जा सकता था।

अब क्या यह कहा जाय कि उस अंधकार को काठ की तरह काट-काटकर टुकड़े बनाकर फेंका जा सकता था? वह अंधकार इतना काला था, जितना निर्दोष तत्त्वज्ञान-रूपी प्रकाश के प्रविष्ट न होने से अंधा बनकर किंचित् भी दयाभाव से हीन (किसी अज्ञ व्यक्ति का) हृदय काला होता है।

कहीं भी भिन्न न रहनेवाला (अर्थात्, अत्यन्त घना रहनेवाला) वह अंधकार अंतराल को सर्वत्र भरकर व्याप्त हुआ और सारी धरती को निगल लिया। तब रावण ने कहा—(शायद) विष को निगलनेवाले शिव ने यह न सोचकर कि यह (विष) सारे विश्व को मिटा देगा, उसे उगल दिया है।

मैंने ठीक-ठीक जान लिया है कि यह (अंधकार) समुद्र से उत्पन्न होकर शिवजी के द्वारा निगला गया विष नहीं है। यह, धरती, आकाश आदि सब प्रदेशों को अपनी जिह्वाओं से चाटनेवाली प्रलयाग्नि ही है, जो काले हलाहल विष को पीकर स्वयं कालीपड़ गई है।

---

१. भाव यह है—रावण ने पूर्वकाल में बड़ी तपस्या की थी, जिसके परिणामस्वरूप चन्द्र-सूर्य आदि भी उसकी आज्ञा के पालक बने हुए थे। अतः, तपस्या ही सबसे उत्तम कार्य है। —अनु०

बाण और अग्नि भी जिसमें प्रवेश करके उसे भिन्न नहीं कर सकते, ऐसे इस अंधकार में, मुझ विरह से पीड़ित होनेवाले एकाकी व्यक्ति के सम्मुख अपना उपमान न रखनेवाली एक प्रवाल-लता ( के सदृश सुंदरी ), अपने ऊपर काले मेघ को धारण किये, नारिकेल के कोमल फल-युगल से शोभित होकर, एक चंद्र को भी धारण किये हुए, दीपक के समान प्रकाशमान हो रही है।

यह क्या मेरे मोह से उत्पन्न भ्रम है? या मेरा ज्ञान ही किसी कारण से अन्यथा हो गया है? स्पष्ट ज्ञात नहीं होनेवाला यह आकार क्या है? अंजन का प्रवाह भी जिसकी समता नहीं कर सकता, ऐसे इस घने अंधकार में एक उज्ज्वल पूर्ण-चंद्र, दो कुंडलों से शोभित होता हुआ, अति काले केशों के साथ मेरे सम्मुख आकर प्रकट हुआ है।

अपने दोनों पार्श्वों में बढ़नेवाले स्तन-युगल तथा जघन-तट से संयुक्त होकर रहनेवाली कटि को हम नहीं देख पा रहे हैं। उसके अतिरिक्त अन्य सब अवयवों को हम देख रहे हैं। विषपूर्ण नयनोंवाला यह आकार धीरे-धीरे एक नारी बनकर मेरे मन में प्रविष्ट हो रहा है।

चिरकाल से मैं सब लोकों की सुंदरियों को देखता आ रहा हूँ, किन्तु उनमें इसके जैसे रूपवाली किसी स्त्री को कहीं नहीं देखा है। अवश्य यह अद्भुत रूपवती रमणी मेरी बहन शूर्पणखा के द्वारा बताई गई, भ्रमरों से आवृत केशोंवाली, वह तरुणी ( सीता ) ही है।

मेरी इस विरह-पीड़ा को जानकर कदाचित् वह ( सीता ) स्वयं मुझे ढूँढती हुई यहाँ आ गई है। उसके इस उपकार का मैं क्या प्रत्युपकार कर सकता हूँ? दर्शन-मधुर इस ( सीता ) को अपनी आँखों से शूर्पणखा ने देखा है। उसी से पूछकर मैं अपने संदेह को दूर कर लूँगा ( यही सीता है या नहीं—यह संदेह दूर करूँगा )। इस प्रकार, विचार कर रावण ने अपने दासों को आज्ञा दी कि वे उसे ( अर्थात्, शूर्पणखा को ) शीघ्र वहाँ बुला लावें।

रावण की यह आज्ञा सुनते ही परिजन शीघ्र दौड़े और शूर्पणखा को समाचार दिया। तुरन्त वह ( शूर्पणखा ), जिसने पराक्रमी राक्षसों के कुल का समूल नाश करने के कार्य में लगी हुई, अपनी नासिका तथा कर्णाभरणों से भूषित कानों को खो दिया था, ( राम के विरह में ) कामाग्नि से तप्त होनेवाले मन के साथ ( रावण के स्थान में ) आ पहुँची।

शत्रुओं के रक्त में बुझे हुए तीक्ष्ण बरछे को धारण करनेवाले रावण ने, असत्य के आवासभूत मनवाली क्रूर शूर्पणखा को वहाँ आये हुए देखकर पूछा- हे स्त्रीरत्न! मेरे सम्मुख खड़ी हुई अंजन-अन्वित करवाल-तुल्य नयनोंवाली, कलापी-समान यह स्त्री ही क्या तुम्हारी बताई हुई वह सीता है?

तब शूर्पणखा ने उत्तर दिया—अरुण कमल-जैसे नयनों, रक्त बिंबफल-समान अधर, मनोहर और उन्नत कंधों, लंबी दीर्घ बाहुओं तथा सुन्दर पुष्पमाला से भूषित वक्ष के साथ आया हुआ, अंजन-पर्वत सदृश दीखनेवाला यह दृढ धनुर्धारी रामचन्द्र है।

यह सुनकर रावण ने कहा—मैं यहाँ एक स्त्री का रूप देख रहा हूँ। हे सुमते! तुम ऐसे एक पुरुष के रूप की बात कह रही हो, जो मेरे विचार में भी नहीं है, वह कैसे? हम तो दूसरों की आँखों के सामने माया उत्पन्न करके उनको भ्रम में डालनेवाले हैं। क्या क्षुद्र मनुष्य हमारे सामने कोई माया कर सकते हैं?

तब शूर्पणखा ने कहा—तुम्हारी बुद्धि सीता के ध्यान में निमग्न होकर अन्य किसी विषय में प्रवृत्त नहीं हो रही है। तुम ऐसी काम-वेदना से पीड़ित हो कि तुम्हारी आँखें जहाँ भी पड़ती हैं, वहाँ वही सीता दिखाई देती है। ऐसा भ्रम होना चिरकाल की बात ही है, (अर्थात्, कामुक लोग अपने प्रेम-पात्र को सर्वत्र देखते हैं); यह कोई नई बात नहीं है।

शूर्पणखा के यों कहने पर रावण ने उससे पूछा—ठीक है। वैसा ही होगा। किन्तु, तुम्हारी आँखों को वह राम क्यों दिखाई देता है? इसका उत्तर शूर्पणखा ने यों दिया—जिस दिन (राम) ने मेरा प्रतिकार-रहित अपमान किया, उस दिन से अबतक मैं उसे भूल नहीं पाई हूँ।

तब रावण ने कहा—सच है, तुम्हारा कथन संगत ही है। इस समय मेरी इस पीड़ा का निवारण किस प्रकार हो सकता है? इसका उत्तर शूर्पणखा ने दिया—तुम समस्त विश्व के एकमात्र प्रभु हो। तुम क्यों इस प्रकार दीन हो रहे हो? तुम जाओ और उस पुष्प-भूषित कुन्तलोंवाली सुन्दरी (सीता) को उठा लाओ।

यों कहकर वह (शूर्पणखा) वहाँ से हट चली। वह राक्षस (रावण) भी शक्तिहीन होकर, कुछ भी सोच नहीं पाता हुआ, व्याकुल प्राणों के साथ पड़ा रहा। उसे उस दशा में देखकर समीप खड़े रहनेवाले लोग भी काँप उठे। फिर भी, वह (रावण) अपनी शेष रही आयु के प्रभाव से मरा नहीं।

कोई मृत व्यक्ति पुनः जीवित हो उठा हो, इस प्रकार उठकर वह रावण अपने पराक्रम का स्मरण करके वहाँ स्थित लोगों से कहने लगा कि धारा-रूप में जल को प्रवाहित करनेवाली चन्द्रकान्त-शिलाओं से एक अति सुन्दर मंडप का निर्माण करो।

देवशिल्पी, रावण के मन की बात जानकर तुरन्त आ पहुँचा और अपने संकल्पमात्र से ही नहीं, किन्तु हस्त-कौशल को भी दिखाकर ऐसा एक सहस्र स्तंभोंवाला अति सुन्दर मंडप निर्मित किया, जिसे देखकर ब्रह्मा भी लज्जित हो जाय।

उस (देवशिल्पी) ने उस मंडप में ऐसी चंद्रकान्त-शिलाएँ बिछाईं, जिनसे किरणों के स्पर्श के बिना ही, जल-धारा बह चलती थी। ऐसे वातायन भी निर्मित किये, जिनसे पुष्प की सुरभि से पूर्ण मन्द पवन संचरण कर सकता था। उसने सुन्दर कल्प-तरुओं का एक मनोहर और शीतल उद्यान भी बनाया।

उभरे हुए कंधोंवाला रावण एक माणिक्यमय विमान पर आरूढ़ होकर, उस मंडप को देखने के लिए आया। उसके दोनों पार्श्वों में, आभरणों से उज्ज्वल कन्याएँ, गगन तक परिव्याप्त अंधकार को दूर करती हुई, अपने सुन्दर करों में ज्योति पूर्ण दीप लिये आईं।

वह अधकार यद्यपि ऐसा था, जैसे अनेक सहस्र रात्रियो को एक करके रखा गया हो, तथापि उन सुन्दर रमणियो के वदन-रूपी शीतल चद्रिका को विखेरनेवाले अत्युज्ज्वल तथा अनेक सहस्र कोटि चद्रमडल के एक हो जाने से, वह अधकार छिन्न-भिन्न हो मिट गया।

अति मनोहर नव रत्नो से खचित पुष्पो से युक्त कल्पतरुओं से, सूर्य को भी लज्जित करनेवाला कातिपुज प्रकट हो रहा था, जिससे अधकार मिट गया और दिन का-सा प्रकाश व्याप्त हो गया। सूर्य के उदित होते ही, उसकी दीर्घ किरणों के प्रभाव से, अधकार मिटकर प्रभात हो जाता है न? (उसी प्रकार कल्पतरुओ के प्रकाश से प्रभात हो आया।)

स्पर्श, शब्द आदि विषयो का ग्रहण करनेवाली जिसकी इद्रियाँ एक समान मद पड़ गई थी, जिसका मन स्तब्ध हो गया था और जो कर्त्तव्य-ज्ञान से रहित हो गया था ऐसा वह रावण, इच्छा के आवेग से खीचा जाकर उस मडप मे इस प्रकार आकर प्रविष्ट हुआ, जिस प्रकार जन्मान्तर के समय प्राण नवीन शरीर के भीतर प्रविष्ट होते हैं।

निष्पाप तपस्या से सपन्न व्यक्तियो के सब अभीष्टो को पूरा करनेवाला तथा वत्तुलाकार मीनो से पूर्ण क्षीर-समुद्र ही मानो, अमृत के साथ, आ गया हो—ऐसा भ्रम उत्पन्न करनेवाले, गानेवाले भ्रमरो से आवासित, हरित वृक्षों के कोमल पल्लवों तथा पुष्प-दलो से निर्मित, शीतल पर्यंक पर आकर वह (रावण) लेट गया।

ऐसा मंद पवन, जो किसी मरनेवाले व्यक्ति के प्राणों को भी रोक सकता था, सुन्दर आभरणो से भूषित सुन्दरियो के कुंतलो की सुगधि को लेकर, वहाँ पर यो आ पहुँचा, जैसे उस सुगंधित उद्यान मे मन्मथ को भोज देने के लिए क्षीर सागर ने अमृत भेजा हो।

रक्त-विंदुओ और अग्निकणो को वरसानेवाली ऑखो से युक्त वह रावण, वातायन से मंद पवन का संचार होने पर उसका सहन नही कर सका और इस प्रकार घवड़ा उठा, मानो कोई, अपने घर मे अजगर को घुसते हुए देखकर भयभीत हो उठा हो। फिर, अपने समीपस्थ लोगो से उसने कहा—

मानो कुएँ का थोड़ा-सा जल सारे ससार को डुबो रहा हो, इसी प्रकार, देवो मे एक, यह वायु मुझे पीडित कर रहा है। मेरी आज्ञा के बिना यह पवन यहाँ किस प्रकार घुस पाया? फिर, उसने आज्ञा दी कि द्वारपालकों को शीघ्र ले आओ।

उस समय, सेवक दौड़ चले और द्वारपालको को शीघ्र ले आये। क्रूर रावण ने कठोर नेत्रों से उन्हे देखकर पूछा—क्या तुमने मद मारुत के वेश मे आये हुए वायुदेव को भीतर आने का मार्ग दिया? तब उन द्वारपालको ने निवेदन किया—जब आप इस स्थान मे रहते हैं, तब उसे यहाँ आने से कोई रोक नही सकता है न?

इसपर रावण ने सोचा कि वायु पर कोप करने से कुछ प्रयोजन नहीं है। अगर मैं वरछे-जैसे नयनोवाली सीता की कृपा को नहीं प्राप्त करूँगा, तो अभी यम आकर मेरे प्राण हर लेगा। फिर, उसने सेवको को आज्ञा दी कि बुद्धि के कौशल से सब कार्यो को पूर्ण करनेवाले मत्रियों को बुला लाओ।

रावण की आज्ञा पाकर वे सेवक, 'हं' ध्वनि करने के समय के भीतर ही ( अर्थात्, अतिशीघ्र ही ) अनेक स्थानों में दौड़े और मंत्रियों को समाचार दिया। समाचार पाते ही वे मंत्री लोग, पताकाओं से युक्त रथों पर, घोड़ों पर, शिविकाओं में तथा त्रिविध मद से युक्त गजों पर आरूढ़ होकर इस प्रकार आ पहुँचे कि उन्हें देखकर भूसुरों और देवताओं के मन भी व्याकुल हो उठे।

मन में उठे विचार को शीघ्र कार्यान्वित करनेवाले, किन्तु अब अपने कर्त्तव्य को निश्चित नहीं कर पानेवाले रावण ने अपने मंत्रियों के साथ ठीक मंत्रणा की, फिर गगन-गामी विमान पर चढ़कर अकेले ही उस मारीच के आश्रम में आ पहुँचा, जो पञ्चेंद्रियों का दमन करके तपस्या में निरत था।

रावण के आते ही मारीच ने, सभय तथा व्याकुल होकर काले तथा बड़े आकारवाले रावण का आगे जाकर सब प्रकार से स्वागत-सत्कार किया और उसके मुख की ओर देखकर कहने लगा—

मन में यह सोचकर चिंतित होता हुआ कि न जाने यह ( रावण ) किस प्रयोजन से यहाँ आया है, मारीच कहने लगा—सुन्दर तथा शीतल कल्पवृक्षों की छाया में रहकर शासन करनेवाले देवेंद्र और यमराज को भी भयभीत करते हुए राज्य करनेवाले, हे शासक! अब इस अरण्य में, मेरे इस कष्टदायक कुटीर में, दीन जन के जैसे किस प्रयोजन से आये हो? कहो।

रावण कहने लगा—अपनी शक्ति-भर प्रयत्न करके मैं अपने प्राणों को रोके हुआ हूँ। अब शिथिल हो रहा हूँ। मेरे महत्त्व, कीर्ति, प्रभाव—सब मिट गये हैं। इसका क्या कारण है, मैं उसके बारे में तुमसे किस प्रकार शांति के साथ कह सकता हूँ? इस घटना में हमें ऐसा अपयश प्राप्त हुआ है कि देवताओं से हमें लज्जित होना पड़ा है।

हे शूलधारी! मनुष्य पराक्रम दिखाने लगे हैं? उनके खड्ग से तुम्हारी भतीजी की नाक और कान कट गये हैं। विचार करने पर मेरे और तुम्हारे वंशों के लिए इससे बढ़कर और क्या अपमान हो सकता है? तुम्हीं कहो।

एक मनुष्य ने दृढ धनुष को लेकर, बड़े क्रोध के साथ अधिक संख्या में आकर युद्ध करनेवाले मेरे भाइयों की आयु को समाप्त कर दिया। यह तो अबतक की हमारी सब विजयों के लिए कलंक है न? दृढ शूलधारी तुम्हारे भतीजे इस प्रकार मर मिटे। वह मनुष्य तो अपनी दोनों भुजाओं को ही लेकर अबतक सुखी रहता है न?

मेरे मन की अग्नि शान्त नहीं हुई है। मरण की वेदना भोग रहा हूँ। वे मेरे समान नहीं हैं। अतः मैं उनसे युद्ध करना नहीं चाहता हूँ। मैं यहाँ इसलिए आया हूँ कि तुम्हारी सहायता लेकर उन ( मनुष्यों ) के साथ रहनेवाली, प्रवाल को भी परास्त करनेवाले लाल अधर से युक्त, लता-समान सुन्दरी को उठा ले आऊँ और अपने अपमान का बदला लूँ—यों रावण ने कहा।

भड़कती हुई ज्वाला में जैसे लोह को पिघलाकर डाला गया हो, उसी प्रकार रावण के वचन मारीच को तप्त करने लगे। उसका कथन पूरा होने के पूर्व मारीच ने

'छिः । छिः ।' कहते हुए अपने कान बंद कर लिये। उसके मन से भय दूर हो गया और क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर वह ( मारीच ) कहने लगा—

हे राजन् ! तुम अपना जीवन समाप्त कर रहे हो। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। यह तुम्हारा दोष नही है। मेरा विचार है कि यह कर्मों का ही परिणाम है। मेरा कथन तुम्हे मीठा नही लगेगा। तो भी मै यह हित-वचन बताता हूँ—यो कहकर उस ( मारीच ) ने अनेक हितकारी उपदेश उस ( रावण ) को दिये।

तुमने स्वय अपने हाथो से अपने करो और शिरो को काट-काटकर अग्नि मे होम किया था और दीर्घकाल तक भूखे रहकर, अपने प्राणो को पीडित करके तपस्या की थी। उसके पश्चात् ही सारी सपत्ति प्राप्त की। उस सपत्ति को यदि तुम अब अनुचित कार्य करके खो डालोगे, तो क्या उसे पुनः प्राप्त कर सकोगे?

हे विचारणीय वेदो के पडित। तुमने अपूर्व तपस्या करके सपत्ति प्राप्त की है। यह धर्म के प्रभाव से हुआ या अधर्म के प्रभाव से? बताओ तो। तुमने यह महत्त्व धर्म के प्रभाव से ही तो पाया है? अब क्या उसे अधर्म करके खो देना चाहते हो?

जो राजा अपने ऊपर विश्वास करनेवाले मित्रो के राज्य का हरण करते हैं, जो राजा न्यायेतर मार्ग से अपनी प्रजा से अधिक कर उगाहते हैं और जो व्यक्ति पर-पुरुष की गृहिणी को अपने वश मे करते हैं—इन सबके धर्म का देवता स्वय ही विनाश कर देता है। यह तुम जान लो, हे तात। लोक-पीडा उत्पन्न करनेवालो मे से कौन उद्धार पा सका है?

स्वर्ग का अधिपति ( इन्द्र ) अहल्या के रूप की आसक्ति के कारण दुर्दशा-ग्रस्त हुआ। उस ( इद्र ) के जैसे अनेक लोग हुए है, जो पर-स्त्री के मोह में पड़कर अधःपतन को प्राप्त हुए हैं। गौरवर्ण लक्ष्मी के समान अनेक सुन्दरियाँ तुम्हारे भोग की भागिनी हैं। तो भी तुमने विना सोचे-समझे कुछ कह दिया है। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।

यदि तुम अपनी इच्छा के अनुसार काम भी करो, तो भी इससे पाप और अपयश ही तुम्हारे हाथ आयेंगे। तुम्हारी इच्छा पूर्ण नही होगी, नही होगी। ससार को उत्पन्न करनेवाला राम शाप-सदृश कठोर शरो से तुम्हारी शक्ति को मिटाकर तुम्हारी संतति और तुम्हारे सारे कुल को मिटा देगा, यह निश्चित है।

मेरे ऐसा कहने पर भी, न जाने क्यो, तुम कुछ ठीक विचार नही कर रहे हो। अहो। तुम्हारी सेना का सबसे बड़ा सेनापति खर अपनी सेना के साथ उस ( राम ) के एक ही शर से मारा गया। वह ( राम ) अब सारे राक्षस-कुल को मिटानेवाला है।

क्रूर व्यक्तियो मे वीर विराध से बढ़कर कौन था? वह ( राम के ) एक ही शर से, परलोक में पहुँच गया, तो अब हममे से कौन बचनेवाला है? जब मैं यह बात सोचता हूँ, तब मेरा मन व्याकुल हो जाता है। अब तुम अपने वचनो से मेरी चिन्ता को और भी बढ़ा रहे हो।

जिनको मरना था, वे मर गये। उन मरनेवालो के जैसा काम मत करो। यदि तुम भी वैसा ही कार्य करोगे, तो क्या तुम को भाग्य बचा सकेगा? ससार मे कितने ही

शासक हुए, उनमें अधर्मी राजाओं ने कभी सुख नहीं पाया। इस ससार में कौन चिरकाल तक जीवित रहनेवाला है। सब मिट जानेवाले ही तो हैं?

उस वीर ( राम ) से जिसने अपने वाण से मेरे भाई ( सुवाहु ) को और मेरी माता ( ताडका ) को मार डाला और जिसके निकट खड़े रहनेवाले उनके भाई से मेरा सारा पराक्रम मिट गया, उनके स्मरण से ही मेरा व्याकुल मन काँप उठता है। राम के ऐसे पराक्रम से मैं वहुत चिन्तित हूँ।

हम इस सत्य को प्रत्यक्ष देखते हैं कि सब स्थावर तथा जगम पदार्थ अस्थिर हैं, नष्ट होनेवाले हैं, अतः हे तात ! कोई नीच कार्य करने का विचार न करो। मेरी बात सुनो, अपनी महान् समृद्धि के साथ तुम चिरकाल तक जियो। इस प्रकार, मारीच ने ( रावण से ) कहा।

यह सुनकर रावण अपनी भयकर आँखों में आग उगलने लगा। उसकी भौंहें तन गईं; वहुत क्रुद्ध होकर उसने कहा—तुम कहते हो कि मेरी ये पराक्रमी सुन्दर भुजाएँ, जिन्होंने गगा को अपनी जटा में धारण करनेवाले ( शिव ) को उनके कैलास के सहित, एक हथेली पर उठाया था, अब एक मनुष्य से पराजित होनेवाली हैं।

अभी जो घटना हुई, उसके वारे में तुमने नहीं सोचा, पर निःसकोच होकर मेरी निंदा की। जिन्होंने मेरी वहन के मुँह में एक गढ़ा-सा खोद डाला हो, उन ( मनुष्यों ) की तुमने प्रशसा की, यह तुम्हारा एक अपराध है। फिर भी, मैंने इसके लिए क्षमा कर दिया।

तव मारीच, यह सोचकर भी कि उसके ऊपर क्रोध करनेवाला वह निर्भीक ( रावण ) उसके वचनों को सुनकर पुनः क्रुद्ध होगा – चुप नहीं रहा। किन्तु, फिर कहा— तुम्हारा यह क्रोध मुझ पर नहीं है, किंतु यह स्वय तुम पर ही है और तुम्हारे कुल पर है।

यदि तुम यह सोचते हो कि तुमने कैलास पर्वत को उठाया था, तो यह भी तो सोचो कि जब जनक ने ( राम से कहा कि यह धनुष शिवजी के द्वारा झुकाया हुआ पर्वत ही है, तुम इसे चढ़ाओ, तो राम ने एक क्षण में अनायास ही उस ( धनुष ) को हाथ में उठा लिया और उस पर डोरी चढ़ाने के निमित्त उसे झुकाकर तोड़ दिया। वह पर्वताकार शिव-धनुष गगन को छूनेवाला मेरु-पर्वत ही तो था।

तुम ( राम के प्रभाव के वारे में ) कुछ नहीं जानते हो। मेरे वचन को भी स्वीकार नहीं करते हो। वह ( राम ), युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर पुष्पमाला धारण करे, इसके पूर्व ही, उसके शत्रुओं के प्राण लुट जाते हैं। तुमने मूढता से यह समझ रखा है कि वह ( सीता ) एक मानव-स्त्री मात्र है। क्या वह, सीता का अपना रूप है? वह तो राक्षसों के पाप के परिणाम की ही प्रतिमूर्त्ति है।

मेरे मन में, यह सोचकर कि ( यदि तुम सीता का हरण करोगे, तो ) तुम अपने बंधुओं-सहित मिट जाओगे, नहीं बच सकोगे, ऐसी धड़कन उत्पन्न हो रही है, जैसे नगाडा बज रहा हो। इसका तुम विचार नहीं करते। अज्ञान में पड़कर जो विष पीने जा रहा हो, उससे उसके समीप रहनेवाले ज्ञानी व्यक्ति, क्या यह कहेंगे कि यह कार्य ठीक है?

उग्र तथा कलक-रहित विश्वामित्र के द्वारा प्रदत्त अनेक ऐसे शस्त्र राम की आज्ञा मे हैं, जो शिव आदि देवो के लोकों को तथा सब भुवनों को भी क्षण काल मे विध्वस्त कर सकते हैं।

जिस परशुराम ने एक सहस्र बलिष्ठ हाथोंवाले ( कार्त्तवीर्य अर्जुन ) को अपने परसे से क्षण काल मे काटकर ढेर कर दिया था, उस ( परशुराम ) की सारी शक्ति को, उसके दृढ धनुष के साथ ही, राम ने अपने वश मे कर लिया था। क्या वैसा बल हमारे लिए प्राप्त करना सभव है ?

काम-पीडा के बढ़ जाने से तुम दुर्बल हो गये हो। अतः, तुमने ऐसे वचन कहे। यह कार्य विनाशकारी है। मै तुम्हारा मामा हूँ और तुम्हारे कुल का वृद्ध पुरुष हूँ। मै कहता हूँ, हे तात ! यह पाप-कार्य छोड़ दो।—इस प्रकार मारीच ने कहा।

राक्षसराज ने, अपने कथन के बारे मे किंचित् विचार करने का परामर्श देनेवाले उस मारीच का धिक्कार करते हुए कहा—तुम, अपनी माता को मारनेवाले उस (राम) से डरकर जी रहे हो। क्या तुम्हे एक वीर पुरुष मानना उचित है ?

स्वर्गवाली देवी के निवासो को भस्म करके मै सब लोकों पर इस प्रकार शासन-चक्र चलाता हूँ कि दिग्गज सब भयभीत होकर भागकर छिप गये हैं और देवता भी दुर्दशा-ग्रस्त हो गये हैं। क्या ऐसे मुझको दशरथ के वे पुत्र कष्ट दे सकेंगे ?—यह मेरी शक्ति भी अच्छी है।

मै त्रिभुवन का एकच्छत्र राज्य वहन करता हूँ। यदि मुझे कोई शक्तिशाली शत्रु प्राप्त हो, तो उससे बढ़कर मेरे आनद का विषय कोई दूसरा नही होगा। मेरी आज्ञा के अनुसार तुम्हें कार्य करना है। राजा के कार्य-सपादन करनेवाले मत्री के कर्त्तव्य से क्या तुम स्खलित हो जाओगे ?

अगर तुम मेरी आज्ञा का अतिक्रमण करोगे, तो मै तीक्ष्ण करवाल से तुम्हे काट दूँगा। किन्तु, अपने इच्छित कार्य को पूर्ण किये बिना नही रहूँगा। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो इन घृणास्पद वचनो को छोड़कर मेरे मन की बात करो। यों रावण ने कहा।

राक्षसराज के यह वचन कहने पर, मारीच ने मन मे विचार किया—जिसके मन मे गर्व उत्पन्न होता है, वह उसी समय मिट जाता है। यही कथन सत्य है। लोग मन मे काम-वासना उत्पन्न होने पर, उसी कामना पर प्राण छोड़ने के लिए भी तैयार हो जाते हैं—और वह तपाये हुए पात्र मे डाले गये जल के जैसे ही, उफनकर, भीतर शात हो गया। वह फिर कहने लगा—

तुम्हारे हित की कामना से मैंने यथार्थ बात कही। होनेवाले अपने किसी अहित को सोचकर और उससे डरकर मैंने कुछ नही कहा। विनाश का काल आ जाता है, तो भला भी बुरा लगता है। हे क्षुद्र स्वभाववाले ! बताओ, मुझे क्या करना है ? यों मारीच ने कहा।

मारीच के यह कहते ही रावण ने अपना क्रोध शान्त कर उसका आलिंगन किया

और कहा—पर्वत के समान पुष्ट कंधोंवाले। मन्मथ के उग्र बाणों से मरने की अपेक्षा राम के बाण से मरना ही कीर्त्तिदायक है न? अतः, मंद मारुत से मेरे हृदय में काम उत्पन्न करनेवाली (सीता) को ला दो।

रावण के यह वचन कहते ही मारीच बोला—(मेरी माँ को मारनेवाले) राम से अपना बदला लेने के लिए मैं एक बार, दो-एक राक्षसों को साथ लेकर तपोवन में गया था। तब राम के बाणों से मेरे साथी मरकर गिर पड़े। भयभीत होकर मैं भाग आया। ऐसा मैं इस समय क्या कार्य कर सकता हूँ? बताओ।

मारीच की बातें सुनकर रावण ने कहा तुम्हारी माता को मारनेवाले इस राम के प्राण हरने के लिए मैं तैयार हूँ। तुम्हारा यह प्रश्न कि मैं जाकर क्या करूँ, उचित ही है। हमारा कर्त्तव्य माया से धोखा देकर उस सीता का अपहरण करना ही है।

मारीच ने कहा—हे राजन्! अब मैं और क्या कह सकता हूँ? उस (राम) की देवी को पराक्रम से हरण करना उचित है। धोखे से हरण करना नीच कार्य है। तुम (राम से) युद्ध करके, विजय पाकर सीता को अपना लो और अपने प्रताप को बढ़ाओ। ऐसा करना नीतिशास्त्र के अनुकूल होगा।

अपने हित-चिंतक (मारीच) का कथन सुनकर रावण हँस पड़ा और बोला - उन मनुष्यों को जीतने के लिए क्या सेना की भी आवश्यकता है? क्या मेरे विशाल हाथ का करवाल पर्याप्त नहीं है? फिर भी, सोचने की बात यह है कि यदि वे दोनों मनुष्य मर जायेंगे, तो वह नारी (सीता) एकाकिनी होकर अपने प्राण त्याग देगी न? अतः, धोखे से उस नारी का हरण करना ही ठीक है।

यह सुनकर मारीच ने सोचा—मैं ऐसा उपाय बताता हूँ कि राम की देवी का स्पर्श करने के पूर्व ही इस (रावण) के शिर (राम के) बाणों से बिखर जायँ, पर यह मेरी बात नहीं मानता। अब मेरे जीवित रहने का कोई मार्ग नहीं है। विधि के परिणाम को कौन जान सकता है? अब इसकी आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

फिर उस (मारीच) ने कहा—अब मुझे कैसी माया रचनी है, बताओ। रावण ने कहा—तुम एक सोने के हिरण का रूप धारण कर लो और उस सीता के मन को ललचाओ। मारीच वैसा करने की सम्मति प्रकट करके चल पड़ा। उज्ज्वल शूलधारी राक्षसराज (रावण) भी दूसरे मार्ग से चला गया।

मारीच, पूर्वकाल में राम के बाण का प्रभाव जान चुका था। अतः, वह स्वयं हरिण का रूप लेकर वहाँ जाना नहीं चाहता था। किंतु, रावण की वैसी आज्ञा होने के कारण वह गया। अब उसके मन की दशा और उसके व्यापारों का वर्णन करेंगे।

मारीच का मन, अपने बन्धुओं का स्मरण करके दुःखी होता। वह वीर राम-लक्ष्मण से भयभीत होकर चक्कर खाता। गहरे तालाब का पानी विषमय हो जाय, तो उसमें रहनेवाली मछली जिस प्रकार विकल होती है, उसी प्रकार मारीच का मन भी व्याकुल हुआ। उसकी दशा का अनुमान करना भी कठिन है।

विश्वामित्र के यज्ञ के समय राम से पीड़ित होकर और ( दंडकारण्य में ) पहले एक बार हरिण-वेष में जाकर भी जो मरा नहीं, वह मारीच अब तीसरी बार प्रयत्न करता हुआ राघव के आश्रम में जा पहुँचा।

उसने ऐसे एक स्वर्ण-हरिण का रूप धारण किया, जिसकी अनुपम उज्ज्वल देह की कांति से गगन और धरती भी प्रकाशित हो उठी। उत्तम हरिणी-समान सीता के मन में आकर्षण उत्पन्न करने के विचार से वह ( पर्णकुटी के पास ) गया।

किसी पर आसक्ति नहीं रखनेवाले मन तथा कपट से युक्त वेश्याओं की ओर जिस प्रकार सब कामुक व्यक्ति आकृष्ट होते हैं, उसी प्रकार उस स्वर्ण-हरिण की ओर सब प्रकार के हरिण आकृष्ट होकर उसको घेरकर चले।

उसी समय सीतादेवी, अपने अति सुन्दर कंकण-भूषित कोमल कर-कमलों से पुष्प-चयन करती हुई, इस प्रकार वहाँ चली आई कि देखनेवालों के मन में यह संदेह उत्पन्न होने लगा कि इसके कटि है या नहीं।

जिसपर विपदा आनेवाली होती है, वे स्वप्न में ऐसे रूपों को देखते हैं, जिनका विचार तक वे अपने मन में कभी नहीं लाये होंगे। इसी प्रकार, सीता देवी ने, जिनको, इसके पूर्व कभी किसी को न प्राप्त हुई बड़ी विपदा आनेवाली थी, उस माया-मृग को देखा।

रावण की आयु अब समाप्त होनेवाली थी, और उसकी मृत्यु से धर्म की सुरक्षा होनेवाली थी। अतः, सीता उस ( माया-मृग ) को देखकर, यह नहीं जानती हुई कि यह धोखा है, उसके न चाहने योग्य सौंदर्य पर मुग्ध हो गई।

वह हिरण ज्यों ही अर्धचंद्र समान ललाटवाली सीता के सम्मुख आकर खड़ा हुआ, त्यों ही वह (सीता) उसके प्रति अत्यधिक आकर्षण से भरकर, इस विचार से कि राम से उस हरिण को पकड़ लाने को कहे, सत्वर विजयी धनुर्धारी ( राम ) के निकट जा पहुँची।

सीता ने हाथ जोड़कर राम से कहा—हमारे आश्रम में अति उत्तम स्वर्णमय, दूर तक अपना प्रकाश फेंकनेवाला, माणिक्य तथा रत्नमय सुदृढ करों और कर्णों से शोभायमान एक हरिण आया है। वह अत्यन्त दर्शन-मधुर है।

ऐसा हरिण संसार में कहीं नहीं हो सकता, - ऐसा किंचित् भी विचार किये बिना ही, हमारे प्रभु और कमलभव के पिता ( विष्णु के अवतारभूत ) राम, हरिण-तुल्य देवी की बात सुनकर उमंग से भर गये।

यह मुझे चाहिए—यों अपनी देवी के कहने पर, राम ने यह नहीं कहा कि यह ( हरिण ) चाहने योग्य नहीं है। किन्तु, यह कहा कि आभरणधारी, स्वर्णलता-तुल्य हे देवि। हम उस हरिण को देखेंगे। तब अनुज लक्ष्मण ने उनका मनोभाव जानकर उस समय एक वचन कहा—

( उस हरिण के ) स्वर्णमय देह है, माणिकमय पैर, पूँछ और कान हैं और वह कुदकता है—यों कहने से यह स्पष्ट है कि वह कोई मायामय मृग है। हे प्रभु! इसके विपरीत उसे यथार्थ मृग मानना ठीक नहीं है।

तब राम ने कहा—हे मेरे अनुज! यथार्थ विवेक से सब कुछ जाननेवाले व्यक्ति भी इस अस्थिर संसार की दशा को पूरा-पूरा नहीं जान सकते। इस संसार में अनेक सहस्र कोटि प्राणी हैं। अतः, संसार में कोई वस्तु असंभव है—ऐसी बात नहीं है।

तुम्हारा मन क्या कहता है? हम अपने कानों से सृष्टि की विचित्र वस्तुओं के बारे में सुनते हैं। क्या तुम नहीं जानते कि पूर्वकाल में सात स्वर्णमय हंस[1] पैदा हुए थे?

सृष्टि के प्राणियों की कोई रूप-व्यवस्था या कोई सीमा नहीं है। यों राम ने अपने भाई से कहा। इतने में मुग्धा (सीता) देवी चिन्ता करने लगी कि वह स्वर्ण-मृग वन के मार्गों में जाकर कहीं अदृश्य न हो जाय।

इस प्रकार चिन्ता करनेवाली देवी का मनोभाव जानकर, अंजन-पर्वत सदृश प्रभु, यह कहते हुए कि हे आभरणों से भूषित देवि! कहाँ है वह हरिण? मुझे दिखाओ। चल पड़े। मुखरित वीर वलयधारी अनुज (लक्ष्मण) अपने भ्राता का यह कार्य देखकर चिन्तामग्न हो, उनके पीछे-पीछे चले। उसी समय अवश्यभावी विधि के विधान के समान आया हुआ वह माया-मृग सम्मुख दिखाई पड़ा।

सम्मुख दिखाई पड़नेवाले उस हरिण को देखकर रामचन्द्र अपनी सूक्ष्म बुद्धि से कुछ विचार न करके कह उठे—अहो! यह तो बहुत सुन्दर है। उन (सर्वज्ञ राम) के इस प्रकार कहने का कारण क्या था? विष्णु ने सर्पशय्या को छोड़कर धरती पर (राम के रूप में) अवतार लिया था, तो वह देवताओं के पुण्यफल के परिणामस्वरूप ही तो था? वह (भाग्य) क्या व्यर्थ होगा? (अर्थात्, देवताओं के भाग्य-परिपाक के कारण ही रामचंद्र मायामृग को पकड़ने के लिए तैयार हुए थे।)

फिर, श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—हे भाई! इसे देखो। इसका उपमान क्या हो सकता है? इसका उपमान यह स्वयं है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपमान नहीं है। इसके दाँत उज्ज्वल मुक्ता-तुल्य हैं। हरी घास पर बढ़ाई गई इसकी जीभ बिजली के सदृश है। इसकी देह रक्त स्वर्ण के तुल्य है जिसपर चाँदी की-सी चित्तियाँ शोभित हो रही हैं।

हे दृढ धनुर्धारी! इस हरिण की सुन्दरता को देखने पर स्त्री हो या पुरुष,—कौन इसपर मुग्ध नहीं होगा? रेंगनेवाले और उड़नेवाले सब प्राणी इसे देखकर पिघल उठते हैं और इस प्रकार आकर घेर लेते हैं, जिस प्रकार दीपक पर पतंग आकर गिरते हैं।

---

१. एक कथा प्रसिद्ध है कि पूर्वकाल में भरद्वाज मुनि के सात पुत्र मानससरोवर पर योग-साधना करते थे। किसी कारण से वे योगभ्रष्ट हो गये और दूसरे जन्म में कौशिक ऋषि के पुत्र होकर उत्पन्न हुए। उस जन्म में एक दिन अत्यन्त क्षुधा से पीड़ित होकर उन्होंने अपने गुरु गार्ग्य महर्षि की गाय को मारकर खा डाला। किन्तु, खाने के पूर्व पितरों का श्राद्ध कर उन्हें तृप्त किया। इस पाप के कारण उन्हें अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ा। किन्तु, पितरों को तृप्त करने के पुण्यफल से उन्हें सब जन्मों में अपने पूर्वजन्मों का स्मरण बना रहता था। एक बार वे सात स्वर्णहंस होकर जनमे थे। कदाचित्, इसी कथा की ओर इस पद्य में संकेत है।—अनु०

आर्य ( राम ) के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने उस हरिण को देखकर यह स्पष्ट रूप से जान लिया कि यह ( हरिण ) सच्चा नही है। फिर कहा—हे सुरभित तथा सुन्दर मालाधारी। यह हरिण स्वर्ण का भले ही हो, तो भी इससे हमें क्या प्रयोजन है? अतः, हमें अपने स्थान पर लौट जाना ही उचित है।

लक्ष्मण के ये वचन समाप्त करने के पूर्व ही उस अतिरूपवती ( सीता ) ने अनघ ( रामचंद्र ) को देखकर कहा—हे चक्रवर्त्ती-पुत्र। मन को आकृष्ट करनेवाले इस हरिण को शीघ्र पकड़ लाओ। जब हम ( वनवास की ) अवधि पूरा करके नगर को लौटेंगे, तब यह खेलने के लिए अत्यंत उपयुक्त होगा।

'है या नहीं'— यों संदेह उत्पन्न करनेवाली कटि से युक्त ( सीता ) के यह कहने पर प्रभु उस हरिण को पकड़ने के लिए सन्नद्ध हुए, यह देखकर स्पष्ट विवेकवाले भाई ( लक्ष्मण ) ने उनसे निवेदन किया—हे भ्राता। आप सोचकर जान सकते हैं कि हमें धोखा देने के लिए राक्षसों के द्वारा भेजा गया यह मायामय मृग है।

तब देवताओं के कष्टों को दूर करने के लिए अवतीर्ण प्रभु ने उत्तर दिया—यदि यह मायामृग ही है, तो भी मेरे बाण से यह मरेगा। मैं उस दशा में एक क्रोधी ( क्रूर ) राक्षस का वध करने का कर्त्तव्य पूरा करूँगा। यदि यह यथार्थ हरिण है तो इसे पकड़कर लाऊँगा। इन दोनों बातों में कोई भी अनुचित नहीं।

इसपर लक्ष्मण ने फिर कहा—हे वज्रसदृश दृढ तथा अतिसुन्दर कंधोंवाले। इस ( हरिण ) के पीछे किस प्रकार के राक्षस छिपे हैं—यह हमें विदित नहीं है। उनकी माया कैसी है—इससे भी हम परिचित नहीं हैं। यह हरिण क्या है—यह भी हमने समझा नहीं है। नीति-निष्ठ महाजनों ने जिस आखेट को घृणित और वर्ज्य कहा है, उसे करना कीर्त्तिकारक नहीं होता।

यह सुनकर चतुर्मुख के पिता ( विष्णु के अवतार, राम ) ने अपने उत्तम भाई से कहा—राक्षस वैर रखनेवाले हैं। उनकी संख्या अपार है। उनकी माया प्रभूत है—इन बातों को सोचकर ही क्या हम अपने व्रत को छोड़ दें? यह हास्यास्पद बात होगी। अतः, ( हरिण ) को पकड़ने का यह कार्य उचित ही है।

तब लक्ष्मण ने कहा—हे भ्राता। योग्य कार्यों को ठीक सोच-समझकर करना उचित है। इस ( हरिण ) को पकड़ लाने के लिए मैं जाऊँगा। इसे यहाँ भेजकर इसके पीछे छिपे रहनेवाले राक्षस असंख्य भी क्यों न हों, उन सबको मैं अपने धनुष पर अनेक तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर मिटा दूँगा। यदि यह मायामय मृग न हो, तो इसे पकड़कर ले आऊँगा?

उस समय हंसिनी-तुल्य उस ( सीता ) ने, गद्‌गदकंठ से शुकी की जैसी अमृत-वर्षिणी वाणी में कहा—हे नाथ। क्या तुम स्वयं जाकर इस ( हरिण ) को नहीं पकड़ लाओगे? फिर रक्त रेखाओं से संयुक्त नीलोत्पल-जैसे अपने नयनों से मोती जैसे अश्रु-बिंदु बरसाती हुई और मान करती हुई पर्णशाला की ओर चल पड़ी।

इस प्रकार जानेवाली सीता का रोष देखकर रक्षक प्रभु ने ( लक्ष्मण से ) कहा—

हे सुन्दरमाला-भूषित। इस हरिण को मैं स्वयं पकड़कर शीघ्र लौट आऊँगा। वन में रहनेवाली कलापी-समान सीता की रक्षा करते हुए तुम यहाँ रहो—यों कहकर बरछे-जैसे तीक्ष्ण बाण और धनुष लेकर सत्वर चल पड़े।

तब लक्ष्मण ने यह कहकर कि पहले (विश्वामित्र के) यज्ञ के समय आये हुए तीन राक्षसों में से (अर्थात्, ताड़का, सुबाहु और मारीच—इनमें से) एक राक्षस हमसे बचकर निकल गया था। हे प्रभु! मेरा अनुमान है कि उस समय बचकर भागा हुआ मारीच ही इस रूप में अब यहाँ आया है। आप सत्य को देखेंगे। जाइए। आपकी जय हो। लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और लक्ष्मी-तुल्य सीता के निवास-भूत कुटीर के बाहर पहरा देते हुए खड़े रहे।

पर्वत-समान उन्नत कंधोंवाले रामचंद्र ने अपने विवेकवान् भाई के वचनों पर ध्यान नहीं दिया और पूर्णचंद्र का उपमान बननेवाले सुन्दर मुख से शोभित (सीता) देवी के मान का स्मरण करते हुए, सिंदूर और प्रवाल के जैसे रक्तवर्ण अपने मुँह पर मंदहास भरकर उस हरिण का पीछा करते हुए चल पड़े।

वह हरिण मंद-मंद पैर रखता हुआ कभी चलता, कभी स्थिर खड़ा होता। फिर, घबराकर झपटता और कभी कान खड़े करके अपने खुरों को वक्ष से सटाता हुआ उछल पड़ता एवं अपनी गति से प्रभंजन और मन को भी मानों नवीन गति सिखाने लगता।

राम ने, त्रिभुवन को नापनेवाले अपने पैर को उठाकर आगे रखा। क्या उन चरण की पहुँच से परे रहनेवाला कोई लोक भी हो सकता है? यों राम ने (उस हरिण का) पीछा किया। उन राम के उस समय के वेग के बारे में इससे अधिक क्या कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी अनुपम सर्वव्यापिता को प्रकट किया?

वह (हरिण) पर्वत पर चढ़ता, मेघों के मध्य कूद पड़ता। उसका पीछा करने पर वह बहुत दूर भाग जाता। उसका पीछा करना छोड़कर विलंब करें, तो इतना निकट आ जाता कि हाथ बढ़ाकर उसे छू सकें। स्थिर खड़ा हुआ-सा दिखता, किन्तु झट उछलकर भाग जाता। इस प्रकार, वह (हरिण), धन पर ललचानेवाली वारनारियों के मन के समान सचरण करता। अहो!

तब उदार स्वभाववाले प्रभु ने विचार किया—इस (हरिण) का रूप कुछ है और इसके कार्य कुछ और हैं। पहले ही मेरे अनुज ने जो सोचा, वह ठीक ही लगता है। यदि मैं ठीक-ठीक विचार करता, तो इसके पीछे नहीं आता। राक्षसों की माया के कारण ही मुझे यह क्लेश उठाना पड़ रहा है।

इतने में वह मायावी राक्षस यह सोचकर कि यह (राम) अब मुझे पकड़ेगा नहीं, किंतु अपने बाण से मुझे परलोक में भेजने की बात सोच रहा है—अतिवेग से गगन में उड़ गया।

उसी क्षण प्रभु ने भी अपने चक्रायुध के समान अवार्य एक रक्तवर्ण बाण को यह आज्ञा देकर छोड़ा कि यह हरिण जहाँ भी जाये, वहाँ उसका पीछा करता हुआ जा और उसके प्राण हर ले।

वह दीर्घ, तीक्ष्ण तथा पत्राकार बाण, उस मायावी के वक्ष मे जा लगा। तुरन्त वह ( मारीच ) अपने खुले मुँह से ( हा लक्ष्मण। हा सीते। कहकर ) पुकार उठा और अष्ट दिशाओं और उनसे परे भी प्रतिध्वनि करता हुआ एक पर्वत के जैसे गिर पड़ा।

ज्योही वह क्रूर राक्षस अपने यथार्थ रूप मे मरकर गिरा, त्योही राम अपने उस भाई के बारे में, जिसने उस ( हरिण को पकड़ने के ) प्रयत्न को अहितकारी बताया था, सोचने लगे—मेरा वह भाई चतुर है। मेरे प्राणो के समान प्रिय है। मेरा वह चतुर अनुज मेरा उद्धार करनेवाला है।

फिर, रामचंद्र ने उस मारीच की देह को निकट जाकर देखा, जो दिगंत को अपनी पुकार से प्रतिध्वनित करता हुआ गिरा था, और स्पष्ट रूप से यह जान लिया कि वह वही मारीच है, जो पहले कलक-रहित विश्वामित्र के महायज्ञ के समय आया था।

फिर, यह सोचकर वे ( राम ) चिंतित हुए कि दारुण बाण ज्योंही उसके वक्ष में लगा, वह अपनी माया से मेरे कंठ स्वर का अनुकरण करके पुकार उठा। वह ध्वनि सुनकर मेघ-समान नयनोवाली ( सीता ) देवी चिंतित हुई होगी।

मेरा भाई इस ( हरिण ) को देखते ही समझ गया था कि यह मायावी मारीच है। वह मेरे पराक्रम को समझने की बुद्धि रखता है। अतः, इस (मारीच) की पुकार के यथार्थ तत्त्व को ( सीता को ) वह समझा देगा। यो विचार कर राम स्वस्थचित्त हुए।

फिर, यह विचार कर कि यह (मारीच) केवल मरने के उद्देश्य से ही यहाँ नही आया होगा, हो न हो, कोई षड्यन्त्र करने का उपाय करके ही आया है, इसकी पुकार से कोई हानि उत्पन्न होने की सभावना है, अतः, ऐसी कोई विपदा उत्पन्न होने के पूर्व ही पर्णशाला को लौट जाना उचित है। रामचद्र लौट पडे। ( १—२५२ )

●

## अध्याय ८

### सीता-हरण पटल

शखो से पूर्ण अनुपम समुद्र के जैसे सुन्दर स्वरूपवाले ( राम ) के सबध मे हमने वर्णन किया। अब सुरभिपूर्ण पुष्पालंकृत केशोवाली लता-सदृश ( सीता ) देवी के सम्बन्ध मे कहेंगे।

मारीच ने अपने दाँत पीसकर, अपने कंदरा के समान मुँह को खोलकर जो करुण पुकार की थी, वह ज्योही सीता के कानो मे पड़ी त्योही वह वृक्ष पर से धरती पर गिरी हुई कोयल के समान व्याकुल होकर छाती पीटती हुई मूर्च्छित हो गई।

घने कुतलोवाली वह ( सीता ) देवी अवलब से छूटी हुई लता के समान, और वज्र-ध्वनि के श्रवण से भयभीत हुए सर्प के समान मूर्च्छित होकर धरती पर लोट गई। फिर,

( संज्ञा पाकर ) रोती हुई कहने लगी—हा ! मैंने अज्ञान में पड़कर हरिण को पकड़कर लाने की बात कही और उसके फल-स्वरूप अपने जीवन-सर्वस्व को खो बैठी।

फिर, सीता ने लक्ष्मण से कहा—कलंक-रहित शुभगुणों से पूर्ण हमारे प्रभु, राक्षस की माया से विपदा-ग्रस्त हो गये हैं—यह विषय जानने के पश्चात् भी उनके भाई, तुम अभी तक मेरे निकट ही खड़े हो ? क्या यह उचित है ?

तब उस सत्यनिष्ठ ( लक्ष्मण ) ने समझाया—क्या आपका यह कथन उचित है कि इस लघु संसार में राम से भी अधिक पराक्रमी व्यक्ति है ? स्त्रीजनोचित बुद्धि के कारण ही आपने ऐसा कहा है।

हे स्त्रीत्व-गुण से पूर्ण देवि ! सप्त समुद्र, चतुर्दश भुवन, सप्त कुलपर्वत, इन सब प्रदेशों के निवासियों के क्षुद्र बल से क्या युद्ध में राघव का विशिष्ट पराक्रम कभी घट सकता है ? ( अर्थात्, कम नहीं हो सकता है। )

भूमि, जल, पवन, आकाश और अग्नि नाम के जो पदार्थ हैं, वे सब उन ( राम ) के क्रोध करने पर घबरा उठते हैं। मेघ-सदृश काले वर्णवाले उन कमल-नयन को आपने क्या समझा है, जो आप इस प्रकार व्याकुल हो रही हैं ?

क्या रामचंद्र निशाचरों से परास्त एवं विपदा-ग्रस्त होकर दुहाई देंगे ? यदि कभी उन्हें वैसी दुहाई देनी भी पड़े, तो सारा ब्रह्मांड अस्तव्यस्त हो जायगा और ब्रह्मा प्रभृति सब जीव विनष्ट हो जायेंगे।

( उनके बल के विषय में ) और क्या कहा जाय ? हमारे प्रभु रामचन्द्र, जिन्होंने भयंकर त्रिपुरों को जला देनेवाले और भूमि और स्वर्ग के निवासियों के द्वारा प्रशंसित शिवजी के धनुष को तोड़ दिया था, उनके बल की अपेक्षा अधिक बल क्या किसी में हो सकता है।

( हमारे ) रक्षक ( राम ) यदि ऐसी दशा को प्राप्त हुए होते, जैसा आपने सोचा है, तो तीनों लोक विध्वस्त हो गये होते। देव और मुनि मिट गये होते। उत्तम धर्म भी विनष्ट हो गया होता।

अधिक कहने की क्या आवश्यकता है ? महिमामय प्रभु ने वहाँ पर शर का प्रयोग किया है। उससे आहत होकर वह राक्षस वह दुहाई दे रहा है। उसके लिए आप द्रवीभूत होकर चिन्तित मत हों। निश्चिन्त होकर रहें।—यों लक्ष्मण ने कहा।

लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर, सीता का क्रोध और उबल उठा। उसे मरण की-सी वेदना होने लगी। उनका मन अत्यधिक घबरा उठा। वह निष्करुण होकर, लक्ष्मण के प्रति कठोर शब्द कहने लगी कि तुम्हारा यों खड़ा रहना नीति-मार्ग के अनुकूल नहीं है।

एक दिन का भी परिचय होने पर सच्चे बंधु (अपने मित्र की सहायता के लिए) अपने प्राण तक देने को सन्नद्ध हो जाते हैं। किन्तु, तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता को विपदा-ग्रस्त जानकर भी निर्भय हो स्थिर खड़े हो। मेरे लिए (इससे बुरी) और क्या गति हो सकती है ? अब मैं अग्नि में गिरकर अपने प्राण का त्याग करूँगी।

कमल के उद्यान में विहार करनेवाला हंस जिस प्रकार धुआँधार दावाग्नि में कूदने जाता हो, उसी प्रकार का कार्य करने के लिए प्रस्तुत ( सीता ) देवी की बातों को सुनकर उनकी रक्षा के लिए धनुष धारण करनेवाले ( लक्ष्मण ) ने उनके छोटे चरण-कमलों के सम्मुख धरती पर गिरकर साष्टांग नमस्कार किया। फिर बोला—

आप प्राण-त्याग करना क्यों चाहती हैं ? आपकी बातों से मैं भयभीत हो रहा हूँ। ( आपकी आज्ञा का ) मैं उल्लंघन नहीं कर सकता हूँ। आप दुःख-मुक्त होकर यहीं रहें। यह दास जा रहा है। कठोर विधि-विधान को कौन रोक सकता है ?

यह दास जा रहा है, कुछ अहित होने को है। आप कह रही हैं कि मैं प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ से जाऊँ। ( मेरे जाने पर ) आप अकेली रह जायेंगी। इसलिए सावधान रहिए।—यों कहकर उत्तप्त मन के साथ विदा होकर लक्ष्मण वहाँ से चलने लगे।

उस समय लक्ष्मण यह विचार करते हुए चले कि यदि मैं यहीं रहूँ, तो ये अग्नि में गिरेंगी। यदि मैं पर्वत-सदृश प्रभु के निकट जाऊँ, तो इनकी रक्षा न होने से कुछ अहित होगा। मुझे अपने प्राणों पर भी आसक्ति है। अब मैं क्या करूँ ?—इस प्रकार सोचकर लक्ष्मण बहुत व्याकुल हुए।

यदि हो सके, तो धर्म से अहित को रोका जा सकता है। अज्ञ मैं, जो पूर्वकर्म के परिणाम के फलस्वरूप इस प्रकार का जन्म पाकर यहाँ आकर इस विपदा में ग्रस्त हुआ हूँ, इन सीता की मृत्यु का कारण बनूँ—इससे तो यही उत्तम है कि मैं इस स्थान से हट जाऊँ।

फिर, सीता से कहा—मैं जा रहा हूँ। यदि ( अहित ) घटित हुआ, तो गृध्रराज ( जटायु ) अपनी शक्ति-भर आपकी रक्षा करेगा। ( यह कहकर ) देवताओं के पुण्य-प्रभाव से महिमामय वह पुरुष-श्रेष्ठ ( लक्ष्मण ) उसी मार्ग से चल पड़ा, जिससे राम गये थे।

लक्ष्मण के वहाँ से जाते ही खड्ग-दंतोंवाला रावण, जो अवसर की ताक में छिपा बैठा था, अपनी वंचना को सफल बनाने के उद्देश्य से बाँस का त्रिदंड लिये अन्तश्शत्रुओं ( अर्थात्, काम, क्रोध और मोह ) के बंधनों से मुक्त हुए तपस्वी का वेष धारण करके आया।

उपवास रखनेवाले के समान उसकी देह दुर्बल थी। बहुत दूर तक पैदल चलकर आनेवाले के समान उसमें थकावट दिखाई पड़ती थी। नृत्य के संगीत के जैसे ही अति शुद्ध तथा वीणागान के समान मधुर शैली में (साम) वेद का गान करता हुआ वह ( रावण ) आया।

वह इस प्रकार मन्द-मन्द चलता था, जैसे पुष्पों की शय्या पर चल रहा हो। वह अपना पद इस प्रकार रखता था, मानों अग्नि-कणों पर चल रहा हो। उसके हाथ और पैर अनियन्त्रित रूप से काँप रहे थे और उसमें अतिवार्द्धक्य दिखाई पड़ रहा था।

वह कमल के बीजों की एक जप-माला हाथ में लिये हुए था। उसके पास कूर्माकार एक आसन भी था। उसका शरीर झुका हुआ था। उसके वक्ष पर यज्ञोपवीत

शोभायमान था। इस वेष मे वह, पवित्र अतःकरणवाली उस अरुधती ( के समान पाति-व्रत्यवाली सीता ) के आवास-भूत कुटीर के समीप आ पहुँचा।

देवताओ को भी मुग्ध करनेवाला ( सन्यासी का ) वेष धारण करके वह (रावण) उस कलकरहित पर्णशाला के द्वार पर पहुँचा और गलित कठ से बोला—इस कुटीर मे कौन है ?

कलापी-तुल्य वह देवी. यह सोचकर कि कपट-रहित मनवाले कोई तपस्वी आये है, इक्षुरस-समान मधुर स्वर में यह कहती हुई कि 'पधारिए। पधारिए।' इस प्रकार उसके सम्मुख आ खड़ी हुई, जैसे कोई प्रवाल-लता हो।

उस ( रावण ) ने, लावण्य के भी लावण्य, यश के आगार और शील की मर्यादा उस देवी को अपनी आँखो से देखा और मदस्रावी मत्तगज के समान स्वेद से भरकर, लालना-रूपी वीचियों से पूर्ण कामना-समुद्र में डूब गया।

अशिथिल कोकिल स्वर से युक्त, देव-स्त्रियो से भी उत्तम रूपवाली वह ( सीता ) देवी ज्योही उसके सम्मुख प्रकट हुई, उस ( रावण ) के विरह-तप्त मनकी क्या दशा हुई—इसके बारे मे क्या वर्णन करे ? उसकी शक्तिशाली भुजाएँ फूल उठी और फिर कृश हो गई।

उसकी नयन-पक्ति, वन-मयूर जैसी ( सीता ) के सौदर्य के दर्शन से, पुष्पो के समृद्ध मधु का छककर पान करके गानेवाले भ्रमरो के समान आनद से मत्त हो उठी—ऐसा कहने में क्या बड़ाई होगी ? उसके मन के जैसे ही उसकी आँखें भी आनंदित हो गई।

वह (रावण) यह सोचता हुआ कि अरुण-कमल के समान को तजकर मेरे ये बीस नयन यहाँ आई हुई इस सुन्दरी के रत्न-काति से युक्त लावण्य को देखने के लिए क्या पर्याप्त हैं ? हाय ! मेरे एक हजार अपलक आँखें नही है।—व्याकुल हो खड़ा रहा।

उसने सोचा—कलाइयो पर ककण-पक्तियो से शोभित होनेवाली इस नारी-रत्न के साथ क्रीडा करते हुए आनंद के अपार समुद्र मे निमग्न होने के लिए क्या कठोर तपस्या के प्रभाव से प्राप्त, साढ़े तीन करोड़ वर्ष की मेरी आयु भी पर्याप्त होगी।

( फिर, उसने सोचा ) अब मै इस सुन्दरी को तीनो लोको की सम्राज्ञी बना दूँगा। सब सुर और, असुर अपनी पत्नियो के साथ इसकी सेवा मे निरत रहकर जीवन व्यतीत करेंगे। और, मै भी इसकी सेवा करता हुआ रहूँगा।

( उसने यह भी विचार किया ) दुःख के समय मे ही जब इसका मुख इतना लावण्यपूर्ण है, तब किंचित् दंत-प्रकाश से युक्त मदहास फैलने पर इसका मुख कितना मनोहर लगेगा ? मै अपनी उस बहन ( शूर्पणखा ) को, जिसने इस पुष्प-भरित कुंतलोवाली का अन्वेषण कर मुझे इसकी पहचान दी है, अपना राज्य दे दूँगा।

वह ( रावण ) उस स्थान पर आकर इसी प्रकार के विविध विचार करता हुआ मन में अनुचित इच्छा भरकर खडा रहा। उसे देखकर अस्खलित शीलवाली सीता ने अपने अश्रु पोछ लिये और कहा कि इस आसन पर आप आसीन हो जायें। (और एक आसन डाल दिया।)

सीता ने उसका स्वागत करके एक वेत्रासन डालकर उसपर आसीन होने को कहा। तब अपने बड़े त्रिदंड को पार्श्व में रखकर वह कपटी सन्यासी उस सुन्दर पर्णशाला में बैठ गया। उस समय—

पर्वत और वृक्ष थरथरा उठे। कठोर पापकर्म करनेवाले उस राक्षस को देखकर पक्षी भी मौन हो रहे। मृग भयभीत हुए। सर्प अपने फन को समेटकर कहीं छिप गये।

आसन पर बैठने के पश्चात् उसने (सीता से) प्रश्न किया—यह कौन-सा स्थान है? यहाँ निवास करनेवाले तपस्वी कौन हैं? इसके उत्तर में विशाल नयनोंवाली वह देवी, यह सोचती हुई कि यह कोई निष्कपट सन्यासी है, जो इस स्थान के लिए अजनबी है, कहने लगी—

हे महात्मा! दशरथ के प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न उन प्रभु का नाम आपने सुना होगा, जो उत्तम कुल-जात अपनी माता की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने भाई के साथ बिना किसी दुःख के इस स्थान में आकर रहते हैं।

फिर, रावण ने प्रश्न किया मैंने (यह समाचार) सुना है, किन्तु उन्हें (अर्थात्, राम को) मैंने देखा नहीं है। गंगा के समृद्ध जल से सिंचित (कोशल) देश को एकबार गया हूँ। नील कुवलय और बरछे के जैसे नयनोंवाली तुम किनकी सुपुत्री हो, जो अपने अमूल्य समय को इस अरण्य में व्यतीत कर रही हो?

तब कलंकहीन शीलवती उस (सीता) देवी ने उत्तर दिया—अनघ मार्ग पर चलनेवाले हे यतिवर! मैं उन जनक की पुत्री हूँ, जिनका मन आप (जैसे मुनियों) के अतिरिक्त अन्य देवता का ध्यान भी नहीं करता। मेरा नाम जानकी है। मैं काकुत्स्थ की पत्नी हूँ।

फिर, उत्तम आभरण-भूषित सीता ने पूछा—आप अत्यंत वृद्ध हैं। कर्मभोग से मुक्ति पाने की इच्छा रखनेवाले आप कहाँ से इस समय, इस कठोर वन-मार्ग को पार करके आये हैं?

तब रावण कहने लगा (ऐसा एक व्यक्ति है), जो इन्द्र का भी इन्द्र है (अर्थात्, इन्द्र से भी बढ़कर प्रभावशाली); (चित्र में) अंकित करने के लिए असाध्य सौंदर्य से युक्त है। चतुर्मुख (ब्रह्मा) के वंश में उत्पन्न है, स्वर्ग-सहित सब लोकों पर शासन करनेवाला है और जिसकी जिह्वा वेदों के मंत्रों का आवास है।

जो ऐसी शक्तिशाला है कि उसने पूर्वकाल में शिवजी के निवासभूत महान् कैलासगिरि को जड़-सहित उखाड़ लिया था। जिसकी भुजाएँ ऐसी हैं कि (उन भुजाओं ने) दिशाओं को वहन करनेवाले गजों पर आघात करके उनके दाँतों को चूर-चूर कर दिया था।

जिसके द्वार के रक्षक स्वयं देवता हैं। जिसकी महिमा का गान करने की शक्ति शब्दों में नहीं है। जिसके अधीन कल्पतरु आदि देवलोक की सब विभूतियाँ हैं। जिसका सुन्दर निवास-स्थान गम्भीर समुद्र से आवृत स्वर्णमय लंका नगरी है।

जिसके वैभव से आकृष्ट होकर सुन्दर मन्दहास से युक्त तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ

स्वर्गलोक को छोड़कर ( उसकी लंका में ) आ गई हैं और ( उसकी सेवा में रहकर ) उसके पानदान उठाना, (उसके) पैर सहलाना, उसकी पादरक्षा लाना इत्यादि कार्य करती रहती हैं।

चन्द्रमा और सूर्य, उसके मन को देखकर ( उसके अनुसार ) संचरण करते हैं। दिव्यकांति से युक्त इंद्र आदि देवता, इस लोक में स्थित उसके मेघस्पर्शी प्रासाद की रखवाली करते हैं।

इस धरती पर स्थित उसकी उस लंकापुरी में, जो स्वर्णमय अमरावती, मनोहर नागलोक की राजधानी और इस विशाल भूलोक के सब नगरों से बढ़कर सुन्दर है, रहनेवाली सब वस्तुएँ दोषरहित हैं।

कमलभव (ब्रह्मा) के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से वह अनन्त आयुवाला है। वह अपने विशाल कर में, अर्धाङ्ग में अपनी स्त्री को धारण करनेवाले ( शिवजी ) के द्वारा प्रदत्त करवाल रखता है। उसने सब ग्रहों को कारागार में बन्दी बना रखा है। वह सब गुणों में महान् है।

वह क्रूरता से रहित सदाचरणवाला है। विस्तृत शास्त्र-ज्ञान से युक्त है। तटस्थ स्वभाववाला है ( अर्थात्, पक्षपात से हीन बुद्धिवाला है )। उसका यौवन ऐसा है कि उसे देखकर मन्मथ भी ( आश्चर्य से ) स्तब्ध रह जायें। सब लोकों के निवासी जिन त्रिदेवों को अपने देवता मानते हैं, उन ( त्रिमूर्तियों ) की समस्त शक्ति से वह संपन्न है।

सब लोकों में रहनेवाली असंख्य सुन्दरियाँ उसकी कृपा को प्राप्त करने की लालसा रखती हैं। उसका ध्यान करती हुई वे सुन्दरियाँ कृश होती रहती हैं। तो भी वह उन सब की उपेक्षा करके अपने हृदय को मुग्ध करनेवाली एक रमणी को खोज रहा है।

इस प्रकार के पुरुष द्वारा शासित उस वैभव-पूर्ण नगरी में कुछ दिन निवास करने की इच्छा से मैं वहाँ गया। दीर्घकाल तक वहीं रह गया। अब उस ( पुरुष ) से दूर होने की इच्छा न होते हुए भी किसी-न-किसी प्रकार वहाँ से चलकर इस स्थान में आया हूँ।—यों उस मायावी ने कहा।

तब सीता ने उस कपट-संन्यासी से पूछा— अपने शरीर को भी भार माननेवाले हे मुनि श्रेष्ठ! वेदों तथा उन वेदों के ज्ञाताओं की कृपा की कामना न करके, लालच के साथ प्राणियों को खानेवाले उन क्रूरकर्मा राक्षसों के नगर में जाकर आप क्यों रहे?

अरण्य में स्थित महातपस्वियों के समीप जाकर आप नहीं रहे; जल-संपत्ति से परिपूर्ण देशों में निवास करनेवाले पवित्र स्वभाववालों के ग्रामों में जाकर भी आप नहीं रहे। किन्तु, धर्म का स्मरण तक नहीं करनेवाले राक्षसों के मध्य जाकर रहे। यह आपने क्या किया?—इस प्रकार सीता ने कहा।

उस मर्यादाहीन ( अर्थात्, धर्म की मर्यादा से परे रहनेवाले ) ने यौवनवती देवी के कथन को सुना और उनकी निष्कपटता को देखा, जो यह कहते हुए भी कि वे राक्षस कठोर नेत्रवाले और भयंकर खड्गवाले हैं—भयविह्वल हो रही थीं। फिर, यों उत्तर दिया— हे चन्द्रमुखि! राक्षस देवताओं के समान क्रूर नहीं हैं। हम जैसे व्यक्तियों के लिए वे अच्छे ही हैं।

उसके यह कहने पर सुन्दर आभरण-भूषित सीता यह न जानने से कि माया में चतुर राक्षस कामरूपी है, उसपर कुछ सदेह न करती हुई बोली— पापियों से स्नेह करनेवाले लोग पवित्र नहीं होते। विचार करने पर यही कहना पड़ेगा कि वे भी ( अर्थात् , पापियों से स्नेह रखनेवाले भी ) उस पाप के भागी होते हैं।

तब रावण ने यह आशका करके सीता कदाचित् उसपर सदेह कर रही है, उस सदेह को दूर करने के विचार से दूसरे ढग से कहा कि तीनों लोकों के विवेकी पुरुषों के लिए उन बलशाली राक्षसों के स्वभाव के अनुकूल रहने के अतिरिक्त अन्य क्या आचरण संभव हो सकता है ?

( दूसरों की ) मनोदशा को पहचाननेवाले उस मायावी के यह कहने पर सद्गुणों में बढ़ी हुई देवी ने कहा—धर्म के रक्षक उदार गुणवाले वे ( रामचन्द्र ) जबतक इस अरण्य में तपस्साधना करते रहेंगे, तबतक पाप-कर्म से जीनेवाले राक्षस अपने बंधु-सहित मर मिटेंगे। उसके पश्चात् ससार के कष्ट भी मिट जायेंगे।

हरिण-समान उस सीता के यह कहते ही वह ( रावण ) बोल उठा—हे मीन-जैसे चमकते नयनोंवाली। यदि मनुष्य, राक्षसों का समूल नाश करनेवाले हों तो ( इसका अर्थ यह हुआ कि ) एक छोटा खरगोश हाथियों के झुड को मार देगा और एक हिरण का बच्चा वक्र नखोंवाले सिंह को मार देगा।

तब सीता ने कहा—घनीभूत विद्युत्-पुज-जैसे केशोंवाले विराध तथा क्रोध के ताप से भरे मनवाले विजयी खर आदि राक्षसों के ( राम हाथों ) मरने का समाचार कदाचित् आपने नहीं सुना है। यह कहकर राम को उस समय जो क्लेश उठाना पड़ा था, उसका स्मरण करके वह देवी आँखों से अश्रु की वर्षा करने लगी।

फिर, आगे उन देवी ने कहा—आप कल ही देखेंगे कि प्रतापी सिंह-सदृश मेरे प्रभु से लका के निवासी अपने कुल-सहित कैसे मिटते हैं और देवों की उन्नति कैसे होती है। क्या अवारणीय धर्म को पाप जीत सकता है ? आप, दोषहीन मुनिवर क्या यह नहीं जानते ?

वह रावण, जिसका मासल शरीर ( सीताजी की ) मधुमिश्रित अमृत-जैसी अति मृदुल वाणी के उसके कानों में पड़ने से फूल उठा था, अब इस वचन को सुनकर कि मानव अधिक बलवान् है, अभिमान के उमड़ने से क्रोध से भर गया।

उस क्रोधी ने कहा—एक मनुष्य ने (अर्थात् , राम ने) धनुर्बल में क्षुद्र उन राक्षसों को मारा। यदि तुम इस बात की बड़ाई करती हो, तो कल ही तुम इसका परिणाम देखोगी कि ( रावण की ) बीस भुजाओं की हवा-मात्र लगने से वह मनुष्य ( अर्थात् , रामचन्द्र ) सेमर की रूई के जैसे उड़ जायगा।

निरर्थक वचन कहनेवाली हे मुग्धे। यदि मेरु पर्वत को उखाड़ना हो, ब्रह्माड के खप्पर को तोड़ देना हो, समुद्र के जल को आलोडित करना हो, अथवा पृथ्वी को उठा लेना हो, इस प्रकार के अनेक कार्य करने हों, तो भी रावण के लिए ये सब सुलभ हैं। उसके लिए कौन-सा कार्य कठिन हो सकता है ? तुमने क्या समझकर ये बातें कही हैं ?

इस समय सीता के मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि यह कर्म के द्वन्द्व से युक्त मुनि

नही है। फिर, यह सोचती हुई खड़ी रही कि यह कौन हो सकता है? इतने मे वह कपट सन्यासी ऐसा बन गया जैसा कोई विषधर कालसर्प क्रोधानल से उत्तप्त होकर अपना फन फैलाकर खड़ा हो गया हो।

( राम के वियोग से ) पहले से ही अत्यन्त विषण्ण वह देवी, इस समय जिस प्रकार के दुःख मे निमग्न हुई, यदि उसके बारे मे विचार करे, तो विदित होगा कि इससे बढ़कर अन्य कोई कही दुःख हो ही नही सकता। उन देवी के पास ऐसा कोई शब्द नही रहा, जिसे वे धीरज के साथ उस राक्षस को कह सकें। उनसे कोई काम भी करते नही बनता था। वे इस प्रकार विकंपित हुईं, जिस प्रकार यम के आने पर प्राण कॉपने लगते हैं।

तब रावण ने कहा—देवता लोग भी मेरी सेवा करते है। ऐसे मेरे पराक्रम को तुमने नही जाना और ( तुमने ) मिट्टी के कीड़े-जैसे जीनेवाले मनुष्य को बलवान् कहा। तुम स्त्री हो, अतः बच गई, नही तो मै तुमको पीसकर खा डालता। पर यदि वैसा करने का विचार भी करूँ, तो मेरे प्राण मिट जायेंगे—(अर्थात्, तुम्हे मार डालूँगा, तो तुम्हारे वियोग मे मै भी मर जाऊँगा, अतः तुम्हें नही मारूँगा )।

हे हंसिनि! भयविकंपित मत होओ। जो मेरे सिर इसके पहले किसी के सामने नही झुके, उनपर बारी-बारी से, मुकुट के समान तुम्हे वहन करके मै आनंदित होऊँगा। असख्य आभरणो से भूषित देव-सुन्दरियाँ तुम्हारी चरण-सेवा करेंगी। यों तुम चतुर्दश भुवन की सम्राज्ञी बनकर रहेगी।

ये वचन सुनते ही सीता ने झट अपने कर-पल्लवो से कानो को बन्द कर लिया। फिर कहा—अरे राक्षस! मनोहर तथा भयकर धनुष को धारण करनेवाले उनके कर, तथा विजय से शोभायमान काकुत्स्थ के प्रति अनन्य प्रेम तथा पातिव्रत्य रखनेवाली मेरे प्रति तू ने ससार के उत्तम धर्म की उन्नति के लिए प्रज्वलित वह्नि मे पवित्र ऋषियो के द्वारा देने योग्य हवि को खाने की इच्छा करनेवाले कुत्ते-जैसे ( होकर ), क्या कहा?

घास की नोक पर रखनेवाली ओस की बूँद के जैसे क्षण-भगुर जो प्राण हैं, उनके खो जाने के भय से क्या मै उत्तम कुल के योग्य आचरण को त्याग दूँगी? यह संभव नही। यदि तू अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता है, तो बिजली के जैसे चमकते हुए वज्र के जैसे घोष करनेवाले तीक्ष्ण ( राम के ) बाण के लगने के पूर्व ही यहाँ से भाग जा।

सीता का यह वचन सुनकर उस क्रूर राक्षस ने कहा—दिशाओं को वहन करनेवाले हाथियो के अतिदृढ दाँतो को तोडनेवाले मेरे वक्ष पर यदि तुम्हारे पति का बाण आकर लगेगा, तो वह पर्वत पर गिरी हुई पुष्पमाला-जैसा जान पड़ेगा।

लक्ष्मी के लिए भी लक्ष्मी होनेवाली हे सुंदरि! तुम्हारे प्रति उत्पन्न प्रेम की व्याधि के कारण मेरा शरीर दुर्बल हो रहा है। मुझे प्राण-दान करो और स्वर्गवासिनी घने केशोवाली अमराओं के लिए भी दुर्लभ पद को प्राप्त करो—यों कहकर भूधर से भी दृढ भुजावाले रावण ने उसे नमस्कार किया।

ज्योंहि वह ( रावण ) सीता के चरणो को प्रणाम करने के लिए झुका, त्योंही

क्षमा की मूर्त्ति और अनुपम सुन्दरी वह देवी, इस प्रकार व्याकुल होकर जैसे मर्मस्थान में रक्ताचित खड्ग धँस गया हो, हे प्रभु ! हे अनुज ! कहकर पुकार उठी।

उस समय, उस क्रूर ( रावण ) ने, पहले दिये गये अपने इस शाप[1] का स्मरण करके कि उसे परनारी का स्पर्श ( उसकी इच्छा के बिना ) नही करना चाहिए, अपनी स्तभ-जैसी वलवान् एव ऊँची भुजाओं से उस आश्रम के स्थान को ही नीचे से एक योजन पर्यन्त खोदकर उठा लिया।

( इस प्रकार सीता को उसके आश्रम के साथ ) उठाकर उसने अपने रथ पर रख लिया। सुन्दर ककण-भूषित सीता ने रावण का यह कार्य देखा। किन्तु, अपने प्राणो ( के समान प्रभु ) को नही देखा। वह इस प्रकार मूर्च्छित हो गिर पडी जैसे मेघो से छूटकर कोई विजली धरती पर आ गिरी हो। तव उस ( रावण ) ने आकाश-मार्ग से जाने का विचार किया। ( १—७५ )

●

# अध्याय ९

## जटायु-मरण पटल

रावण ने अपने सारथी से कहा कि रथ आगे वढ़ाओ। उस कथन को सुनकर सीता अग्नि में पड़ी हुई पुष्प-लता के समान तड़पने लगी। वह नीचे गिरकर लोटती। विह्वल होकर काँपती। मूर्च्छित होती। पीडा से छटपटा उठती। 'हे धर्म देवता ! इस विपदा से शीघ्र मुझे बचाओ'—यों प्रार्थना करती।

( सीता कहती—) हे पर्वतो ! हे वृक्षो ! हे मयूरो ! हे कोयलो ! हे हरिणो ! हे हरिणियो ! हे हाथियो ! हे करिणियो ! हे मेरे कातर प्राणो ! तुम मेरे प्रभु के निकट शीघ्र जाओ और उन अचचल वलवान् वीर से मेरा हाल कहो।

हे मेघो ! हे उद्यानो ! हे वनदेवताओ ! उत्तम वीर, वे मेरे प्रभु कहा हैं ? क्या तुम जानते हो ? यदि तुम मुझे अभयदान दो, तो मैं जीवित रह सकती हूँ—इससे तुम्हारी क्या हानि हो सकती है ?

हे वरद ! हे अनुज ! क्या आप ( दोनो ), कालमेघ के समान शरवर्षा करते हुए और राक्षस आदि क्रूर जनो का विनाश करते हुए यहाँ नही आयेंगे ? हे निष्कलक भरत ! हे अनुज ( शत्रुघ्न )! क्या तुम अपयश के भागी वनोगे ?

---

१ यह कथा प्रसिद्ध है कि एक वार रंभा अपने प्रियतम कुबेर के पुत्र नलकूवर से मिलने के लिए जा रही थी। मार्ग में रावण ने वलात् उसको पकड़ लिया। तव रंभा और नलकूवर से रावण को यह शाप मिला कि यदि आगे कभी वह किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसका स्पर्श करेगा, तो उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे और पतिव्रता स्त्री के पातिव्रत्य की अग्नि में वह जल जायगा। इसी शाप के रहने से रावण ने सीता का स्पर्श नहीं किया।—अनु०

हे गोदावरि। तू शीतल है। तू द्रवीभूत है। तू माता-समान है। तेरा अन्तः-करण स्वच्छ है। तू दौड़कर जा और कुछ न कहने पर भी ( दर्शन मात्र से मन की बात ) समझने की शक्ति रखनेवाले मेरे प्रभु के निकट पहुँच जा और मुझ अभागिन का समाचार उन्हे दे।

सम्मुख दिखनेवाले हे निर्झरो! पर्वत-कदराओ मे निवास करनेवाले सिंहो! तुम ( मेरे प्रभु को ) यह समाचार देकर उनसे धरती के साथ मुझे उठा ले जानेवाले इस रावण की बीस भुजाओ और उसके दस शिरों को विध्वस्त कराके आनंदित होओ।

इस प्रकार के विविध वचन कहकर मुक्त होने की इच्छा से रोनेवाली सीता को देखकर, अपने जीवन के दिनो को व्यर्थ करनेवाले उस रावण ने कहा—हे स्वर्णहारो से भूषित संयुत स्तनोवाली। स्वर्णमय कर्णाभरणो से शोभायमान हे सुन्दरि। वे मनुष्य क्या युद्ध में मुझे मारकर तुम्हे मुक्त कर सकेंगे? और, अपने वलिष्ठ हाथो से ताली बजाकर ठठाकर हँस पड़ा।

उसके यो कहने पर सीता ने कहा—तूने माया से एक कपट-हरिण बनाया। तेरे प्राणो के लिए यम-सदृश प्रभु को तूने आश्रम से बाहर भेजने का उपाय किया। फिर, आश्रम में घुसकर मुझे हरकर ले जा रहा है यदि उनसे ( अर्थात्, राम से ) युद्ध करने की शक्ति तुझमे है, तो अपना रथ आगे न बढ़ा।

फिर सीता ने कहा—यदि तुम वीर होते तो, क्या यह सुनने के पश्चात् भी कि तुम्हारे कुल के राक्षसो को क्षणकाल में मारनेवाले और तुम्हारी बहन की नाक-कान काटनेवाले मनुष्य अरण्य मे ही हैं। ( उन मनुष्यो के साथ युद्ध कर उन्हे मारे विना ), इस प्रकार माया करके मेरा अपहरण करते? यह भय से उत्पन्न तुम्हारे मन की कायरता ही तो है?

सीता के यह कहने पर रावण ने उससे कहा—हे नारीरत्न। सुनो। बलहीन शरीरवाले क्षुद्र मनुष्यो के साथ यदि मै युद्ध करूँ, तो ललाट-नेत्र के पर्वत ( हिमालय ) को उठानेवाली मेरी भुजाओ का अपमान होगा। उस अपवाद की अपेक्षा ऐसी माया ही फलप्रद है न?

मनोहर नयनोवाली प्रतिमासमान सुन्दर देवी ने वह वचन सुनकर कहा—अपने कुल के जो शत्रु हैं, उनके सम्मुख जाना अपमान है। उनके साथ करवाल लेकर युद्ध करना अपमान है। किन्तु, पतिव्रताओ को धोखा देना अपमान नहीं है। अहो! निष्करुण राक्षसो के लिए अपमान क्या है? अपयश क्या है?

इस समय, 'अरे। तू कहाँ जा रहा है? ठहर, ठहर'—यो गर्जन करता हुआ, आँखो से क्रोध की अग्नि उगलता हुआ, विद्युत् के जैसे चमकती हुई चोंच के साथ जटायु ऐसा आया, मानो मेरु नामक स्वर्णमय पर्वत ही गगन-मार्ग से उड़कर आ गया हो।

उसके दोनो पखो के हिलने से ऐसा प्रभंजन उठा कि उससे बडे-बडे पर्वत अपने स्थान से उखड़कर उड़ते और एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर होकर धूल बनकर उड़ गये। समुद्र का जल गगन मे भर गया और जल और थल एकाकार हो गये। ऐसा लगता था, जैसे प्रलयकालीन पवन विश्व-भर मे फैल रहा हो।

वृक्ष अपनी सब शाखाओं के साथ धरती पर लंबे हो गिर गये। गगन के मेघ, अंतरिक्ष में बहुत ऊपर कहीं उड़ गये। सर्प, यह सोचकर कि उग्र रूप गरुड ही नभोमार्ग से आ रहा है, अपने फन समेटकर छिप गये।

जटायु के दोनों पंखों की हवा के वेग के कारण, हाथी, शरभ आदि मृग, वृक्ष, कुंज, शिलाएँ तथा सब अरण्य उड़कर अंतरिक्ष में भर गये। जिससे अंतरिक्ष और अरण्य दोनों स्थानांतरित-से हो गये।

जटायु अपने विशाल तथा बलवान् पंखों को फैलाये, यह कहता हुआ आया कि पुरुषोत्तम ( राम ) की देवी को भूखंड-सहित ऊँचे रथ पर रखे, तू कहाँ ले जा रहा है? मैं गगन को और सब दिशाओं को ( अपने पंखों से ) आवृत कर दूँगा ( जिससे तेरे जाने का मार्ग नहीं रहे )।

गुणहीन उस ( रावण ) के यन्त्रमय रथ की गति को रोकने के विचार से, सिंदूर जैसे लाल पैर और सिर एवं सन्ध्याकाश-जैसे कंठ के साथ, कैलास पर्वत के जैसे आकार-वाला गृद्धराज ( जटायु ) आ पहुँचा।

उस समय वहाँ आकर उस ( जटायु ) ने उस स्त्री-रत्न को देखकर कहा—डरो नहीं। फिर यह जानकर कि ( रावण ने सीता का ) स्पर्श नहीं किया है, अपने उमड़ते क्रोध को किंचित् शान्त करके रावण से कहने लगा—

तू मिट गया। तू ने अपने बन्धुवर्ग-सहित, अपने जीवन को जला दिया। अरे तू यह क्या करने लगा है? यह जान ले कि तू मर गया। इस देवी को छोड़कर चला जा। यदि ऐसा करेगा, तभी जीवित रह सकेगा।

हे मूढ! तूने अपराध किया है। विश्व की माता-समान देवी को तूने अपने मन में क्या समझा है? हे विवेकहीन! अब तेरा सहारा कौन है? ( अर्थात्, विश्व की माता के प्रति अपराध करने पर तेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं रहा। )

हे राजन्! क्या तू नहीं जानता कि राम ने तेरे कुलवालों के साथ घोर युद्ध करके उनके प्राणों को यमराज का सुन्दर भोजन बनाया था और यम ने हाथों में भर-भर-कर नवीन भोजन पाकर आनन्द उठाया था?

तुम को मारने के लिए दौड़कर आनेवाले क्रोधी तथा घोर मत्तगज पर तू मिट्टी का ढेला फेंकना चाहता है। घोर विष को खाकर, भले ही तू यह न जाने कि वह (विष) प्राणहारी है, फिर भी क्या अपने प्राणों को स्थिर रख सकेगा?

तीनों लोकों के निवासी, देवेंद्र, त्रिमूर्त्ति, यम आदि सब राम के आगे ऐसे रहते हैं जैसे व्याघ्र के सम्मुख हरिण हो। अति उत्तम धनुर्धारी राम को जीतने की शक्ति किसमें है?

इस संसार में अपने कुल के साथ विनाश पाने का इससे बढ़कर अन्य कुछ उपाय नहीं है। इतना ही नहीं। दूसरे जन्म में भी ( यह कार्य ) घोर नरक देनेवाला है। तूने इस कार्य को अपने किस जन्म के लिए सुखप्रद समझा है?

ये मानव ( राम और लक्ष्मण ) त्रिदेवों में प्रधान तथा ( सारी सृष्टि के ) आदि

कारणभूत परमतत्त्व (अर्थात् , विष्णु) ही हैं। अतः, इनकी समता किस देवता के साथ की जा सकती है ? तुझमें विवेक नही है। अतः, पागल होकर तूने यह अपराध किया है।

उस अविनाशी तत्त्व (अर्थात् , रामचन्द्र) के धनुष से शर के निकलते ही त्रिपुरो को जलानेवाले वृषभारूढ शिवजी की कृपा से प्राप्त तेरे वरदान और तेरी सारी विद्याएँ विनष्ट हो जायेंगी।

स्वर्ग के राज्य मे आनन्द पानेवाले चक्रवर्त्ती ( दशरथ ) के पुत्र ( राम ) अपना धनुष झुकाये हुए तेरे सम्मुख आ जायँ, तो उन्हे रोकना असभव होगा। मैं इस सुन्दर ललाट-वाली देवी को उनके आवास में पहुँचा दूँगा। तू शीघ्र यहाँ से भाग जा। जटायु के इस प्रकार कहते ही—

रावण अपनी उज्ज्वल आँखो से चिनगारियाँ उगलने लगा। ओठ चबाते हुए उसने जटायु को देखकर कहा—अब ज्यादा बक-बक मत कर। अब शीघ्र तू उन मानवों को दिखा।

सम्मुख आनेवाले ऐ गिद्ध! मेरे शर से तेरी छाती में बड़ा छेद न हो जाय, इसलिए तू अभी यहाँ से हट जा। गरम किये हुए लोहे मे पड़ा हुआ जल उससे कदाचित् निकल भी आ जाये, किन्तु मेरे हाथों में पड़ी इक्षु-समान बोलीवाली यह सुन्दरी मुक्त नही हो सकती, तू यह जान ले।

इस समय जटायु ने हसिनी-तुल्य सीता को दुगुने डर से काँपती हुई देखकर कहा—हे माता! इस राक्षस की देह अभी टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। अतः, यह सोचकर कि प्रभु ( राम ), धनुष लेकर नही आये हैं, तुम चिंतित मत होओ।

तुम व्याकुल होकर मुक्ता के समान अश्रुओ को अपने मुख पर से स्तन-तटों पर गिराती हुई दुःख मत करो। इसके दस शिरो को ताड़ के फलो के गुच्छे के समान मै तोड़ दूँगा और इसके द्वारा वशीभूत दसों दिशाओ को ( उन शिरो को ) मै बलि के रूप मे अर्पण करूँगा।

फिर जटायु, रावण के शिरो की पक्ति को गरजते मुँह से काटकर गिराने के लिए अपने पंखो से वज्र की ध्वनि उत्पन्न करते हुए शीघ्र उड़कर आया और रावण की मनोहर, विशाल, वीणा के चित्र से युक्त ध्वजा को तोड़कर देवों के आशीर्वाद का पात्र बना।

रावण, जो पहले कभी इस प्रकार के अपमान का भाजन नही बना था, उस समय अपनी आँखो को पिघली लाख जैसे लाल करके ठठाकर हँस पड़ा और सप्तलोकों को भयभीत करते हुए पर्वत के जैसे अपने धनुष को एव अपनी भौंहो को झुका लिया।

अर्धचन्द्र के जैसे वक्र खड्ग-दतोंवाले उस ( रावण ) के शरों की घोर वर्षा जटायु पर होने लगी। जटायु ने कुछ शरो को अपने दृढ नखो से तोड़ दिया, कुछ शरों को यम को भी भयभीत करनेवाली चोच से छिन्न-भिन्न कर दिया।

विशाल और भयकर आँखोंवाले असख्य सर्पों को एक साथ मिटानेवाले गरुड के समान जटायु, ( रावण के ) दशों शिरों पर अपनी चोच नामक चक्रायुध को बढ़ाकर, उसके पुन. अपने धनुष को झुकाने के पूर्व ही उसके निकट पहुँच गया और उसके कुडलों को छीनकर उड़ गया।

तब बड़ा गर्जन करता हुआ रावण ने, चौदह बाणों को जटायु के विशाल वक्ष पर इस प्रकार छोड़ा कि वे ( बाण ) उसके वक्ष को भेदकर पार हो गये। फिर, उसपर अनेक बाण और छोड़े। देवता, यह सोचकर कि जटायु अब गिर गया, भय-कंपित होकर उष्ण निःश्वास भरने लगे।

वह गृद्धराज अपने घावों से रक्त की अविरल धारा बहाता हुआ उस मेघ के जैसा लगता था, जो धरती पर खर आदि राक्षसों के रक्त-प्रवाह को समुद्र समझकर ( उसे ) पीने के पश्चात् उस ( रक्त-रूपी ) जल को बरसाकर श्वेत वर्ण हो रहा हो।

इस प्रकार का जटायु क्रुद्ध हुआ। निःश्वास भरा। रावण की बीस भुजाओं के मध्य झपटा। अपनी चोंच से मारा। नखों से खरोंचा। अपने पंखों से आघात किया और उस ( रावण ) के मुक्ताहार-भूषित वक्ष पर के कवच के बंधनों को ढीला कर दिया।

यों अपने कवच को ढीला करनेवाले जटायु पर रावण ने एक सौ बाण चलाये। तब देवता भी भय-विकंपित हुए। इतने में जटायु ने उछलकर रावण के धनुष को चोंच से पकड़कर छीन लिया। यह देखकर देवता हर्षध्वनि कर उठे।

उज्ज्वल रजताचल (हिमाचल) को उसपर निवास करनेवाले शिवजी-सहित अपने बलवान् कंधों पर उठानेवाले उस ( रावण ) के धनुष को जटायु ने अपनी चोंच से पकड़कर खींच लिया और ऊपर उड़ा, तो वह इन्द्र-धनुष के साथ गगन में उड़नेवाले मेघ के समान लगा। उस ( जटायु ) के बल का वर्णन कौन कर सकता है ?

जिस रावण ने ( युद्ध में ) कभी अपनी पीठ न दिखानेवाले सहस्रनेत्र ( इन्द्र ) को भी अपने शस्त्र से पीडित किया था और भगा दिया था, उस ( रावण ) के धनुष को उस जटायु ने अपनी चोंच से छीन लिया और अपने पैरों से तोड़ दिया। जो ( जटायु ) रक्तवर्ण देव ( शिव ) के धनुष को अपने हाथों से तोड़ देनेवाले ( राम ) का सहायक था और उनके पिता का प्रिय मित्र था।

विश्वकंटक रावण, अपने बल के योग्य उस धनुष को टूटते हुए देखकर क्रुद्ध हुआ और अपने पराक्रम में कुंठित न होकर, विषकंठ ( शिव ) के त्रिपुर-दाह करनेवाले अनुपम शर के समान ( भयंकर ) शूल को उठाकर जटायु पर प्रयुक्त किया।

तब गृद्धराज ने, इस विचार से कि वह ( रावण ) कहीं मुझे शक्तिहीन न समझ ले, यह कहते हुए कि, देख मेरी शक्ति को, उस ( रावण के ) त्रिशूल को अपनी छाती पर रोक लिया। तब स्वर्ग के निवासी ( देवता ) यह सोचकर कि इस प्रकार का कार्य करनेवाला पराक्रमी दूसरा कोई नहीं है, अदृश्य खड़े रहकर ही अपनी भुजाएँ ठोंकने लगे।

वह त्रिशूल ( जटायु के वक्ष से टकराकर ) इस प्रकार लौट आया, जिस प्रकार, धन पर लक्ष्य रखनेवाली वारनारियों की संगति की कामना करनेवाले निर्धन पुरुष ( उन वारनारियों के पास से ) लौट आते हैं, मधुर दृष्टि रखनेवाली गृहिणी-विहीन[1] गृहों से

---

[1] अतिथि उसी घर में आतिथ्य पाना चाहते हैं, जहाँ गृहिणी मीठी वाणी से उनका स्वागत-सत्कार करती है; अन्यथा अतिथि लौट जाते हैं।—अनु०

जानेवाले अतिथिजन ( आतिथ्य-सत्कार न पाकर ) लौट आते हैं और आत्मदर्शी योगियों के पास जानेवाली मनोहर कामिनियाँ ( विफल होकर ) लौट आती हैं।

शूल के व्यर्थ हो जाने पर रावण शीघ्र ही कोई दूसरा शस्त्र उठाकर प्रयुक्त करे, इसके पूर्व ही जटायु ने, रावण के, गगन को आवृत करनेवाले तथा ऊँचे अश्व-जुते रथ पर स्थित सारथि का शिर काट दिया और पतिव्रता-रत्न ( सीता ) पर आसक्त होनेवाले उस रावण के मुख पर, उसे दुःखी करते हुए, ( उस शिर को ) फेंक दिया।

इस प्रकार ( शिर को ) फेंकनेवाले के कार्य को देखकर रावण ने उस ( जटायु ) की हृदय की धीरता को समझ लिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी अभ्यस्त ( अर्थात्, जिसका प्रयोग करने का वह अच्छा अभ्यासी था ऐसी ) स्वर्णगदा को उठाकर ऐसा आघात किया कि अग्नि की ज्वालाएँ निकल पड़ीं। ( उस आघात से ) गृद्धराज धरती पर एक बड़ा पर्वत-जैसा आ गिरा।

ज्योंही जटायु धरती पर गिरा, त्योंही रावण उत्तम अश्वों से युक्त अपने रथ को इतने वेग से चलाता हुआ कि ( किसी की ) दृष्टि भी उसका पीछा न कर सके, गगन में उड़ गया। तब मृदु स्वभाववाली सीता देवी इस प्रकार तड़प उठीं, जैसे किसी के घाव में अग्निकण प्रविष्ट हो गया हो।

कोमल पल्लव-समान उस ( सीता ) देवी को शोक-विह्वल होती हुई देखकर जटायु कह उठा—हे हंसिनि ! शोक में मत डूबो। निर्भय रहो—और निःश्वास भरता हुआ वह उठा। फिर ( रावण से ) यह कहकर कि अरे ! अब तू बचकर कहाँ जायगा, उसके रथ पर झपटा, जिसे देखकर देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे।

इस प्रकार झपटकर उस ( रावण ) की विविध रत्न-जटित गदा को छीनकर दूर फेंक दिया। अपनी चोंच-रूपी खड्ग को चला-चलाकर ( रावण के ) रथ में जुते अतिवेगवान् सोलहों अश्वों को छिन्न-भिन्न करके विध्वस्त कर दिया। वह दृश्य देखकर यम भी ( भय से ) हाथ कँपाता हुआ खड़ा रहा।

जटायु ने रावण के दृढ रथ को ध्वस्त करने के पश्चात् उसके दृढ कंधों से बँधे उन तूणीरों को, जो गगनोन्नत थे और धनुष के टूट जाने से युद्ध के लिए अनुपयोगी होकर लोभी के धन-कोष-जैसे लगते थे, अपने तीक्ष्ण नखों से छीनकर फेंक दिया।

फिर, जटायु ने उसके वक्ष और कंधों पर विचित्र ढंग से आक्रमण करके अपने पंखों से उसे मारा और चोंच से काटा। तब रावण शक्तिहीन होकर मूर्च्छित हो गया और सिर झुकाये पड़ा रहा। उसे देखकर जटायु ने कहा—बस ! इतनी ही तेरी शक्ति है ?

उस समय, साकार शक्ति-जैसे बरछे को धारण करनेवाला वह ( रावण ) क्रुद्ध हुआ और प्रयोग के योग्य अन्य कोई शस्त्र न देखकर, जटायु के प्राणों का तत्क्षण अन्त कर देने के विचार से ( लक्ष्य से ) न चूकनेवाले अपने करवाल को उठाकर ठीक से चलाया।

वह दिव्य करवाल किसी के लिए अवारणीय था और किसीका भी सिर काट सकता था। जटायु की आयु भी क्षीण हो गई थी। अतः, कभी शक्तिहीन न होनेवाला जटायु, देवेंद्र के कुलिश-से आहत होकर पंख-हीन होकर गिरनेवाले पर्वत के समान गिर पड़ा।

जटायु धरती पर गिरा। उसके पंख बिखरकर गिरे। देवता भय से भाग चले। मुनिगण आश्रयहीन से होकर विलाप करने लगे। वैकुंठ के निवासी (जटायु पर) स्वर्ण-वर्षा करने लगे। सीता (भय से) थरथरा उठी।

जटायु के आघात से जो (रावण) मूर्च्छित होकर लज्जित हुआ था, उसने अब अपनी हर्ष-ध्वनि से गगन-प्रदेश को भर दिया। जाल में फँसी हरिणी-जैसी सीता चिन्तामग्न होती, निःश्वास भरती, मूर्च्छित होती, कोई आश्रय न पाकर अवलंब से हीन लता के समान गिर पड़ती।

सीता यह सोचकर अपने साथी से वियुक्त क्रौंची के समान रो पड़ी कि मेरी सहायता करने के लिए आया हुआ गृद्ध-राज भी मर मिटा। हाय! अब मेरी गति क्या होगी?

मूढ होकर मैंने अनुज के वचनों का तिरस्कार कर उसे शीघ्र (आश्रम से) भेज दिया था। अब मेरे लिए युद्ध करनेवाले जटायु के मर जाने से मैं स्तब्ध हो गई हूँ। न जाने अब विधि हमपर और क्या आपत्ति डालनेवाला है।

विपदा में पड़ी हुई मुझको देखकर जिस (जटायु) ने 'अभय' कहा था, ऐसा यह सद्गुण (जटायु) पराजित हो और नरक के योग्य (रावण) विजयी हो यह कैसी बात है? क्या पाप जीतेगा और वेद (अर्थात्, वेद-प्रतिपादित धर्म) हारेगा? क्या धर्म कहीं नहीं रहा? इस प्रकार वह विलाप करने लगी।

मुझ, निर्लज्ज नारी के वचन के कारण (आश्रम से) गये हुए हे नरश्रेष्ठो! अनश्वर धर्ममार्ग पर चलनेवालों के लिए अवलंब बना हुआ तथा आपके पिता का मित्र, जटायु यहाँ पड़ा है। इसे देखने के लिए आइए—यों कहकर व्याकुल हो रोने लगी।

पातिव्रत्य की रक्षा करना मेरा धर्म है। किन्तु अकुंठित शक्तिवाले तथा युद्ध में निपुण मेरे प्रभु (राम) का धनुष अब अपयश का भाजन हो गया। मुझ-जैसी पापिन के जन्म से मेरे कुल को अपयश उत्पन्न हुआ। इस प्रकार सोचती हुई सीता शोकमग्न हुई।

हे प्रकाशमय स्वर्ग-लोक में भी अपना शासन-चक्र चलानेवाले (दशरथ)! क्या अब आप सद्धर्म के मार्ग पर चलनेवाले, मित्रता के योग्य, पवित्र कर्त्तव्य को पूरा करनेवाले अपने भाई (जटायु) को उस (स्वर्ग) लोक में गले लगानेवाले हैं? यह कहकर वह सिसक-सिसककर रो पड़ी।

रावण ने, इस प्रकार विलपती हुई सीता की निस्सहाय दशा देखी और पंखों के कट जाने से धरती पर पड़े हुए गृद्धराज को भी देखा। फिर, यह सोचकर कि अब यहाँ से हट जाना ही उचित है, रथ पर रखे हुए भूखंड को सीता-सहित उठाकर अपने पुष्ट कंधों पर रख लिया और गगन-मार्ग से चल पड़ा।

गगन में उस क्रूर के गमन-वेग से वह पतिव्रता (सीता), जिनका मन और आँखें चकरा रही थीं, प्रज्ञाहीन होकर, अपने को भी भूलकर भूमि पर गिर पड़ी।

रावण चला गया। जटायु मूर्च्छा से किंचित् ज्ञान पाकर, विशाल गगन में मायावी (रावण) का शीघ्रता से प्रस्थान देखता हुआ सोचने लगा—

पुत्र ( अर्थात्, राम-लक्ष्मण ) नही आये। जिस विधि ने अपनी पुत्रवधू की कठोर वेदना को शान्त करने का यश मुझको नहीं दिया, उसने धर्म की बाड़ को ही तोड़ दिया। अब न जाने, आगे क्या होनेवाला है।

विजयशील ( राम-लक्ष्मण ) यदि यहाँ रहते, तो क्या बिजली-जैसी सूक्ष्म कटिवाली एवं स्वर्णकंकण-भूषित सीता की यह दशा होती ? मैं नही जानता हूँ कि उन ( राम और लक्ष्मण ) को क्या हुआ है। क्या विमाता ( कैकेयी ) की वंचना इस प्रकार समाप्त हो रही है ? (भाव यह है कि कैकेयी ने जो कार्य सोचा था, वह इस प्रकार पूरा हो रहा है)।

आदिशेष के पर्यंक पर शयन करनेवाले अंजन-वर्ण भगवान् नारायण ही राम होकर अवतीर्ण हुए हैं। अतः, क्रोधी तथा क्रूर राक्षस से वे ( युद्ध में ) परास्त नही हो सकते। अतएव, इस राक्षस ने माया करके इस प्रकार धोखा दिया है।

मेरा तात ( राम ), राक्षस-कुल को जड़ से मिटा देगा और अपने इस अपयश को दूर करेगा। रावण कमलभव सृष्टिकर्त्ता ( ब्रह्मा ) के शाप से आक्रान्त है, अतः आर्य ( राम ) की देवी का स्पर्श करने से डरेगा।

विशाल पंखोंवाला जटायु इस प्रकार अनेक बातों का विचार कर फिर सोचने लगा—अब सीता कठोर कारागार में बंदी के रूप में रहेगी। भले ही मेरे युद्ध करने योग्य पंख कट गये, किन्तु मीठी बोलीवाली सीता के पातिव्रत्य-रूपी पख नहीं कटेंगे।

जटायु के पंख, रक्त के प्रवाह में भींगकर शिथिल हो गये। उसके मन मे बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई ; क्योंकि लता-तुल्य कोमलांगी ( सीता ) को वह छुड़ा नही सका। साथ ही, ( उसके मन में ) कुमारों ( अर्थात्, राम और लक्ष्मण ) के प्रति प्रेम उमड़ उठा। जिससे वह प्रज्ञा-रहित होकर अत्यन्त व्याकुल हुआ।

रावण सीता देवी को शीघ्र लंका मे ले गया और उन ( सीता ) की देह का स्पर्श करने से भयभीत होकर वहाँ के अशोक-वन में, शिंशपावृक्ष के नीचे, विष के स्वभाववाली राक्षसियों के मध्य बंदी बनाकर रखा।

उस राक्षस का ( अर्थात्, रावण का ) वृत्तान्त हमने कहा। अब हम उस अनुज ( लक्ष्मण ) का वृत्तान्त कहेंगे, जो सीता की आज्ञा से, कि स्वर्ण-हिरण के पीछे गये हुए प्रभु की दशा को जाकर देखो, गया था।

उसका मन इस व्यथा से अत्यधिक धड़क रहा था कि अनुपम सीता आश्रम मे एकाकी रहती हैं। उस समय लक्ष्मण की दशा भरत की उस दशा-सी थी, जब वह (भरत) अयोध्या की रक्षा करना छोड़कर, रामचन्द्र को अयोध्या लौटा लाने के लिए अरण्य में गया था।

स्वच्छ तरंगो से भरे समुद्र मे चलनेवाली नौका के समान, लक्ष्मण अतिशीघ्र गया। महान् रक्त-कमल से युक्त विशाल कालमेघ-जैसे प्रभु को उसने देखा और उसके मन के जैसे ही उसकी आँखें भी आनंदित हो उठी।

कालवर्ण प्रभु ने भी, जिनका हृदय इस विचार से व्याकुल हो रहा था कि

भयोत्पादक मारीच-ध्वनि के श्रवण से कलापी-तुल्य सीता देवी स्त्री-सुलभ अज्ञान के कारण कातर हो रही होगी, अपने अनुज को सम्मुख आते हुए देखा।

तब रामचन्द्र ने सोचा—शिथिल मन और तन के साथ यह लक्ष्मण, उसके ( अर्थात् , राम-लक्ष्मण के ) वचन की उपेक्षा करके (माया-मृग के पीछे आकर) थक जानेवाले मेरे निकट, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके अकेले आ गया है। कदाचित् मायावी राक्षस की दुःखजनक पुकार को सुनकर और उसे धोखा न समझकर सीता ने इसे कठोर आज्ञा दी है, इसीसे मेरी दशा को जानने लिए यह आया है।

विधि-विधान को टालने का क्या उपाय हो सकता है ?—यो सोचत हुए वे खडे थे कि अनुज ( लक्ष्मण ), सुन्दर धनुष को हाथ में रखे हुए उनके निकट आ पहुँचा और उनके सुन्दर चरणों पर नत हुआ। तब ज्येष्ठ ने उसे झट उठाकर विद्युत्-जैसे यज्ञोपवीत से शोभायमान अपने वक्ष से लगा लिया। फिर, द्रवितमन हो उससे पूछा—हे भाई ! तुम क्या सोचकर यहाँ आये ? तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

अलौकिक और अनुचित एक ध्वनि सुनाई पडी, जिससे भीत होकर उन्होंने ( सीता ने ) मुझे आज्ञा दी ( कि मै आपके निकट आऊँ )। तब मैंने उन्हें समझाया कि यह क्रूर राक्षस की पुकार है। किन्तु, उस ( मेरे ) वचन की उपेक्षा करके अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने फिर कहा—यह क्या है, जानकर आओ। यहाँ मत खडे रहो। दुबारा मेरे समझाने पर भी कुछ न मानकर, आपकी भुजा के पराक्रम को भी विस्मृत करके, वे अधिक कातर हो उठी।

फिर, यह कहकर यदि तुम न जाकर यही खड़े रहोगे, तो मै अग्नि में जा गिरूँगी—अरण्य मे दौड़ने लगीं। तब मैं भयभीत हुआ। सोचा कि ये ( सीता ) मुझे वचक समझ रही हैं। यदि मै यही खड़ा रहूँगा, तो ये आत्महत्या किये विना नही रहेगी। इन्हे नही मरना चाहिए; यह धर्म-विरुद्ध होगा। इसलिए, मेरा यहाँ आना हुआ—इस प्रकार लक्ष्मण के कहने पर अमल प्रभु ने विचार किया—

वह ( सीता ) आत्महत्या किये विना नही रहेगी। उसकी मृत्यु को रोकना इसके लिए ( लक्ष्मण के लिए ) असंभव था और भयभीत हुई सीता इसके वचन भी नही मान सकी। अहो ! रक्षा-हीन आश्रम में कोई विपदा हो सकती है। उसको रोकना असभव है। यह सब, हमें अलग करके, उस (सीता) को हरण कर ले जाने का उपाय करनेवाले मायावी राक्षसो का कार्य है।

फिर ( राम ने ) लक्ष्मण से कहा—यहाँ आने में तुम्हारा दोष कुछ नही। उस मुग्धा ने भ्रांत और व्यथा से कातर होकर जो किया, उसीका यह परिणाम है। तुमने पहले ही समझकर कहा था वह मृग—मायामृग है। किन्तु, उसकी उपेक्षा कर मैंने जो कार्य करने का निश्चय किया, हाय ! उसीसे यह बुरा ( परिणाम ) हुआ।—यो कहकर चिंता में निमग्न हो रहे।

फिर, राम ने कहा—समय व्यतीत हो रहा है। अब यहाँ खडे रहने से कुछ प्रयोजन नही। क्रौंची-जैसी उस ( सीता ) को जबतक मै नही देखूँगा, तबतक मेरी व्यथा

नहीं मिटेगी, नहीं मिटेगी। और, त्वरित गति से दीर्घ मार्ग को पार करके, धनुष से निकले शर के समान चले और स्वर्ण-सदृश सीता के आवासभूत मनोहर पर्णशाला मे जा पहुँचे।

इस प्रकार, राम आश्रम से दौड़े आये। किन्तु, वहाँ फुलवारी के सघन पुष्पों से आभूषित कुंतलोंवाली ( सीता ) को न देखकर इस प्रकार स्तब्ध खड़े रहे, जिस प्रकार प्राण शरीर को छोड़कर बाहर जाकर फिर वापस लौट आये हों और अपने शरीर को न देखकर स्तब्ध खड़े हो।

सुन्दर कर्णाभरण से भूषित सीता को न देखकर रामचन्द्र का मन विरक्त-सा हुआ। वे इस प्रकार हो गये, जिस प्रकार कोई धनी व्यक्ति, जिसकी भूमि मे गाड़ी हुई सब संपत्ति को धूर्त्त व्यक्तियो ने हर लिया हो और जो जीवन के आश्रयभूत किंचित् धन से भी वञ्चित हो गया हो और भ्रांत होकर खड़ा हो।

उस समय धरती चकराने लगी। बड़े-बड़े पर्वत चकराने लगे। दिव्य ज्ञान से युक्त सत्पुरुषों के हृदय चकराने लगे। वीची-भरे सप्त समुद्र चकराने लगे। आकाश चकराने लगा। ब्रह्मा के नयन चकराने लगे। सूर्य और चन्द्र चकराने लगे।

समस्त लोक यह आशंका करते हुए थरथराने लगे कि यह महिमावान् ( राम ) धर्म पर क्रुद्ध होनेवाला है? या कृपा ( नामक गुण ) पर क्रुद्ध होनेवाला है? देवताओं के पराक्रम पर क्रुद्ध होनेवाला है? मुनियो पर क्रुद्ध होनेवाला है? क्रूर राक्षसो के अत्याचार पर क्रुद्ध होनेवाला है? वेदो पर क्रुद्ध होनेवाला है? न जाने, राम के क्रोध का परिणाम क्या होगा?

उस श्याम-रूप ( राम ) की मनोदशा के परिवर्त्तित हो जाने से, अपरिमेय ( चर-अचर रूप ) वस्तुजाल, ऊपर के रहनेवाले नीचे और नीचे के रहनेवाले ऊपर होकर सब उसी प्रकार अस्त-व्यस्त हो गये, जिस प्रकार प्रलय-काल में, सृष्टि के कारणभूत परमात्म-तत्त्व में विलीन होने के लिए वे ( सृष्टि के पदार्थ ) अस्त-व्यस्त होकर मिट जाते हैं।

तब अनुज ( लक्ष्मण ) ने रामचन्द्र को नमस्कार करके कहा—रथ के पहियों के चिह्नों को हम यहाँ देख रहे हैं। कोई राक्षस देवी का स्पर्श करने से डरकर यहाँ के भूखंड-सहित ही उन्हें उठाकर ले गया है। अब निःशक्त-से खड़े रहकर व्यर्थ ही कुछ सोचते रहने से कुछ लाभ नहीं होगा। ( उस राक्षस के ) दूर जाने के पूर्व ही हम उसका पीछा करेंगे।

अमल रूप (राम) ने भी इससे सहमत होकर कहा—हाँ, यही उचित है। फिर, वे दोनों वीर अपने उज्ज्वल तूणीर आदि को लेकर उस मार्ग से होकर चल पड़े, जहाँ से रावण का बड़ा रथ सुन्दर तथा बड़े पर्वतो को चूर-चूर करता हुआ गया था।

उस मार्ग में, उस राक्षस के रथ का चिह्न कुछ दूर तक जाकर फिर अदृश्य हो गया था और ऐसा लगा, जैसे वह रथ नभ में उठ गया हो। तब रामचन्द्र ने ऐसी व्यथा के साथ, जैसे जले हुए घाव में बरछा चुभ गया हो, कहा—ऐ भाई! अब हम क्या उपाय करें?

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—मल्लयुद्ध के लिए सन्नद्ध, पुष्ट कंधोंवाले हे महिमामय! यह बात स्पष्ट विदित हो रही है कि वह रथ दक्षिण दिशा की ओर गया है। आपके धनुष

से निकलनेवाले शर के लिए गगन-मडल भी कुछ बड़ा नही है। आपका इस प्रकार दुःख से अधीर होना उचित नही है।

तब राम ने कहा—हाँ, तुम्हारा कथन ठीक ही है। फिर, वे दोनों दक्षिण दिशा की ओर गये। दो योजन दूर जाने पर वहाँ उन्होंने ढहे हुए ऊँचे पर्वत के समान धरती पर गिरी हुई और वीणा के चित्र से युक्त पटवाली एक ध्वजा देखी।

उस ध्वजा को देखकर उन्होंने विचार किया—कदाचित् सीता के निमित्त से देवों ने उन राक्षसों से युद्ध किया होगा। फिर, रामचन्द्र ने यह सोचकर कि (जटायु की) चोंच-रूपी शस्त्र से ही यह उज्ज्वल ध्वजा टूटकर गिरी है। अपने कमल-जैसे नयनों में अश्रु भरकर कहा—

भाई! मेरा विचार है कि हमारे पितृतुल्य (जटायु) शीघ्रता से यहाँ आये होंगे और उनकी चोंच से ही यह (ध्वजा) टूटी होगी। (जटायु) ने बड़े वेग से इसपर आक्रमण किया होगा। हमें विदित नही हुआ है कि उन्हें (अर्थात्, जटायु को) इस बीच में क्या हुआ। वे अकेले हैं और जरा से जीर्णदेह भी हैं।

तब लक्ष्मण ने कहा—बहुत ठीक है। यह निश्चित है कि अवार्य पराक्रम से युक्त वे (जटायु) आज दिन-भर उस राक्षस को रोके खड़े रहेंगे। हम भी शीघ्र उनके पास पहुँच जायँ। कदाचित् वे (जटायु) स्वयं ही (सीता) देवी को मुक्त कर लायेंगे। अब अन्य कुछ सोचते हुए विलंब करने से कुछ प्रयोजन नही है।

राम भी वैसे ही आगे बढ़ने को सहमत हुए। फिर, वे दोनों धरती पर चक्कर काटकर बहनेवाली हवा (अर्थात्, बवंडर) के जैसे, और चरखी के जैसे अतिवेग से बढ चले। इधर-उधर दृष्टि डालते हुए जानेवाले उन वीरों ने एक स्थान पर, गगन से टूटकर गिरे हुए इन्द्र-धनुष के समान और समुद्र से उठी हुई वीची के समान पडे हुए एक टूटे हुए विशाल धनुष को देखा।

तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण! यह धनुष देवताओं के द्वारा क्षीर-सागर को मथने में मथानी बनाये गये मन्दर-पर्वत की समता करता है। चन्द्र की-सी देहकांति-वाले जटायु ने अपनी चोंच से काटकर इसे तोड़ दिया है, उस (जटायु) की शक्ति भी कैसी है!

फिर, कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक स्थान में एक त्रिशूल को और अनेक बाणों से पूर्ण दो तूणीरो को पर्वत-जैसे पडे हुए देखा और उनके निकट गये।

फिर, आगे बढ़कर उन्होंने राक्षसराज के वक्ष पर से (जटायु के द्वारा) खींचकर नीचे गिराये गये उस कवच को देखा, जो ऐसा लगता था, मानो नभ में सचरण करनेवाले सब ज्योतिर्पिड एकत्र होकर उस रूप में वहाँ आये हो और जो अरण्य-पथ को (अपनी विशालता और कांति से) आवृत करके पड़ा हुआ हो।

फिर, वे आगे बढ़कर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ पवन-के-से वेगवाले घोडे, अरण्य-प्रदेश को ढककर बिखरे पडे थे और सारथि भी मरा हुआ पड़ा था। वहाँ रक्त से युक्त मांस-खड भी बिखरे थे। फिर, वे उस स्थान पर आ पहुँचे, जहाँ जटायु ऐसे गिरा हुआ था, जैसे गगन ही धरती पर आ गिरा हो।

प्रलय-काल मे जिस प्रकार उज्ज्वल कांति बिखेरनेवाले अनेक सूर्यमंडल मनोहर नभोमंडल को छोड़कर धरती पर आ पड़े हो, उसी प्रकार अनेक रत्नमय कुंडल एवं उत्तम रत्न-जटित अनेक आभरण वहाँ बिखरे पड़े थे। उन्हें देखकर वे विस्मित हुए।

राम ने लक्ष्मण से कहा—हे भाई ! यहाँ अनेक अंगद गिरे हैं। उज्ज्वल कुंडल भी अनेक गिरे हैं। रत्नमय किरीट अनेक गिरे है। अतः, निस्सहाय वृद्ध जटायु के साथ युद्ध करनेवाले सिंह-सदृश वीर अनेक रहे होंगे।

लक्ष्मी के पति ने जब इस प्रकार कहा, तो सुमित्रा के सिंह (सदृश पुत्र) ने कहा—वृक्ष-समान दीर्घ भुजाएँ अनेक हैं, शिर अनेक हैं, हमारे तात ( जटायु ) से युद्ध करनेवाला और इतनी दूर तक ले आनेवाला एक ही था। वह रावण ही रहा होगा।

पुष्पहारो से भूषित अनुज की बात से सहमत होकर रामचन्द्र अपने दृढ मन तथा नयनों से क्रोधाग्नि उगलते हुए इधर-उधर देखते हुए बढ़ चले और वहाँ एक स्थान पर अपने शरीर से प्रवाहित रक्त-धारा मे, समुद्र मे रखे पर्वत ( मंदर ) जैसे पड़े हुए तात ( जटायु ) को देखा।

उत्तम तथा अमल ( रामचन्द्र ), पुष्ट अरुण कमल-जैसे अपने नयनो से अश्रु बहाते हुए, अपने प्राणों के सदृश उपमाहीन, उदार, गुणवान् जटायु पर आकर इस प्रकार गिरे, मानों अग्निवर्ण शिवजी के रजताचल पर कोई अंजन-पर्वत आ गिरा हो।

रामचन्द्र एक मुहूर्त्तकाल तक श्वास-हीन पड़े रहे। लक्ष्मण ने यह आशका करके कि राम मूर्च्छित हो गये हैं, उनके समीप जाकर उनको अपने अरुण करों से उठाकर आलिंगित कर लिया और निर्झर से जल लेकर उनके मुख पर छिड़का। तब राम ने अपने कमल-समान नयन खोलकर धीरे-धीरे प्रज्ञा पाई और यो कहने लगे—

कौन पुत्र ऐसे हुए हैं, जिन्होने अपने पिता की हत्या की हो। मेरे पिता मेरे विरह से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। हे मेरे पितृतुल्य (जटायु) ! मेरी सहायता करने आकर तुम भी प्राणहीन हो गये ! हाय ! मै पापी, इन (दोनों) की मृत्यु (का कारण) बन गया।

हे मेरी माता-समान ( जटायु ) ! यह न सोचकर कि मैं अकेला हूँ, और यह भी विचार न करके कि आगे का परिणाम क्या होगा, मोह-ग्रस्त होकर ( मायामृग के पीछे ) गया। मेरी पत्नी की विपदा से रक्षा करने के लिए आकर तुमने अपना कर्त्तव्य निबाहा। किन्तु मै, जो अपने कर्त्तव्यो को पूर्ण नही कर सका हूँ, किस प्रयोजन से व्याकुल होऊँ ? ( अर्थात् , अब मेरा रोना व्यर्थ है। )

मुझे मर जाना चाहिए। किन्तु, वेदज्ञ मुनियों की इच्छाओ को पूर्ण करने का व्रत मैंने लिया है। अतः, अभी तक प्राण रख रहा हूँ। वृक्ष के जैसे बढ़ा हूँ, किन्तु किंचित् भी प्रयोजन से रहित नीच कार्य करनेवाला हूँ। वञ्चना के विषयभूत इस क्षुद्र जन्म को मैं नही चाहता।

मेरी पत्नी के बन्दी हो जाने पर, उसे मुक्त करने के लिए लड़कर महिमामय तुम, यो आहत होकर पडे हो। तुमको मारनेवाला वह शत्रु अभी जीवित है। दृढ धनुष को और शरों को ढोता हुआ मैं लंबे पेड़ के जैसे खड़ा हूँ, खड़ा हूँ। अहो !

अब मेरे समान यशस्वी ( इस संसार में ) और कौन है ? हे दृढ पखोंवाले ! असख्य दाँतोवाले ! पुरातन पाप से युक्त मेरी पत्नी के देखते हुए, शस्त्रधारी शत्रु ने तुमको मार दिया और चला गया । मै धनुष हाथ मे रखकर व्यर्थ ही जीवित हूँ । अहो, मेरी वीरता भी कैसी है !

अपना उपमान न रखनेवाले रामचन्द्र इस प्रकार के अनेक वचन कहकर अश्रु बहाते रहे और मूर्च्छित हो गये । अनुज ( लक्ष्मण ) की भी वैसी ही दशा हो गई । तब गृध्र-राज कुछ-कुछ प्रज्ञा पाकर बड़ी कठिनाई से साँस लेने लगा और आँखें खोलकर उन दोनों को देखा ।

( सीता की क्या दशा हुई ) यह वृत्तात कुछ न जाननेवाले. व्याकुल प्राणो के साथ उष्ण श्वास भरनेवाले जटायु ने उन विजयी वीरो को देखा । उससे उसका मन ऐसा आनदित हुआ, जैसे उसके कटे हुए पख, प्रिय प्राण और सप्त लोक भी उसे प्राप्त हो गये हो। उसने ऐसा सोचा कि मैने शत्रु को ही जीतकर उससे प्रतिशोध लिया है ।

फिर जटायु ने कहा—हे पुण्यात्माओ ! मै अब अपने इस निष्प्रयोजन तथा अपयश के भाजन शरीर को त्याग रहा हूँ । सौभाग्य से ही इस समय तुम दोनो को देख सका हूँ । मेरे निकट आओ । फिर, रावण के किरीटधारी शिरो पर चोट मार-मारकर छिन्न हुई अपनी चोंच से उनके शिरो को बारी-बारी से कई बार सूँघा ।

मेरे मन ने पहले ही कहा था कि उस ( रावण ) का यहाँ आगमन माया से हुआ है । ( अर्थात् , वह माया से तुमको धोखा देकर ही वहाँ आया ) । फिर भी, अक्षुण्ण पराक्रम से युक्त तुम दोनों, मधुर बोलीवाली उस अरुंधती को (अर्थात् , अरुंधती-तुल्य पतिव्रता सीता को) अकेली ही छोड़कर कैसे चले गये ?

उसके यह कहते ही कनिष्ठ ( लक्ष्मण ) ने मायामृग के आने से लेकर सारी घटनाओं को कह सुनाया ।

रामचन्द्र की आज्ञा से वीर लक्ष्मण ने जब सब कह सुनाया, तब गृध्रराज ने सब सुनकर और यह विचार करके कि राम-लक्ष्मण को उनके दुःख मे कुछ सात्वना देना आवश्यक है, इस प्रकार के वचन कहे—

इस निंदनीय जीवन के सुख-दुःख विधि के वशीभूत हैं । कोई उनमे कुछ परिवर्त्तन नही कर सकता । इस तत्त्व को हमें मानना पड़ेगा । यदि इसे नही मानेंगे, तो क्या अपनी बुद्धि के बल से विधि के विधान को मिटा सकेंगे ?

जब विधिवश विपदा उत्पन्न होती है, तब मन की धीरता का त्याग कर व्याकुल होना अज्ञता है । जिस नियति ने सारी सृष्टि के कर्त्ता के सिर को काटा था; उसके लिए असाध्य कार्य कुछ नहीं है ।

जब सुख या दुःख उत्पन्न हो, तब यह कहना कि इसको हम रोक सकते हैं, असत्य वचन होगा ( अर्थात् , कर्मफल से प्राप्त सुख को कोई रोक नहीं सकता ) । त्रिपुरी को जलाने के लिए जिस ( शिव ) ने शर का प्रयोग किया था, उसने कपाल मे भिक्षा माँगकर खाते हुए तपस्या की थी । क्या यह उसके लिए योग्य था ?

फुफकार भरनेवाले घोर सर्प ( राहु और केतु ) गगन मे उष्ण किरणो को प्रसारित करनेवाले ( सूर्य ) को निगलकर फिर उगल देते हैं। विशाल धरती के अंधकार को दूर करके उसे प्रकाशित करनेवाला चंद्रमा घटता-बढ़ता रहता है।

हे सुन्दर कंधोवाले! विपदाओं का आना और जाना प्रारब्ध कर्म का परिणाम है। ज्ञानवान् देवगुरु ( बृहस्पति ) के शाप-वचन से देवेंद्र[1] को जो विपदाएँ उठानी पड़ी, क्या उन्हें कोई गिन सकता है?

हे धनुर्विद्या में चतुर वीर! जब अवार्य पराक्रमशाली शंबर नामक असुर के अत्याचारों से वज्रधारी इंद्र पराजित हुआ था, तब तुम्हारे पिता ने अपने पुष्ट कंधों के प्रभाव से उस असुर को मारा था।

( गीध, चील आदि ) पक्षियो और ज्ञान-रहित भूतो के लिए मातृ-तुल्य, मांसगंध से युक्त माला धारण करनेवाला ( अर्थात्, राक्षसो को युद्ध मे मारकर उनके मांस का भोजन भूतों तथा पक्षियो को देनेवाला ) उपेक्षित धर्म एवं देवताओ की विपदा ने तुम्हे मधुर बोलीवाली सीता से विलग किया है, अतः माया-युद्ध करनेवाले राक्षस नामक काँटेदार झाड़ियो को उखाड़कर तुम जियो।

आम के टिकोरे के जैसे सुन्दर नयनोवाली तथा दीर्घ केशपाशवाली (सीता) को रावण भूखंड-सहित उठाकर ले जा रहा था। तब मैंने अपनी शक्ति-भर उसे रोका, किंतु उसने तपस्या के प्रभाव से प्राप्त करवाल से मुझे आहत कर दिया, जिससे मै यों गिरा हूँ। आज ही यह घटना घटी है।—इस प्रकार जटायु ने कहा।

जटायु के कहे ये वचन कानों में प्रवेश करे, इसके पूर्व ही रामचन्द्र के अरुण नयन अग्नि उगलने लगे। उनके निःश्वास से चिनगारियाँ बिखरी। भौंहें ऊपर जा चढ़ी। ( उनके ऐसे क्रोध से ) ज्योतिष्पिंड ( सूर्य, चन्द्र आदि ) भयभीत होकर भाग गये। ब्रह्मांड में अनेक स्थानों पर दरारें पड़ गईं। पर्वत ढह गये।

धरती घूम उठी। ऊँचे पर्वत घूम उठे। विशाल समुद्र जल, पवन और सूर्य-चन्द्र घूम उठे। ऊपर के लोक मे स्थित ब्रह्मा घूम उठा। तब यह सत्य स्पष्ट हुआ कि वह वीर ( राम ) ही सब प्रकार के पदार्थ हैं ( अर्थात्, सृष्टि के सब पदार्थ उस राम के ही अनेक रूप हैं )।

यह सोचते हुए कि रामचन्द्र अपना क्रोध न जाने, किस पर उतारेंगे, सकल लोक भय से काँप उठे। उस समय लाल अग्नि ज्वालाएँ चिनगारियो तथा धुएँ के साथ सर्वत्र

---

१. पुराणों में यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार देवेंद्र ने अपनी संपत्ति से गर्विष्ठ होकर अपने गुरु बृहस्पति का निरादर किया, जिसपर क्रुद्ध होकर बृहस्पति कहीं अदृश्य हो गये। गुरु के न रहने से इन्द्र त्वष्टा के पुत्र विश्व-रूप को गुरु बनाकर स्वर्ग का शासन करने लगा। विश्व-रूप ने असुरो के प्रति प्रेम दिखाकर उन्हें यज्ञों में हविर्भाग दिया, तो उसपर क्रुद्ध होकर इंद्र ने उन्हे मार डाला। तब त्वष्टा ने यज्ञ से वृत्र को उत्पन्न करके इंद्र के विरुद्ध भेजा। उसके साथ युद्ध में इंद्र ने अनेक कष्ट उठाये। पश्चात् दधीचि महर्षि की अस्थि का शस्त्र बनाकर उसे मारा। किन्तु, ब्रह्महत्या के कारण इंद्र को अनेक वर्ष तक राज्यभ्रष्ट होकर कष्ट भोगने पड़े। इस पद्य में उसी कथा की ओर संकेत है। —अनु०

उठने लगी। एक ज्वलन्त अट्टहास भयंकर शब्द कर उठा ( अर्थात्, रामचन्द्र वीरता के आवेश मे ठठाकर हँस पडे )। फिर वे कहने लगे—

एक अज्ञ राक्षस एक निस्सहाय स्त्री को उठाकर ले गया और तुम्हारी ऐसी दशा हुई। तो भी अष्ट दिशाओ में स्थित ये सब लोक विचलित हुए विना अबतक स्थिर खड़े हैं। देवता लोग अत्याचार को देखते हुए चुपचाप खड़े रहे। देखो, अभी मै इन सबको विध्वस्त कर डालता हूँ।

अभी तुम देखोगे कि सब नक्षत्र टूटकर गिरते हैं। अनुपम किरणवाला सूर्य चूर-चूर हो जाता है। विशाल आकाश मे सर्वत्र आग लग जाती है। जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश और पवन एव सब चराचर वस्तुजाल समूल विनष्ट हो जाते हैं और देवता लोग मिट जाते हैं—( यह सब तुम अभी देखोगे )।

तुम यह भी देखोगे कि किस प्रकार स्थित रहनेवाले तथा महान् लगनेवाले ये चतुर्दश लोक एक क्षण मे मिट जाते हैं। अष्ट दिशाओ की सीमा में स्थित तथा ब्रह्मांड के वाहर स्थित पदार्थ ही एक क्षण में जलकर भस्म हो जाते हैं—यह सारा दृश्य तुम अब देखनेवाले हो। इस प्रकार राम ने क्रोध के साथ कहा।

उष्ण किरणवाला सूर्य ( राम के क्रोध से ) बचने का प्रयत्न करता हुआ मेरु पर्वत के शिखरो में जा छिपा। अष्ट दिशाओ में स्थित महान् गज भय से भाग गये। अब क्या यह कहना आवश्यक है कि ससार के सब प्राणी भय से विह्वल हो गये? अत्यन्त धीर चित्तवाला लक्ष्मण भी ( राम का क्रोध देखकर ) भय से कॉपने लगा, तो अन्य लोगों के भय की क्या कोई सीमा हो सकती थी?

जब इस प्रकार घट रहा था, तब गृध्रराज ( जटायु ) ने कहा—हे उत्तम गुणवाले! तुम जीवित रहो, किंचित् भी क्रोध मत करो। कठोर प्रतापयुक्त हे वीर, देव और मुनि यह विचार कर कि तुम्हारे कारण ( राक्षसो पर ) उनकी विजय होगी, आनदित हैं। वे अन्य किस बल से रावण को पराजित कर सकते हैं?

कमलभव ब्रह्मा से प्राप्त वर के प्रभाव से रावण ने मुझपर जो वीरता दिखाई, इसे प्रत्यक्ष तुम देख रहे हो। अब इसके बारे मे ( अर्थात्, रावण के पराक्रम के सम्बन्ध में ) और क्या कहना है? कमल मे उत्पन्न ब्रह्मा से लेकर सब देवता उस दशमुख की सेवकाई करते हैं, न कि धर्म की रक्षा। उसकी रक्षा करनेवाला कौन है?

समुद्र से घिरी धरती पर रहनेवाले सब लोग स्त्रियो के समान उस शत्रु ( रावण ) की सेवकाई करते रहते हैं। देवताओ की यह दशा है। यदि क्षीरसागर के मथन के समय उन देवताओ ने अमृत नही पिया होता, तो उनके प्राण कभी के मिट गये होते।

दृढ शरासन को अपने सुन्दर करो मे धारण करनेवाले हे वीरो! कचुक मे बँधे स्तनोवाली लता-तुल्य उस देवी को एकाकी छोड़कर सींगवाले हरिण के पीछे जाकर तुम इस प्रकार के अपयश के भाजन हो गये। विचार कर देखने पर विदित होगा कि यह अपराध तुम्हारा ही है। ससार के लोगो का नही।

अतः, तुम क्रोध मत करो। अरुंधती-समान उस पतिव्रता की विपदा को दूर करो।

देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करो। अपने सब कर्त्तव्यों को वेदोक्त विधान से संपन्न करो और संसार के पापों को दूर करो। इस प्रकार, भगवान् के चरण-कमलों को प्राप्त होनेवाले जटायु ने कहा।

मेघ-जैसे श्यामल ( राम ) ने उस पुण्यवान् ( जटायु ) की बात को दशरथ की ही आज्ञा मानकर स्वीकार किया और यह विचार कर कि दूसरों पर क्रोध करने से अब क्या प्रयोजन है, राक्षसों के कुल का नाश करना ही प्रस्तुत कर्त्तव्य है, अपने मन के क्रोध को शान्त कर लिया।

फिर, उस अमल ( राम ) ने जटायु से कहा—तुमने मुझे शान्त रहने की जो आज्ञा दी है, उसके अतिरिक्त मेरे लिए अन्य कोई कर्त्तव्य नहीं है। अब बताओ कि वह राक्षस ( रावण ) किस दिशा में गया? किन्तु, इतने में वह गृध्रराज शिथिल हो गया। उसकी प्रज्ञा मिट गई। कुछ उत्तर नहीं दे पाया और धीरे-धीरे उसके प्राण निकल गये।

वह जटायु ( अपनी अंतिम घड़ी में ) उस भगवान् ( राम ) के चरणों के दर्शन कर सका, जो भगवान् शीतल कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के लिए क्या, स्वयं वेदों के लिए भी अज्ञेय हैं। अतः, वह उस ( वैकुंठ ) लोक में जा पहुँचा, जो पञ्चभूतों को भी मिटा देनेवाले महाप्रलय में भी नहीं मिटता।

जब जटायु मुक्ति पा गया, तब राम और उनके अनुज शोक-मग्न हुए। वन के वृक्ष, मृग, पक्षी और पत्थर भी पिघल उठे। ब्रह्मा आदि देवता, नाग तथा भूलोकवासी अपने शिर पर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए खड़े रहे।

उस समय, राम ने अपने अनुज से कहा—भाई धर्महीन राक्षस से मेरा पौरुष परास्त हुआ। क्या अब संन्यास लेकर तपस्या करूँ? या प्राण छोड़ दूँ? बताओ। मुझे पुत्र के रूप में पाकर पिता मर गये। ऐसा जन्म पाकर मैं अबतक मरा नहीं। मैं क्या करूँ?

राम के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम करके उत्तर दिया—हे विजयशील! विधि के परिणाम से ऐसी विपदाएँ होती हैं। अब उनको सोचकर दुःखी होने से क्या प्रयोजन है? उन क्रूर राक्षसों का समूल विनाश करना पहला कर्त्तव्य है। उसके पश्चात् ( जटायु की मृत्यु आदि विपदाओं का स्मरण कर ) दुःख कर सकते हैं (अर्थात्, यह दुःख करने का समय नहीं, वरन् शत्रु-नाश करने का है )।

हे मेरे प्रभु! विरक्त होकर आप सुन्दर कुंतलोंवाली देवी को खोकर भी शांति के साथ रह सकते हैं, तो रहें। किन्तु, हमारे पितृ-तुल्य ( जटायु ) को मारनेवाले राक्षस को मारे बिना आप किस प्रकार तपस्या-निरत रह सकते हैं?

अनुज के वचनों से किंचित् स्वस्थ होकर सर्वज्ञ राम ने यह सोचकर कि इस प्रकार दुःख-मग्न होना अज्ञता है; अपनी व्याकुलता तथा अश्रुओं को भी दूर करके कहा—हे भाई! मरे हुए पितृ-तुल्य जटायु की अंतिम क्रिया यथाविधि संपन्न करें।

उन्होंने काले अगरु-काष्ठों के साथ चंदन-काष्ठों को सजाकर उनपर दर्भों को बिछाया। फिर पुष्प बिखेरे। मिट्टी की वेदी बनाकर उसपर स्वच्छ जल को रखा। फिर, राम जटायु की देह को अपने विशाल हाथों से उठाकर लाये।

समृद्ध शास्त्रों के तत्त्वों और मंत्रों को जाननेवाले राम ने (जटायु की देह पर) जल, चंदन और पुष्प डाले। अपने दोनों हाथों से उसे चिता पर रखा। फिर, चिता के सिरहाने में अग्नि प्रज्वलित की एवं अन्य सब संस्कार पूर्ण किये।

राक्षसों के प्रति क्रोध करने से राम का दुःख किंचित् शान्त हुआ। उनके पुष्ट तथा शुक के-से रंगवाले श्यामल शरीर पर उनके नेत्रों से इस प्रकार अश्रु झड़ पड़े, जिस प्रकार प्रफुल्ल कमल से मधु-बिन्दु गिरते हैं। यों मेघ-समान उन (राम) ने नदी में स्नान किया और अंजलि में स्वच्छ जल लेकर जटायु को तिलांजलि अर्पित की।

राम के द्वारा अर्पित उस जलांजलि से ब्रह्मा से लेकर उच्च तथा नीच सब प्राणि-जात, अत्यंत तृप्त हुए। गृध्रराज को उद्दिष्ट करके प्रभु ने अपनी अंजलि से जो स्वच्छ जल अर्पित किया, वह स्वयं भगवान् के लिए भी पीने योग्य बन गया। अब उस जल-तर्पण के बारे में और क्या कहा जाय?

विजयशील चक्रवर्ती कुमार (राम) ने सब संस्कार वेदोक्त प्रकार से संपन्न किये। उस समय सूर्य पश्चिमी समुद्र में जा पहुँचा, मानो वह अपने कुल से सम्बन्ध रखनेवाले जटायु की मृत्यु से उत्पन्न शोक से जल में स्नान करने और सद्गति देनेवाले संस्कार करने को जा रहा हो। (१–१५०)

●

## अध्याय १०

### *अयोमुखी पटल*

जब संध्या हो रही थी तब वे (राम-लक्ष्मण) उस स्थान से चलकर उस वन में स्थित एक पर्वत पर जाकर ठहरे, जिस पर्वत के शिखर पर हाथी और मेघ विश्राम करते थे। इतने में अत्यन्त दुःख का कारणभूत अंधकार इस प्रकार फैला, जैसे इंद्र के वश में न होनेवाले राक्षस सर्वत्र फैल गये हों।

उस रात्रिकाल में, जब वन्य वृक्षों तथा पर्वतों से मधु और जल की धाराएँ इस प्रकार बह रही थीं, मानो (राम-लक्ष्मण के दुःख से) शोकाकुल होकर वे आँसू बहा रहे हों, राम और लक्ष्मण के मन में अभिमान, क्रोध, दुःख तथा ज्ञान—ये सब परस्पर संघर्ष करने लगे।

उस रात्रिकाल में, जो तत्त्वज्ञान से रहित बुद्धि को पापमार्ग में चलानेवाले असत्य जन्म के जैसे ही उत्तरोत्तर बढ़ रहा था, उन (राम और लक्ष्मण) का निःश्वास घी के पड़ने पर भड़की हुई आग के समान बढ़ रहा था। तब उनके शोक का कहीं कुछ अन्त नहीं था।

मधुयुक्त पुष्पमाला से भूषित राम के नयन-रूपी अरुण-कमल रात्रि के समय में भी मुकुलित नहीं हुए। वह क्या मनोहर मंदहास से शोभित सीता नामक लक्ष्मी के वियोग

के कारण था ? या उस ( सीता ) के मुख-रूपी चन्द्र के दर्शन न करने के कारण था ? हम उसका कारण नही कह सकते।

स्त्री-रूप दीप के समान स्थित, अति रूपवती सीता के वियोग के कारण उत्पन्न अत्यधिक दुःख में राम ने अपने मन मे क्या विचार किया—यह हम नही जानते, ( हम इतना ही कह सकते हैं कि ) उस पुण्य-स्वरूप राम के नयन भी निद्रा मे मुकुलित न होकर उनके पुष्ट कंधोंवाले भाई (लक्ष्मण) के नयनो के जैसे ही ( खुले ) रहे[1] ( अर्थात्, राम ने निद्रा नही की )।

जहाँ शीतल तथा मधुर मंद मारुत-रूपी सर्प संचरण करता था, उस पर्वत के समीप में गगनतल को प्रकाशित करता हुआ उज्ज्वल चन्द्रमा इस प्रकार उदित हुआ कि रामचन्द्र ने मानो भ्रमरो से गुंजरित पुष्पमाला धारण करनेवाली सीता के वदन-बिंब को ही देखा हो।

उस रात्रिकाल मे गर्व-भरा मन्मथ-रूपी चोर जब छिपकर अपना प्रभाव दिखाता था, संसार-भर में प्रकाशित होकर बढ़नेवाली चाँदनी की बाढ़ (राम को) इस प्रकार जलाने लगी, जैसे अंधकार-रूपी विष से युक्त सर्प के छेदवाले विष-दंत के भीतर का विष हो।

विष के समान फैलनेवाली उज्ज्वल चाँदनी वीर (राम) को पीडित कर रही थी। सीता के हरण से उत्पन्न अपमान की भावना उनके विवेक को हर रही थी, वे अन्य सब विचारों को छोड़कर केवल उन सीता के, जो सर्पफन-सदृश जघन तटवाली थी, दुग्ध-जैसी मीठी बोलीवाली थी और दीर्घ नेत्रवाली थी, अकेलेपन के बारे में ही सोच रहे थे।

राम ओठ चबाते, निःश्वास भरते, उनके कंधे फूलते और शिथिल होते। महान् गज के द्वारा तोड़ी गई, शीतल पल्लवों तथा पुष्पो से शोभायमान शाखा-सदृश सीता के बारे मे सोचते।

समुद्र में उठनेवाली वीचियो के समान उनके निःश्वास उठ-उठकर गिरते थे। वे सोचते कि सीता यह सोचकर कि रामचन्द्र अपना धनुष झुकाये हुए आते ही होंगे, मार्ग के दोनो ओर देखती हुई गई होगी।

जब विद्युत्-जैसे खड्ग-दंतोवाला रावण—'ठहरो।' 'ठहरो।' कहता हुआ सीता के निकट ( उसे उठा ले जाने के लिए ) गया होगा, तब सीता ने मेरा स्मरण नही किया होगा—यह कहना उचित नही है। ( उसके स्मरण करने पर भी जब मै उसकी रक्षा के लिए नही आया, तब न जाने मेरे बारे में उसने क्या सोचा होगा। )

विष-दंतो से युक्त ( राहु नामक ) सर्प के मुँह में पड़े चन्द्र के समान कांतिहीन सीता, क्रूर राक्षस के क्रोध से भयभीत हुई होगी। हाय! यों सोचते।

अपमान और विरह-ताप—इन दोनों से व्याकुल होनेवाले उनके प्राण इन दोनों के मध्य रहकर इनके द्वारा बारी-बारी से सताये जा रहे थे, जिससे दुःखी हो रामचन्द्र सोचते—क्या अब भी मुझे धनुष की आवश्यकता है ?

सनातन वेदों के पारंगत सब पंडितों के द्वारा देखे जानेवाले राम अपने धनुष को

१ इसके पूर्व अयोध्याकाड में यह कहा गया है कि लक्ष्मण वनवास के समय, कभी नहीं सोते थे, किंतु रात-दिन जागरित रहकर राम की परिचर्या में निरत रहते थे।—अनु०

देखकर हँसते, तथा संसार में, प्राप्त होनेवाले अपने अपयश को सोचकर स्तब्ध रह जाते।

वे ( राम ) हाथी के जैसे बड़े शब्द के साथ निःश्वास भरते। शीतल पवन-रूपी क्रूर यम को देखकर कहते—हाय! वेदोक्त विधान से मेरे द्वारा परिणीत सीता मुझसे वियुक्त हो गई।

मैंने अनेक प्राणियो की रक्षा करने का व्रत लिया है। किन्तु, आभरणों से भूषित मेरी पत्नी बनी हुई एक कुलीन नारी की विपदा को मैं दूर नही कर सका। मेरा पराक्रम भी खूब है। इस प्रकार सोचकर राम लज्जित होते।

उनका मन व्याकुल होता, उसके ओंठ सूख जाते, वे मूर्च्छित होते। अनुज के द्वारा निर्मित शीतल पल्लव-शय्या पर लेट जाते। उनके शरीर-ताप से वे पल्लव झुलस जाते, तो ( राम ) अपने अनुज से कहते कि ये पत्ते हटा दो। फिर ( लक्ष्मण के द्वारा लाये गये ) नये तथा अरुण पल्लवों को देखते। किंतु, उनके शरीर-स्पर्श से वे नये पल्लव भी झुलस जाते, तो व्याकुल-प्राण हो वे थक जाते।

वे राम, जिनके कमल-समान नयनो के झँपने के एक क्षण काल मे अनेक युग व्यतीत होते थे ( अर्थात्, जो विष्णु के अवतार थे ) इस समय वहाँ रहकर उस रात्रि का कुछ अन्त नहीं देख पाते थे। इसका कारण सीता का वियोग था या ( सीता के प्रति ) उनके प्रेम की अधिकता थी, यह हम ( लेखक ) नही जानते।

विजय के कारणभूत भाले को रखनेवाले अपने भाई को देखकर, वे ( राम ) कहते—तुमने देखा है न कि इसके पहले, सभी दिन एक ही जैसे व्यतीत होते थे। किन्तु, आज यह रात्रि क्यों इतनी दीर्घ हो रही है?

दीर्घ लगनेवाले रात्रिकाल में प्रकाशमान चन्द्र को देखकर वे कहते—हे चन्द्र! पहले तुम प्रतिदिन आते और ( सीता के मुख की समता न कर सकने के कारण ) क्षीण होकर लज्जित होते रहते थे। अब आभरण-भूषित सीता के उज्ज्वल वदन के दूर हो जाने पर तुम पूर्ण प्रकाश से चमक रहे हो।

राम फिर कहते—गगन में सञ्चरण करनेवाला एक चक्र रथ से युक्त सूर्य भगवान्, प्रभूत चन्द्रिका के सदृश उज्ज्वल कीर्त्ति से सम्पन्न अपने कुल मे अवारणीय अपयश के आ जाने से मानो लज्जित होकर ही भूलोक से अदृश्य हो गये हैं।

दुःखद रात्रि के दीर्घ लगने से शिथिल होनेवाले राम सोचते, कदाचित् क्रूर रावण ने सूर्य के सारथि अरुण के साथ सूर्य को भी बाँधकर बड़े कारागार मे डाल रखा है ( इसलिए दिन नही हो रहा है )।

राम सोचते—यदि डमरू-समान कटिवाली सीता नहीं दिखाई पड़े और घोर अंधकार से पूर्ण रात्रि-रूपी कल्पकाल भी यों ही व्यतीत हो जाये, तो समुद्र से घिरी हुई यह धरती मेरे हाथो विनष्ट हो जायगी।

राम कहते—कठोर तपस्या करनेवाले मुनिगण विपदा में पड़े रहें और उन ( मुनियो ) के प्राणों को पीडित करके संसार के प्राणियो को खाकर विचरनेवाले अधर्मी राक्षस बलवान् होकर जीवित रहे, तो अब धर्म से क्या प्रयोजन है?

भ्रमरो की दिव्य डोरी से युक्त धनुष में पुष्प-शरो को रखकर प्रयुक्त करनेवाले वीर मन्मथ ने राम पर वाण प्रयुक्त करने के लिए लक्ष्य-संधान किया। तब रामचन्द्र कर्त्तव्य-मूढ होकर स्तब्ध रह गये।

जब कोई दुःखी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है, तब उसे उसके पुराने दुःख का स्मरण अधिक सताने लगता है। उसी प्रकार मन्मथ, जो इनके पहले एक बार तपस्वी शिव के क्रोध से जल गया था, अब उसका स्मरण करके दुःखी हुआ। (भाव यह है कि अपने बाणों से भीत होकर संतप्त होनेवाले राम को देखने से मन्मथ को शिवजी के द्वारा उसको उत्पन्न पुराना दुःख स्मरण हो आया, जिससे अब वह दुःखी हुआ।)

इस प्रकार, नीलवर्ण रामचन्द्र के मन में (वियोग-दुःख) शूल-सा साल रहा था। इस समय वह रात्रिकाल ऐसे ही समाप्त हुआ, जैसे आदिकारणभूत भगवान् (नारायण) के नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा का एक कल्प समाप्त हुआ हो।

जल-धारा से शब्दायमान क्षीरसागर में सुखमय योग-निद्रा करना छोड़कर, भ्रमरो तथा मधु से शब्दायमान पुष्पमाला से भूषित सीता के शील-रूपी समुद्र मे निमग्न होनेवाले राम को देखकर सहानुभूति से पक्षी शब्द करते थे, कानन शब्द करते थे और पर्वत-निर्झर शब्द करते थे। राम के मन मे (सीता का) अलंकृत रूप प्रकट था। किन्तु, नयनो के सम्मुख प्रकट नही था। अतः, उन (राम) के प्राणों के स्वस्थ रहने का क्या उपाय हो सकता था?

मयूर और मयूरी साथ-साथ संचरण करते थे। हरिण और हरिणी साथ-साथ विहार करते थे। करी और करिणी साथ-साथ घूमते-फिरते क्रीडा करते थे। इन सबको देखकर, रामचन्द्र, जो पिक, इक्षु, मधु, मुरली-वीणा, गाढी चाशनी, अमृत आदि को भी फीका करनेवाली मीठी वाणी से युक्त सीता से वियुक्त थे, क्या दुःखी न होगे?

किरणों से युक्त सूर्य, किरीट-जैसे शिखरवाले उदयगिरि पर अत्युज्ज्वल रूप मे ऐसे प्रकाशमान हुआ, मानो प्रभात होने पर भी सीता के दर्शन न पाने से दुःखी रहनेवाले वीर रामचन्द्र को उस समय कमल-पुष्पों को प्रफुल्ल कर यह दिखाना चाहता हो कि पहले दिन की संध्या को जिन कमलो को मैंने बन्द किया था, उनमें सीता नही है।

रामचन्द्र वहाँ के वन को देखते। उस वन में स्थित चक्रवाक को देखते। वृक्ष की पुष्पित शाखाओं को देखते। बाल कलापी-तुल्य सीता के केशपाश का स्मरण करते। पर्वत सदृश स्तन-द्वय को याद करते। उनपर की पत्रलेखा को याद करते और फिर अपनी भुजाओं को देखते। यों अपना समय व्यतीत करते।

उस समय, अनुज (लक्ष्मण) ने उनके चरणों को नमस्कार करके कहा—हे प्रभु! देवी का अन्वेषण किये बिना यहाँ इस प्रकार विलंब करना क्या उचित है? तब कीर्त्तिमान् प्रभु ने उत्तर दिया—उस रावण के स्थान को ढूँढकर पहचानेंगे। फिर, उज्ज्वल धनुष से युक्त वे दोनों पर्वत-श्रेणी से युक्त तथा धूप से तप्त उस कानन मे चल पड़े।

दिग्गजों के समान वे दोनों हरियाली से युक्त अनेक अरण्यो को पीछे छोड़कर अट्ठारह योजन दूरी पार कर चले।

भूमि के भाग्य से पृथ्वी पर अवतीर्ण मधुपूर्ण पुष्पमालाओं से भूषित सीता का अन्वेषण करते हुए वे दोनों चलते रहे। कहीं भी सीता को न देखकर, मन के क्रोध से निःश्वास भरते हुए, पक्षियों के आवासभूत एक शीतल तथा विशाल उपवन में प्रविष्ट हुए।

उष्णकिरण सूर्य, ज्ञान में श्रेष्ठ उन राम-लक्ष्मण के मन की वेदना को जानकर, सर्वत्र सीता को ढूँढ़कर, फिर मेरु पर्वत के पीछे अदृश्य हो गया।

सर्वत्र अंधकार इस प्रकार भर गया, जैसे अंजन-पुंज उन ( राम-लक्ष्मण ) को कहीं जाने से रोकने के हेतु पहरा देने के लिए घिर आये हो। तब दसों दिशाएँ स्पष्ट ज्ञान से रहित व्यक्तियों के मन के समान शीघ्र तमोवृत हो गईं।

मीठे स्वर में बोलनेवाले नागणवाय् ( नामक पक्षी ) जहाँ शुकों को मधुर संगीत सिखा रहे थे, वैसे उस उपवन में एक स्फटिक-मंडप दिखाई पड़ा, जिसके चारों ओर किंशुक-वृक्ष थे और जो प्रकाश एवं कलंक से युक्त चन्द्र-मंडल के समान शोभित हो रहा था। वे दोनों उस मंडप में जाकर विश्राम करने लगे।

तब महिमामय प्रभु ने बलवान् वृषभ-जैसे वीर अनुज से कहा—हे वीर! कहीं से पीने के लिए जल ढूँढ़कर लाओ। शत्रुओं को भगानेवाले धनुष से युक्त वह वीर ( लक्ष्मण, जल लाने के लिए ) अकेले गया।

कहीं भी जल न पाकर इधर-उधर ढूँढते रहनेवाले उस लक्ष्मण को उस समय उस अरण्य में स्थित अयोमुखी नामक एक राक्षसी ने देखा और उनपर मुग्ध हो गई।

वह ( अयोमुखी ), ज्ञानियों के मंत्रोच्चारण से भी कीलित न होनेवाले सर्प के समान लक्ष्मण का पीछा करती हुई चली, उनको देख-देखकर उन्हें मन्मथ समझती हुई उनके प्रति यों कामातुर हुई कि उसका गर्व और क्रूरता उस काम-वासना से दब गये।

अथाह काम-वासना से युक्त वह राक्षसी पीड़ित होकर लक्ष्मण के सम्मुख आ खड़ी हुई और यह विचार करती हुई कि मैं इसका आलिंगन कर अपनी काम-वेदना को तृप्त करूँगी, इसको मारकर नहीं खाऊँगी व्याकुल खड़ी रही।

अग्नि से भी अधिक भयंकर वह राक्षसी, यह सोचती हुई कि यदि मेरी प्रार्थना सुनकर भी यह सहमत न होकर तिरस्कार करे, तो मैं बलात् इसे अपनी गुफा में ले जाऊँगी और इसका आलिंगन करूँगी, अतिवेग से लक्ष्मण के निकट आ पहुँची।

वह अग्निमय निःश्वास भर रही थी, अपने दाँतों से हाथियों के झुंड को एक साथ चबाकर अपने पेट में भरनेवाली थी। उसने बड़े तथा दृढ सर्पों से अपने स्तनों को बाँध रखा था और उसकी आँखें धँसी हुई थीं।

बड़े सिंहों और शरभों को सर्प-रूपी रस्सी में पिरोकर उसने अपने पैरों में नूपुर जैसे पहन रखा था। उसका मुख सर्व वस्तुओं का विनाश करनेवाले युगांतकाल में प्रकाशित होनेवाले सूर्य के समान उग्र था।

उसका मुँह इतना विशाल और ऐसी गुफा के समान था कि समुद्र के सारे जल को एक साथ पीकर उसे सुखा सकता था। उसके चारों ओर लाल-लाल केश बिखरे थे, जिनसे वह प्रलयकाल की अग्नि का दृश्य उपस्थित कर रही थी।

दीर्घ मापदंड से मापने योग्य दूरी उसके एक पग मे समाती थी। उसके बड़ी तेजी से चलने के कारण आँतों और चरवी से संयुक्त मासखंड इधर-उधर गिरते थे। उसका जघन-तट अनेक पापों का स्थान था। उसके दाँत पीसने से वज्र घोष-सा शब्द होता था।

वह इस प्रकार घूरती थी कि उसकी दृष्टि शिवजी की-सी (अग्निमय) लगती थी। उसके दाँत इतने भयकर थे कि वे अग्निमय नयन भी (उन दाँतों की तुलना मे) शीतल लगते थे। उसके गमन-वेग से पर्वत अस्त-व्यस्त हो जाते थे। समुद्र परस्पर मिल जाते थे और दोषहीन भूमि भी उसे देखकर लज्जित होती थी। (अर्थात्, क्षमामय भूदेवी भी अयोमुखी जैसी एक पापिन स्त्री को देखकर उसके स्त्रीत्व पर लज्जित होती थी)।

उसके करों में दीर्घ सर्पों के वलय पड़े थे। उसने गरजनेवाले व्याघ्रों का हार पहन रखा था। अनेक शरभों को एक साथ गूँथकर ताली[1] वनाकर पहन लिया था। वलवान् सिंहों को कर्णाभरण के रूप में धारण कर लिया था।

वह (अयोमुखी) प्रकृति से ही 'घुँघची' के जैसे रहनेवाले (अर्थात्, लाल) नेत्रों मे काम-वेदना से अश्रु भरकर (लक्ष्मण को) घूरती हुई खड़ी रही। तव अँधेरे मे घूमनेवाले सिंह-सदृश लक्ष्मण ने उसके विजली-जैसे दाँतों के प्रकाश में उसे देखा।

तुरंत वे लक्ष्मण समझ गये कि यह स्त्री दुष्ट राक्षसों के कुल में उत्पन्न है और पहले नाक आदि के कट जाने से दुःखी हुई, अति वलशाली शूर्पणखा, ताडका आदि के जैसे स्वभाववाली है।

इन गुणहीन तथा पापी राक्षसियों के हमारे निकट आने का और कोई उपयुक्त कारण नही है, यों विचारकर उससे पूछा—हिंस्र जन्तुओं के आवासभूत इस अरण्य में इस घने अँधेरे में आई हुई तू कौन है? शीघ्र वता।

लक्ष्मण ने इस प्रकार कहा। उस समय, सशय से युक्त मनवाली उस राक्षसी ने, वोलने में कुछ सकोच किये विना, उत्तर दिया—यद्यपि तुमसे मेरा पूर्ण परिचय नही है, तो भी तुम पर प्रेम करके मै आई हूँ। मेरा नाम अयोमुखी है।

फिर वह कहने लगी—हे अति सुन्दर वीर! पहले अन्य किसी से अस्पृष्ट (इसके पहले दूसरे किसीसे न छुए गये) मेरे इन स्तनो का, तुम अपने स्वर्ण रंगवाले विशाल वक्ष से आलिंगन करो और मेरे प्राणों की शीघ्र रक्षा करो।

क्रूर गुण को शांत करके उस राक्षसी ने ये वचन कहे। तव क्रोधी सिंह जैसे लक्ष्मण के नयन लाल हो उठे और उन्होने कहा—यदि तू ऐसी वात फिर अपने मुँह से निकालेगी, तो मेरा अनुपम वाण तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देगा।

लक्ष्मण को अपने प्रतिकूल कुछ कहते हुए सुनकर भी वह मन मे क्रुद्ध नही हुई। किन्तु, सिरपर हाथ जोड़कर (नमस्कार करती हुई) उसने निवेदन किया—हे नायक! यदि तुमको मै अपने प्राण-रक्षक के रूप में पाऊँगी, तो मुझे आज नया जन्म मिलेगा।

क्रोधहीन हो वह (राक्षसी) पुनः वोली—हे उत्तम! अगर तुम्हे यहाँ स्वच्छ जल को पाना है, तो मुझे अभयदान दो। मै गगा का जल भी अभी यहाँ पर लाकर उपस्थित करूँगी।

---

१. 'ताली' एक आभूषण या पदक है, जिसे दक्षिण में विवाहिता स्त्रियाँ अपने गले में पहनती है।—अनु०

सौमित्रि उसके वचनों को सह नहीं सके और बोले—अभी यहाँ से भाग जा; नहीं तो तेरे कानों और नाक को काट दूँगा। तब वह राक्षसी स्तब्ध हो, अपलक खड़ी रही और सोचने लगी—

मैं इसको अपनी गुफा में उठा ले जाऊँगी और वहाँ वन्दी बनाकर रखूँगी। जब इसकी उग्रता शान्त होगी, तब यह मेरी इच्छा पूरी करने को सहमत होगा। यही कर्त्तव्य है। इस प्रकार सोचकर वह लक्ष्मण के पार्श्व में गई।

उस क्रूर राक्षसी ने मोहन-मंत्र का प्रयोग किया और गगनोन्नत पर्वत-सदृश लक्ष्मण को उठाकर गगन-मार्ग से इस प्रकार चली, जैसे चन्द्रमडल के साथ मेघ जा रहा हो।

लक्ष्मण को ले चलनेवाली वह अयोमुखी, मन्दर पर्वत से युक्त समुद्र, देवेन्द्र से आरूढ करिणी और भाले से शूर-पद्म नामक असुर को मारनेवाले, घोर पराक्रम से युक्त, कार्त्तिकेय से आरूढ मयूर के जैसे लगती थी।

उस समय, उस राक्षसी के वक्ष तथा हाथों में स्थित, उज्ज्वल वीर-वलय-भूषित लक्ष्मण, उन शिवजी की समता करते थे, जिन्होंने क्रोध-भरे, मदस्रावी हाथी को मारकर उसके चर्म को वस्त्र के रूप में पहन लिया था।

वह (अयोमुखी) इस प्रकार गई। इधर संतप्तचित्त रामचन्द्र, यह चिंता करते हुए कि जल की खोज में गया हुआ, मेरे प्राण-समान तथा वलवान् पर्वत-समान लक्ष्मण अभीतक, न जाने, क्यो नहीं आया। वे लक्ष्मण की खोज में चल पड़े।

राम सोचते जाते थे कि लक्ष्मण कम वेगवान् नहीं है। वह शीघ्र आनेवाला है। कदाचित् धूप से जले अरण्य में जल नहीं मिला या अन्य कोई घटना घटित हुई है। न जाने क्या कारण है?

मैंने कहा कि इस मार्ग से जाकर कहीं से जल ले आओ। किन्तु इतना विलब हो जाने पर भी वह अभी तक नहीं आया। क्या उसने सीता का हरण करनेवाले राक्षसों के साथ कुछ प्रयोजन होने के विचार से, युद्ध छेड़ दिया है?

क्या मधुरभाषिणी शुकी-जैसी सीता का हरण करनेवाला रावण, इसे भी उठा ले गया? या विष से भी भयकर उस रावण के माया-कृत्य से और दुर्दैव से वह मृत हो गया?

दृढ धनुष को धारण करनेवाला मेरे प्राण-समान भाई अभीतक नहीं लौटा। क्या इस वेदना से कि मैं उसके कथन की उपेक्षा करके सीता को खो बैठा, उसने अपने प्राणों का अन्त कर दिया है?

इस घने अंधकार में, मुझसे वियुक्त उस प्यारे लक्ष्मण के अतिरिक्त, मेरे और नेत्र नहीं है? (अर्थात्, लक्ष्मण ही मेरे नेत्र हैं, जिसके विना मैं अंधा-सा हूँ)। पहले ही घायल हुए मेरे हृदय में अब एक नई पीडा उत्पन्न हुई है। मैं कुछ भी सोच नहीं पा रहा हूँ। अब मैं कैसे उसका अन्वेषण करूँ?

मेरे दुर्भाग्य को बदलने का कुछ उपाय नहीं है। अब मेरे प्राण-सदृश तुम भी

अदृश्य हो गये। हे तात। मुझे इस प्रकार छोड़कर तुमने भूल की। यह तुम्हारा कार्य कठोर है। गुरुजन तुम्हारे इस कार्य को नही सराहेंगे।

आई हुई विपदाओं को दूर करने मे समर्थ हे वीर। तुमने मुझे अवार्य दुःख दिया। शत्रुओं से भी प्रशंसित होनेवाले हे वीर। क्या मुझसे घृणा करते हुए मुझे इस अरण्य में पीडित होने के लिए छोड़कर चले गये हो? इतनी देर तक मुझसे वियुक्त होकर कहो रह जाना, क्या तुम्हारे लिए उचित है?

मै अपने पिता से वियुक्त हुआ। अपनी माता से वियुक्त हुआ। लक्ष्मी-समान, स्वर्णाभरण-भूषित सीता से वियुक्त हुआ। फिर, मै जो जीवित रहा, वह तुम, एक के वियुक्त न होने से ही तो था?

(हरिण के पीछे मेरे जाने पर) मुझे ढूँढ़ते हुए तुम हाथी के समान चले आये थे। अब तुम अदृश्य होकर, स्वर्णमय कर्णाभरणों से भूषित सीता को ढूँढनेवाले मुझ दीन को, अपने भी ढूँढ़ने के लिए दुःखी बनाकर छोड़ गये हो।

कौन बतानेवाला है कि तुम कहाँ हो? (तुम्हारे न मिलने पर) मै आज प्राण-त्याग किये बिना नही रहूँगा। यदि मै मरूँगा, तो मेरे स्वजनों में से भी कोई जीवित नही रहेगा। अतः, हे कठोरहृदय। तुम, एक साथ सब स्वजनों को मारनेवाले हो गये हो। यह क्या तुम्हारे लिए उचित है?

मान्धाता आदि हमारे पूर्वजो के आचार के अनुसार राजा बनना छोड़कर मैने अरण्य-वास करने का साहस किया। उस समय सच्चा बन्धु बनकर जब दूसरा कोई नही आया, तब तुम्ही मुझ एकाकी के साथी बनकर आये। अब तुम भी मुझे छोड़कर चले गये हो?

इस प्रकार कहते हुए मेरे अनुपम प्रभु रामचन्द्र उठते, गिरते, स्तब्ध होते, प्रज्ञाहीन होते, फिर कहते—हाय! इस घने अँधेरे में न बिजली है, न गर्जन। फिर भी, यह क्या विपदा आ पड़ी है? (अर्थात्, भावी विपदा की पूर्व सूचना कुछ नहीं हुई और यह अकस्मात् क्या हुआ?) रामचन्द्र की वह दुःखपूर्ण दशा एक-जैसी नही थी।

युद्ध के उन्माद से पूर्ण मत्तगज की समता करनेवाले वे (राम), अनेक स्थानों में जाकर (लक्ष्मण को) ढूँढ़ते। शीघ्र गति से जाते। (लक्ष्मण का) नाम लेकर पुकारते। व्याकुलप्राण और मूर्च्छित होते।

क्षमाशील (सीता) देवी के साथ मेरे प्राणों की भी रक्षा करते हुए अपलक रहनेवाला लक्ष्मण, क्या लौट आने मे इतना विलंब करता? धरती का भार बनकर दुर्भाग्य के साथ सचरण करनेवाले मुझ पापी का जीवित रहना अनुचित है।

फिर यह कहकर कि, 'यदि मेरे द्वारा किया गया कोई सुकृत हो और उस (लक्ष्मण) का ज्येष्ठ होकर उत्पन्न होने की कुछ योग्यता मुझमें हो, तो मै वैसे ही पुनर्जन्म पाउँ'—रामचन्द्र अपना तीक्ष्ण करवाल कर में लेकर अपने प्राणों का अन्त करने को उद्यत हुए, इतने में—

उधर लक्ष्मण राक्षसी की माया से मुक्त हुआ और उस (राक्षसी) की नासिका

आदि अगो को काट दिया। तब उस राक्षसी ने बड़ी व्यथा से जो चीख मचाई, वह ध्वनि राम के कानो मे आ गिरी, तो उमसे राम किंचित् स्वस्थ-से हुए।

फिर, राम ने सोचा—प्रस्तरमय अरण्य में अनेक वीर-ककणो से मुखरित युद्ध करनेवाले राक्षसों की विरोध-सूचक ध्वनि यह नही है। यह तो विपदा में पड़ी हुई एक स्त्री की ही ध्वनि है और वह कोई राक्षसी ही है।

उस समय, नीलवर्ण राम ने आग्नेय अस्त्र को अपने अरुण कर में लेकर उसे प्रयुक्त करने का उपक्रम किया। तब वहाँ का अंधकार हटकर भूलोक के दूसरे कोने में जाकर इकट्ठा हो गया और उस स्थान में रात्रिकाल दिन के समान भासमान हो उठा।

रामचन्द्र बड़े-बड़े पर्वतों को चूर करते हुए, ऊँचे वृक्षो को तोड़ते हुए, भूमि को अपने पदचाप से पीडित करते हुए और अपने दोनों पार्श्वों में चड़चड़ाहट की ध्वनि उत्पन्न करते हुए चंडमारुत से भी तिगुने वेग के साथ ( उस राक्षसी को निहत करने के लिए ) बढ चले।

प्रलयकाल में जिस प्रकार काला समुद्र धरती पर उमड आये, उस प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए आनेवाले, अपने सहायक ज्येष्ठ भ्राता को लक्ष्मण ने देखा और कहा—'हे उदार! चिंता न करें, चिंता न करें।'

'यह दास आ गया। आप मन में व्याकुल न हों।'—यो कहते हुए लक्ष्मण रामचन्द्र के कोमल पल्लव-जैसे चरणों पर नत हुआ। रामचन्द्र ने मानों अपनी खोई आँखें पुन॰ प्राप्त की।

उन रामचन्द्र की दशा, जिनकी आँखों से झरने के समान अश्रु वह रहे थे, उस गाय की-सी हो गई, जो अपना बछड़ा खो जाने से, उसे खोजने का मार्ग भी न देखती हुई व्याकुल रहती हो और स्वय ही उस बछडे के आ जाने पर अपने थन से दूध वहाती हुई खड़ी हो।

उस समय, राम ने लक्ष्मण का पुनः-पुनः आलिंगन किया और अपनी अश्रुधारा से उसके स्वर्ण-जैसे शरीर को धो डाला। फिर कहा—हे लोहे के स्तभ-जैसे कधोवाले! यह सोचकर कि तुम कहो खो गये हो, अबतक मै अत्यत दुःखी हो रहा था।

'क्या घटित हुआ? मुझे बताओ।'—राम के यों पूछने पर लक्ष्मण ने सारा वृत्तात कह सुनाया। तब उन प्रभु ने, जिनसे बड़ी अन्य कोई सत्ता नही है, आनद और व्यथा दोनों को एक साथ ही प्राप्त किया।

फिर, राम ने लक्ष्मण से कहा—जो विशाल समुद्र के मध्य फँसा हो, क्या प्रत्येक लहर के आते समय उसका भयभीत होना उचित है? उसी प्रकार दुर्दैव के प्रभाव से जन्म-रूपी बंधन में पडे हुए हमें, दुःखद विपदा के प्राप्त होने पर शिथिल नही होना चाहिए।

तीन देव ( ब्रह्मा, विष्णु और महेश ), तीन लोको के निवासी—सब मेरे शत्रु बनकर आवें, तो भी मुझे कौन जीत सकेगा? भाई! तुम मेरे साथ हो—यह एक बात ही मुझे बल देता है। इससे बढकर मुझे और कोई रक्षा नही चाहिए। ( अर्थात्, अन्य कोई सेना आवश्यक नहीं है। )

मुझसे जो वियुक्त होते हो, होवें। जितनी भी आपदाएँ आती हो, आये। किंतु दीर्घ वीर-कंकण धारण करनेवाले हे वीर! वे सारी आपदाएँ तुम्ही से दूर होनेवाली हैं। मेरे निकट रहकर वे ( विपदाएँ ) मुझे सता नहीं सकती।

भयंकर युद्ध करने में निपुण वीर। तुमने कहा कि युद्धकुशल राक्षसी को परास्त कर लौटे हो। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी के वचनो से उत्तेजित होकर उसे तुमने मार तो नही डाला? बताओ।

तब लक्ष्मण ने कहा—'मैने उस राक्षसी की नाक, कान और वंधन मे स्थित स्तनों को काट दिया। उस समय वह चीख उठी।' यह कहकर ( लक्ष्मण ) हाथ जोड़कर खड़े रहे।

आनंद से प्रफुल्ल होकर राम ने कहा—अँधेरे मे तुम्हें मारने के लिए आई हुई राक्षसी को भी तुमने नही मारा। किन्तु, उसका अंग-भग मात्र किया। तुम चतुर हो। मनु प्रभृति राजाओं के इस वंश के अनुकूल ही तुमने आचरण किया है और अपने भाई को गले लगा लिया।

वीर ( राम ) और लक्ष्मण—जैसे अपार दुःख से मुक्त हुए। वारुण अस्त्र को प्रयुक्त करके गगन मे वर्षा उत्पन्न की और उसका जल पीकर प्रभात काल की प्रतीक्षा करते हुए एक पर्वत पर विश्राम करते रहे।

पत्थरो से भरी धरती पर, अरण्य के पल्लवों और पुष्पो को लेकर लक्ष्मण के-द्वारा वनाई गई शय्या पर, वड़ी वेदना भोगते हुए रामचन्द्र ने शयन किया। लक्ष्मण उनके कोमल चरणों को सहलाते रहे।

राम ने कलापी-तुल्य सीता से वियुक्त हो जाने के पश्चात् अपमान की पीडा से कुछ आहार नही किया था। शोक की अधिकता से निद्रा भी नही की थी। उनके ऐसे दुःख का वर्णन हम कैसे कर सकते हैं? उनके निःश्वासो के मध्य उनके प्राण झूलते रहे।

राम, विरह की पीडा से वोल उठे—मेरी आँखों को अरण्य में सर्वत्र सीता का रूप ही दिखाई पड़ता है। यह क्या इसलिए कि मै उसके रूप को नही भूल सका हूँ, या नही तो क्या यह भी राक्षसों की माया है?

काले केशोंवाली, अरुण रेखावाले नेत्रो से युक्त तथा पतिव्रता नारियो के आभरण-सदृश उस ( सीता ) को मै अपने पार्श्व में देखता हूँ। किन्तु, उसका आलिंगन करने के लिए उद्यत होने पर उसका स्पर्श नही पाता हूँ। क्या उसकी कटि के समान ही उसका आकार भी थोड़ा-थोड़ा करके क्षीण होता हुआ अदृश्य हो गया है।

( पहले मुझे ऐसे लगा जैसे ) मैने उसके सद्योविकसित कमल ( समान मुख ) के मधुपूर्ण विंव तथा प्रवाल के समान अधर के अमृत का पान किया। किन्तु, वह मेरे पार्श्व मे नही थी। क्या पलक न लगने पर भी स्वप्न दिखाई पड़ते हैं?

यदि यह रात्रि मुझे ऐसा दुःख दे, जो पृथ्वी, गगन आदि पचभूतो एव मन के विचार से भी वड़ा हो, तो क्या यह ( रात्रि ) शीतल, सुगध तथा नीलवर्ण से युक्त कुतलों-वाली सीता की आँखों से भी वड़ी होगी?

जल तथा उसमें सञ्चरण करनेवाले मीनों से युक्त समुद्र से मनोहर चन्द्र के नाम से जो प्रलयाग्नि उत्पन्न हुई है, उसकी उष्ण किरणों के स्पर्श से उत्तप्त आकाश के शरीर-भर में फफोले-से पड़ गये हैं (अर्थात्, नक्षत्र आकाश के फफोले कहे गये हैं।)

चक्रवर्ती राम इस प्रकार के अनेक वचन कहकर व्याकुल हो रहे थे। उसी समय अरुण किरणोंवाला सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे उन (राम) की दुःखमय दशा को देखकर स्वयं दुःखी होकर सहानुभूति दिखा रहा हो। (१–१०१)

●

# अध्याय ११

## कबन्ध पटल

वे (राम-लक्ष्मण), प्रभात के समय उस कलापी-तुल्य रूपवती, पतिव्रता (सीता) देवी का, जिसकी क्षमा की तुलना में पृथ्वी का क्षमा-गुण भी निस्सार-सा लगता था, अन्वेषण करते हुए गये। पक्षी इस प्रकार शब्द कर रहे थे, मानों वे उनके दुःख को देखकर रो रहे हों।

वे दोनों धनुर्धर वीर, पचास योजन-पर्यंत अरण्य को पार करके गये और कबंध नामक उस राक्षस के वन में जा पहुँचे, जो एक ही स्थान पर पड़ा रहता था और अपनी दीर्घ बाँहों को दूर तक फैलाकर सब प्राणियों को हाथों से उठाकर अपने पेट में भर लेता था। इतने में सूर्य भी आकाश के मध्य आ पहुँचा।

(उस राक्षस के हाथों में पड़नेवाले) हाथी से चींटी तक, सब प्राणी मिट जाते थे। उसको देखने मात्र से अत्यंत भय से काँपने लगते थे। उसके चंगुल में आकर फिर उस बंधन से वे कभी छूट नहीं पाते थे।

कबंध के निकट सब प्राणी इस प्रकार काँपते रहते थे, जिस प्रकार, कुल-परंपरा से आगत नीतिमार्ग को छोड़नेवाले, शासन की दक्षता से रहित, शक्तिहीन राजा के राज्य में रहनेवाले प्राणी हों। वे बिखर जाते, एक साथ सम्मिलित होते, पीड़ित होकर भागते और स्तब्ध हो खड़े रहते।

बड़े-बड़े पर्वत भी कबंध के हाथों में लुढ़कते हुए चले आते। बड़े-बड़े वृक्ष भी जड़ से उखड़-उखड़कर निकल आते। अरण्य की नदियाँ उमड़कर ऊँचे स्थानों एवं सब दिशाओं में फैल जातीं। जल-भरे मेघ भी नीचे आ गिरते। यह सारा दृश्य उन वीरों ने देखा।

जिस प्रकार सारी सृष्टि के विनाश का कारणभूत प्रलय-काल जब आता है, तब प्रभंजन का थपेड़ा खाकर चतुर्दिक् में समुद्र उमड़ उठता है और गर्जन करता हुआ सारी पृथ्वी को ढक देता है, उसी प्रकार सबको चारों ओर से घेरकर आनेवाली (कबंध की) उन बाँहों में वे (राम-लक्ष्मण) भी फँस गये।

मानो चक्रवाल पर्वत ही सिमटकर आ रहा हो, इस प्रकार आनेवाली उन प्राचीर-जैसी बाँहों में फँसकर वे दोनों वीर, यह सोचकर प्रसन्न हुए कि मधु-जैसी मीठी बोलीवाली सीता की रक्षा के उद्देश्य से रावण की सेना ही आकर उन्हें घेर रही है ( और उस सेना को मिटा देने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है )।

राम ने अपने अनुज को देखकर कहा—हे तात ! ऐसा लगता है कि सीता का हरण करनेवाला रावण यहीं पर निवास करता है। अब हमारा दुःख मिटनेवाला है।

तब लक्ष्मण ने ( राम को ) प्रणाम करके उत्तर दिया—यह राक्षस-सेना होती, तो क्या नगाड़े बजने की ध्वनि और शंखनाद नहीं सुनाई देते ? यह राक्षस-सेना नहीं है और कुछ है। फिर, लक्ष्मण भी सोचने लगे ( कि यह क्या है ? )।

फिर, लक्ष्मण ने ( राम से ) कहा—प्रलयकाल में भी अमर रहनेवाले हे प्रभु ! यह कदाचित् वह सर्प ही है, जिससे देवों ने मंदर-पर्वत को लपेटकर क्षीर-सागर को मथा था, अथवा यह कोई दूसरा सर्प है। यह ( सर्प ) अपने मुँह से अपनी पूँछ को जोड़कर घेरा बनाकर हमें बाँध रहा है।

आगे-आगे चलनेवाले ( राम ) ने लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर सोचा कि उसका कथन ठीक ही है। फिर ( उस घेरे में ) दो योजन दूर जाने पर वे दोनों उस पर्वताकार राक्षस के सम्मुख आ खड़े हुए।

वह राक्षस अपनी आँखों के साथ ऐसा दृश्य उपस्थित करता था, जैसे उष्ण किरणवाले दो सूर्यों से युक्त मेरुपर्वत हो। उसके पेट में ही उसका मुँह था, जिसमें दाँत ऐसे थे कि उनके मध्य दो-दो 'खात' ( दस मील का एक खात होता था ) की दूरी थी और ( वह मुँह ) मकर-मीनों से पूर्ण समुद्र के समान था।

उसकी बाँहें इस प्रकार पड़ी थीं, जैसे देवों के द्वारा मंदर-रूपी दिव्य मथानी को ( क्षीरसमुद्र में ) डालकर उसपर लपेटा गया वासुकि सर्प दोनों ओर से खींचा जाकर फैला हुआ पड़ा हो।

उसकी नासिका से इस प्रकार अग्नि और धूमलता निकल रही थी, जैसे लुहार की भाथी हो। उसके सामने उसकी जिह्वा इस प्रकार निकली हुई थी, जैसे विशाल समुद्र को एक ही दशा में रखनेवाली वडवाग्नि की ज्वाला हो।

उसके मुँह के दोनों खड्ग-दंत इस प्रकार लगते थे, मानो पूर्णचंद्र, ( राहु नामक ) सर्प को अपनी ओर आते हुए देखकर भय से एक सुरक्षित स्थान को खोजता हुआ आया हो और निर्झरों से पूर्ण महान् पर्वत की कंदरा के भीतर, दो खंड होकर, घुस रहा हो।

उसका शरीर शीतल जल, प्रभृति प्रसिद्ध पंचभूतों से नहीं बना था, किंतु शास्त्रों में बताये गये पंचमहापाप ही एकत्र होकर उस आकार में आ गये थे।

उसके कर्ण-कुहर ऐसे थे, जैसे उष्ण तथा शीतल किरणवाले ज्योतिष्पिंडों (अर्थात्, सूर्य-चंद्रों ) को निगलनेवाले सर्पों ( राहु-केतु ) के, कुछ कार्य न रहने पर, विश्राम करने के लिए योग्य बिल हों। उसका उदर उस नरक का भी उपहास करनेवाला था, जिसमें असत्य भाषण आदि पाप कर्म करनेवाले नीच गुणवाले पापी रहते हैं।

वह ( कवंध ) अपने करों से सब प्राणियों को उठाकर अपने विशाल नाव-जैसे उदर में भर लेता था, जिससे उसका मुँह यम-पुरी के विजयशील द्वार के समान था।

वह समुद्र के समान बड़ा कोलाहल कर रहा था। उसका शरीर हलाहल विष के समान काला और उष्ण था। उसका आकार, विष्णु के चक्र के द्वारा शिर के कट जाने पर पड़े हुए कालनेमि ( नामक राक्षस ) के कबंध ( धड़ ) के समान था।

वह ऐसा लगता था, जैसे मेरु पर्वत प्रभंजन के झोंके खाने से शिखरों के टूट जाने पर, शिखरहीन हो पड़ा हो। इस प्रकार के कबंध को सूक्ष्म ज्ञानवाले उन दोनों वीरों ने देखा।

उन्होंने उसके उस फटे मुँह को देखा, जिसमें चक्रवाल पर्वतों की सीमा से घिरी हुई सारी पृथ्वी समस्त समुद्रों-सहित घुस सकती थी और उन्होंने सोचा कि यह राक्षसों-जैसे किसी प्राचीरावृत नगर का द्वार है, जिसके भीतर देवता लोग भी प्रवेश नहीं कर सकते।

उस समय, अनुज ( लक्ष्मण ) ने, ( कबंध को ) भली भाँति देखकर कहा— हे धनुर्विद्या में निपुण! यह कोई बड़ा भूत है। यह सब प्राणियों को अपने हाथों से घेरकर अपने मुँह में डालता है। हमको भी उन प्राणियों के साथ मिलाकर खा जायगा। अब हम क्या करें! तब राम ने उत्तर दिया—

हे धरती को उठानेवाले आदिवराह जैसे बलवाले! हाँ, यह कोई भूत ही है; क्योंकि वह देखो, इसका शरीर इस प्रकार फैला है कि यह विशाल धरती भी इसके लिए पर्याप्त नहीं मालूम होती। इसके दायें और बायें दीर्घ बाँहें फैली हैं।

हे भाई! कलापी-तुल्य सीता वियुक्त हुई। पितृ-तुल्य जटायु मर गये। अपयश से पीडित चित्त के साथ मैं जीवित रहना नहीं चाहता हूँ। अतः, मैं इस ( भूत ) का भोजन बन जाऊँगा। तुम यहाँ से बचकर चले जाओ।

मुझे जन्म देनेवालों को दुःखी बनाते हुए, अपने भाई को दुःखी करते हुए, गुरुजनों के दुःखी होते हुए, सब अपयश का आश्रम बनकर, मैं उत्पन्न हुआ हूँ। अब मैं अपने प्राण छोड़े बिना इस अपयश को मिटा नहीं सकता।

क्या मैं मिथिला के राजा के पास पर्वत-जैसे दृढ तूणीर तथा धनुष को लेकर यह कहता हुआ जा सकूँगा कि गृहस्थाश्रम के योग्य आपके द्वारा प्रदत्त, मधुरभाषिणी पुष्प-लता-समान सीता राक्षसों के घर में रहती है।

'विकसित पुष्पों से भूषित सीता की रक्षा करने के सामर्थ्य से हीन होकर, मैं, अपने अनुज की रक्षा पाकर ही जीवित हूँ'—ऐसी बात सुनने की अपेक्षा यह वचन अच्छा होगा कि 'मैं परलोक में रहता हूँ।' अतः, अब इस जीवन को त्याग देना ही उचित है।

हमारी ( लेखक की ) दासता को स्वीकार करनेवाले राम ने जब ये बातें कहीं, तब अनुज ने कहा—मैं आपके पीछे-पीछे इस कानन में आया। मेरे आने पर भी ऐसी विपदा आपको प्राप्त हुई है। किन्तु, यदि आपके पूर्व ही मैं अपने प्राण न त्यागकर अपने प्यारे प्राण लेकर लौट जाऊँ, तो मेरी सेवा क्या बहुत भली होगी?

फिर, लक्ष्मण ने कहा—दुःख को जीतनेवाले ही तो धीर होते हैं। यदि अपने पिता, माता, ज्येष्ठ भ्राता आदि गुरुजनों से पहले ही ( उन गुरुजनो की रक्षा मे ) कोई अपने प्राण न त्याग करे, तो उसका जीवन अपयश का ही तो भाजन होगा ?

'हरिणी-तुल्य पत्नी के साथ ज्येष्ठ भ्राता अरण्य में निवास करने गया, तो उसका अनुज, निद्राहीन रहकर उनकी रखवाली करता रहा'—इस प्रकार मेरी प्रशंसा जो लोग करते थे, उनके द्वारा, 'उस ज्येष्ठ भ्राता तथा उस भ्राता की पत्नी से अलग होकर आ गया,'—इस प्रकार का अपयश पाना कितना बड़ा पाप होगा ?

मेरी माता ( सुमित्रा ) ने मुझसे कहा था—'तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता की सब आज्ञाओं का पालन करते रहना। किसी भी विपदा को सहने के लिए तैयार रहना। यदि महान् यशस्वी राम का कभी विनाश होने की सभावना हो, तो उनसे पहले तुम अपने प्राण त्यागना।' मै यदि अपनी माता के वचन पर स्थिर न रहूँगा, तो मेरा सत्य कैसे टिकेगा ?

हे सुन्दर स्वर्ण-आभरणों से भूषित कंधोवाले! 'मेरी जननी तथा मैं आपकी जननी तथा आपके मन के अनुकूल और सब सज्जनो के लिए प्रिय, व्यवहार करते रहते हैं'—ऐसी प्रशंसा के पात्र हम बनना चाहते है। इसके विपरीत अपने प्राणों को बचाये रखने की इच्छा करके हम अपने कर्त्तव्य का त्याग नही करेंगे।

उस प्रलय-काल में भी जब सारी सृष्टि मिट जाती है, जब शाश्वत वेदो के द्वारा प्रशंसित देवता भी मिट जाते हैं, तब भी आपका अन्त नही होता। ऐसे आप, हाथी आदि प्राणियो को खाकर इस वन में रहनेवाले भूत के द्वारा मारे जाकर मिट जायँ, क्या यह भी संभव है ?

सुननेवाले इस बात को न मानेंगे। देखनेवाले इसे नही चाहेंगे। 'पुष्पमाला-भूषित कुंतलोवाली सीता को दुःख में न रखा, किन्तु ( राक्षसो के साथ ) युद्ध करके ( उस सीता को ) मुक्त किया'—इस प्रकार का महान् यश न पाकर, 'युद्ध मे ( राक्षसो को ) नही जीत सका और ऐसे ही मर गया'—ऐसी निंदा पाना क्या उचित है ? ऐसी निंदा से बढ़कर और क्या अपयश हो सकता है ?

विष के समान क्रूर इस भूत की गणना ही क्या है ? यह बात नही है कि इस करवाल के आघात से इसके प्राण नही निकलेंगे। देखिए, मै किस प्रकार, हमें घेरनेवाले इसके हाथों को और इसके बिल-जैसे मुँह को काट देता हूँ। आप चिन्ता छोड़िए।—यों लक्ष्मण ने कहा।

इस प्रकार के वचन कहकर लक्ष्मण स्वयं प्रभु से आगे बढ़ने लगे। तब राम लक्ष्मण से आगे जाने लगे। इस समय लक्ष्मण ने राम को रोका। यह देखकर हाय! स्वय देवता भी रो पडे, फिर अन्यो के सबध में क्या कहा जाय।

इस प्रकार, वे दोनो वीर-कंकणधारी वीरमुख के दो नेत्रों के समान चलकर कबध के निकट पहुँचे। तब कबध ने उनसे प्रश्न किया, 'कर्म के परिणामस्वरूप यहाँ आये हुए तुम दोनो कौन हो ?' यह सुनकर वे दोनो बडे क्रोध के साथ उसके सामने अपलक खडे रहे।

कबंध यह देखकर कि उसके प्रश्न से वे ( राम-लक्ष्मण ) डरे नही, किन्तु उसकी अवहेलना करते हुए खड़े हैं, अत्यधिक क्रोध से भर गया। उसके रोम-रोम से चिनगारी निकलने लगी। वह उन्हे निगलने की इच्छा से बढ़ा। तब उसके गगनोन्नत कंधों को उन्होने अपने करवाल से काट दिया।

उसकी दोनो बाँहो के कट जाने से उसकी देह से रक्त की धारा नीचे की ओर बहने लगी। तब वह एक ऐसे पर्वत की समता करने लगा, जिसके दोनो ओर पत्थरो से भरे सानु होते हैं।

प्रभु के कर का स्पर्श होने से उस ( कबध ) का वह शापमय रूप भी मिट गया। उसका पाप मिट गया। कटे हाथोवाले घोर आकार को छोड़कर वह गगन में इस प्रकार जाकर प्रकाशमान हुआ, जैसे कोई पक्षी अपने पिंजरे से आकाश में उड़ चला हो।

गगन में खड़े होकर उसने सोचा कि यह राम ही ब्रह्मा प्रभृति सब देवों के ध्यान मे प्रत्यक्ष होनेवाले हैं, और उनके गुणो का गान करने लगा। जब पुण्य-फल अनुकूल होता है, तब कौन-सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है ?

कबध ने राम से कहा—हे प्रभु। मुझ, पापी के शाप को तुमने दूर किया। क्या तुम्ही सारी सृष्टि के निर्माता हो ? तुम्हीं अविनश्वर धर्म के साक्षीभूत हो ? तुम्हीं देवो की पूर्वकृत तपस्या के फल के साकार रूप हो ? क्या तुम्ही वह परमतत्त्व हो, जो तीन मूर्त्तियो मे विभक्त हुआ है ?

हे कारण-रहित आदिपरब्रह्म! तुम्हारे अवतार के तत्त्व को कोई भी नही पहचान सकता। क्या तुम वह वटवृक्ष हो, जो प्रलय-काल में उत्पन्न होता है। या, क्या उस वृक्ष का पत्ता हो ? या उस वट-पत्र में शयन करनेवाले बालक हो। या सृष्टि के आदिकारणभूत परमपुरुष हो ? कहो, तुम कौन हो ?

ससार मे जो देखनेवाले जीव हैं और जो देखे जानेवाले पदार्थ हैं, तुम उन सबकी दृष्टि हो। तुम सब पदार्थों में सलग्न रहते हो, किन्तु तुम्हे सुख-दुःख से कुछ सम्बन्ध नही रहता। अपने दिव्य प्रभाव से तुम सब लोकों को अपने उदर में समा लेते हो और फिर उन्हे प्रकट कर देते हो। क्या तुम पुरुष हो ? स्त्री हो ? अथवा उन दोनों से परे हो ( अर्थात्, उभय से पृथक् हो ) ? अथवा और कोई हो ?

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तुम्ही हो। उस ब्रह्मा का कारणभूत परमपुरुष (विष्णु) तुम्ही हो। उस परमपुरुष का भी कोई कारणभूत तत्त्व हो, तो वह भी तुम्ही हो। प्रसिद्ध वेद तुमको परम ज्योति कहते हैं। तो क्या अन्य देवता लोग उससे लज्जित नही होते ( अर्थात्, अन्य देवो को परम ज्योति कहना उचित नही है ) ?

अष्ट दिशारूपी प्राकार से युक्त, चौदह मजिलो के इस ब्रह्माड-रूपी महान् मंदिर को सर्वत्र प्रकाशित करनेवाले तीनो ज्योतिर्मंडलों ( अर्थात्, चंद्र-मडल, सूर्य-मंडल और नक्षत्र-मडल ) के ऊपर स्थित परमपद में कभी प्रफुल्ल न होनेवाले कमल-कोरक के भीतर रहनेवाला बीज ही तुम्हारा आवास है।

हे परमेष्ठिन् ( अर्थात्, परमपद के स्थान मे निवास करनेवाले )! अनंत आट

दिशाओं में स्थित भूदेवों (ब्राह्मणों) के द्वारा किये जानेवाले उत्तम यज्ञों में हविर्भाग का भोजन करनेवाले तुम्ही हो। वह भोजन देनेवाला (अर्थात्, यज्ञकर्त्ता) भी तुम्ही हो। तुम्हारे इन दो रूपों में रहने के तत्त्व को कौन जान सकता है?

हे परात्पर! जिस प्रकार स्थिर जलाशय में बुद्बुद उत्पन्न होकर मिटते रहते हैं, उसी प्रकार अनेक अंड तुमसे एक समान निकलते हैं और (प्रलय-काल में) तुझमें विलीन हो जाते हैं। इस तत्त्व को कौन ठीक-ठीक समझ सकता है?

क्या तुम्हारी लीलाओं को देखकर ही वेद प्रकाशित किये गये हैं? या वेदों में प्रतिपादित ढंग से तुम्ही अपने कार्य करते रहते हो? तुमने मुझे ऐसा फल दिया है, जिसे पापकर्म करनेवाले लोग कभी प्राप्त नहीं कर सकते। न जाने, पूर्वजन्म में मैंने क्या पुण्य किये थे (जिससे यह भाग्य मुझे अब प्राप्त हुआ है)?

प्रेत के समान मेरे पापों के आश्रयभूत राक्षस-जन्म के दोषों को मिटाकर तुमने मुझे निर्दोष दिव्य जन्म प्रदान किया। मुझे दुःख-समुद्र के पार लगाया और तुम्हारे प्रति अज्ञान-जन्य मेरे विरोध को मिटा दिया। हे मेरे प्रभु! श्वान-सदृश रहनेवाला मैंने, न जाने कौन-सा बड़ा सुकृत किया था?

इस प्रकार के मधुर वचन कहकर कबंध यह सोचकर कि यदि मैं सारे भविष्य को स्पष्ट रूप से कह दूँ, तो वह देवताओं की इच्छा के अनुकूल नहीं होगा, माँ को देखकर प्रसन्न होनेवाले गाय के बछड़े के जैसे चुपचाप खड़ा रहा। तब धर्मनिष्ठ लोग जिनका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, उन प्रभु (राम) ने उसकी ओर देखा।

फिर, राम ने अपने अनुज से पूछा—हे भाई! यह अत्युज्ज्वल दुर्लभ देह धारण कर खड़ा रहनेवाला क्या वही है, जो अभी हमारे हाथों मरा था? या नहीं तो, यह कोई दूसरा प्रभावशाली व्यक्ति है? तुम इसे भली भाँति देखो। तब लक्ष्मण ने उस (कबंध) से प्रश्न किया कि तुम कौन हो?

तब कबंध ने कहा—मनोहर आभरणों तथा पुष्पमालाओं से भूषित हे वीर! मैं तनु नामक एक गंधर्व हूँ। शाप के कारण मुझे यह राक्षस-जन्म मिला था। तुम दोनों के कर-कमल का स्पर्श पाकर मैं अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर सका। तुम मेरे पितामह-तुल्य[1] हो। मेरे वचन सुनो—

तुम दोनों शर-प्रयोग के लिए उपयुक्त धनुष को धारण करनेवाले हो। यद्यपि तुम्हारी सहायता करनेवाला कोई नहीं है, तथापि सीता का अन्वेषण करने के लिए तथा अन्य आवश्यक कार्य करने के लिए किसी सहायक का होना उत्तम होगा। जिस प्रकार बिना नाव के समुद्र को पार करना कठिन है, उसी प्रकार बिना सहायक के शत्रु-पक्ष का विनाश करना भी कठिन है।

दोषरहित शिव के प्रताप के बारे में क्या कहूँ? वह देव, पद्म में उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा बनाई हुई सारी सृष्टि का विनाश करनेवाला है, किन्तु वे भी अवार्य बलशाली भूतों को अपने साथी बनाकर रखते हैं। यह तुम जानते ही हो।

१. कबंध के दुःख को दूर करने के कारण वह राम-लक्ष्मण को अपने पितामह-तुल्य समझता है। —अनु०

कर्त्तव्य कार्य क्या है?—इसका भली भाँति विचार करना चाहिए। धर्म क्या है?—इसका विचार रखना चाहिए। दुर्जनो को साथी न बनाकर सज्जनों को ही सहायक बनाना चाहिए। अतः, तुम दोनों उस शबरी के पास जाओ, जो सब प्राणियो के लिए माता के तुल्य है। उसके कथन के अनुसार चलकर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचो।

वहाँ रहनेवाले सूर्य-पुत्र, स्वर्ण की कांतिवाले सुग्रीव से मित्रता कर लेना। उसकी सहायता से, दीर्घ बाँस-जैसे कंधोंवाली (सीता) का अन्वेषण करना उचित होगा। इस प्रकार कबंध ने कहा। शब्दायमान वीर-वलयधारी वीर (राम-लक्ष्मण) वैसे ही करने को सहमत हुए।

फिर, कबंध ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी 'जय' बोलकर गगन-मार्ग से उड़कर चला गया। मनुवंश के उत्तम कुमार वे (राम-लक्ष्मण) भी दक्षिण दिशा में चलकर पर्वतो और अरण्यो को पार करते हुए गये। जब रात्रि का समय आया, तब मतंगमुनि के आश्रम में जा पहुँचे। (१–५८)

●

## अध्याय १२

### शबरी-मुक्ति पटल

सब अभीष्टो को प्रदान करनेवाले कल्पवृक्षों के सदृश दिव्य वृक्षो से परिपूर्ण सुगंधित वह (मतंगाश्रम का) उपवन उस स्वर्गलोक के समान था, जहाँ स्पृहणीय सुख ही रहते हैं, कोई दुःख नही रहता है, और जहाँ पुण्यकर्म करनेवाले लोग ही जाते है।

वे राम, जिनके मूलभूत कोई पदार्थ नही है, उस आश्रम में पहुँचे, जहाँ उन (राम) का ही ध्यान करती हुई तपस्या करनेवाली शबरी रहती थी। निकट पहुँचकर उन्होने उससे प्रश्न किया—'सुख से रहती हो न?'

उस समय, उस (शबरी) ने बड़ी भक्ति से उन (राम) की प्रस्तुति की। अपनी आँखों से अश्रु की धारा बहाते हुए कहा—'मेरा मायामय सांसारिक बंधन अब टूटा। चिरकाल से मै जो तपस्या करती रही, उसका फल अब प्राप्त हुआ। मेरा जन्म (सकट) मिटा।' यह कहकर फिर उसने बड़े प्रेम से एकत्र कर रखे हुए फल-कंद आदि लाकर उन (राम-लक्ष्मण) को भोजन कराया। तब—

शबरी ने राम से कहा—'हे प्रभु। शिव, कमलभव (ब्रह्मा), इंद्रादि देवता आनन्द के साथ यहाँ आये और मुझसे यह कहकर गये कि तुम्हारी पवित्र तपस्या की सिद्धि का काल आ गया है। और कुछ दिन यही रहो। जब रामचंद्र यहाँ आयेंगे, तब उनका सत्कार करके उसके पश्चात् हमारे लोकों में आना।

हे मेरे प्रभु! तुम यहाँ आनेवाले हो—यह समाचार पाकर मैं तुम्हारे दर्शन की

अभिलाषा से यहीं रहती हूँ। आज ही मेरा सुकृत सफल हुआ है। इस प्रकार, शबरी ने कहा। तब उस महातपस्विनी को प्रेम से देखकर राम ने कहा—'हे माता! हमारे मार्ग-गमन के श्रम को तुमने दूर किया। तुम्हारा श्रेय हो।'

राम तथा उनके अनुज उस दिन वहीं रहे। तब पापनाशक तपस्या करनेवाली (शबरी) ने उन्हें सच्चे प्रेम के साथ देखकर शीघ्रगामी अश्वों से युक्त रथ पर चलनेवाले और उष्णकिरण सूर्य का पुत्र सुग्रीव जिस स्थान पर रहता था, वहाँ जाने का मार्ग पूरे विवरण के साथ बताया।

शास्त्र-श्रवण से जिनके कर्ण पवित्र हुए हैं, ऐसे महात्मा लोग जिस अमृतमय आस्वाद (ब्रह्मानंद) को अपने सूक्ष्म तत्त्व-ज्ञान के द्वारा प्राप्त करते हैं, उस (ब्रह्मानंद) के साकार रूप प्रभु (राम) ने शबरी के उन वचनों को सुना, जो महान् आचार्यों के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति के लिए दिये जानेवाले उपदेशों के समान थे।

फिर, वह शबरी बड़ी कठिनाई से संपन्न की गई तपस्या के प्रभाव से अपनी देह का त्याग कर अनुपम मोक्ष-लोक में आनंद से जा पहुँची। उस दृश्य को उन वीरों ने आश्चर्य से देखा। और फिर, उस (शबरी) के कहे मार्ग पर अपने वीर-वलयों को झंकृत करते हुए चल पड़े।

वे (राम-लक्ष्मण), शीतल वनों, पर्वतों तथा विभिन्न दिशाओं को पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ चले और उस पंपा सरोवर के निकट जा पहुँचे, जो ऐसा था, मानों धरती के मानवों के प्रतिदिन आकर उसमें स्नान करने के कारण, उनके प्रभूत पाप-रूपी अग्नि से पुण्य ही पिघलकर उस सरोवर के रूप में रहता हो। (१–६)

●

# कंब रामायण

## किष्किन्धाकाण्ड

# मंगलाचरण

तीन वर्ण के तीनो गुण ( सत्य, रज, तम ) वाली मूल प्रकृति, उससे उत्पन्न सब तत्त्व, उस प्रकृति को गोचर करनेवाले नानारूपात्मक लोक तथा इन लोकों में स्थित सब पदार्थ, जिस परब्रह्म का शरीर बने हैं, वही ( हमारे ) सद्ज्ञान का मधुर विषय बना है, ( जिसका चरित्र हम गा रहे हैं ) ।

●

# अध्याय १

## पंपा पटल

वह ( पंपा-सरोवर ) मधुपूर्ण पुष्पों से भरा था। उसमें रक्तनेत्र एवं उष्ण शुंड से युक्त मत्तगज गोते लगाते थे; वह स्वच्छ था। वह ऐसा था, मानों जल से भरा समुद्र बिजली से युक्त मेघो के सहित आकाश को भी साथ लेकर धरती के मध्य आकर विराजमान हो गया हो।

काटकर चिकना किये गये स्फटिक-खंड के समान अति स्वच्छ ( उस सरोवर का ) शीतल जल, नवविध रत्नों से जडित सीढ़ियोवाले घाटों पर जब-जब तरगें उठाकर टकराता था, तब-तब वह जल रत्नो की कांति से रंजित होकर, (अनेक शास्त्रो का) विवेचन करके भी सत्यज्ञान से विहीन रहनेवाले लोगों के चित्त की समता करता था।

मुक्ताओ से पूर्ण उस सरोवर के मध्य, प्रवाल-सदृश टाँगोंवाले राजहंस और हंसिनियाँ, एक साथ दृष्टि-गोचर होते थे, जिससे वह सरोवर उस विशाल आकाश के समान दिखता था, जिसमें अनेक राका-चंद्र उज्ज्वल नक्षत्रों-सहित निखर रहे हों।

वह सरोवर ऐसा लगता था, जैसे असमान गाधिसुत ( विश्वामित्र ) ने समुद्र से आवृत लोक, प्राणिवर्ग तथा वेद-पारग ( ब्राह्मण ) आदि की प्रतिसृष्टि करते समय, शीतल लवण-समुद्र के बदले मधुर जल से पूर्ण इस ( सरोवर ) का सर्जन किया हो।

वह सरोवर इतना गंभीर और इतना स्वच्छ जल से पूर्ण था कि (उसके संबंध में) यह कहा जा सकता है कि सूर्य के प्रतिस्पर्धी नागों का लोक यही है (अर्थात्, उसके जल की स्वच्छता के कारण पाताल तक दिखाई पड़ता था)। कल्पवृक्ष-सदृश तथा महाकवियों के शब्दों के अर्थ के समान ही वह सरोवर, पाताल तक अत्यन्त स्वच्छता से परिपूर्ण था।

विशाल दलों से युक्त पुष्पों में विश्राम करनेवाले और अव्यक्त मधुर शब्द करनेवाले हंस आदि पक्षियों की ध्वनियों से युक्त वह सरोवर, नाना प्रकार की वस्तुओं से सपन्न किसी बड़े नगर की पण्यवीथी की समता करता था।

उस सरोवर में सर्वत्र फैले हुए रक्तकमलों के मध्य जो हंस विचर रहे थे, वे ऐसे लगते थे, मानो यह सोचकर कि हम सुवासित कुंतलोंवाली सीता का पता नहीं लगा सके, इसलिए हम (रामचन्द्र का) मुख देखे बिना ही अपना प्राण त्याग कर देंगे, वे (हंस) अग्नि के मध्य कूद पड़े हों।

वह सरोवर इतना स्वच्छ था कि उसके अंतर्गत (रहनेवाले) मुक्ता आदि स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। साथ ही वह यत्र-तत्र सेंवार आदि के फैले रहने से मलिन भी दिखाई पड़ता था। वह उस ज्ञान के सदृश था, जो अविद्या के स्पर्श से कलंकित हो गया हो।

उस सरोवर में जो मीन थे, वे मानों यह सोचकर छिपे हुए थे कि दुःखी मनवाले श्रीरामचन्द्र यदि हमें देख लेंगे तो, वे साकार सतीत्व-जैसी और शुकमधुर-भाषिणी देवी (सीता) के नयनों (की छाया) को हम में देखकर, कभी अश्रु न बहानेवाले अपने नयनों में कहीं आँसू न भर लावें।

बाँसों में उत्पन्न मोतियों, मदजल बरसानेवाले मेघ-सदृश हाथियों के दंतों से उत्पन्न मोतियों, तथा अन्य रत्नों को लिये हुए पर्वत-निर्झर, आभरणों से भूषित वस्तु के जैसे होकर उस सरोवर में आकर गिरते थे। अतः, वह (सरोवर) कर्णाभरणों से शोभायमान वदनवाली सुन्दरियों की छवि की समता करता था।

उष्ण मदजल-बहानेवाले हाथी उस सरोवर में निमग्न होते थे, जिससे उसका जल पंकिल हो जाता था। अतः, वह (सरोवर) उन आभरण-भूषित वारनारियों की समता करता था जिनका शरीर, रात्रिकाल में मन्मथ-समर से श्रांत हो गया हो।

गगन-चुंबी पर्वतों से प्रवाहित मेघ-धाराएँ और हाथियों के, भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाले सुरभित मदजल-प्रवाह, उस सरोवर में भर जाते थे, जिससे उस जल को पीनेवाले प्राणी भी मस्त हो जाते थे। इस कारण से वह (सरोवर) मनोहर केशोंवाली सुन्दरियों के बिंब-सदृश अधर की समता करता था।

आर्यवाणी (संस्कृत) आदि अठारहों भाषाएँ किसी एक अल्पज्ञ व्यक्ति को प्राप्त हो गई हों, (और शब्दायमान हो गई हों) इसी प्रकार उस सरोवर में विविध पक्षी निरंतर ऐसी विविध प्रकार की ध्वनियाँ करते रहते थे, जिन (ध्वनियों) को पृथक्-पृथक् पहचानना असंभव था।

एक हंस, जो प्राणों के समान ही उसका आलिंगन करके रहनेवाली अपनी

हंसिनी से इस प्रकार बिछुड़ गया था, जैसे शरीर प्राणों से अलग हो गया हो, देवांगनाओ के ( जो वहाँ स्नान करने के लिए आई थी ) नूपुरों के मधु-सदृश शब्द को कान लगाकर सुन रहा था।

असंख्य पर्वतों से निर्झर के द्वारा बहाकर लाये गये सुगंधित अगरु, चंदन इत्यादि उस सरोवर में निमग्न रहते थे, जिससे वह ( सरोवर ) उस पात्र के समान था, जिसमें नगर-वासियो ने चंदन इत्यादि के सुगंध-रसों को भरकर रखा हो।

उस सरोवर के मकर, हरिणनयना बालाओं के अधर की समता करनेवाले रक्त कुमुद के सुरभित मधु का पान करके ( रमणियो का अधर ) पान करनेवाले पुरुषो के जैसे ही मत्त हो उठते थे। करंड पक्षी ( जलकौए ), मानों जन्म-मरण की प्रक्रिया को दिखाने के लिए, अपनी चोंचों में मीन को पकड़े हुए बार-बार जल में डुबकियाँ लगाते और बाहर निकलते थे।

हंस, मानों यह सोचकर कि हम पुष्ट हाथी-सदृश श्रीरामचन्द्र को, सुरभित कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी ( अर्थात्, सीता ) को लाकर नही दे सके, अतः उनकी और कोई, अल्प ही सही, सेवा करें—इस खयाल से मनोहर पद-गति दिखा रहे थे ( जिससे रामचन्द्र को सीता की पदगति का स्मरण हो आये )। वहाँ के नीलोत्पल (सीता के ) नेत्रों की सुन्दरता को दिखा रहे थे और रक्त कुमुद (सीता के) अधर का दृश्य उपस्थित कर रहे थे।

वहाँ के कुछ हंस ( सरोवर के ) तट की पुष्पित शाखाओं पर बैठे थे। वे शाखाएँ ऐसी लगती थी, मानो उस सरोवर में अपने आभरणों की कांति को चारों ओर बिखेरती हुई नित्य स्नान करनेवाली देवांगनाओ की चोटियाँ उनके कृत्रिम-हंसों को अपने करों मे लिये हुए ( उस सरोवर के ) तट पर खड़ी हों।

वहाँ, पद्मराग मणियो की कांति इस प्रकार व्याप्त हो रही थी कि एक ओर लगी हुई नीलमणियो की कांति उससे दब जाती थी, जिससे वहाँ रात्रिकाल मे भी दिन-जैसा प्रकाश व्याप्त रहता था। चक्रवाको के जोडे भी (उसे दिन समझकर) तरुणियो के स्तनद्वय के समान एक दूसरे से मिले रहते थे।

बड़ी-बड़ी मछलियाँ, वेग से फेंके गये खड्ग के समान झपटती थी। क्रमशः उठ-उठकर बहनेवाली तरंगों में लुढक-लुढककर चलनेवाले जल-नकुल, उन नटो के जैसे लगते थे, जो ( अपने पैरो में पायल बाँधकर ) मुखरित गति के साथ नाचते हैं। दादुर ( उन नृत्यों को देखकर ) 'वाह-वाह !' कहते-से लगते थे।

रामचन्द्र, उस विशाल जलमय सरोवर के निकट पहुँचे। वहाँ के बालहंस, कमल-पुष्प इत्यादि को देखकर वे कोमल पल्लव-तुल्य सीता देवी का स्मरण करके द्रवित मन हो उठे। उनका विवेक भी मद पड़ गया, जिससे वे रो पडे।

रेखाओ से युक्त सुन्दर पैरवाले चक्रवाको। बालहसो। कभी मुझमे अलग न होनेवाली सीता मुझमे बिछुड़ गई है। अब वह ( मेरे साथ ) नही है। मै विरह से पीडित हूँ। अब तुम्हारे लिए कोई बाधा नही रही ( अर्थात्, तुम मुझे सता सकते हो )। फिर भी, यदि तुम दुःखी प्राणों पर दया करोगे, तो वह तुम्हारे यश का ही कारण होगा।

कभी वियोग का अनुभव न किये हुए मुझ-जैसे को यदि कुछ सांत्वना दोगे, तो इससे क्या तुम्हारी कोई हानि होगी ?

हे सरोवर ! सुन्दर कमलो और सद्योविकसित सुवासित नीलोत्पलो को दिखाकर तूने घाव के जैसे जलनेवाले मेरे मन पर मलहम-सा लगा दिया। तुम ( सीता के ) नयनों तथा उसके वदन को दिखा रहे हो। क्या उसके रूप को एक बार भी नही दिखाओगे ? (जो अपने लिए संभव हो, उस वस्तु को) न देकर लोभ करनेवाले व्यक्ति अच्छे नही होते।

विकसित नील उत्पलों, रक्त कुमुदों, सुगंधित कोमल कमलों, 'वलै' ( एक जल-लता ) के पत्तों, तरंगो, मीनो, कछुओ तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों को देखकर, रामचन्द्र उस सरोवर से कह उठे—हे सरोवर ! मै अमृत-समान उस ( सीता ) देवी के अवयवों को तुम्हारे अतर में देख रहा हूँ। क्या विशाल आकाश में जब बलवान् राक्षस ( सीता को ) खाने लगा, तब उसके ये अवयव यहाँ गिर पड़े थे ?

दौड़ते और खेलते रहनेवाले हे मयूर। तू उस ( सीता ) की छवि से पराजित होकर मन मसोसकर शत्रु के जैसे फिरता रहता था। क्या अब आनंदित हो रहा है ? उस ( सीता ) को खोजनेवाले मेरे (विकल) प्राणों को देखकर तू मन में उमग से नाच रहा है ? तू सहस्र नेत्रवाला है। तुझे कुछ भी अज्ञात ( अदृश्य ) नही है ( अर्थात् , तूने सीता के अपहरण को जान लिया होगा, इसीलिए तू आनन्द से नाच रहा है )।

हंस-मिथुनो ! यद्यपि तुम मेरे निकट नही आओगे, तथापि ( सीता के संबंध में) कुछ कहो। क्या कुछ भी नही कहोगे ? मैने तुम्हारा कुछ अपकार नही किया है, तो क्या तुम मेरा अपकार करोगे ? कटि-रहित उस (सीता) ने ही तो तुम्हारी गति की सुन्दरता को परास्त किया था ? उससे ( सीता से ) तुम्हारा वैर है। किन्तु, मै तो तुम्हें देखकर आनंदित हो रहा हूँ। तुम मुझपर क्यो कोप करते हो ?

सुनहले और सुरभित अंतर्दलों के मध्य मकरंद में रहनेवाले एवं मधुर गान करनेवाले भ्रमरो से शोभायमान हे कमल। ( सीता ) देवी मेरे पार्श्व मे नही हैं। वह (मुझसे) अन्यत्र रहनेवाली भी नही हैं। यदि तुम भी यह कह दो कि वह तुम्हारे पास नही है, तो तुम सत्य को छिपा रहे हो। यों सत्य को छिपानेवालों से मित्रता कैसे हो सकती है ?

सीता के मुख की समानता करते हुए भी कुछ भी न बोलकर सरोवर मे छिपे रहनेवाले रक्त कुमुद के पास पड़ी हुई हे रक्तजटे।[1] तुम मेरे सम्मुख आओ और अमृतवर्षी, अति सुन्दर बिंब-सदृश ( सीता के ) अधर को मुझे दिखाओ। उस अधर के अमृत-रस को तथा शीतल वचनों को मुझे दो।

हे जल-लता के पत्र। तुम तो पुष्पलता-सदृश मुग्धा सीता के कान ही हो, और कुछ नही। अतः, मुझ दुःखी की सहायता करने मे तुम्हें क्या आपत्ति है ? फिर भी, तुम जो स्वर्ण-कुंडल, वक्र ताटक और मुक्तामय झुमके को छोड़कर यहाँ आये हो (सीता के संबध मे) कुछ न कहकर, क्यों वैर निकाल रहे हो ?

महावर-लगी उँगलियों से जिसके चरण ऐसे लगते थे, मानो पद्म से प्रवाल फूट

१. रक्तजटा, पानी में फैलनेवाली एक प्रकार की लता है, जो बहुत लाल होती है।—अनु०

निकला हो, जो मेरे हृदय-रूपी कमल मे रहती है, जो काले बादल-जैसे और पुष्पो से भूषित केशोंवाली है, उस ( सीता ) के नयनों की समता करनेवाले हे मनोहर नीलोत्पल ! तू ऐसा हँसता है कि उससे विष-सा फैल जाता है। तू क्यों इस प्रकार मुझे सता रहा है ?

मन की वेदना से आह भरते हुए श्रीरामचन्द्र ने उस सरोवर के पुन्नाग-वृक्षों से पूर्ण तट पर खडे होकर फिर कहा—हे निर्दय, कठोर सरोवर ! मै मिटा जा रहा हूँ, फिर भी तुम कुछ भी नही कहते।—इस प्रकार वे अत्यंत पीडित हुए।

प्रभूत करुणा के जन्मस्थान उन प्रभु ने देखा—काले भ्रमरो से घिरे हुए, मदजल बहानेवाले काले हाथी, मीठे पत्ते खानेवाली बड़ी हथिनियों के मुँह में ( अपनी सूँड़ से ) जल उठा-उठाकर भर रहे हैं। उस दृश्य को देखते हुए वे खड़े रहे।

उस समय प्रेम नामक अपूर्व आभरण से सुशोभित अनुज ( लक्ष्मण ) ने प्रभु से कहा—दिन व्यतीत हो गया। अतः, हे आर्य। इस सरोवर के दिव्य जल में स्नान करके, आप अपनी कीर्त्ति के समान ही सर्वत्र व्याप्त हुए भगवान् के चरणो की वंदना करें।

राजा ( श्रीराम ) उस स्थान से बड़ी कठिनाई से हटे और तरंगों से भरे उस सरोवर के सुरभिपूर्ण जल में ऐसे स्नान करने लगे कि पर्वत-जैसे मत्तगज भी उन ( राम ) की शोभा को देखकर लज्जित हो गये।

ज्योंही प्रभु उस जल में निमग्न हुए, त्योंही उनकी वियोगाग्नि की ज्वाला से वह जल ऐसा तप्त हो गया, जैसे लुहार ने खूब तपाये हुए लोहे को शीतल जल में डुबो दिया हो।

हंस का रूप धारण कर ( ब्रह्मा के प्रति ) दुर्गम वेदों का उपदेश देनेवाले उन ( विष्णु के अवतार, रामचन्द्र ) ने स्नान करके अनादि वेदो में उक्त विधि से चक्रधारी ( विष्णु ) के प्रति अर्घ्य-प्रदान किया, फिर मुनियो से आवासित एक वन में जाकर ठहरे। उष्णकिरण ( सूर्य ) भी डूब गया।

संध्या-रूपी स्त्री आ पहुँची। किन्तु, कञ्चुक से बद्ध स्तनवती (सीता ) नही आई। उस देवी के वियोग में रहकर अनुपम नायक (राम ) उसका स्मरण करके विकल हो रहे थे। तब शीतल जल से पूर्ण समुद्र से चन्द्रमा आकाश-मध्य यो उठ आया, मानो तप्तकिरण ( सूर्य ) ही हो।

उस समय विविध कमल-पुष्प बंद हुए, पक्षी उद्यानो मे अपने-अपने नीड़ो में बद हुए। मृग के कार्य-कलाप बंद हुए। वृक्षो के पत्ते बंद हुए। शुको का बोलना बंद हुआ। कलापियों के नृत्य बंद हुए। कोकिल के गान बद हुए। हाथियों के गर्जन भी बंद हुए।

धरती के प्राणी निद्रित हुए। पर्वत के प्राणी निद्रित हुए। स्वच्छ जल से भरे सरोवर निद्रित हुए। भूत भी पलक मँदने लगे। किंतु, क्षीर-सागर में निद्रा करनेवाले दोनों हाथी[1] अपनी आँखें बद न कर सके।

विमल स्वरूप ( राम ) को दारुण वेदना से मुक्त करते हुए उष्णकिरण पुनः

---

१. राम और लक्ष्मण—दोनों, विष्णु के अंश माने जाते हैं। अतः, उन दोनों को क्षीरसागर में निद्रा करनेवाले हाथी कहा गया है।—अनु०

समुद्र से उदित हुआ। रात्रि भी जो अंतहीन-सी लगती थी, अब उसी प्रकार मिट गई, जिस प्रकार स्वच्छ आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर धूम एवं कीचड के पुंज-जैसे पाप मिट जाते हैं। कमल-पुष्पों का मुख विकसित हुआ।

गन्ने पेरने के कोल्हू से बहनेवाले रस-प्रवाह की ध्वनि से युक्त (कोशल) देशवासी, वे दोनों (राम-लक्ष्मण) क्षीरसागर से उत्पन्न अमृत के समान मधुरवाणी तथा हरिण-समान नयनों से युक्त देवी का अन्वेषण करते हुए, समुद्र-जैसे वनों से घिरे पर्वतों, तथा वहाँ के अरण्यों के दीर्घ मार्गों को पार करके, त्वरित गति से आगे चले। (१–४२)

●

## अध्याय २

## हनुमान् पटल

उस प्रकार चलकर राम-लक्ष्मण, उस बड़े ऋष्यमूक पर्वत पर, जिसपर दीर्घकाल तक शबरी निवास करती थी, सुगमता से शीघ्र चढ़ गये। तब उस पर्वत पर स्थित महिमामय वानराधिप (सुग्रीव) ने उन्हें देखकर सोचा कि वे कोई शत्रु हैं और भयभीत और कर्त्तव्य-विमूढ होकर अपने प्राण लेकर भागा और एक कंदरा में जा छिपा।

उस सुग्रीव ने (हनुमान् से) कहा कि 'हे वायु के वीर पुत्र! दृढ धनुष धारण करनेवाले महान् पर्वत-सदृश वे दोनों हमारे वैरी वाली की आज्ञा से ही आये हैं। तुम जाकर देखो। सत्य को पहचानो।'—यह कहकर वह बिना कुछ जाने-बूझे ही अति व्याकुल हो, कंदरा के भीतर जा छिपा।

तार, नील, तेजस्वी हनुमान् आदि वीरों के साथ, सूर्यपुत्र (सुग्रीव) मेरु पर्वत समान उस ऊँचे पर्वत के एक ओर जा छिपा। इधर हार-भूषित वक्षवाले वे दोनों (राम-लक्ष्मण) यह सोचकर उस पर्वत पर चढ़े कि वहाँ सीता का अन्वेषण करने का कोई उपाय विदित होगा।[1]

वे सीता का अन्वेषण करने में तत्पर हुए। इतने में कुछ वानरों ने उस पर्वत-कंदरा में जाकर सुग्रीव से कहा - वे दोनों वाली की आज्ञा से आये हुए नहीं हो सकते, क्योंकि वे बहुत दुःखी हैं, व्याकुलमन और शिथिलप्राण हैं। तब हनुमान् ने अपने (दिव्य) ज्ञान से विचार किया।

---

१. अरण्यकांड में कबंध-वध के प्रसंग में यह उल्लिखित है कि कबंध मरकर गंधर्व का रूप लेता है और राम से यह कहता है कि आप दक्षिण दिशा में जायें और ऋष्यमूक पर्वत पर सूर्यपुत्र के साथ मैत्री करें। उनसे सीता के अन्वेषण में आपको सहायता मिलेगी। रामचन्द्र उसी बात का स्मरण करके इस पर्वत पर चढ़ते है। —अनु०

उस समय, जब वे वानर व्याकुल तथा भयभीत हो साहस छोड़कर खड़े थे, तब हनुमान् ने सोच-विचार करके उन्हे उसी प्रकार सात्वना दी, जिस प्रकार लंबी जटायुक्त रुद्रदेव ने (क्षीरसागर के मथन के समय) हलाहल विष को देखकर डरे हुए देवो तथा दानवो के भय को दूर करते हुए उन्हे सात्वना दी थी।

अंजनि-पुत्र एक ब्रह्मचारी का रूप धारणकर नील पर्वत-सदृश रामचन्द्र के निकट जा पहुँचा और एक स्थान मे छिपकर उन्हे देखकर सोचने लगा— ये तपस्वी के वेष मे हैं, किंतु हाथों मे धनुष धारण किये हैं और कठोर क्रोध से भरे लगते हैं। फिर, विवेक से विचार करने लगा—

क्या इन्हे, देवो के अद्वितीय नायक त्रिमूर्त्ति माने ? किन्तु वे तो तीन हैं, जबकि ये दो ही हैं , ये धनुर्धारी भी हैं। इनकी समता करनेवाले ससार में कौन हो सकते हैं ? इनके लिए असाध्य कार्य ही क्या हो सकता है ? उनके स्वभाव को मै किस प्रकार सरलता से पहचान सकता हूँ ?

इन्हें देखने से ऐसा लगता है, जैसे चित्त की किसी व्यथा से ये शिथिल हो। ये ऐसे नही लगते कि किसी सामान्य विषय पर ये चिंतित हो सकते हो। क्या ये स्वर्गवासी देव हैं ? पर नही, ये तो मानव-रूप में हैं। अपने मन को मुग्ध करनेवाली किसी वस्तु के अन्वेषण में अनन्यचित्त होकर व्यस्त हैं।

ये धर्म एवं चारित्र्य को ही सर्वस्व माननेवाले हैं। इनका यहाँ आगमन अन्य किसी उद्देश्य से नही हो सकता। ये दोनो ओर किसी ऐसी वस्तु को ढूँढते जा रहे हैं, जो इनके लिए अलभ्य अमृत-सदृश है और बीच में ही खो गई है।

ये कोप नामक दोष से हीन हैं। करुणा के समुद्र हैं। ( पर ) हित को छोड़कर दूसरा व्यापार जानते नही हैं। ऐसी गंभीर आकृतिवाले हैं कि इन्हे देखकर इन्द्र भी सहम जाय। ऐसे चरित्रवाले हैं कि धर्मदेवता भी इनके सम्मुख परास्त हो जाय और ऐसे पराक्रम-वाले हैं कि यम भी त्रस्त हो जाय।

अपने उत्तम गुणो के कारण, अपना उपमान स्वय ही बननेवाले, अन्य उपमान से रहित उस ( हनुमान् ) ने इस प्रकार अनेक तरह से विचार करके दोनो को ध्यान से देखा। फिर, उनके प्रति अधिक प्रेम (भक्ति) से खड़ा रहा, जैसे वह अपने बिछुडे हुए प्रियजनो को देख रहा हो।

फिर, हनुमान् सोचने लगा—बडे मुखवाले, भय-रहित हाथी इनको देखकर ऐसे खडे हैं, जैसे अपने बच्चों को देख रहे हो ( अर्थात्, इनके प्रति प्रेम से भरे हैं )। बिजली को भी ( अपनी उज्ज्वलता से ) मंद करनेवाले दाँतो से युक्त सिंह, बाघ-जैसे हिंस्र प्राणी भी इनके प्रति आकृष्ट होकर इनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। भूत भी उनका आदर करते हुए द्रवितमन हो जाते है। तो, उनके संबंध मे विविध प्रकार की बाते सोचकर व्याकुल क्यो होना चाहिए ?

मयूर आदि पक्षी भी इनकी मनोहर देह पर धूप लगने से ( मन मे ) पिघल उठते हैं और वितान-जैसे अपने पखो को फैलाकर और प्राचीर-जैसे उन्हे चारो ओर से घेरकर

साथ-साथ चल रहे हैं। गगन की घटाएँ मंदगति से इनके साथ चलकर, सर्वत्र वर्षा-बिंदुओं को घने रूप में छिड़क रही हैं।

धूप में तपकर आग-जैसे गरम कंकड़, इनके स्वच्छ रक्त-कमल जैसे चरणों का स्पर्श पाते ही मधु-भरे पुष्पों के समान मृदुल हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ ये जाते हैं, वहाँ-वहाँ के वृक्ष एवं पौधे वन्दना-सी करते हुए झुक जाते हैं। अतः, कदाचित् ये ही धर्म-देवता हैं।

अथवा, क्या ये वही भगवान् हैं, जो ( जीवों के ) मायाजन्य चिरकर्म बंधन को मिटाकर, जन्मदुःख से मुक्त करके, दक्षिण दिशा के यमलोक के बदले उन्हें अपुनरावृत्ति के ( मोक्ष के ) मार्ग में भेजते हैं ? इन्हें देखकर ( मेरे मन में ) अपार प्रेम उमड़ रहा है। मेरी हड्डियाँ भी पिघल रही हैं। मेरे मन में इस प्रेम के उत्पन्न होने का क्या कारण है ?

जब सन्मार्गगामी मनवाला हनुमान् इस प्रकार सोच रहा था, तब वे दोनों ( राम-लक्ष्मण ) उधर ही आ पहुँचे। तब हनुमान् उनके सम्मुख गया और बोला—आपका आगमन शुभप्रद हो ! करुणामूर्त्ति ( राम ) ने उससे पूछा—तुम कौन हो ? कहाँ से आ रहे हो ? हनुमान् कहने लगा—

हे सजल मेघ-सदृश मनोहर आकारवाले ! स्त्रियों के लिए विष बननेवाले ( अर्थात्, स्त्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करके उन्हें प्रेम से पीड़ित करनेवाले ) तथा हिम से अम्लान रक्त-कमल की समानता करनेवाले प्रफुल्ल नयनों से युक्त ! मैं वायु का पुत्र हूँ और अंजना के गर्भ में उत्पन्न हूँ। मेरा नाम हनुमान् है।

उस ( हनुमान् ) ने, जिसकी यश का भार वहन करनेवाली भुजाएँ ऐसी हैं कि कुलपर्वत भी उन्हें देखकर लज्जित हो जायँ, कहा—हे प्रभु ! इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहनेवाले, उज्ज्वल सहस्रकिरण ( सूर्य ) के पुत्र की सेवा में मैं रहता हूँ। आपको आते हुए देखकर वह व्यग्र हुआ और आपके बारे में जानने के लिए मुझे भेजा है।

(हनुमान् के) वह वचन कहते ही, दृढ धनुर्धारी चक्रवर्त्ती कुमार (राम) ने मन में कुछ विचार करके यह जान लिया कि इस (हनुमान्) से उत्तम और कोई नहीं है। पराक्रम, शास्त्र-संपत्ति, ज्ञान तथा अन्य सभी गुण इसमें अभिन्न रूप में वर्त्तमान हैं। फिर, वे ( लक्ष्मण से ) बोले—

हे धनुर्भूषित कंधेवाले वीर ( लक्ष्मण ) ! कोई कला ( शास्त्र ), समुद्र-सदृश वेद, ऐसा कहीं भी नहीं है, जिसे इस ( हनुमान् ) ने प्रशंसनीय रूप में अधीत न किया हो। इसका गंभीर ज्ञान इसके वचनों से ही प्रकट होता है। मधुर भाषा से संपन्न यह क्या ब्रह्मदेव है ? या वृषभवाहन ( शिव ) है ? नहीं तो यह कौन है ?

हे भाई ! इसका ( यथार्थ ) स्वरूप एक साधारण ब्रह्मचारी का नहीं है। किन्तु, मुझे निश्चित रूप से यह ज्ञात हो रहा है कि यह सर्वलोकों के लिए आधार बन सके, ऐसे पराक्रम तथा अत्यधिक महिमा से संपन्न है। इसकी सत्यता तुम आगे देखोगे ( पहचानोगे )। अतिसुन्दर प्रभु ( राम ) ने इस प्रकार कहा—

और, इस संसार के निवासी मुनियों, तथा ( स्वर्ग के निवासी ) देवताओं में

कौन-ऐसा है, जो इसकी जैसी वाक्पटुता रखता हो ? समस्त वेदो मे पारगत इस ब्रह्मचारी के वचनो के सम्मुख सर्वश्रेष्ठ त्रिमूर्त्तियो का महान् कौशल भी कुछ नही है।

फिर ( रामचन्द्र ने हनुमान् से ) कहा—उस कपिकुलनायक को, जिसके सबध मे तुमने कहा है, देखने की इच्छा से ही हम यहाँ आये हैं। यहाँ तुमसे साक्षात् हुआ है। तुम्हारे मधुवचन के सदृश ही, सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त उस ( कपिराज ) को हमे दिखाओ।

( तब हनुमान् ने ये वचन कहे—) भूधर-सदृश कधोवाले वीरो। इस विशाल धरती पर, जो आठो दिशाओं के ( चक्रवाल ) पर्वत-पर्यंत फैली है, आप लोगो के समान पवित्र कौन हो सकते हैं ? यदि आप ही उस ( कपिराज ) से, बड़े आदर के साथ मिलने आये हैं, तो उसका संयम के साथ अर्जित किया हुआ तप-रूपी धन कितना अत्यधिक है ?

पर्वत से भी अधिक पुष्ट भुजाओवाले ( हे वीरो )। प्रेमहीन इन्द्र-पुत्र ( वाली ) के क्रुद्ध होने से रवि-पुत्र ( सुग्रीव ) एकाकी दुःख भोगता हुआ, निर्झरो से युक्त इस पर्वत पर आकर, मेरे साथ ( छिपकर ) रहता है। अब आप ऐसे आये हैं, जैसे उसकी सपत्ति ही आ गई हो।

( धार्मिक व्यक्ति ) इस विशाल ससार के सब लोगो के सभी अभीष्ट पदार्थो का दान देते हुए यज्ञ करते हैं तथा अन्य ( तप आदि ) कार्य भी करते हैं, इस प्रकार वे अनादि धर्म को स्थिर रखते हैं। किन्तु, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो मारने के लिए यम के समान आये हुए अपने कुल-शत्रु से डरकर, शरण मे आया हो, उसको अभयदान देने से भी श्रेष्ठ धर्म और कोई हो सकता है ?

यह कहना कि आप हमारी रक्षामात्र करेंगे, बहुत छोटी-सी बात होगी ; क्योंकि आप अपलक देवताओ से लेकर सब चर-अचर पदार्थों से भरे हुए, तीन प्रकार से बने हुए सप्तलोको की भी रक्षा करने मे समर्थ हैं, मुरुगन (कार्त्तिकेय) के समान सौंदर्य तथा पराक्रम से युक्त हैं। आपकी शरण में आने से बढ़कर हमारा और क्या भला हो सकता है ?

सत्य ( रूपी शस्य ) के लिए ( उसकी रक्षा करनेवाले ) घेरे के जैसे रहनेवाले उस हनुमान् ने कहा—हे वीर। अपने नायक को मैं यह बताऊँगा कि आप कौन हैं। अतः, आप हमसे कहें ( कि आप कौन हैं )। तब वीर-ककण से भूषित लक्ष्मण, ठीक विचार करके, किंचित् भी सत्य से स्खलित न होकर, अपना सारा वृत्तात स्पष्ट रूप मे कहने लगे—

सूर्यवश में उत्पन्न आर्य चक्रवर्त्ती, जो एक श्वेतच्छत्रधारी हो, सर्वत्र अपने उज्ज्वल शासन-चक्र को चलाते थे, जिन्होंने अपने पराक्रम से असुरो के प्राण पी डाले थे, अनेक यज्ञो को सपन्न करके स्वर्गलोक पर भी अपना प्रभाव डाला था, जो करुणामय दृष्टि-युक्त थे;

जिन्होंने मेघ के सदृश मद वर्षा करनेवाले, दृढ दंतवाले, लाल बिंदियोवाले पर्वत-सदृश श्रेष्ठ गज पर आरूढ होकर अपने दृढ धनुष को लेकर ऐसा युद्ध किया था, जिससे मदमत्त असुर विध्वस्त हो गये थे, जो सहजात ज्ञान और राजनीति से युक्त थे, जिनकी समता मनुप्रभृति नरेशो मे कोई भी नही कर सकता था, ऐसे दशरथ नामक वह ( चक्रवर्त्ती ) स्वर्ण-प्रासादो तथा विशाल प्राचीरो से शोभायमान अयोध्या के राजा थे।

उन्हीं चक्रवर्ती के पुत्र हैं, यह तेजस्वी पुरुष, जो अपनी माता (कैकेयी) की आज्ञा से अपने स्वत्वभूत राज्य-संपत्ति को अपने अनुज को प्रेम से देकर बड़े अरण्य में प्रविष्ट हुए हैं, इन पुरुष का नाम है, राम। दीर्घ धनुष के प्रयोग में कुशल इस वीर पुरुष का किंकर हूँ मैं।

इस भाँति, रामचन्द्र के जन्म से प्रारंभ कर रावण के मायामय क्षुद्रकार्य (सीता-हरण) तक की सारी कथाएँ, किंचित् भी त्रुटि के बिना, बताईं। सारा वृत्तांत सुनकर वायु-कुमार अत्यंत आनंदित हुआ और (राम के) चरणों पर प्रणत हुआ।

यों उसके प्रणाम करने पर, राम ने उससे कहा—वेद-शास्त्रों के ज्ञाता हे ब्रह्मचारिन्! तुमने यह कैसा अनुचित कार्य किया (ब्राह्मण होकर मुझ क्षत्रिय के चरणों पर क्यों नत हुए)? यह सुनकर बलवान्, सुन्दर तथा विशाल भुजावाले वीर मारुति ने कहा—पंकज-समान रक्तनेत्र तथा चक्रधारी हे वीर! यह दास कपिकुल में उत्पन्न व्यक्ति है।

फिर, धर्म को अनाथ होने से बचानेवाला वह (हनुमान्), अपना वास्तविक रूप लेकर इस प्रकार खड़ा हुआ कि स्वर्णमय मेरु पर्वत भी उसकी भुजाओं की समता नहीं कर सकता था। मानो, वेद तथा शास्त्र ही बड़ा आकार लेकर खड़े हो गये हों। सभी बड़े-बड़े पदार्थ उनके सम्मुख छोटे लगने लगे। तब उसे देखकर विद्युत्-जैसे धनुष को धारण करनेवाले वे वीर (राम-लक्ष्मण) विस्मय करने लगे।

तीनों लोकों को अपने चरण से मापनेवाले पुंडरीक-नयन, चक्रधारी (विष्णु के अवतार, श्रीरामचन्द्र), स्वर्णमय उज्ज्वल कुंडलों से भूषित उसके मुख को नहीं देख पाते थे (अर्थात्, हनुमान् उतना ऊँचा हो गया था)। तो, अब उसके विश्वरूप का वर्णन किस प्रकार कर सकते हैं, जिसने सूर्य से प्राचीन शास्त्रों को अधीत किया था।

ताल से पृथक् हुए कमल-सदृश विशाल नयनवाले राम ने अपने भाई से कहा—हे तात! यह मोक्ष-पद ही इस वानर का रूप लेकर उपस्थित हुआ है, जो क्षुद्र गुणों से रहित होकर (अर्थात्, केवल सत्त्वगुणमय होकर) अमद प्रकाश से युक्त, नित्य वेदों एवं दोष-रहित ज्ञान से भी दुर्ज्ञेय है।

(फिर राम ने लक्ष्मण से कहा—) इस महानुभाव से भेंट हुई। एक अच्छा साधन हमने प्राप्त किया (अर्थात्, सीता के अन्वेषण के लिए अच्छा साधन मिला है)। अब हमारी विपदा मिट जायगी। सुख प्राप्त होगा। हे धनुर्धर! यदि यह महावीर, कपिकुलनायक (सुग्रीव) की आज्ञा का पालक है, तो न जाने वह स्वयं किस प्रकार के प्रभाव से संयुत है।

यों आनंदित होकर, प्रसन्नवदन रहनेवाले, पर्वत-सम पुष्ट कंधोंवाले वीरों (राम-लक्ष्मण) को देखकर वानर-श्रेष्ठ ने निवेदन किया—मैं अभी जाकर उस (सुग्रीव) को ले आता हूँ। हे पराक्रमशीलो! किंचित् समय तक आप यहीं रहें और उनकी अनुमति पाकर वह त्वरित गति से चला गया। (१-३८)

●

# अध्याय ३

## सख्य पटल

मंदर पर्वत-सदृश भुजाओ तथा दीर्घ यश से युक्त हनुमान् अपने ज्ञान से, मनुवश में उत्पन्न उस ( राम ) के सद्गुणो का चिंतन करता हुआ चला और युद्धोचित क्रोधयुक्त राजा ( सुग्रीव ) के समीप जाकर बोला—मै, तुम्हारा कुल और यह लोक, तीनो तर गये।

सुरभित हारधारी, अपार बल से संपन्न वाली नामक वीर के प्राण-हरण के लिए काल आ गया है। हम दुःख-सागर के पार पहुँच गये—अंतरिक्षगामी ( सूर्य ) के पुत्र ( सुग्रीव ) के प्रति इस प्रकार कहा और हलाहल विष पीनेवाले ( रुद्र ) के समान अपूर्व नृत्य करने लगा।

वे ( राम-लक्ष्मण ) इस धरती के रहनेवाले हैं। स्वर्ग के हैं ( अर्थात्, सर्वत्र इनका प्रभाव है ) । वे ( हमारे ) मन में रहते हैं, क्रियाओं मे रहते हैं, वचनो में रहते हैं और नेत्रो मे रहते हैं। वे शत्रुवान् हैं ( अर्थात्, उनके कुछ शत्रु भी हैं ) और शत्रुओं के द्वारा किये गये अनेक घावों से युक्त लोगो के अपूर्व प्राणों के लिए अमृत-समान भी है।

वे अपने पराक्रम से समस्त लोको को एकच्छत्र की छाया में लानेवाले विजयी शासक, मुखपट्टधारी हाथियों की सेनावाले राजाओ से वंदित चरणवाले, दशरथ के श्रीकुमार हैं। वे महान् ज्ञानवाले हैं। अतिसुन्दर हैं और अनायास ही तुम्हे अपना राज्य दिलाकर तुम्हारी सहायता कर सकनेवाले हैं।

वे नीतिमान् हैं। मधुर करुणा से भरे हैं। सन्मार्ग से कभी न हटनेवाले हैं। सबसे अधिक महिमावान् हैं। विना सीखे ही, स्वय उत्पन्न अपार ज्ञान से सपन्न हैं। महान् कीर्त्तिमान् हैं। गाधिसुत ( विश्वामित्र ) के द्वारा प्रदत्त समुद्र-सदृश विशाल दिव्य अस्त्र-समुदाय के स्वामी हैं।

( उनमे से ज्येष्ठ वीर ने ) बडे क्रोध से युक्त, शूलधारी ताडका को अपने बाण से निहत किया। उसके क्रूर कर्मवाले बेटे ( सुवाहु ) को मारा। अपने चरण की रज से एक बड़े प्रस्तर के रूप मे पड़ी हुई अहल्या को दुष्प्राप्य आत्म-स्वरूप प्रदान किया।

उत्तम सामुद्रिक लक्षणो से युक्त उन वीरो मे ज्येष्ठ ( राम ) ने मिथिला नगरी मे जाकर, उस शिवजी के महान् धनुष का भग किया था, जिन ( शिव ) ने अंधकार के नाम तक को मिटा देनेवाले उज्ज्वल किरण-समुदाय से युक्त सूर्यदेव के दाँतो को गिरा दिया था।[1]

केसर से शोभायमान अश्ववाले दशरथ का वर प्राप्त करके अपार पातिव्रत्य से सपन्न छोटी माता ( कैकेयी ) ने उन्हे ( राम को ) आदेश दिया, तो ( उसे मानकर ) शंख-भरे समुद्र से घिरी धरती का सारा राज्य अपने छोटे भाई को देकर वे यहाँ आये हैं।

---

१. यह कहानी पुराण में प्रसिद्ध है कि दक्षयज्ञ के समय शिवजी ने दक्ष को मारकर उसके यज्ञ का विध्वंस किया था और उस यज्ञ में आये सब देवताओ का अपमान किया था। उस समय उन्होने पूषा ( सूर्य ) को तमाचा मारकर उसके दाँतों को गिरा दिया था।—अनु०

इस राघव ने, ससार को शत्रुहीन बनानेवाले, ज्वालामय परशु से युक्त उस राम के असीम बल को मिटा दिया। क्रोध करके आक्रमण करनेवाले अंधकार-सदृश क्रूर विराध को मिटा दिया।

समुद्र-जैसी सेनावाले खर आदि करुणाहीन राक्षसो के शिरो को अपने धनुष को झुकाकर ( बाणो का प्रयोग कर ), काट दिया। वह सब दिशाओ मे रहनेवाले शत्रुओ को मिटानेवाला है। उत्तम देव शकर आदि से भी अधिक पराक्रम से युक्त है।

हे राजन्! यह ( मानव ) शरीर धारण कर आया हुआ पुरुष, दिव्य देवताओं से वदित चक्रधारी ( विष्णु ) ही हैं। तुम उस महानुभाव से मित्रता कर लो। यह मायामृग बनकर आये हुए राक्षस मारीच के लिए भयंकर यम बना था।

जो कवंध अपने दीर्घ करो को सब दिशाओ में फैलाकर, बडे क्रोध के साथ सब प्राणियो का विनाश करता था, उसे मारकर, उसके भारी शरीर को गिराकर, उसी प्रकार उसको मोक्षपद में जाने दिया, जिस प्रकार उसने देवताओ के द्वारा पूजित शबरी को ( मोक्ष पद ) दिया था। उसकी उस महिमा का वर्णन हम-जैसे लोग किस प्रकार कर सकते हैं?

हे रविकुमार। मुनि तथा दूसरे लोग अनादिकाल से इनके आगमन के लिए अपनी-अपनी शक्ति-भर तपस्या करते रहे और कर्म-बंधन से मुक्त होकर मोक्षपद को प्राप्त कर गये। मै कैसे उन ( राम-लक्ष्मण ) का बखान कर सकता हूँ?

हे प्रभो! बुद्धिहीन राक्षसराज उनकी पत्नी को माया से हरण कर भयंकर अरण्य-पथ से ले गया। उसी देवी का अन्वेषण करते हुए ये वीर, तुम्हारे सत्कर्म और तुम्हारी निष्कपटता के कारण तुम्हारी मित्रता प्राप्त करने की इच्छा से आये हैं।

हे ज्ञान-संपन्न। उनकी करुणा हमारी ओर है। हमारे प्रतापवान् शत्रु वाली की मृत्यु निकट आ गई है। अतः, उनसे सख्य करने के लिए चलो—प्रसिद्ध नीतिशास्त्रों की रीति को जानकर मंत्रणा देनेवाले ( हनुमान् ) ने यो कहा।

अपने सूक्ष्म ज्ञान से इस प्रकार के वचनो को ठीक-ठीक विचार कर सुग्रीव ने सब कुछ समझ लिया। फिर, यह कहकर कि हे स्वर्णपुज-सदृश। जब तुम मेरे साथी बने हो, तब मेरे लिए कौन-सा कार्य असाध्य है? 'चलो'—यह कहकर अपने ही सदृश रहनेवाले ( अर्थात्, पत्नी से वंचित ) राम के चरणो के समीप आया।

सूर्यपुत्र ने प्रफुल्ल पकज-पुष्पो से भरे, काले मेघ से ढके हुए और उदीयमान चंद्रमा से शोभित मरकत-गिरि की समता करनेवाले ( राम ) के उस वदन को, जो सुन्दर कुडलों से रहित होकर भी देखने में अति मनोहर था, तथा उनके शीतल नयनो को देखा।

( सुग्रीव ने राम को ) देखा। देखता हुआ देर तक खड़ा रहा और सोचने लगा कि क्या अवर्णनीय कमलासन ( ब्रह्मा ) की सृष्टि मे रहनेवाले प्राणियो का, आदिकाल से अबतक किया हुआ, समस्त भाग्य पुंजीभूत होकर इन दोनो अत्युन्नत स्कधवाले वीरों के आकार मे उपस्थित हुआ है?

अथवा, देवो के अधिदेव आदि भगवान् ( विष्णु ) ने ही अपना रूप बदलकर इस अवतार मे मनुष्य-रूप धारण किया है। इस कारण से मनुष्य-जन्म ने गगाधारी जटा-

वाले शिव और ब्रह्मा प्रभृति के दिव्य जन्मों को भी जीत लिया है—यों सुग्रीव ने सोचा।

इस प्रकार सोचकर, अधिकाधिक उमड़ते हुए प्रेम-रूपी तरंगायमान समुद्र का पार न पाता हुआ, अपने आनंदपूर्ण नयनयुग्म से उस अनघ राम को देखता हुआ उनके निकट आ पहुँचा। उस महानुभाव ने प्रेम के साथ अपने रक्तकमल-सदृश करों को पसार-कर कहा—यहाँ आकर आराम से बैठो।

जिसके चित्त ने कामना को समूल मिटा दिया था, वह अनघ ( राम ) तथा कपिकुल के राजा (सुग्रीव), अमावास्या के दिन परस्पर मिले हुए चंद्र तथा सूर्य के सदृश थे, मानों, वे अक्षीण बलवाले राक्षस नामक अंधकार को मिटाकर पुंजीभूत धर्म को सुस्थिर रखने के लिए उपयुक्त समय पर परस्पर मिले हों।

मित्र बनकर रहनेवाले वे दोनों वीर ( राम और सुग्रीव ) अभिलषित कार्य की पूर्त्ति के लिए संयुक्त—पूर्व-अर्जित पुण्य एवं वर्त्तमान में किये जानेवाले प्रयत्न के समान थे और क्रूर राक्षस-रूपी पाप का उन्मूलन करने के लिए सम्मिलित हुए ( आचार्यों ने ) श्रुत विद्या एवं यथार्थ विवेक के समान थे।

जब वे दोनों इस प्रकार आसीन हुए, तब सूर्यपुत्र ने रामचन्द्र को देखकर कहा—हे सपन्न ! सब लोकों में अत्युत्तम कहलाने योग्य अनेक सद्गुणों से पूर्ण तुमसे मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। अतः, मुझसे बढ़कर पापनाशक तपस्या करनेवाले व्यक्ति और कौन हैं ? यदि स्वयं भाग्य ही कुछ देना चाहे, तो उसके लिए असंभव क्या हो सकता है ?

तब राम ने कहा—हे उत्तम ! दोष-रहित तपस्या से संपन्न शबरी ने कहा था कि तुम इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हो। यह सोचकर कि हमारी बड़ी विपदा तुमसे दूर हो सकती है, हम यहाँ आ पहुँचे हैं। हमारा दुःख तुमसे ही दूर होगा। तब कपिकुल-नायक ने कहा—

मेरा अग्रज, मुझे छोटे भाई को मारने के लिए अपने बलिष्ठ कर को ऊपर उठाये दौड़ा और मुझे इस संसार में सर्वत्र और संसार के परे रहनेवाले तपोमय प्रदेश में भी खदेड़ता रहा। तब मैं केवल इस पर्वत को अपना दुर्ग बनाकर बच गया। यहीं पर अपने प्यारे प्राणों को रखे जी रहा हूँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करना आपका धर्म है।

तब, उस कपिकुल के राजा को कृपा के साथ देखकर, राम ने ये वचन कहे—तुम्हारे सुख-दुःखों में से जो व्यतीत हो चुके हैं, उन्हें छोड़कर अब आगे होनेवाले तुम्हारे सब दुःखों को मैं दूर करूँगा। अब से होनेवाले सब सुख-दुःख, तुमको और मुझे एक समान होंगे ( अर्थात्, तुम्हारे सुख-दुःख मेरे सुख-दुःख होंगे )।

अब अधिक क्या कहूँ ? स्वर्ग में या धरती में, तुमको दुःख देनेवाले मुझे दुःख देनेवाले होंगे। दुष्टजन ही क्यों न हो, यदि वे तुम्हारे मित्र हैं, तो मेरे भी मित्र होंगे। अब से तुम्हारे लोग मेरे लोग हैं। मेरा प्यारे बन्धुवर्ग तुम्हारे भी बन्धु हैं। तुम मेरे प्राण-समान हो।

तब वानर-सेना यह सोचकर कि अनघ ( राम ) के वचन सब कुलों के व्यक्तियों के लिए वेदवाक्य से भी अधिक सत्य प्रमाणित होंगे, आनन्द से कोलाहल कर उठी। अंजनि-

पुत्र की देह पुलकित हो उठी। देवता लोग पुष्प-वर्षा करने लगे। मेघ वर्षा की बूँदें बरसाने लगे।

तब अंजना का सिंह-सदृश पुत्र उठकर ( राम के ) चरणों पर नत हुआ और निवेदन किया—हे स्तंभ-समान पुष्ट स्कंधवाले चक्रवर्त्ती कुमार। आपके मित्र ( सुग्रीव ) और आप चिरकाल तक जीते रहें। इस समय मेरी इच्छा है कि आप दोनों अपने आवास में ( अर्थात्, सुग्रीव के निवास-स्थान में ) चलकर आराम से रहें। आपकी इच्छा क्या है। तब राम ने कहा—तुम्हारा विचार उत्तम है।

रविपुत्र चल पड़ा! दोनों वीर भी चल पड़े। वानर-सिंह ( हनुमान् ) भी अन्य वानरों के साथ चल पड़ा। तब धर्म-देवता भी उनका अनुसरण करके चल पड़ा और आनंद के साथ उन्हें अशीर्वाद देता रहा। वे लोग पुन्नाग, नरद आदि वृक्षों तथा कमलमय सरोवर से युक्त होने से भोग-भूमि ( अर्थात्, स्वर्ग ) को भी निंदित कर देनेवाले नवपुष्पों से भरे उद्यान में जा पहुँचे।

( उस उद्यान में ) चंदन और अगरु के वृक्ष अधिक संख्या में थे। स्थान-स्थान पर स्फटिक-शिलाओं के वितान तने हुए थे, जो ऐसे लगते थे, मानो स्वच्छ जल ही खड़ा कर दिया गया हो। नूतन पुष्पों से पूर्ण सरोवरों के दोनों तटों पर, दिव्य सुन्दरता से युक्त वृक्षों से, जलक्रीडा करनेवाली अप्सराओं के झूले लग रहे थे—इस प्रकार की शोभा से ( वह उद्यान ) युक्त था।

वहाँ के रत्नों की कांति के सम्मुख सूर्यातप और चंद्र की रजत-चन्द्रिका भी उसी प्रकार प्रकाशहीन हो जाती थी, जिस प्रकार प्रगाढ शास्त्रज्ञान से युक्त विद्वानों के सम्मुख शास्त्र-ज्ञान से हीन व्यक्ति प्रकाशहीन हो जाते हैं।

इस प्रकार के सुन्दर उद्यान में, राम-लक्ष्मण तथा कपिराज एक शुद्ध पुष्पमय आसन पर आसीन होकर स्नेहालाप करने लगे।

वानरों ने फल, कंद, शाक तथा अन्य शुद्ध रसों से पूर्ण भोजन ला दिया और पवित्र प्रभु ने स्नान आदि से निवृत्त होने के उपरांत सुखासीन होकर उनका आहार किया।

इस प्रकार, भोजन समाप्त करने के पश्चात्, सत्य स्नेह से पूर्ण होकर वे सुग्रीव के साथ बैठ गये और कुछ समय तक विचार करके सुग्रीव से पूछा—क्या तुम भी गृहस्थ-जीवन के लिए अनुकूल सहायक अपनी पत्नी से वियुक्त हो गये हो?

जब राम ने ऐसा प्रश्न किया, तब मारुति पर्वत के समान उठ खड़ा हुआ और अपने हाथ जोड़कर (राम से) निवेदन किया—हे स्थिर धर्मवाले। इस दास को कुछ कहना है। आप सावधानी से सुनें।

वाली नामक एक असीम पराक्रमी वानर वीर रहता है जो, चतुर्वेद-रूपी समुद्र के लिए किनारे जैसे रहनेवाले, अनादि ( कैलास ) पर्वत पर निवास करनेवाले त्रिशूलधारी ( शिव ) के वर से अत्यन्त प्रबल हो गया है।

वह इतना बलशाली है कि पूर्वकाल में उसने विख्यात देवों तथा असुरों के सम्मुख

क्षीरसागर को अकेले ही इस प्रकार मथ डाला था कि घूमनेवाला मंदर पर्वत और वासुकि नर्ग के शरीर घिस गये थे।[1]

पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन—इन चारों भूतों की समस्त शक्ति उस (वाली) मे एकत्र हुई है। वह सप्त समुद्रो से परे स्थित चक्रवाल पर्वत से इस पर्वत तक फाँद सकता है।

कोई उसके साथ युद्ध करने के लिए उसके निकट आ जाय, तो युद्ध करने के लिए आये हुए व्यक्ति के प्राप्त वरों का अर्धभाग उस ( वाली ) को प्राप्त हो जाता है।

उस ( वाली ) के वेग के आगे पवन भी नही वह सकता। उसके वक्ष में स्कंद का बरछा भी धँस नही सकता। जहाँ वाली की पूँछ चलती है, वहाँ रावण का अधिकार नही चल सकता। और, उस रावण की विजय भी उसके सामने कुछ नही है।

यदि वह ( आक्रमण कर ) उठे, तो मेरु आदि पर्वत, सब जड़ से उखड़ जायँ। उसकी विशाल भुजाओं मे विशाल मेघ, आकाश, सूर्य-चद्र और पर्वत सब छिप जायँ।

वह आदिवराह, जिसने पूर्वकाल मे भूमि को अपने दत से ऊपर उठाया था, आदिकूर्म, जो क्षीरसागर का मथन करने के लिए उपयुक्त साधन बना था और वह नरसिंह, जिसने अपने नख से हिरण्यकशिपु का वक्ष फाड़ डाला था—वे भी उस वाली की विजयमाला-भूपित भुजाओ से संघर्ष नही कर सकते।

आदिशेष अपने विशाल फनों को फैलाकर, उनपर भूमि का बोझ रखे. (भूमि के) नीचे से इसकी रक्षा कर रहा है। किंतु, इस पर्वत पर निवास करनेवाला ( वाली ) स्वय ( इस भूमि पर ) चलता-फिरता हुआ ही इस ( धरती ) की रक्षा करता है।

हे शक्ति तथा विजय से विभूपित। समुद्र निरतर गरजता है, पवन वहता है, ( द्वादश ) सूर्य अपने रथों पर सचरण करते हैं, तो यह सब उस ( वाली ) के क्रोध का लक्ष्य वन जाने के डर से ही है—अन्य किसी कारण से नही।

हे वदान्य। उस वाली के जीवित रहते हुए, उसकी अनुमति के विना यम भी वानरो के प्राण-हरण करने मे डरता है। अत., पाँच सौ साठ समुद्र[2] सख्यावाले वानर, जो

---

१. तमिल में एक पुराण, कांचीपुराणम, है। उसमें यह कथा है कि देव तथा असुर, मंदर पर्वत को मथानी, वासुकि को रस्सी तथा चद्र को मथानी का चक्राकार आधार बनाकर क्षीरसागर को मथने लगे। किंतु, उसे मथ नहीं सके। इतने में वाली, जो नित्य विभिन्न दिशाओ के समुद्रों में जाकर सध्या आदि नित्यकर्म किया करता था, क्षीर-सागर मे सध्या करने के लिए आया। देवासुरों ने उससे प्रार्थना की कि क्षीरसागर को वह मथे। तव वाली ने अकेले ही एक हाथ से वासुकि का सिर और दूसरे हाथ से उसकी पूँछ पकड़कर क्षीरसागर को मथ डाला। इस घटना का उल्लेख कवन ने अनेक स्थानों पर किया है।—अनु०

२. एक हाथी, एक रथ, तीन अश्व और पाँच पदातियों का दल एक पक्ति होता है। तीन पंक्तियो का एक सेनामुख होता है। तीन सेनामुखों का एक गुल्म, तीन गुल्मों का एक गण, तीन गणो की एक वाहिनी, तीन वाहिनियों की एक पृतना, तीन पृतनाओं की एक चमू, तीन चमुओं की एक अनीकिनी, दस अनीकिनियों की एक अक्षौहिणी होती है। आठ अक्षौहिणियों का एक 'एक', आठ 'एक' की एक कोटि, आठ कोटियों का एक शंख, आठ शंखों का एक विंद, आठ विंदों का एक कुमुद, आठ कुमुदों का एक पद्म, आठ पद्मों का एक देश तथा आठ देशों का एक समुद्र होता है।—शुक्रनीति

इतने शक्तिमान् हैं कि मेरु पर्वत को भी ढाहकर गिरा सकते हैं, जीवित रहते हैं।

उस ( वाली ) से डरकर उसके निवास-स्थान पर मेघ भी नही गरजते। क्रूर सिंह अपनी कदराओं के भीतर भी नही गरजते। शक्तिमान् वायु इस डर से नही बहता कि कही एक छोटा पत्ता न गिर पड़े।

जब वाली ने अपनी पूँछ से बलवान् रावण की पुष्ट भुजाओं को एक साथ बाँध दिया था, तब उस ( रावण ) के शरीर से जो रक्त बह चला, उसने किस लोक को सिंचित नही किया ? ( अर्थात्, सभी लोकों में रावण का रक्त प्रवाहित हो चला। )

हे पराक्रमशालिन्! इन्द्र का अनुपम पुत्र वह वाली शीतल राकाचन्द्र का-सा रंगवाला है। उसकी आज्ञा का उल्लंघन यम भी नही कर सकता। वह इस ( सुग्रीव ) का अग्रज है।

वह वाली हमारा राजा था और यह ( सुग्रीव ) युवराज। उस समय एक दिन विद्युत्-जैसे दाँतवाला-एक करवाल-सदृश क्रूर असुर[1] हमारे कुल का शत्रु बनकर आया और वाली पर आक्रमण किया।

युद्ध करता हुआ वह असुर वाली के पराक्रम से भीत होकर भागा और यह सोचकर कि इस धरती पर सजीव रहना असंभव है, एक दुर्गम गुफा में प्रविष्ट होकर पाताल में जा छिपा।

तब क्रोध-पूर्ण वाली, सुग्रीव से यह कहकर उस गुफा में प्रविष्ट हुआ कि हे शक्ति-शालिन्! मैं इस गुफा में प्रविष्ट होकर शीघ्र उस असुर को पकड़ लाऊँगा। तुम इस गुफा के द्वार की रखवाली करते रहो।

गुफा मे प्रविष्ट होकर वाली चौदह ऋतुओ ( अट्ठाईस मास ) तक उस असुर को खोजता रहा और अंत में उसे पाकर उसके साथ युद्ध करता रहा। इधर उसका भाई सुग्रीव व्याकुल हो खड़ा रहा।

रो-रोकर व्याकुल होनेवाले सुग्रीव को देखकर हम सब वानरों ने आदर के साथ उसकी प्रार्थना की, कि हे प्रशसनीय विजयशालिन्। राज्य करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। अतः, शासन का भार तुम अपने ऊपर लो। यह सुनकर उसने कहा—ऐसा करना अनुचित है।

फिर, यह कहकर कि मैं भी इस गुफा में प्रवेश करूँगा और यदि उस असुर ने मेरे भाई को मार दिया हो, तो मै उसको मारूँगा, नही तो वही युद्ध में मरूँगा—सुग्रीव उस गुफा के भीतर प्रविष्ट होने लगा।

तब वाक्चतुर मंत्रियो ने उसको रोककर बहुत समझाया और उसके दुःख को कम किया। फिर, राज्य का भार इसे दिया। यह सुग्रीव उन वानरों की बात को नही टाल सका और किसी-न-किसी प्रकार से राज्य-भार को स्वीकार किया।

उस समय, इस विचार से कि मायावी ( नामक वह असुर ) कही फिर इस बिल से बाहर न आ जाय, हमने, मेरु को छोड़कर, अन्य सब पर्वतों को ला-लाकर उस गुफा के द्वार पर चुन दिये।

---

१. यह असुर मायावी नामक था।—अनु०

इस प्रकार, उस गुफा को सुरक्षित करके हम उष्णकिरण के पुत्र के साथ इस पर्वत पर रहने लगे। तब वाली उस मायावी के प्राण पीकर—

उन प्राणों को पीने से उत्पन्न नशे से मत्त होकर लौटा। गुफा-द्वार पर (अपने भाई को) पुकारता रहा। किन्तु, कोई उत्तर न पाकर यह सोचता हुआ कि मेरा भाई भी कैसी रखवाली कर रहा है, अत्यंत क्रुद्ध हुआ।

फिर, उस (वाली) ने अपनी पूँछ उठाई और अपने पैरों को उठाकर ऐसा आघात किया, जैसे प्रभंजन बह उठा हो। तब (गुफा के द्वार पर रखे) सब पर्वत आकाश में उड़कर समुद्र में जा गिरे।

वाली (उस गुफा से) बाहर निकलकर सबको भयभीत करनेवाले क्रोध से भरा हुआ इस पर्वत के ऊँचे शिखर पर आ पहुँचा, तब सत्य-मार्ग पर चलनेवाले और कपटहीन इस सूर्यपुत्र ने उसके समीप आकर उसके चरणों को नमस्कार किया।

प्रणाम करके वाली से सुग्रीव ने कहा—हे अग्रज! हे प्रभु! बहुत दिनों तक तुम्हारे न लौटने पर मैं बहुत चिंतित हुआ और तुम्हारे निकट आना चाहता था। किन्तु, तुम्हारी प्रजा ने इससे सहमत न होकर कहा कि राज्य पर शासन करना ही मेरा कर्त्तव्य है।

हे आभरणों से भूषित भुजावाले! प्रजा की आज्ञा मानकर, राज्यभार वहन करता हुआ मैं निर्लज्ज-सा जीवित रहता हूँ। तुम मेरे इस अपराध को क्षमा करो। सुग्रीव का कथन सुनकर वैरभाव से भरे हुए वाली ने अत्यंत क्रोध के साथ अनेक निष्ठुर वचन कहे।

बलिष्ठ भुजाओं से युक्त उस (वाली) ने हम सब वानर यों डरने लगे कि हमारी आँतों में हलचल मच गई। पूर्वकाल में समुद्र को मथनेवालों ने अपने करों से सुग्रीव को मार-पीटा, जिससे यह बहुत पीड़ित हुआ।

यह बहुत पीड़ित होकर सात समुद्रों के पार, ब्रह्मांड की बाहरी सीमा की दीवार पर जा पहुँचा। पीड़ा-हीन वाली भी पवन के समान इसके पीछे चलकर सब समुद्रों को सिंह के समान फाँद गया।

वायुपुत्र के इस प्रकार कहने पर, प्रभु कह उठे—अच्छा! अति वेग से पीछा करनेवाले वाली के आगे-आगे भागनेवाला सुग्रीव वाली से भी अधिक वेग से फाँद सकता था।

वीर-कंकणधारी कृपामूर्त्ति (राम) ने अपने भाई लक्ष्मण-समेत इस प्रकार आश्चर्य करते हुए फिर कहा—इन दोनों वीरों ने आगे क्या किया, सुनाओ। तब विनय से भूषित मारुति कहने लगा—

सुग्रीव मकरों से भरे सातों समुद्रों के पार चला गया। किन्तु, उस चक्रवाल पर्वत को भी जहाँ सूर्य की रश्मि किरण भी नहीं पहुँचती है, पारकर वह (वाली) वहाँ आ गया और सुग्रीव को पकड़ लिया।

भाई को पीड़ित करने के अपवाद से न डरकर उसने सुग्रीव को अपने क्रूर करों से मारने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया। किन्तु, सुग्रीव मौका पाकर झट वहाँ से निकल भागा।

हे प्रभु! यदि वह (वाली) क्रोध करके दाँत पीसे, तो यम को भी सुरक्षित रहने

के लिए कोई स्थान नही मिलेगा। तो भी ( वाली के प्रति ) पूर्व में दिये गये एक शाप के कारण यह ( सुग्रीव ) इस पर्वत पर आकर बच गया।

हे भगवन्! इसके स्वत्व को तथा दुर्लभ अमृत-समान इसकी पत्नी को भी उसने छीन लिया। यह, राज्य और पत्नी दोनों से एक साथ वंचित हो गया। यही सारा वृत्तांत है।—यों हनुमान् ने कहा।

असत्य-हीन ( हनुमान् ) ने जब सारा वृत्तांत कह सुनाया, तब सहस्र नामयुक्त उस अमल प्रभु के समस्त लोकों को ( प्रलय-काल में ) निगलनेवाले मुख का अधर फड़क उठा। नेत्र-रूपी कमल रक्तकुमुद के समान लाल हो उठे।

अनेक अंगों से युक्त वेदों को अधिगत करनेवाले ब्रह्मा, पंचमुख ( रुद्र ) तथा अन्य देव, अपने बाहर और अन्तर में खोजकर भी जिसे पा नही सकते, वह भगवान् यदि अपने सुन्दर पद-कमलों को दुखाकर और उन्हें अधिक लाल करते हुए इस धरती पर अवतीर्ण होता है, तो यह धर्म की रक्षा तथा अधर्म का विनाश करने के लिए ही तो है?

करुणाहीन विमाता के कहने पर जिस प्रभु ने अपने स्वत्वभूत राज्य को, रत्न-भूषित पुष्ट भुजावाले अपने भाई को दे दिया, वे यह सुनकर भी कि एक निष्ठुर व्यक्ति ने अपने कनिष्ठ भ्राता की पत्नी का अपहरण किया है, कैसे चुप रह सकते हैं?

प्रभु ने सुग्रीव से कहा—चौदहों भुवनों के सब प्राणी भी उस (वाली) के प्राणों को बचाने के लिए आये, तो भी मै अपने धनुष से प्रयुक्त शर से उसे मार दूँगा और तुम्हारे राज्य के साथ तुम्हारी पत्नी को भी तुम्हें दिला दूँगा। हे विज्ञ! दिखाओ, वह कहाँ रहता है।

यह सुनकर सुग्रीव ( बहुत आनन्दित हुआ ), मानों वह महान् आनन्द-रूपी समुद्र की बड़ी-बड़ी तरंगों के उमड़ उठने से, दुःख-रूपी समुद्र के किनारे पर आ लगा हो। उसने यह सोचकर कि वाली की शक्ति अब समाप्त हुई, आदर के साथ ( वाली-वध की ) प्रतिज्ञा करनेवाले महावीर से कहा—पहले हमें कुछ विचार करना है।

उसके पश्चात् सूर्यपुत्र, विद्या, विवेक नीति, मंत्रणा आदि में कुशल हनुमान् आदि के साथ पृथक् रहकर कुछ मंत्रणा करने लगा। उस समय पवनपुत्र ने कहा—

हे शक्तिशालिन्! तुम्हारे मनोभाव को मै समझ गया। तुम शंका कर रहे हो कि उस ( वाली ) को यम के मुँह में भेजने की शक्ति इन वीरों में है या नही। मेरे वचन को ध्यान से सुनो। फिर, वह कहने लगा—

( श्रीराम चन्द्र के ) विशाल हाथों और चरणों में शख और चक्र के चिह्न हैं। इनके जैसे उत्तम लक्षण कही किसी में नही हैं। अरुणनयन और धनुर्धारी श्रीराम, धर्म की रक्षा करने के लिए धरती पर अवतीर्ण, लक्ष्मी के वल्लभ विष्णु ही हैं।

जिन शिवजी ने लोककंटक तथा अतिशक्तिशाली त्रिपुरासुरों को अपने क्रोध की अग्नि से जला दिया था और निष्ठुर क्रोध से युक्त काल को भी अपने पद के आघात[1] से

---

1. इस पद्य में मार्कण्डेय के जीवन की ओर संकेत है। मार्कण्डेय शिवभक्त था, किंतु उसकी आयु की अवधि सोलह वर्ष की ही थी। जब काल उसके प्राण-हरण करने के लिए आया, तब वह शिवलिंग का आलिंगन करके शिव के ध्यान में निमग्न हो गया। काल उसको पाश से खींचने लगा, तो शिवजी ने क्रुद्ध होकर उसे पदाघात से हटा दिया और मार्कण्डेय को अमर कर दिया।—अनु०

दूर हटा दिया था; उनके हस्त के स्वर्णमय अनुपम धनुष को तोड़ देना उस विष्णु के अति-रिक्त अन्य किसी के लिए संभव नहीं था।

हे राजन्! मेरे पिता ने मुझसे कहा था—तुम इस संसार के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की भी सृष्टि करनेवाले भगवान् (विष्णु) की सेवा करोगे। वह सेवा ही उत्तम तपस्या है। हे तात! उससे मेरा (पिता का) भी बड़ा हित होगा। यह श्रीराम ही वह भगवान् हैं. इसका और भी एक प्रमाण है।

मैंने अपने पिता से पूछा था—तुम्हारे कथित उस भगवान् के अवतार को मैं कैसे पहचान सकूँगा? तब मेरे पिता ने कहा था—जब समस्त लोकों को विपदा उत्पन्न होगी. तब वह भगवान् अवतार लेंगे। उसे देखते ही तुम्हारे मन में उनके प्रति प्रेम (भक्ति) उत्पन्न होगा। यही उसे पहचानने का प्रमाण होगा। हे स्वामिन्! इसी वीर को देखते ही (मेरे मन में ऐसा प्रेम उमड़ा; जिससे) मेरी अस्थियाँ भी गल गईं. जिससे इनका रूप तक पहचानने में नहीं आया। फिर; और क्या शंका हो सकती है?

हे उत्तम! यदि तुम अब भी उस वीर (श्रीराम) के अपार पराक्रम की परीक्षा करके देखना चाहते हो. तो उसके लिए एक उपाय है। वह यह—अतिविशाल सात साल-वृक्ष, जो एक ही पंक्ति में खड़े हैं. उनको एक ही शर से वह वीर छेद डाले।

यह सुनकर सुग्रीव आनंदित हुआ और कहा—अच्छा। अच्छा। उसने अपने साथी मारुति की पर्वतों को भी लज्जित करनेवाली दोनों भुजाओं का आलिंगन कर लिया। फिर, श्रीरामचन्द्र के निकट जाकर कहा—आपसे मेरा एक निवेदन है। श्रीरामचन्द्र ने यह सुनकर कहा—कहो; क्या कहना चाहते हो? (१—५४)

●

## अध्याय ४

## सालवृक्ष-छेदन पटल

सुग्रीव, यह कहता हुआ कि इस ओर से जाना है; इधर से आइए (राम को) ले चला और (सालवृक्षों के निकट जाकर) कहा—गगन को छूनेवाले. आकाश छोटा करते हुए, शाखाओं को फैलाकर खड़े रहनेवाले सात सालवृक्षों को एक ही शर से आप छेद डालें; तो मेरे मन की व्याकुलता दूर होगी।

उस निष्कलंक (सुग्रीव) के यह कहने पर देवताओं के प्रभु (राम) उसका विचार जानकर मुस्करा उठे। फिर, अपने विशाल करों से अपने धनुष पर डोरी चढ़ाई। और कल्पना से भी दुर्जेय उन सालवृक्षों के समीप गये।

वे वृक्ष ऐसे थे कि प्रलय-काल में भी अपने स्थान से विचलित नहीं होनेवाले थे। जब सब लोक विध्वस्त हो जाते थे, तब भी खड़े रहनेवाले थे। मानो. धरती का आधार बने हुए सातों कुलपर्वत वहाँ आकर एक साथ खड़े हो गये हों।

कमल पर आसीन रहनेवाले ब्रह्मदेव भी उन वृक्षों के बारे में इतना ही कह सकता था कि 'षोडश कलावाले चंद्रमा और सहस्र किरणवाले ( सूर्य ) को भी उन वृक्षों के शिखरों को पार करके जाने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। मैंने अत्युन्नत उन पर्वतों[1] के डालों को ही देखा है।' इनके अतिरिक्त ( वह ब्रह्मा भी ) यह नहीं कह सकता था कि मैंने ( उन वृक्षों के ) पत्ते देखे हैं।

नित्य एक समान वेग से दौड़ते रहनेवाले सूर्य के रथ के घोड़े अन्यत्र कहीं अपनी थकावट मिटा पाते हों—यह हम नहीं जानते, किंतु ( इतना हम जानते हैं कि ) वे घोड़े आकाश में चारों ओर व्याप्त इन वृक्षों की शाखाओं के बीच से होकर जाते समय इनकी शीतल छाया में अपनी थकावट दूर कर लेते हैं।

वे वृक्ष इतने ऊँचे थे कि नक्षत्र तथा ग्रह, उन (वृक्षों) की शाखाओं में लगे पुष्पों-जैसे थे। आकाशगामी धवल चंद्रमा में जो कलंक है, वह इन वृक्षों की शाखाओं की रगड़ लगने से ही उत्पन्न चिह्न है, यों कह सकते हैं।

वे वृक्ष अनश्वर विशाल शाखा-प्रशाखाओं से युक्त होने के कारण वेदों के समान थे। स्वर्ग से भी ऊँचे थे। ब्रह्मांड की सृष्टि करनेवाले उस ( ब्रह्मा ) का वाहन हंस अपनी हंसिनी के साथ इन वृक्षों में ही निवास करता था।

पवन के चलने पर उन वृक्षों के सुगंधित पत्र, पुष्प, फल इत्यादि विविध वस्तुएँ धरती पर नहीं गिरती थीं, कोलाहलयुक्त विशाल आकाशगंगा में गिरती थीं और तरंगायित समुद्र में जाकर मिलती थीं।

उन वृक्षों के शिखर, चतुर्वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा के अंडगोल से भी परे बढ़े हुए थे। अतः, वे अनंत विष्णु भगवान् की समानता करते थे। वे जल-मध्य-स्थित धरती पर जो मेरुपर्वत खड़ा है, उससे भी अधिक भारी थे।

उन वृक्षों में हीर (निर्यास) उसी प्रकार फैला था, जिस प्रकार इंद्रकुमार वाली और उसके भाई के हृदयों में परस्पर वैर फैला था। उनकी जड़ें, जल-मध्य-स्थित पृथ्वी को ढोनेवाले शेषनाग के रजत-जैसे धवल फनों को भी चीरकर नीचे चली गई थीं।

उनकी शाखाएँ सब दिशाओं को नापती थीं, जिससे देवों को यह आशंका होती थी कि कदाचित् सूर्य का मार्ग ही न रुक जाय। वे वृक्ष सूर्य-चंद्र जहाँ संचरण करते हैं, उन पर्वतों से भी ( मेरुपर्वत अथवा उदयगिरि या अस्ताचल ) ऊँचे थे। किसी भी दृष्टि से वे वृक्ष उनसे कम नहीं थे और एक दूसरे से अनेक योजन दूर पर खड़े थे।

अमल ( श्रीराम ) ने उन वृक्षों को ध्यान से देखा और दीर्घ बाण को छोड़ने के लिए धनुष की डोरी से ऐसा टंकार किया कि देवलोक और दिशाएँ बधिर हो गईं। देवों को ऐसा भय उत्पन्न हुआ, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

वह टंकार-ध्वनि सब लोकों में एक समान व्याप्त हो गई। उस समय समीप में खड़े रहनेवालों की क्या दशा हुई—यह कैसे कहें? उस ध्वनि से दिग्गज मूर्च्छित हो गये और दिशाएँ व्याकुल हो उठीं। उस ध्वनि से मर्त्यलोक भी काँप उठा।

---

1. वे वृक्ष इतने विशाल थे कि वे पर्वत-जैसे लगते थे।—अनु०

ज्यो ही उस अरिंदम ( राम ) के धनुष की ध्वनि हुई, त्यों ही देवता इस भय से त्रस्त होकर भागे कि कही प्रलय-काल ही तो नही आ गया। भक्तिपूर्ण कनिष्ठ प्रभु ( लक्ष्मण ) ही उन ( राम ) के समीप दृढ खड़े रह सके। यदि दूसरे लोगो की दशा का वर्णन करने लगेंगे, तो उन सबकी बदनामी होगी।

असत्य-रहित मारुति आदि वीर यह सोचकर कि राम का शर-प्रयोग हमे अवश्य देखना चाहिए, किसी प्रकार उनके निकट आकर उपस्थित रहे। तब कुशल धनुर्धारी ( राम ) ने दृढ तथा दीर्घ कोदंड में लगी डोरी को भली भाँति खीचकर शर का संधान किया।

वह राम-बाण, सातों सालवृक्षो का भेदकर चला। नीचे रहनेवाले सातों लोको को भेदकर चला। फिर, उनसे आगे सप्त-संख्या से युक्त किसी वस्तु के न होने से लौट आया। अब भी यदि वह बाण सप्त संख्यावाली किसी वस्तु को देखे, तो उसे छेदे बिना नहीं रहेगा।

सप्त समुद्र, ऊपर के सप्त लोक, सप्त कुलपर्वत, सप्त ऋषि, सप्त अश्व और सप्त कन्याएँ भी यह आशका कर काँप उठी कि कदाचित् सप्त संख्या का कोई भी पदार्थ इस बाण का लक्ष्य हो सकता है।

ऐसा भय होने पर भी सब लोग, श्रीराम के उस स्वभाव को जानकर स्वस्थ हुए, जो धर्म के आधारभूत सभी पदार्थों को सुरक्षित रखता है। तब सूर्यकुमार ने स्वर्णमय वीर-कंकणों से भूषित श्रीराम के चरणो को अपने शिर पर रखकर ये वचन कहे—

तुम पृथ्वी हो, आकाश हो, अन्य सब भूत हो, पंकज से उत्पन्न देव ( ब्रह्मा ) हो, क्षीरशायी भगवान् हो, पापो का विनाश करनेवाले सद्धर्म के देवता हो। तुमने आदिकाल में लोको को उत्पन्न किया। अब मुझ श्वान-जैसे दास को तारने के लिए यहाँ आये हो।

हे राजाओ के अधिराज! मेरे पूर्वपुण्यो ने ही तुम्हे यहाँ लाकर मेरी सहायता की है। तुम मातृ-सदृश प्रभु के दासो का मै दास हूँ। अब मेरे लिए सब कार्य संभव हो गये। कौन-सा कार्य अब असंभव रह गया?—इस प्रकार उस दोषहीन सुग्रीव ने कहा।

चिरकाल से दुःखी रहनेवाले सब वानर यह विचार कर कि वाली के लिए यम बननेवाले एक व्यक्ति हमें मिल गया है, आनंद-मधु का पान करके मत्त हो गये और उनकी भुजाएँ फूल उठी। वे नाचने लगे, गाने लगे तथा यत्र-तत्र झुंडों में दौड़ने और कूदने लगे।

रामचन्द्र ने उस पर्वत पर, समुद्र-सदृश दुदुभि के एक दूसरे पर्वत-जैसे शरीर को ( अर्थात्, उसके अस्थिपंजर को ) वहाँ देखा, जो रक्तहीन होने पर भी आकाश को छूता हुआ पड़ा था, मानो सारा ब्रह्माण्ड ही अग्नि मे जलकर झुलस गया हो।

श्रीराम ने सुग्रीव से प्रश्न किया—यह क्या दक्षिणदिशाधिप ( यम ) का वाहन महिष है? या दिग्गजों में से कोई मरकर यहाँ पड़ा है? या कोई तिमिंगिल सूखकर अस्थिशेष रह गया है? असीम प्रेमयुक्त तुम, कहो। तब सुग्रीव ने दुदुभि की कहानी सुनाई। ( १-२३ )

# अध्याय २

## दुंदुभि पटल

दुदुभि नामक असुर, जो शत्रु-विध्वंसक क्रोध से युक्त था, जो इतना ऊँचा बढ़ा हुआ था कि गगन तक पहुँचकर चद्र को भी छूता था। जिसके दो सीग थे (महिषाकार था)। वह क्षीरसागर को मदर-पर्वत के समान मथकर कालवर्ण विष्णु को ढूँढने लगा।

तब विष्णु भगवान् उसके सम्मुख आये और उससे पूछा—तू यहाँ किसलिए आया है? दुदुभि ने उत्तर दिया—मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने आया हूँ। तब विष्णु ने कहा—तुझ-जैसे महान् शक्तिसंपन्न व्यक्ति से युद्ध करने की शक्ति केवल नीलकठ (शिव) में ही है।

तब वह असुर शीघ्र वहाँ से चलकर शिवजी के कैलाश को अपने सीगों से ढकेलने लगा। तब शिवजी उसके सामने आये और पूछा कि तुझे क्या चाहिए? उसने उत्तर दिया—मैं तुम्हारे साथ ऐसा युद्ध करना चाहता हूँ, जिसका कभी अत न हो।

तब शिव ने उससे कहा—तू बड़ा दक्ष है और वीरता से युक्त है। तुझसे युद्ध करना सभव नही। तू देवताओ के पास जा। यह कहकर (शिवजी ने) उसे वहाँ से भेज दिया। तब उसने देवेंद्र के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। देवेंद्र ने उत्तर दिया—यदि अनेक दिन तक युद्ध करने की इच्छा है, तो तू वाली के पास चला जा।

देवेंद्र से प्रेषित होकर वह प्रसन्नतापूर्वक (ऋष्यमूक पर) आ पहुँचा और यह गर्जन करता हुआ कि हे वानरराज, आओ, मेरे साथ युद्ध करो, पर्वतों को अस्त-व्यस्त करने लगा। तब मेरा अग्रज क्रुद्ध होकर उसके साथ युद्ध करने लगा।

वे दोनो ऐसा भयकर युद्ध करने लगे कि जब वे वेग से घूम जाते थे, तब यह पहचानना कठिन हो जाता था कि कौन कहाँ है। किसी भी लोक मे न डरनेवाले वे दोनो कभी गिरते और कभी उठकर खडे होते। उनके भयकर युद्ध से भीत हो असुर और देवता भी उनके निकट नही आ पाते थे।

जब वे अपना पद भूमि पर पटकते थे, तब ऐसी आग निकलती थी, जो आकाश को छू लेती थी। उनका निनाद दीर्घ दिशाओ में सुनाई पड़ता था। उनकी उस अग्नि का धूम सर्वत्र फैल गया। जलमय समुद्र तथा महान् पर्वत भी अपने-अपने रूप को खो बैठे। (अर्थात्, जहाँ पर्वत थे, वहाँ गढे पड़ गये और समुद्र ऊपर उठ आये।)

मेघ, आकाश, विशाल समुद्र, समुद्र से घिरी पृथ्वी, सब उनके द्वारा उठाई गई धूलि से इस प्रकार आवृत हो गये कि वे अपना रूप-रग खो बैठे। मय नामक असुर का पुत्र दुदुभि और वाली दोनों बारह मास पर्यंत युद्ध करते रहे।

वैसा भयकर युद्ध करते समय, विजयी वाली ने अपनी भुजाओं के बल से उस असुर के, दिशाओ मे फैले हुए दोनों सीगों को उखाड़कर (उन्ही से) उसे मारा। तब वह असुर मेघगर्जन के जैसे चिग्घार उठा।

उसके शिर पर चोट लगी। उसकी टाँगें टूट गईं। वह पर्वत की गुहा-जैसे

अपने मुख-गह्वर को खोलकर रक्त उगलने लगा। तब वाली ने उसपर ऐसा घूँसा मारा, जैसे पर्वत पर बिजली गिरी हो। उसके शब्द से ऊपर के सब लोक काँप उठे और सब दिशाएँ बहरी हो गईं।

वाली ने उसे अपने हाथों में यों उठा लिया जैसे चामर हो, और उसे घुमाने लगा। उससे (दुदुभी का) रक्त चारों ओर छितरा गया, जिससे सब दिग्गज, जो दीर्घ दंतों तथा मद से युक्त थे, लाल हो गये।

वाली ने अपने वज्रमय करों से उस असुर को उठाकर इस प्रकार ऊपर फेंका कि मेघ-मंडल, सूर्य-मंडल तथा देवलोक को पार कर वह (दुदुभि का शरीर) ऊपर उठ गया। फिर, उसके प्राण ऊपर चले गये और शरीर धरती पर आ गिरा।

दुर्गंध-भरित उसका शरीर गगन की ऊपरी सीमा से टकराकर फिर नीचे आ गिरा। तब करुणालु मतंग मुनि ने जो शाप दिया, वह अब मेरे लिए सहायक बना है।— इस प्रकार (सुग्रीव ने) पूरा वृत्तांत कह सुनाया।

अमल प्रभु (राम) ने सारी कथा सुनी और अपने युद्ध-कुशल भाई (लक्ष्मण) से कहा—हे वीर। इस शव को तुम दूर फेंक दो। लक्ष्मण ने अपने पैर के अंगूठे से उसे उठाकर फेंका। तब वह अस्थिपंजर पुनः एक बार सत्यलोक तक जाकर नीचे आ गिरा।

उस समय कपि-समूह मुँह खोलकर वज्र के समान गरज उठा। जब श्रीराम उद्यान में लौटकर आये, तब सुग्रीव ने राम से कहा—हे प्रभु। मेरा आपसे एक निवेदन है। (१-१५)

●

## अध्याय ६

### *आभरण-दर्शन पटल*

पहले एक दिन, हम (वानर) इस स्थान पर बैठे थे, तब पापी रावण एक स्त्री को (अपहरण करके) लिये जा रहा था, न जाने वह आपकी पत्नी ही थी या अन्य कोई स्त्री। वह स्त्री दूर आसमान पर से इस वन की ओर देखकर विलाप कर उठी थी।

कदाचित् यह विचार करके कि उसके आभरण दूत का काम देंगे, ताटकों तक फैले हुए नयनोंवाली उस नारी ने अपने आभरणों को एक वस्त्र में बाँधकर वर्षा के समान नयन-जल के साथ धरती पर गिरा दिया। हमने उस (आभरणों की गठरी) को अपने हाथों से पकड़ लिया।

हे वदान्य! हमने उन्हें सुरक्षित रखा है। हम आपके पास उन्हें ला देंगे। आप देखकर समझें (कि वे सीता के ही हैं या नहीं)।—ये वचन कहकर घृत-मिश्रित दूध-जैसे सख्यवाले उस (सुग्रीव) ने आभरणों को अपने हाथ से लाकर दिखाया।

देवी सीता के आभरणों को (रामचन्द्र ने) भली भाँति देखा। उस समय

हम आपका आदेश पूरा करनेवाले आपके तुच्छ साथी हैं। यह आपका अनश्वर पराक्रमी अनुज भी यहाँ उपस्थित है। हे पुरुषश्रेष्ठ! यदि आपमें इतना बल है, तो क्या त्रिलोक भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर सकता है? आप क्यों अपने को छोटा समझते हैं?

उत्तम जन, बड़े होने पर भी अपनी महिमा को स्वयं नहीं बताते। संसार उनके कार्य को ही देखता है। धर्म ही आपके रूप में साकार बना है; आपके अतिरिक्त और धर्म क्या है? आपके लिए असाध्य क्या है? इतने पर भी आप क्यों शोक-उद्विग्न होते हैं?

हे संशयहीन वचनवाले! पंकजभव (ब्रह्मा), कार्त्तिकेय के पिता एवं कोमलांगी को अपने वाम भाग में धारण करनेवाले (शिव) तथा चक्रधारी (विष्णु)—ये तीनों एक साथ मिलकर आपकी समता कर सकते हैं। पृथक्-पृथक् होने पर वे भी आपकी समता नहीं कर सकते।

हे उज्ज्वल धनुष धारण करनेवाले! मेरे छोटे-से अभाव की पूर्त्ति अब नहीं तो पीछे भी आप कर सकते हैं (अर्थात्, वाली का वध पीछे ही हो)। पहले हम उन दुःखी देवी को मुक्त करके लायेंगे। इस प्रकार सुग्रीव ने कहा—

उष्णकिरण के पुत्र के यह कहने पर लक्ष्मी-अंकित वक्षवाले (श्रीराम), किसी-न-किसी प्रकार मूर्च्छा त्यागकर संज्ञा प्राप्त कर सके और अपने अश्रुसिक्त मनोहर नयनों को खोलकर स्नेह के साथ (सुग्रीव को) देखा; फिर कहने लगे—

पर्वत-सदृश उन्नत भुजाओंवाले! मुझ पापी के इस उज्ज्वल धनुष को हाथ में रखकर जीवित रहने पर भी, उस (जानकी) ने अपने आभरण उतारकर फेंक दिये। क्या ताटंकधारिणी, पतिव्रता नारियों में इस प्रकार करनेवाली अन्य कोई स्त्री भी थी? (अर्थात्, नहीं।)

उधर, करवाल-सदृश दीर्घ नयनोंवाली (जानकी) मेरे आगमन की प्रतीक्षा करती हुई व्याकुल बैठी है। इधर मैं बड़े-बड़े पर्वतों और सरोवरों में भटकता हुआ, उसके आभरणों के साथ रोता हुआ व्यर्थ समय व्यतीत कर रहा हूँ। डोरीवाले इस दीर्घ धनुष को ढोने पर मुझे लज्जित होना चाहिए।

यदि कोई किसी नारी का अपमान कर दे, तो राह चलनेवाले व्यक्ति भी उस अपमान करनेवाले को रोकेंगे और उनसे युद्ध करके अपने प्राण भी त्याग देंगे। मैं तो अपने-आप पर भरोसा रखकर जीवित रहनेवाली (सीता) के दुःख को भी दूर नहीं कर रहा हूँ।

मेरे कुल में ऐसे राजा उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने समुद्र खोदा था। जिन्होंने व्याघ्र और हरिण को एक ही घाट पानी पिलाया था। किन्तु, उसी वंश में उत्पन्न हुआ मैं ऐसा हूँ कि आभरण-धारिणी अपनी पत्नी को दुःख-मुक्त करने का भी सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

मेरे पिता ने उस (शंबर नामक) असुर को, जो यमराज के लिए दुर्निवार था और जो त्रिलोक-कंटक था, मिटाकर देवेन्द्र का दुःख दूर किया था। उनका पुत्र होकर जनमा हुआ मैं, अपने धनुष के साथ, अत्यन्त पीडा देनेवाले क्रूर अपवाद को भी ढो रहा हूँ।

सब से प्रशसनीय महिमा से युक्त मेरे पिता का सत्य-व्रत यदि टूट जाय, तो उससे बड़ा अपवाद होगा—यह विचार करके मैने राज्य-मुकुट धारण नही किया। अब यहाँ इक्षुरस-सदृश बोलीवाली (पत्नी) के शत्रु से अपहृत होने का सबसे बड़ा अपवाद मुझे प्राप्त हुआ है। अपवाद-मुक्त मै कब हुआ ?

राम, इस प्रकार के वचन कहकर वर्णनातीत दुःख से मूर्च्छित हो गये। उनकी वेदना को देखकर सहस्रकिरण के पुत्र ने उन्हें सांत्वना दी और उन्हे दुःख-सागर के तट पर लाकर खड़ा किया।

(तब राम ने सुग्रीव से कहा—) हे मित्र ! तुम्हारे वचनों से मेरा दुःख शात हुआ। नही तो क्या मै जीवित रह सकता था ? मेरे लिए मृत्यु से बढ़कर हितू अन्य कोई नही है। अपवाद-मुक्ति के लिए वही कर्त्तव्य है (अर्थात्, मर जाना ही भला)। फिर भी, जबतक मैं तुम्हारे दुःख को दूर न करूँ, तबतक मै मृत्यु को नही अपनाऊँगा।

राघव ने इस प्रकार कहा। इसी समय अतिबली मारुति ने (राम को) नमस्कार किया और कहा—हे उन्नत पर्वत-सदृश कंधोंवाले! मुझे कुछ निवेदन करना है। आप ध्यान से सुनने की कृपा करें।

हे अपने आज्ञाचक्र को सर्वत्र चलानेवाले! क्रूरकर्मी वाली का वध होना चाहिए। सूर्यपुत्र को राजा बनाना चाहिए और फिर बड़ी सेना का संगठन करना चाहिए। तभी भयकर आयुधधारी राक्षसों के निवास-स्थान को ढूँढकर हम वहाँ जा सकते हैं। अन्यथा, यह कार्य असभव है।

हे भ्रमरो से संकुल पुष्पमालाधारी ! राक्षसों का निवास धरती पर है ? कहीं पर्वतों में है ? अतरिक्ष में है ? इनसे पृथक् नागलोक में है ?—अल्पशक्तिवाले नर-जन्म[1] में उत्पन्न होने के कारण हम यह निश्चित रूप से नही जान सकते कि उनका निवास कहाँ है।

वे राक्षस पलमात्र में किसी भी लोक मे जा सकते हैं। वहाँ अपने अभिलषित किसी भी पदार्थ को ग्रहण कर सकते हैं। किसी विपदा के समान ही वे अकस्मात् आ गिरते हैं और फिर लौट जाते हैं। अतः, उनके निवास को पहचानना आसान नही है।

एक ही समय में सर्वत्र जाकर सीता का अन्वेषण करना है। यदि एक-एक करके सब दिशाओं में ढूँढ़ने लगेंगे, तो उसमे बड़ी कठिनाई होगी। धरती अनत रूप में फैली है और अन्वेषण में असख्य वर्ष लग जायँगे।

सत्तर 'धारा' सख्यावाली वानर-सेना युगात मे उमड़नेवाले सागर के समान सर्वत्र फैल जायगी। समुद्र को पी डालना हो, ब्रह्मांड को उठाना हो, आज्ञा पाने पर वह सेना सब कुछ कर सकेगी।

अतः, हे नीतिज्ञ ! यही उचित होगा—(कि पहले वाली-वध हो, फिर सीता का अन्वेषण हो)—यों हनुमान् ने कहा। तब उस सद्गुणागार प्रसिद्ध धनुर्धारी ने कहा—चलो, वाली के निवास-स्थान पर जायेंगे। फिर, वे सब चल पडे।

---

१. वानर भी नर के जैसे होते हैं, अतः नर-जन्म शब्द से वानर-जन्म को भी लिया गया है।—अनु०

( सुग्रीव, उसके चार मंत्री, राम और लक्ष्मण ) वे सब ऐसे चले, जैसे भयंकर नेत्रवाला एक शरभ ( सुग्रीव ), दो पराक्रमी व्याघ्र ( नल और नील ), शीघ्र गतिवाले दो गज ( हनुमान् और तार ) तथा दो सिंह (राम और लक्ष्मण ) जा रहे हो। साल, हरे-भरे तमाल, ऐला, कदली, आम्र, नाग आदि वृक्षो से होकर पर्वत के सानु-मार्ग पर वे चले।

उस मार्ग मे हरिणनयनोवाली वानरियो के झूले लगे थे। जहाँ झूले नही थे, वहाँ हवा में स्पंदित होनेवाले पत्रो से शोभायमान चंदन के वृक्ष लगे थे। जहाँ चंदन के वृक्ष नही थे, वहाँ मेघों से आवृत सानु-प्रदेश थे। जहाँ वैसे सानु-प्रदेश नही थे, वहाँ सुरभिमय चंपक-उद्यान थे। जहाँ वैसे चपक-उद्यान नही थे, वहाँ स्वर्ण से भरे टीले थे।

धर्म-स्वरूप वे दोनो ( राम-लक्ष्मण ) वानर-वीरो के साथ उस पर्वत-मार्ग में कही उतरते, कही चढ़ते हुए जा रहे थे। उनके मुखर वीर-वलय अपार शब्द करते थे। उस शब्द को सुनकर सोये पड़े रहनेवाले मेघ भी मानो जग जाते थे और आकाश मे उड़ जाते थे।

मेघ ऊँचे आकाश में उड़ रहे थे। झरने झर रहे थे। पुन्नाग-वृक्षो से भरित सानुओ में फनवाले सर्प इनकी आहट पाकर हट जाते थे। मत्तगज इधर-उधर विखर जाते थे। सिंह भाग जाते थे। सोतो में विचरण करनेवाली मछलियो के साथ जल-सर्प भी त्वरित गति से जाकर छिप जाते थे और व्याघ्रो के साथ काले मुखवाले लंगूर भी भाग जाते थे।

जब मदमत्त गज ढालो पर के वृक्षो से टकराते थे, तब वक्रमय काले रंगवाले अगरु और चंदनवृक्ष टूटकर लुढक जाते थे, जिससे ( उनपर लगे हुए ) मधु के छत्ते विखर जाते थे और उनसे मधु बह चलता था, उस मधु के कारण उस विकट पर्वत-मार्ग पर चलना कठिन हो रहा था।

वहाँ चमकनेवाले रत्नसमुदाय, अपनी काति को गगन तक फैला रहे थे और ऐसे लगते थे, मानो पर्वत पर अग्नि-ज्वाला फैल रही हो। स्वर्णमय टीलो की कांति इस प्रकार फैल रही थी, मानो उस अग्नि-ज्वाला को बुझाने के लिए जल-धाराएँ बह रही हो।—उन धनुर्धारियो के मार्ग पर ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था।

उस पर्वत पर के सब जलस्रोतो मे आकाश-गगा बहती थी। जलाशयो के मीन आसपास के वृक्षो पर झपटते थे। जल-स्रोत नदियो पर झपटते थे। हाथी एक दूसरे पर झपटते थे। पक्षी शालि के पौधो पर झपटते थे और लगूर वृक्ष-शाखाओ पर झपटते थे।

स्वर्गवासियो को भी आकृष्ट करनेवाली ऐला की सुगधि से युक्त वे पर्वत-शिखर मधु के वहने के कारण पिच्छिल हो गये थे। उनपर जल के बहने से गगन के नक्षत्र भी फिसल जाते थे। आकाश मे दिखाई पड़नेवाला इन्द्र-धनुष भी फिसल जाता था। धवल चंद्र-विंव फिसल जाता था और अंतरिक्ष में संचरण करनेवाले ग्रह भी फिसल जाते थे।

इस प्रकार के पर्वत-मार्ग से चलनेवाले वे सव वीर दस योजन चलकर वाली के निवासभूत उस पर्वत के निकट पहुँचे, जो ऐसा था, मानों स्वर्णमय स्वर्ग ही उतर आया हो। फिर, वे अपने कर्त्तव्य का विचार करने लगे। (१-४२)

# अध्याय ७

## वाली-वध पटल

उस समय, शत्रु-विजयी राम ने विचार कर तथा अपने निर्णय को उचित मानकर सुग्रीव से कहा—तुम जाकर वाली नामक उस अनुपम क्रूर रिपु के साथ युद्ध करो। उस समय मैं अलग एक स्थान पर रहकर (वाली पर) शर का प्रयोग करूँगा। यही मेरा निश्चित विचार है।

रामचन्द्र का वचन सुनते ही गगनगामी रथवाले (सूर्य) के पुत्र ने ऐसा बड़ा गर्जन किया कि उस शब्द को सुनकर तरंगों से पूर्ण जलधि भयभीत हो उठी। नीले मेघ लज्जित हो गये। भूमि के निवासी थरथराकर भागने लगे। स्वर्गवासी व्याकुल हुए। वह गर्जन ब्रह्माड-भर में गूँज उठा।

सुग्रीव किष्किन्धा के निकट जा पहुँचा। अपना ओंठ चबाता हुआ उसने गर्जन के साथ वाली के प्रति यह कहा—यदि तुम युद्ध करने के लिए आओगे, तो मैं तुम्हारे प्राण हर लूँगा। यह कहकर वज्र के समान शब्दों में धमकी देता हुआ, पैर पटकता हुआ और भुजाओं को ठोंकता हुआ वह खड़ा रहा। यह ध्वनि किष्किन्धा में सोये हुए वाली के कानों में जाकर पड़ी और उसके वाम अंग फड़क उठे।

पर्यंक पर मानों एक क्षीरसमुद्र ही लेटा हो, यों पड़े हुए वाली ने सुग्रीव के गर्जन की उस महान् ध्वनि को सुना; जैसे हिंस्र सिंह ने किसी मत्तगज का चिंघाड़ सुना हो।

पर्वत-सदृश कंधोंवाला वाली, अपने भाई को युद्ध करने के लिए आया हुआ जानकर हँस पड़ा। उसकी उस हँसी से चौदहों भुवन तथा दिशाओं के परे रहनेवाले प्रदेश भी काँप उठे।

ऊँची तरंगों से पूर्ण समुद्र प्रलय-काल में उमड़ उठा हो, उसी प्रकार वाली उत्तर उठा। तब उसके भार से वह पर्वत धँस गया। उसकी बाँहों के हिलाने से जो हवा उठी, उससे समीपस्थ पर्वत ढह गये।

उसका शरीर रोमांचित हो उठा। तब उसके रोओं से चिनगारियाँ निकल पड़ीं। उसके नेत्र यों आग उगलने लगे कि वडवाग्नि की आँखें भी उसकी तीव्रता को देखकर अंधी हो जायँ। उसके श्वास से धुआँ ऐसा उठा कि वह देवलोक के भी ऊपर पहुँच गया।

वाली ने हाथ से ताल ठोंका। उसे सुनकर दिशाओं के रक्षक गज भी मदरहित हो गये। वज्र शक्ति-हीन हो गये। ऊपर के लोक थरथरा उठे। धरती पर स्थिर खड़े हुए पहाड़ भी ढह गये।

वाली का यह शब्द कि, 'मैं आ गया, मैं आ गया'—पूर्व आदि अष्ट दिशाओं में गूँज उठा। वह उठ खड़ा हुआ। तब उसके मणिमय किरीट के स्पर्श से नक्षत्र झड़ पड़े।

उसके चलते समय हवा बड़े वेग से वह चली, जिससे पर्वत-समूह जड़ से उखड़

गये और दिशाओं की सीमा पर जा गिरे। उसके श्वेत रोमों से निकली हुई चिनगारियाँ ब्रह्माड की भित्ति पर छा गईं। यम भी उन चिनगारियों को देखकर त्रस्त हो उठा। अन्य देवता लोग व्याकुल हुए।

वाली के दाँतों के पीसने से जो अग्नि-कण निकले, वे वर्षाकाल मे बिजलियो-जैसे सर्वत्र झड़ पडे। उसके अत्युत्तम भुजा-वलयों के रत्न इस प्रकार चूर-चूर हो झड़ पडे, जैसे विद्युत् ही झड़ रही हो।

वह सर्वभयकर ( वाली ) उस कालाग्नि की समता करता था, जो प्रलय-काल में पृथ्वी, चारो दिशाओ के समुद्र और देवलोक तथा सृष्टि के कारणभूत तत्त्वों को जला देती है। वह उस ( वाली ) के द्वारा मथे गये क्षीरसागर से उत्पन्न हलाहल की भी समता करता था।

उस समय, अमृत-सदृश, बाँस के जैसे कंधोवाली 'तारा' नामक स्त्री ( वाली की पत्नी ), उसके मार्ग मे आ खड़ी हुई। वाली के नेत्रों से निकलनेवाली चिनगारियों से उस ( तारा ) के लंबे केश झुलस गये।

हे पर्वतवासी कलापी। मुझे मत रोको। हटो। जिस प्रकार क्षीरसागर का मंथन करके मैंने अमृत निकाला था, उसी प्रकार युद्ध का आह्वान देनेवाले सुग्रीव के बल को मथकर उसके प्राणों का पान करूँगा और शीघ्र लौट आऊँगा—यो वाली ने कहा। तब उसकी पत्नी ने कहा—

हे विजयी प्रभु। वह ( सुग्रीव ) पूर्व-जैसा नही है। तुम्हारी पुष्ट भुजाओं की शक्ति से आहत होकर वह भागा था। अब उसे नई शक्ति कुछ नही मिली है। अपना यह जन्म छोड़कर कोई दूसरा जन्म भी उसने नही पाया है। फिर भी, वह पुनः युद्ध करने के लिए आया है। अवश्य ही उसे कोई बड़ा सहायक मिल गया है।

अंतहीन तीनो लोको के रहनेवाले समस्त प्राणी भी यदि एक साथ मिलकर मुझसे युद्ध करने के लिए आयें, तो भी सब मुझसे हार जायेंगे। इसके जो कारण हैं, उन्हें तुम सुनो—

मंदर-पर्वत को मथानी, वासुकि सर्प को रस्सी, चक्रधारी ( विष्णु ) को कटावदार खोरिया, चद्र को आधार (लकड़ी का वह तख्ता, जो मथानी को खभे से लगाये रखता है ) बनाकर इन्द्र आदि देवता तथा उनके शत्रु असुर, क्षीरसागर को मथने लगे थे।

किंतु, उस मथानी को घुमाने की शक्ति उनमें नही थी, इसलिए वे थक गये। तब मैंने उन्हें देखा और स्वय क्षीरसागर को मथ डाला एवं उन्हे अमृत निकालकर दे दिया। ऐसी मेरी शक्ति को, हे कलापी-सदृश रूप तथा कोकिल-सदृश कंठ से युक्त रमणी ! क्या तुम भूल गई हो ?

युद्ध मे मुझसे अनेक देव और असुर हार गये हैं। उनकी संख्या मैं कैसे बताऊँ। यम भी मेरा नाम सुनकर थरथरा उठता है। ऐसा होने पर भी यदि कोई मेरे शत्रु (सुग्रीव) की सहायता करने के लिए आया हो, तो—

वह बुद्धिहीन है। यदि मेरे साथ युद्ध करने के लिए कोई आ भी जाय, तो

वग्दान के प्रभाव से उनके बल का अर्धांश मुझे मिल जायगा। अतः, कोई मेरे साथ क्या वैर कर सकता है? तुम निश्चिन्त रहो।—यों वाली ने तारा से कहा।

यह सुनकर उस (तारा) ने कहा—हे प्रभु! अपने हितचिन्तक लोगों से मैंने सुना है कि राम नामक व्यक्ति उस (सुग्रीव) का प्राण-मित्र बन गया है। अब वही तुम्हारे प्राणहरण करने के लिए आया है।

तब वाली ने तारा से कहा—हे पापिन! तुमने यह कैसा वचन कहा? वह महाभाग (राम) पुण्य-पाप रूपी द्विविध कर्मों का अंत न देखकर, दुःखी होकर पुकारनेवाले प्राणियों को अपने आचरण के द्वारा धर्म का स्वरूप दिखाता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति तुमने अनुचित वचन कहे। स्त्री-सुलभ अज्ञान के कारण तुमने कैसा अपराध कर दिया।

इहलोक और परलोक, दोनों लोकों के फलों का विचार रखनेवाले उस महाभाग के लिए, तुम्हारा कथित यह कार्य क्या शोभा देनेवाला होगा? ऐसा करने से उनको लाभ ही क्या होगा? सब प्राणियों की रक्षा करनेवाला वह अपूर्व पदार्थ धर्म ही क्या स्वयं अपना नाश कर लेगा?

विशाल संसार के राज्य को प्राप्त करके जिसने अपनी माता की सपत्नी के कहने से उस राज्य को अपार आनन्द के साथ उसके पुत्र को दे दिया, उस प्रभु की स्तुति करना छोड़कर तुम (उनके संबंध में) इस प्रकार के निंदा-वचन कहने लगी?

यदि सारे लोक एक साथ मिलकर सामना करने आयें, तथापि उनपर विजय पाने के लिए, उस (राम) के भयंकर कोदण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी की सहायता आवश्यक नहीं है। वह प्रभु जिसकी समता करनेवाला वही है, अन्य कोई नहीं है, क्या क्षुद्रकार्य करनेवाले एक मर्कट (अर्थात्, सुग्रीव) के साथ मित्रता करेगा?

मेरे भाइयों के अतिरिक्त मेरे अन्य प्राण नहीं हैं—ऐसी भावना रखकर चलनेवाला तथा कृपापूर्ण समुद्र-जैसा वह प्रभु (राम), क्या मैं जब अपने भाई के साथ युद्ध करता रहूँगा, तब बीच में मुझपर बाण-प्रयोग करेगा?

तुम कुछ समय तक यहीं ठहरो। मैं एक पल में उस वैरी (सुग्रीव) के प्राण पीकर, उसके साथियों को भी मिटाकर लौट आऊँगा। व्याकुल मत हो।—यों वाली ने कहा। इसके पश्चात् सुरभित केशोंवाली तारा डर से कुछ नहीं कह सकी और मौन रह गई।

वाली, युद्ध के उत्साह से सत्वर ऊँचा बढ़ गया। उसकी बलशाली भुजाएँ देवलोक की सीमा से भी ऊपर उठ गईं। अपने कंधे-रूपी दो पर्वतों के साथ, प्रकृति के वैभव से संपन्न उस पर्वत पर से वह इस प्रकार निकला, जिस प्रकार प्राची के पुरातन पर्वत पर सूर्य उदित होता है।

अपने पुष्ट कंधों से मनोहर और महान् पर्वत की समता करनेवाला वाली, क्रूर हिरण्यकश्यप के निर्देश पर बड़े स्तंभ से प्रकट होनेवाले महान् नरसिंह-जैसे उस पर्वत के एक भाग से ऐसे निकला कि देखनेवाले सभी मन में काँप उठे।

गर्जन करनेवाले अपने अनुज को देखकर वह (वाली) भी गरज उठा। उसके गर्जन से भीत होकर स्वेद से भरे हुए मेघों से वज्र गिरे। उस गर्जन की ध्वनि सभी लोकों

मे इस प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार कालवर्ण पर्वत-सदृश विष्णु के चरण हो, जो लोको को नापने के लिए वढ़ गये थे।

उस समय, रामचन्द्र ने अपने प्रिय भाई ( लक्ष्मण ) से कहा—हे तात ! भली भाँति ध्यान से इसे देखो। दानवो और असुरों को रहने दो, सारे ससार मे कौन समुद्र ऐसा है, कौन मेघ ऐसा है, कौन पवन ऐसा है, अथवा कौन-सी ऐसी भयंकर प्रलयाग्नि है, जो इसकी देह की समता कर सके ?

तव उस महाभाग को देखकर अनुज ( लक्ष्मण ) ने उत्तर मे कहा—यह (सुग्रीव) अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्राणो का हरण करने के लिए यम को बुला लाया है। वानरो के लिए सहज, निंदा रहित युद्ध यह नही कर रहा है। यही वात मेरे मन मे खटकती है।[1] इसके अतिरिक्त मै और कुछ भी सोच नही पा रहा हूँ।

अशात मन से ( लक्ष्मण ने ) फिर कहा—हे वीर ! धर्म के विरुद्ध विश्वासघाती कार्य करनेवालों पर विश्वास करना हितकारी नही है। यह ( सुग्रीव ) किसी शत्रु के समान, अपने भाई को ही मारने के लिए सन्नद्ध खड़ा है। भला यह पराये लोगो का सहायक किस प्रकार वन सकेगा ?

तव रामचन्द्र कहने लगे—हे तात ! सुनो, इन विवेकहीन मृगो के चारित्र्य के सवध मे कुछ कहना ठीक नही है। यदि सभी माताओ के गर्भ से उत्पन्न कनिष्ठ पुत्र अपने वड़े भाइयो के अनुकूल ही आचरण करनेवाले होते, तो भरत अत्यत उत्तम सहोदर कैसे कहलाता ?

प्रकाशमान पर्वत-सदृश मनोहर कंधोवाले ! यथार्थ यह है कि ( इस ससार में ) संपूर्ण रूप से धर्माचरण करनेवाले वहुत कम लोग हैं। विरुद्ध आचरण करनेवाले (अधार्मिक) व्यक्ति अनेक हैं। अतः, हम जिनसे मिलते हैं, उनमे विद्यमान सद्‌गुणो का ही ग्रहण करना चाहिए। सर्वथा निर्दोष कहलाने योग्य व्यक्ति ( ससार मे ) कौन है ?—यों राम ने कहा।

वे पराक्रमी वीर ( राम-लक्ष्मण ) जव आपस मे इस प्रकार के वचन कह रहे थे, तव रथ पर सचरण करनेवाले ( सूर्य ) का पुत्र और इन्द्र का पुत्र—दोनो, जो धरती पर चलने-फिरनेवाले महान् हिमाचल के जैसे थे, एक दूसरे से ऐसे टकराये, जैसे दो भारी दिग्गज हो।

जैसे एक पर्वत के निकट दूसरा पर्वत आ गया हो, वैसे ही वे दोनो परस्पर समीप हो गये। जैसे हिंस्र तथा विजयी दो सिह, एक दूसरे से लड़ने के लिए खड़े हो, वे दोनो वैसे ही लगते थे। वे दोनों, अनेक वार एक दूसरे के दाई और वाईं ओर चक्कर लगाने लगे, जिस प्रकार दृढ वाहुओवाले कुम्हार के द्वारा घुमाया गया चाक हो।

समीप आये हुए दो ग्रहो के समान स्थित वे दोनों, क्रोधाविष्ट होकर, परस्पर की भुजाओ से टकरा उठे। उनके पैर, जिनके भार से यह पुरातन धरती धँसी जा रही थी,

---

[1]. भाव यह है—लक्ष्मण को यह वात खटक रही है कि सुग्रीव धर्म-युद्ध नहीं कर रहा है, वल्कि वाली को मारने के लिए रामचन्द्र को ले आया है।—अनु०

परस्पर रगड़ा उठे, जिससे अग्निकण निकलकर अंतरिक्ष में ऐसे उड़ चले, जैसे उज्ज्वल विद्युत्-खंड उड़ रहे हों।

अत्यधिक भुजबल से युक्त, एक ही माता से उत्पन्न तथा एक ही मुग्धा स्त्री के लिए लड़नेवाले वे दोनों, (उनके शरीरों पर ) फैली हुई रक्त रेखाओं से शोभित, उज्ज्वल नेत्रोंवाली सुन्दरी तिलोत्तमा के लिए लड़नेवाले प्राचीन काल के सुन्द-उपसुन्द नामक दो राक्षसों के जैसे लगते थे।

एक समुद्र को दूसरे समुद्र से लड़ते हुए, भूमि की रक्षा करनेवाले मेरुपर्वत को दूसरे मेरुपर्वत से लड़ते हुए, क्रोध को स्वय दो रूप धारण कर आपस में युद्ध करते हुए, हमने कभी नहीं देखा है। अतः, इस संसार में उन बलवानों ( वाली-सुग्रीव ) के भयंकर युद्ध के लिए कोई उपमान भी हम नहीं दे सकते।

उन वानरों के नायकों ( वाली-सुग्रीव ) के नयनों से जो अग्नि-ज्वालाएँ उठीं, उनसे मेघ जल गये, पहाड़ जल गये, दिग्गज काँप उठे, धरती के चारों प्रकार के प्रदेश[1] अस्त-व्यस्त हो गये, अतरिक्ष मे रहनेवाले देवता दूर भागकर कहीं छिप गये।

देखनेवाले यह सोचकर विस्मय करते थे कि ये ( वाली-सुग्रीव ) अतरिक्ष में हैं, ऊँचे पर्वत पर हैं, भूमि पर हैं, चारों दिशाओं की सीमाओं पर हैं अथवा हमारे नयनों मे ही हैं, वे कहाँ खड़े हैं ? ( अर्थात्, वे दोनों इतनी त्वरित गति से लड़ रहे थे कि यह विदित नहीं होता था कि वे कहाँ खड़े हैं )। इस प्रकार, वे दोनों वानर एक दूसरे को मुष्टि से आहत करते थे और दाँतों से काटते थे, जिससे क्षत उत्पन्न होकर रक्त बह चलता था।

दसों दिशाओं में स्थित सातों समुद्र एक साथ गरज उठें, तो उनके उस गर्जन से भी पाँचगुना अधिक था उन दोनों वानर-नायकों का गर्जन-घोष। एक दूसरे की बड़ी भुजाओं और वक्ष पर वे तीव्र मुष्टि-प्रहार करते थे, तो उससे उत्पन्न शब्द युगांत के मेघों के गर्जन की समानता करता था।

वे बलवान् वीर एक दूसरे पर झपटकर अपने कराल दाँतों से काटते थे। तब उनके क्षतों से बहकर रक्त सब दिशाओं में छितरा जाता था, जिससे अतरिक्ष के सब नक्षत्र मंगल-ग्रह के समान हो गये—(मगल-ग्रह रक्त कांति से चमकता है, उसी प्रकार अन्य नक्षत्रों की कांति भी रक्त वर्ण हो गई )। बादल भी लाल आकाश-जैसे दीखने लगे।

जिस प्रकार अत्यधिक तपाये गये लौह-खंड को बड़े हथौड़े से मारने पर चिनगारियाँ छिटक उठती हैं, उसी प्रकार इन्द्र-पुत्र ( वाली ) की भुजाओं द्वारा रवि-पुत्र ( सुग्रीव ) के वक्ष पर दीर्घ करों का आघात होने से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

वे दोनों एक दूसरे को छाती से ढकेलते, टाँगों को फैलाकर लात मारते, बड़े वेग के साथ हाथों से मारते, काटते, खड़े होकर टकरा जाते, पेड़ों से पीटते हुए चिल्लाते,

१. तमिल-साहित्य में चार प्रकार के प्रदेशों का वर्णन होता है, जिन्हें मुल्लै, कुरिंजी, मरुदम और नेय्दिल कहते हैं। जो क्रमशः अरण्य-भूमि, पर्वतीय स्थान, खेती से भरी समतल भूमि और समुद्र-तट का प्रदेश होते हैं, पाँचवें प्रदेश पालै, अर्थात्, मरुभूमि का भी उल्लेख होता है। किंतु, वहाँ प्राणियों का निवास न होने से कदाचित् प्रस्तुत प्रसंग में उसे नहीं लिया गया है। —अनु०

शिलाओं को उखाड़कर एक दूसरे के शिर पर फेंकते और धमकी देकर डराते। ऐसे घूरते कि आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ती।

वे एक दूसरे को पकड़कर ऊपर उठाते, दूर फेंक देते, फिर समीप आकर अपना वक्ष फुलाकर दिखाते। मुष्टि का ऐसा प्रहार करते कि हाथ शरीर मे गड़ जाता। अति वेग से लट्टू के समान दाये और बायें पैंतरे बदलते, एक दूसरे को रोककर खड़े हो जाते, पीछे हटते, (परस्पर की) भुजाओं को बंधन में बाँधकर नीचे गिर जाते।

कभी पूँछ से एक दूसरे के वक्ष को बाँधकर ऐसे खीचते कि उनकी हड्डियाँ भी चूर-चूर हो जाती। अपनी टाँग से दूसरे की टाँग को उलझाकर कष्ट देते। फिर, कुछ ढील देते। जैसे भाला तानकर मारा हो, ऐसे ही अतिदृढ तीक्ष्ण नखो से परस्पर की देह को चीर देते, जिससे शरीर का चर्म ऐसा फट जाता, जैसे पर्वत की कदरा हो।

धरती मे गड़े हुए पर्वत, वृक्ष तथा दृष्टि मे पड़नेवाले सभी पदार्थों को वे अपने बलवान् हाथों से उखाड़-उखाड़कर फेंकते थे और उनसे आघात करते थे, जिससे वे (पर्वत, वृक्ष आदि) टूटकर कुछ अतरिक्ष में अदृश्य हो जाते और कुछ समुद्र में जा गिरते।

उस युद्ध मे कोई किसी से हारा नही। दोनों उग्र युद्ध-जन्य उमंग से मत्त होकर लड़ रहे थे। उनके श्वेत रोमों से रक्त वर्ण अग्नि-कण निकल रहे थे, जैसे सूखी घास से भरी भूमि पर आग फैल रही हो। (उस भयंकर युद्ध को देखकर) देवता भी भय से व्याकुल हो उठे, तो अब उस युद्ध के बारे में और क्या कहा जाय?

जब इस प्रकार वे दोनों बड़े पराक्रम से लड़ रहे थे, तब दीर्घ तथा पुष्ट भुजाओं तथा शत्रुध्वंसकारी पराक्रम से युक्त वाली ने सुग्रीव को अपने भयकर नखों तथा करो से ऐसे मारा, जैसे सिंह हाथी को मारता है।

तब रविकुमार (सुग्रीव) बहुत पीडित हो उठा और श्रीराम के पास गया। तब रामचन्द्र ने उससे कहा—दुःखी मत होओ। मैं तुम दोनों मे कोई अतर नही देख सका। अब तुम वनपुष्पो की माला पहनकर जाओ—यों कहकर उन्होंने सुग्रीव को दुबारा भेजा। सुग्रीव फिर जाकर वाली से युद्ध करने लगा।

सुग्रीव, जिसके शिर पर की पुष्पमाला ऐसी थी, मानों उज्ज्वल नक्षत्रों की गूँथी हुई माला हो, अपने गर्जन से भयंकर व्याघ्र और मेघ-गर्जन को भी चकित करता हुआ त्वरित गति से आया और शत्रु-विनाशक वाली को मुक्कों से मार-मारकर त्रस्त कर दिया।

तब वाली मन में आशकित हुआ। वह क्रोध के साथ इस प्रकार घूरा कि यम भी उससे डर गया। वह मदहास कर उठा। फिर, अपने दृढ हाथों और पैरो से सुग्रीव के मर्म-स्थानो मे आघात किया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया।

सुग्रीव अपने निःश्वासों के साथ प्राण भी उगलने लगा। उसके कानों और नेत्रों से अग्नि-ज्वालाओं के साथ रक्त की धारा भी बह चली। तब सूर्यपुत्र (सुग्रीव) चारों दिशाओं मे व्याकुल होकर देखने लगा और इन्द्रपुत्र (वाली) गर्व से आगे बढ़कर अधिकाधिक प्रहार करने लगा।

(फिर) वाली ने, यह सोचकर कि इसे धरती पर पटककर मार दूँगा, अपने

भाई की कटि और कंठ में अपने करो को डालकर ऊपर उठा लिया। इतने मे रामचन्द्र ने एक वाण लेकर अपने धनुष पर चढ़ाया और उसकी डोरी के साथ अपने हाथ को भी पीछे खीचकर ( बाण को ) छोड़ दिया।

वह शर जल, जल के कारणभूत अग्नि, वेगवान् वायु, नीचे की पृथ्वी—इन चारों भूतो के बल से युक्त हो वाली के वक्ष को उमी प्रकार छेदकर चला, जिस प्रकार भली भाँति पके हुए कदली फल को सूई छेद देती है। अब और कहने को क्या शेष रह गया?

वह वाली, जिसने भुजबल से रहित हुए अपने अनुज ( सुग्रीव ) पर करुणा-रहित होकर, दृढ भूमि पर पटककर उसे मार डालना चाहा था, ( राम का शर लगते ही ) अत्यन्त व्याकुल हुआ और युगांत के प्रभंजन के लगने से जिस प्रकार मेरुपर्वत जड़ से उखड़कर गिरता हो, उसी प्रकार गिर पड़ा।

वज्र के आघात से उखड़े हुए पर्वत के समान, धरती पर गिरे हुए, युद्ध में शत्रु-भयंकर वाली ने, सूर्य-पुत्र ( सुग्रीव ) को पकड़े हुए अपने हाथों को शिथिल कर दिया। किंतु उग्र शर, जो उसके प्राणों को पकडे हुए था, उसे वह ढीला नही कर सका।

विजयशील महावीर ( राम ) का वह अमोघ वाण उस ( वाली ) के बलिष्ठ वक्ष में जा लगा। वाली ने उस वाण को ( अपने वक्ष को छेदकर पीठ की ओर से ) बाहर निकल जाने के पहले ही अपने बलिष्ठ हाथ से पकड़ लिया और अपनी पूँछ और पैरों से उसे बाँधकर रोक लिया। ( उसके उस बल को देखकर ) विजयी यमराज भी शिर हिलाने लगा ( अर्थात्, यम भी वाली की प्रशंसा करने लगा। )

वाली कभी यह विचार कर कि मै उछलकर अंतरिक्ष रूपी ढकन से टकराकर उसे चूर-चूर करके गिरा दूँगा, ऊपर उछलता। कभी यह विचार कर कि एक उड़द के लुढ़क जाने के समय के भीतर ही ( अर्थात्, क्षणार्ध में ) समस्त दिशाओ को विध्वस्त कर दूँगा, आगे लपकता। कभी यह विचार कर कि पृथ्वी को समूल खोद डालूँगा, नीचे गिर जाता। कभी यह सोचने लगता कि मेरे वक्ष में घुस जानेवाले ऐसे ( तीक्ष्ण ) वाण का प्रयोग करनेवाला कौन है?

वह धरती पर अपने हाथो को पटकता। चारों ओर आँख उठाकर यों घूरता कि उनसे चिनगारियाँ निकल पड़ती। उस उग्र वाण को अपने दोनो हाथों से पकड़कर पूँछ और पादों से दृढतापूर्वक खीचता। लेकिन, उस शर के न निकलने से अत्यत पीडित होता। फिर, पर्वत के समान लुढक जाता।

वह यों शका करता कि ( उस शर का प्रयोग करनेवाले ) कदाचित् कोई देवता ही हैं; फिर यह सोचता कि ऐसा कार्य करने की शक्ति क्या उन देवताओं मे है? तो यह अन्य कौन है?—यह विचार कर हँसने लगता। कभी यह कहता कि यह ऐसे व्यक्ति का ही कार्य होगा, जो त्रिदेवों की समता करता है।

मेरे वक्ष में लगा हुआ यह क्या ( विष्णु का ) चक्र ही है? या नीलकंठ (शिव) का त्रिशूल है? यदि उनमे से कोई नही है, तो क्या पर्वतो को ध्वस्त करनेवाले प्रसिद्ध इन्द्र

के आयुध वज्र में इतनी शक्ति है कि वह मेरे वक्ष में प्रवेश कर सके? यह क्या है?—इस प्रकार सोच-सोचकर वाली व्यथित होता।

अति वेग से अपने वक्ष में धँस जानेवाले उस शर को देखकर वाली यह सोचता हुआ आश्चर्य करने लगता कि यह वाण एक धनुष से प्रयुक्त हुआ हो, यह असंभव है। तब क्या ऋषियों ने मंत्रों के प्रभाव से इसे प्रयुक्त किया है? फिर, दीर्घकाल तक अपने दाँतों को पीसता रहता।

अब उसे यह ज्ञात हुआ है कि यह एक शर ही है। अनेक शंकाएँ करते रहने से क्या प्रयोजन है? प्राणों के साथ मेरे वक्षःस्थल को छेद डालनेवाले इस अनुपम शर को दोनों हाथों, पूँछ और पैरों से निकालकर इसे प्रयुक्त करनेवाले वीर का नाम जान लूँगा—(अर्थात्, शर पर लिखे नाम को पढ़कर उसके प्रयोक्ता को जान लूँगा)—यों विचार कर वह वाण को निकालने लगा।

अत्यधिक दृढ़ता से युक्त मनवाले तथा अत्यन्त व्याकुलता से भरे सिंह-समान वाली ने उस शर को पकड़कर थोड़ा खींच लिया। वह दृश्य देखकर देवताओं, असुरों तथा अन्य लोगों ने विस्मय में पड़कर अपनी भुजाओं को फुला लिया। वीरों के प्रति विस्मय भी न दिखावे, ऐसे कौन होंगे?

उस समय (वाली के वक्ष से) जो रक्त-प्रवाह हुआ, वह जंगलों और ऊँचे पर्वतों को लाँघकर बह चला, मानों वह समुद्र में जाकर मिलने के लिए ही बहा हो। क्या उसका ऐसा वर्णन करना उचित हो सकता है कि वह (रक्त-प्रवाह) ऊँची तरंगों से पूर्ण समुद्र-जैसे गर्जन करता हुआ, सब लोकों को पार कर उमड़ चला?

सुरभित पुष्पहारों से भूषित (वाली) के वक्ष-रूपी पर्वत से बहनेवाले शब्दायमान रक्तप्रवाह को देखकर, महोदरत्व-रूपी बंधन से बँधा हुआ उसका भाई सुग्रीव, अपनी पीली आँखों से प्रेमाश्रु बहाता हुआ धरती पर गिर पड़ा।

मेरु को तोड़ने की शक्ति से युक्त वह यशस्वी (अपने शरीर से) निकाले हुए शर को अपने विशाल तथा बलवान् हाथों में लेकर पहले यह सोचा कि मैं इसे तोड़ दूँगा। किन्तु, फिर यह कहता हुआ कि मेरे प्रयत्न करने से भी यह वाण टूटनेवाला नहीं है, उसपर अंकित नाम को देखने लगा।

जो तीनों लोकों के लिए मूलमंत्र है, जो उसका जप करनेवालों को स्वयं को ही (अर्थात्, अपने वाच्य भगवान् को ही) पूर्ण रूप से दे देता है, जो इसी जन्म में सातों प्रकार की (योनियों[1] में जन्म लेने की) व्याधियों से मुक्ति देनेवाला औषध है, उस अनुपम महिमामय राम-शब्द को वाली ने अपनी आँखों से देखा।

गृहस्थ-धर्म का त्याग कर (वनवास में) आये हुए तथा मेरे जैसे व्यक्ति के लिए अपने कुल-क्रमागत धनुर्युद्ध के धर्म को भी छोड़नेवाले, ऐसे वीर के उत्पन्न होने के कारण, वह सूर्यवंश भी, जिसने वेद-प्रतिपादित धर्म को कभी नहीं छोड़ा था, आज सनातन धर्म से

---

१. सात योनियाँ—मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी, रेंगनेवाले प्राणी, स्थावर और जलचर।—अनु०

रहित हो गया।—यों विचार कर वह ( वाली ) हँस पड़ा और फिर मन में लज्जा से भर गया।

बड़ी पीड़ा से शिथिल हो पड़ा हुआ वह वाली, जो एक बड़े गड्ढे में गिरे हुए बलवान् मत्तगज के समान था, मन में लज्जा से भरकर अपने किरीट-भूषित सिर को झुकाता, अट्टहास करता, फिर ( मौन हो ) सोचता और विचार करता कि क्या इस प्रकार शर का प्रयोग करना धर्म हो सकता है?

यदि सब ( लोकों ) के प्रभु ( राम ) ही धर्म से च्युत हो गये, तो निम्न व्यक्तियों का स्वभाव कैसा होगा? मेरे विषय में इस प्रभु ने अन्याय कर दिया है।—ऐसे कटु मुँह से बोलनेवाले उस (वाली) के सम्मुख वे रामचन्द्र आ उपस्थित हुए, जो वेद-प्रतिपादित सत्य और क्षत्रियों के लिए विहित प्राचीन धर्म को अस्खलित रूप में सुरक्षित रखने के लिए अवतीर्ण हुए थे।

वाली ने अपनी आँखों के सामने उस विष्णु के अवतार ( राम ) को देखा, जो ऐसा था, मानों वर्षाकालिक नीलजलद-धनुष को धारण किये, अपने पार्श्व में विकसित कनक-वन ( लक्ष्मण ) के साथ, धरती पर उतर आया हो। उस (वाली) ने अपनी आँखों से, घावों से बहनेवाले रुधिर के सदृश ही रक्तवर्ण अग्नि-कणों को निकालते हुए राम को देखा और कहा—'तुमने क्या सोचा? क्या किया?' फिर उनकी निन्दा में कहने लगा—

सत्य तथा कुल-धर्म की रक्षा करने के लिए अपने उत्तम प्राणों को भी छोड़नेवाले उदारगुण एवं पवित्रात्मा ( दशरथ ) के हे पुत्र! तुम भरत से पूर्व ( अर्थात्, भरत का बड़ा भाई होकर ) जनमे। यदि दूसरों को बुरा काम करने से रोककर स्वयं बुरा काम करो, तो क्या वह पाप नहीं माना जायगा? संसार के लिए मातृ-वात्सल्य के साथ नम्रता तथा धर्म का भी निर्वाह करनेवाले ( हे राम )! कहो तो।

उत्तम कुल तुम्हारा है। श्रेष्ठ विद्या तुम्हारी है। विजय तुम्हारी है। उचित सत्कर्म तुम्हारे हैं। त्रिभुवन का नायकत्व भी तुम्हारा ही है न? बल तुम्हारा। इस संसार की रक्षा करनेवाली महिमा भी तुम्हारी। तो भी सबको विस्मृत-सा करके, उस सारी महिमा को विनष्ट करनेवाला ऐसा कार्य करना क्या तुम्हारे लिए उचित है?

हे चित्र में अंकित करने के लिए दुष्कर सौंदर्य से विशिष्ट! तुम्हारे कुल के सब लोगों के लिए क्षत्रिय-धर्म सबल बना हुआ है न? तो अब क्या तुम अपने प्राण-समान, हंसिनी-तुल्य, जनक की पुत्री, जो तुम्हें अमृत के सदृश प्राप्त हुई थी, उस देवी को खोकर अपने कर्तव्य में भी भ्रांत हो गये हो?

यदि राक्षस तुम्हारा अहित करें, तो उसके बदले, उनसे भिन्न एक वानर-राजा को मार दो—क्या यही तुम्हारे मनु-धर्मशास्त्र में लिखा है? क्या मानव-गुण को तुमने कहीं खो दिया? मुझमें तुमने कौन-सा दोष देखा? हे तात! तुम्हीं यदि ऐसे अपयश का भाजन हो जाओगे, तो यश को धारण करनेवाला और कौन होगा?

हे कृपानिधि! उदारचरित! गम्भीरनाद समुद्र से आवृत पृथ्वी पर दौड़ते, उछलते रहनेवाले वानरों के मध्य ही क्या कलिकाल आ गया है? क्या सत्कर्म तथा उत्तमशील अब

बलहीनों के पास ही रहने योग्य हो गये हैं? यदि बलवान् लोग नीच कार्य करेंगे, तो उनसे क्या उन्हें अपयश न होकर सुयश प्राप्त होगा?

हे (युद्ध में) किसी की सहायता की अपेक्षा न रखनेवाले वीर! पिता से दिये गये ऐश्वर्य को उसी समय अपने भाई का स्वत्व बनाकर तुम वनवास के लिए आये। इस प्रकार नगर में तुमने एक (विलक्षण) कार्य किया; किंतु मेरे अनुज को यह राज्य देकर वन में तुमने एक दूसरा ही कार्य किया, इससे बढ़कर भी क्या कोई कार्य हो सकता है? (यहाँ वाली व्यंग्य करता है।)

मुखर वीर-वलय तथा विजयमाला को धारण करनेवाले वीर लोग जो भी काम करते हैं, वह वीरों के योग्य ही तो माना जायगा। सब पुरातन शास्त्रों के प्रभु बने हुए तुमने यदि मेरे विषय में ऐसा क्षुद्र कार्य किया है, तो हे क्रोधरहित! अब लंकाधिप के अधर्म-कृत्य पर तुम कैसे क्रोध कर सकते हो?

जब दो व्यक्ति युद्ध करने में निरत हों, तब उन दोनों को समान रूप से न देखकर यदि एक पर दया दिखाओ और दूसरे पर आड़ में खड़े होकर अपने दृढ धनुष को भली भाँति झुकाकर तीक्ष्ण बाण को मर्म-स्थान में प्रयुक्त करो, तो क्या यह धर्म है अथवा और कुछ है? जैसे भी हो, ऐसा पक्षपात अनुचित है।

(तुम्हारे इस कार्य में) वीरता नहीं है। (शास्त्र में) विहित विधि भी नहीं है। वह सत्य में सम्मिलित होनेवाला कार्य भी नहीं है। तुम्हारा स्वत्व बनी हुई इस पृथ्वी के लिए मेरा यह शरीर भारभूत भी नहीं है। मैं तुम्हारा शत्रु भी नहीं हूँ। तो, सद्गुण का त्याग कर ऐसा दया-रहित कार्य तुमने क्यों किया?

द्विविध कर्मों (इस लोक के और परलोक के लिए हितकारी कर्म) का भली भाँति विचार करके, सबके लिए (अर्थात्, शत्रु, मित्र और तटस्थ—तीनों प्रकार के लोगों के लिए) समान रूप से उत्तम कार्य करना ही तो धर्म की रक्षा है और उसी में महत्त्व है। अन्यथा पक्षपात से एक को सहायता पहुँचाना क्या धर्म माना जा सकता है और क्या ऐसा करके कोई अपने को दोष से मुक्त रख सकता है?

तुम्हारी रक्षा को दूरकर (सीता का) अपहरण करनेवाले शत्रु (रावण) को विनष्ट करने के लिए यदि तुम किसी दूसरे की सहायता पाना चाहते हो, तो तुम्हारा यह कैसा प्रयत्न है कि काले मेघ-जैसे हाथी के प्राण पीनेवाले, क्रोध से उमड़नेवाले सिंह को छोड़कर, तुम एक मगर को अपना साथी बना रहे हो?

विश्व में विचरण करनेवाले चंद्र में प्राचीन काल से ही कलंक लगा है, कदाचित् यह देखकर ही सूर्य के वंश में तुमने जन्म लेकर उस वंश के लिए भी एक अमिट कलंक उत्पन्न कर दिया है।

युद्ध के लिए किसी दूसरे के आह्वान करने पर मैं यहाँ आया था। तुमने छिपकर मेरा प्राण-हरण किया। अब जब मैं धरती पर गिरा हूँ, तब तुम दूसरों की दृष्टि में सिंह बनकर यहाँ आ खड़े हुए हो। वाह!

हे प्रतापी वीर! शास्त्र-विधान की, अपने वंश के पितृ-पितामहों के शील तथा

स्वभाव की रक्षा किये विना, तुमने ( मुझे निहत करके ) वाली को नही, किंतु राजधर्म की बाड़ को ही गिरा दिया है।

किसी ने तुम्हारी पत्नी का हरण किया, तो तुमने किसी दूसरे पर हाथ उठाया। तुम्हारे हाथ का भार बना हुआ यह धनुष वीरता के लिए कलंक है। तुम्हारी धनुर्विद्या की प्रवीणता, क्या सामने न आकर आड़ में खडे होकर एक निःशस्त्र के वक्ष मे शर छोड़ने के लिए ही है?

यों अपने दाँतों को पीसता हुआ और अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालता हुआ वाली बोला। तब उसके सामने खडे हुए महावीर ( राम ) कहने लगे—

जब तुम ( मायावी का पीछा करते हुए ) गुहा के भीतर गये थे और अनेक दिनों तक नही लौटे थे, तब दुःखी होकर सुग्रीव भी उसी गुहा में जाना चाहता था। उसे देखकर, तुम्हारे कुल के बुद्धिमान् वृद्धों ने समझाया कि हे स्वर्णहार-भूषित ( सुग्रीव )। हमारी बात सुनो। अब तुम्हारा राजा बनना ही उचित है।

इसपर सुग्रीव ने कहा—मेरे ज्येष्ठ भ्राता वाली को मायावी ने मारकर वीर-स्वर्ग का शासन दिया है, अतः मै उस मायावी को उसके परिवार-सहित मिटा दूँगा। या स्वयं प्राण-त्याग करूँगा। मैं जीवित रहकर राज्य करना नही चाहता। आपके वचन मेरे लिए योग्य नही हैं।

तब उत्तम सेनापतियों और सर्वज्ञ तथा अनुभवी वृद्धों ने उसका मार्ग रोककर समझाया—तुम्हारा राज्य करना ही सब प्रकार से उचित है। तब उस दोषहीन ( सुग्रीव ) ने विजय-किरीट धारण किया।

वह ( सुग्रीव ) तुम्हें लौट आया देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तुम्हे नमस्कार कर निवेदन किया—हे प्रभु, यह तुम्हारा राज्य है, जिसका भार वृद्धो ने मुझपर हठ करके रखा है। इस प्रकार, गर्वरहित सुग्रीव ने पूर्व-घटित सारा वृत्तात तुमसे निवेदन किया था। किंतु तुम उसपर क्रुद्ध हुए और—

उसको निरपराध जानकर भी उसपर तुमने दया नही की। जब वह तुमसे यह प्रार्थना कर रहा था कि मै तुम्हारी शरण मे हूँ, मेरे अपराध को क्षमा करो, तब भी उसको क्षमा न करके तुमने बड़े क्रोध के साथ उसे मारा-पीटा।

बल-समृद्ध सुग्रीव, यह कहकर कि मैं तुम्हारे साथ युद्ध मे पराजित हो गया हूँ, अपने शिर पर हाथ जोड़े खड़ा रहा, किंतु तुम उसके प्राण यम को सौंप देना चाहते थे। तब वह चारों दिशाओं में भागने लगा था।

उसे उस प्रकार भागते जानकर भी तुमने उसपर दया नहीं की। यह विचार न करके कि वह तुम्हारा अनुज है, तुम उसका पीछा करने लगे। फिर मुनि के शाप से सुरक्षित पर्वत ( ऋष्यमूक ) पर जब सुग्रीव चला गया, तब तुम वहाँ से हटे।

दया, कुलीनता, वीरता, विद्या और उसके द्वारा प्राप्त नीति—इन सबका प्रयोजन तो यही है कि पर-नारी के शील की रक्षा करे।

यदि स्वच्छ विवेकवाला भी यह सोचकर कि मै बड़ा बलवान् हूँ, अपने मन को

कुमार्ग पर चलाये और बलहीनों पर क्रोध करे, तो वह वीरधर्म से च्युत हो जाता है। ऐसे ही यदि कोई पर-पुरुष की सुरक्षित शीलवाली स्त्री के चारित्र्य को मिटाता है, तो वह भी धर्म से च्युत होता है।

धर्म क्या है?—तुमने यह नहीं सोचा। इहलोक तथा परलोक के फलों (पाप और पुण्य) का विचार भी नहीं किया। यदि तुमने यह सोचा होता, तो क्या अधर्मता के साथ अपने छोटे भाई की प्राण-समान पत्नी की संगति प्राप्त करते?

इन कारणों से, तथा उस सुग्रीव के मेरे प्राणसम मित्र होने से, मैंने तुम्हारे प्राण हरण किये। इतना ही नहीं, पराया होने पर भी, बलहीनों के दुःख को दूर करना ही मेरा ध्येय है।

तुम्हारा यही अपराध है। जब अतिसुन्दर महावीर राम ने इस प्रकार कहा, तब अनुचित कार्य करनेवाला वाली फिर कहने लगा—तुम्हारा यह कथन मेरे लिए लागू नहीं होता। क्योंकि, हम वानरों के लिए अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करना कुछ अधर्म नहीं होता।

वाली ने कहा—हे प्रभु! पातिव्रत्य धर्म तथा उसके अनुकूल अन्य सद्गुणों से युक्त कर्म, तुम्हारे असत्य-रहित कुल की स्त्रियों के लिए, कमलभव (ब्रह्मा) ने जिस प्रकार विवाह का विधान किया है, उसी प्रकार हमारे कुल की स्त्रियों के लिए नहीं किया। किंतु, हमारे यहाँ जब जैसा संयोग मिले, तब वैसा ही संबंध करने का विधान है।

हे शत्रुओं की मज्जा तथा घृत से लिप्त चक्रायुध धारण करनेवाले! हमारा मन जैसा चाहता है, वैसा ही हमारा आचरण भी होता है। इसके अतिरिक्त, हम वानरों के लिए वेद-प्रतिपादित विवाह का कोई विधान नहीं है। कुल-परंपरागत गुण भी हममें नहीं होते।

मुझे जीतनेवाले हे विजयशील! यही हमारे कुल की रीति है। अतः, मैंने अपने कुल-धर्म के अनुसार कोई पाप नहीं किया है। यह तुम समझ लो। वाली के यह कहने पर रामचन्द्र ने उत्तर दिया—

तुम उत्तम गुणवाले देवों के पुत्र बनकर उत्पन्न हुए हो और शाश्वत धर्म-मार्ग के ज्ञाता हो। तुम मृग नहीं हो। अतः, विजय-मालाओं से भूषित रहनेवाले तुम-जैसे वीर के लिए ऐसा कार्य अनुचित ही है।

क्या धर्म, पंचेंद्रियों के वशीभूत शरीर से ही संबंध रखता है? क्या वह विषयों का विवेचन करनेवाले विवेक से संबंध नहीं रखता है? तुमने तो (शरीर से वानर होने पर भी विवेक से) धर्म के महत्त्व को भली भाँति जाना है। अतः, क्या पापकर्म करना तुम्हारे लिए उचित है?

वह गजेंद्र भी जन्म से मृग-जाति का ही तो था, जिसने एक मगर से ग्रस्त होकर शंखधारी विजयशील भगवान् (विष्णु) को पुकारा था और अपने अनुपम विवेक के कारण मोक्ष-पद प्राप्त किया था।

मेरे पितृ-तुल्य वह जटायु भी तो एक गृध्र ही था, जिसने धर्म-मार्ग में अपने मन

को निरत रखकर स्वर्ण-कंकण-धारिणी लक्ष्मी (-सदृश सीता) के दुःख को दूर करने के प्रयत्न में भयकर युद्ध किया था और इस संसार से मुक्ति प्राप्त की थी।

पशुओं का स्वभाव ऐसा होता है कि वे भले और बुरे के विवेक से हीन रहकर जीवन व्यतीत करते हैं। किंतु, तुम्हारे मुख से निकले वचन ही बता रहे हैं कि चिरंतन धर्म का ऐसा कोई मार्ग नहीं है, जिसे तुमने नहीं जाना हो।

यह उचित है, यह अनुचित है—इस प्रकार का विवेक किसी व्यक्ति में भी न हो, तो वह भी पशु ही होता है। यदि कोई पशु भी मनु के बताये मार्ग पर चले, तो वह देव-तुल्य हो जाता है।

तुमने यम के प्रभाव को भी मिटा देनेवाले, परशु धारण करनेवाले शिव के प्रति जो भक्ति की थी, उसी के फलस्वरूप, विष्णु के द्वारा सृष्ट चार महाभूतों की शक्ति प्राप्त की थी।

जन्म से नीच कहे जानेवाले, धर्म-मार्ग पर चलनेवाले, निष्पाप तपस्या करनेवाले, अनेक गुणों से युक्त देवता तथा पाप-कृत्य करनेवाले—इन सब लोगों मे भी बुरे आचरण करनेवाले होते हैं।

अतः, किसी भी कुल मे उत्पन्न व्यक्ति की महत्ता या क्षुद्रता उसके कार्य से ही होती है। यह जानते हुए भी तुमने अन्य की पत्नी के शील को मिटाया—इस प्रकार, मनु-नीति पर दृढ रहनेवाले (राम) ने कहा।

(रामचन्द्र का) यह कथन सुनकर कपियों के राजा वाली ने राम से पूछा—हे प्रभु! ऐसी बात है, तो तुम को युद्ध-क्षेत्र मे आकर मुझसे युद्ध करते हुए बाण छोड़ना चाहिए था। किंतु, ऐसा न करके, कहीं छिपकर धनुष से शर का प्रयोग तुमने क्यों किया?—इस प्रश्न का उत्तर लक्ष्मण देने लगा।

तुम्हारा भाई (सुग्रीव), पहले ही उन (राम) की शरण मे आ गया था। तब उन्होंने उसे यह वचन दिया था कि नीति से भ्रष्ट हुए तुमको वे निहत करेंगे। यदि वे युद्ध-क्षेत्र में तुम्हारे सम्मुख आते, तो कदाचित् तुम भी अपने प्राणों के मोह से उनकी शरण माँगते—यही सोचकर मेरे भ्राता ने तुम्हारे सामने न आकर छिपकर शर-संधान किया।

कपिकुल के प्रभु वाली ने, जिसने शास्त्रों का ज्ञान रूपी संपत्ति प्राप्त की थी, लक्ष्मण के कथन को हृदयंगम किया और यह जानकर कि अति महिमावान् रामचन्द्र धर्म का विनाश कभी नहीं करेंगे, शांत हो गया और (राम के प्रति) सिर नवाकर क्षुद्र विचारों से हीन वाली कहने लगा—

हे पुरुषोत्तम। तुम प्राणियों पर मातृ-समान प्रेम रखते हो। धर्म, निष्पक्षता आदि सद्गुणों की साकार मूर्त्ति हो। (वेद-प्रतिपादित) सन्मार्ग के अनुसार देखा जाय, तो हम श्वान-समान हैं, और हम दोषहीन भी नहीं हैं। हमारे पापों को क्षमा करो।

फिर, रामचन्द्र से वाली ने प्रार्थना की—हे प्रभु! मुझे विवेकहीन वानर तथा श्वान-सदृश तुच्छ व्यक्ति समझकर मेरे वचनों को मन मे न रखो। दुःखद जन्म-व्याधि के लिए अपूर्व औषधि-समान मेरे स्वामी। सब अभीष्टों को देनेवाले हे उदार! मेरी एक बात सुनो—यह कहकर वाली फिर बोला—

सधान कर प्रयुक्त किये गये बाण से मुझे आहत कर, प्राण छूटने के समय, श्वान-सदृश मुझ क्षुद्र व्यक्ति को तुमने आत्मज्ञान प्रदान किया। त्रिदेव तुम्ही हो। आदि परब्रह्म तुम्ही हो। पाप और पुण्य भी तुम्ही हो। शत्रु और मित्र भी तुम्ही हो। अन्य सब भी तुम्ही हो।

तुम्हारे शर ने, त्रिपुर-दाह करनेवाले (शिव) आदि देवो के द्वारा मुझे दिये गये सब वरो को निष्फल बनाकर मेरे दोषहीन दृढ वक्ष मे प्रविष्ट होकर मेरे प्राणो को पी लिया। तुम्हारे ऐसे शर के अतिरिक्त अन्य पृथक धर्म क्या है? (अर्थात्, तुम्हारा शर स्वय धर्म-स्वरूप है।)

हे देव! विचार करने पर ज्ञात होता है कि अति-बलिष्ठ शूल को धारण करनेवाले (शिवजी), उनकी प्रार्थना करनेवाले सब लोगो को श्रेष्ठ वर देते हैं, तो वह तुम्हारे अनुपम नाम का जप करने के ही प्रभाव से ऐसा करते हैं। वैसे प्रभावशाली नाम के विषयभूत तुमको प्रत्यक्ष देखने पर अब मेरे लिए दुष्प्राप्य फल क्या रह गया? (अर्थात्, मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो गई।)

तुम सब प्राणी, सब पदार्थ-समूह, सब ऋतुएँ तथा उन ऋतुओ के फल बनकर इस प्रकार व्याप्त रहते हो, जिस प्रकार पुष्प के भीतर सुगंधि रहती है। हे अनुपम! तुम कौन हो और तुम्हारा रूप क्या है?—यह मेरे ज्ञान ने मुझे जता दिया। अब क्या शाश्वत परमपद भी मेरे लिए दुष्प्राप्य हो सकता है? (अर्थात्, वह भी सुलभ है।)

सद्धर्म को ही अपना स्वरूप बनाये रहनेवाले तुमको मैने देख लिया है। अब मुझे और क्या देखना शेष रह गया है? मेरा बहुत बड़ा दीर्घकालिक कर्मजात आज समाप्त हो गया (अर्थात्, अब मै उस कर्म-बधन से मुक्त हो गया)। तुम्हारा दिया हुआ यह दड ही मुझे सद्गति देनेवाला है।

हे गगन से भी उन्नत महत्त्व और विजय से युक्त नरेश! मेरा भाई मुझे मरवाने के लिए तुम्हे ले आया और तुच्छ वानरो की अच्छी मत्रणा से शासित किये जानेवाले मेरे इस चिरकालीन क्षुद्र राज्य को स्वयं लेकर मुझे मुक्ति का राज्य दिया है। इससे बढकर मेरा और क्या उपकार हो सकता है?

हे चित्र-सदृश आकारवाले! इस दास को तुमसे कुछ माँगना है। मेरा भाई (सुग्रीव) पुष्प-मधु का पान करने से कभी विकृतबुद्धि होकर कोई अपराध भी कर दे, तो उसपर तुम क्रोध मत करना और जिस शर-रूपी यम का प्रयोग मुझपर किया है, उसका प्रयोग उसपर मत करना।

एक और प्रार्थना है। तुम्हारे भ्राता लोग यह सोचकर कि उसने अपने बडे भाई को मरवा डाला है, मेरे भाई को कभी अपमानित न करें। हे उत्तम गुणवाले! तुम उन्हे वैसा करने से रोकना। हे प्रभु! तुमने पहले इसके कार्य को पूर्ण करने का वचन दिया था, अतएव इसने जो किया है (अर्थात्, अपने बडे भाई को मरवाया), वह भाग्य का ही खेल है। क्या भाग्य के परिणाम से मुक्त होना संभव है?

हे विजयी प्रभु! मुझसे और कुछ नही हो सकता था, तो भी मै अपने वानर

जन्म के योग्य, कम-से-कम इतना कार्य तो कर दिखाता कि उस मायावी राक्षस ( रावण ) को अपनी पूँछ में बाँधकर तुम्हारे सम्मुख ला खड़ा कर देता। मेरा उतना भी भाग्य नहीं हुआ। पर जो बीत गया, उसके बारे में कहने से कुछ लाभ नहीं। कोई कार्य पूरा करवाना हो, या कुछ महत्त्व का कार्य हो, तो उसे करने के लिए यह हनुमान् योग्य व्यक्ति है।

हे चक्रधारी! हनुमान् को तुम अपने अरुण हस्त में रखा हुआ धनुष समझो। इसके सदृश सहायक अन्य कोई नहीं है। नभ से भी उन्नत कंधोंवाले। तुम उस देवी ( सीता ) का अन्वेषण करके उसे प्राप्त करो।

राम के प्रति ये वचन कहकर, उस वाली ने, अपनी दोनों बाँहों को बढ़ाकर निकट-स्थित अपने भाई का आलिंगन किया और कहा—हे तात! तुम्हें कहने योग्य एक हित-वचन है। उसे अपने मन में ठीक से बिठा लो। हे पर्वतोन्नत कंधोंवाले। मेरी मृत्यु पर तुम शोक मत करना। यह कहकर वह फिर आगे बोला—

हे अधिक विवेकवाले! जिस परम तत्त्व के बारे में वेद, शास्त्र, मुनि तथा कमलासन ब्रह्मा आदि वर्णन करते हैं, वही परब्रह्म धर्म-मार्ग को सुरक्षित रखने के लिए शब्दायमान वीर-कंकणधारी राम के रूप में अवतीर्ण हुआ है और शत्रुनाशक धनुष लेकर यहाँ आया है। इसमें कोई सदेह नहीं है। तुम इसे भली भाँति जान लो।

हे स्वर्णमय पर्वत-सदृश अति उज्ज्वल कंधोंवाले! शाश्वत आनद (अर्थात्, मुक्ति) रूपी सपत्ति की कामना करके, उसके योग्य मार्ग पर चलनेवाले सब प्राणी इसी का नाम जपते हैं। इसी का ध्यान करते हैं। इस बात को तुम जान लो। यदि इसके सामान्य गुणों का ही विचार करें, तो भी इसके प्रभाव का प्रमाण देने के लिए इतना पर्याप्त है कि इसने मुझे मारा है। इससे बढ़कर और कोई प्रमाण आवश्यक नहीं।

हे तात! जो वंचक हैं, जिन्होंने असख्य असाध्य पाप किये हैं, वैसे जन भी इस उदार के शर-प्रयोग से मारे जाकर अति उत्तम मुक्ति-पद को प्राप्त करते हैं, तो उन लोगों के द्वारा मुक्ति-पद प्राप्त करने के बारे में कहना ही क्या है, जो इनके उभय चरणों की सेवा में निरत रहते हैं?

जब भाग्य ही स्वयं सहायता देने के लिए प्रस्तुत हो, तो फिर दुर्लभ वस्तु क्या हो सकती है? अतः, इहलोक और परलोक, दोनों के फल तुमने प्राप्त कर लिये हैं। अब यही तुम्हारा कर्त्तव्य रह गया है कि लक्ष्मी तथा श्रीवत्स-चिह्नों से अंकित वक्षवाले इस ( राम ) की आज्ञा को शिरोधार्य करके, उसी में अपने चित्त को एकाग्र बना लो। यों त्रिभुवनों में तुम उन्नति पाओगे।

वानर-सुलभ अज्ञान और चपलता को दूर कर दो। उदारमना ( रामचन्द्र ) के द्वारा किये गये उपकार को कभी न भूलो। उसके लिए आवश्यक होने पर अपने प्राण भी त्यागने के लिए सन्नद्ध रहो। परमपद को प्रदान करनेवाले उस परब्रह्म की सभी आज्ञाओं का सुचारु रूप से पालन करके अपार जन्म-परपरा से अनायास ही मुक्त हो जाओ।

राज्य प्राप्त करने के आनन्द से मत्त होकर इसकी उपेक्षा न कर बैठना। उसके कमल-चरणों की छाया से कभी न हटना। इसी भाँति जीवन बिताना। यह स्मरण रखना

कि नरपति जलती अग्नि की उपमा के योग्य होते हैं। इसके बताये गये सब कार्य पूर्ण करना। यह न सोचना कि नरपति तुच्छ सेवको के अपराधो को क्षमा कर देते हैं।

इस प्रकार के हित-वचन अपने दुःखी भाई के प्रति कहकर वाली ने अपने सम्मुख स्थित सुन्दर ( राम ) को देखकर कहा—हे चक्रवर्ती कुमार। यह ( सुग्रीव ) अपने सारे परिवार-सहित तुम्हारी ही शरण में है। यह कहकर अपने अनुज को राम के समीप प्रेषित किया और अपने दोनो कर शिर पर जोड़ लिये।

इस प्रकार, हाथ जोड़ने के पश्चात् अपने प्रेम-पात्र अनुज का मुख देखकर ( वाली ने ) कहा—तुम मेरे प्यारे पुत्र ( अगद ) को शीघ्र बुलाओ। सुग्रीव के बुलाने पर, अपने हाथो से समुद्र को मथनेवाले उस ( वाली ) का पुत्र अगद शीघ्र वहाँ आ पहुँचा।

वह अगद, जिसने कभी कल्पना में भी दुःखी मनवाले व्यक्तियो को नही देखा था, उज्ज्वल पूर्णचन्द्र के समान वहाँ आ पहुँचा। आकर उसने अपनी आँखो से अपने प्रिय पिता को, पुष्पमय सुगंधित शय्या के बदले रक्त-समुद्र के मध्य पड़ा हुआ देखा।

सूर्य-चन्द्र के सदृश दो उज्ज्वल लोल कुडलों से विभूषित तथा पुष्ट कंधोवाले कुमार ने अपने पिता को उस दशा में पड़े हुए देखा। देखकर अपने पिता के शरीर पर ऐसा गिरा, जैसे अश्रु तथा रक्त के प्रवाह के मध्य, धरती पर पड़े हुए चन्द्र-मडल पर, गगन तल से कोई उज्ज्वल नक्षत्र आ गिरा हो।

हाय मेरे पिता! मेरे पिता! तुमने अपने मन से या कर्म से, उत्तुग तरग-भरे समुद्र से आवृत्त इस धरती पर, किसी को हानि नही पहुँचाई। फिर, भी तुम पर यह विपदा क्यो आई? खैर जो हो, किंतु यह कैसे हुआ कि तुम्हारी आँखो के सामने ही यम भी तुम्हारे पास आ पहुँचा? उस ( यम ) के सामर्थ्य को निर्भय होकर मिटा देनेवाले (तुम्हारे) अतिरिक्त और कौन है?

जिस रावण ने, अष्ट दिशाओ मे कील के समान ठोके गये-से अविचल रहनेवाले दिग्गजो को भी परास्त किया था, उसका मन भी तुम्हारी पुष्ट मूलवाली सुन्दर पूँछ का स्मरण होने मात्र से ऐसा धड़क उठता है, जैसे पटह बजाया जा रहा हो। हाय! उसका वह भय अब समाप्त हो गया।

हे पिता! कुलपर्वतो तथा चक्रवाल नामक गगनोन्नत पर्वतो के शिखर अब तुम्हारे सुन्दर पद-चिह्नों से रहित हो जायेंगे। मंदर पर्वत, वासुकि सर्प, चन्द्रमा तथा अन्य उपकरणो को लेकर तरंगायमान समुद्र को मथने के लिए किसी से प्रार्थना करनी हो, तो अब कौन उसे मथ सकेगा?

रूई-जैसे कोमल चरणोवाली पार्वती को अपने अर्धभाग मे धारण किये हुए शिवजी के चरणो के अतिरिक्त और किसीके प्रति कभी तुमने अजलि नही दी। ऐसे शासन-चक्र से युक्त हे मेरे पिता! तुम्हारे द्वारा क्षीरसागर के मथे जाने से ही देवगण भी मरणहीन बने हुए हैं। किन्तु, मधुर अमृत देनेवाले तुम, मृत्यु को प्राप्त हो रहे हो। तुम्हारे सदृश महिमा-वाले अन्य कौन हैं?

इस प्रकार के विविध वचन कहकर अंगद रोने लगा। उसे देखकर अतिशोकातुर,

रक्त-नेत्र वाली ने, जिसका मन आग में पडे मोम के-जैसा पिघल गया था, उसे आलिंगन करते हुए कहा—अब तुम दुःखी मत होओ। यह, प्रभु ( राम ) का किया हुआ पुण्य-कार्य है।

त्रुटिहीन रूप से यदि विचार करके देखो, तो विदित होगा कि जन्म लेना और मृत्यु पाना—तीनो लोकों के निवासियो के लिए आदि से ही नियत हैं। मेरे पूर्वकृत तप के कारण ही मुझे इस प्रकार की मृत्यु मिली है। सर्वसाक्षी बने हुए महावीर ने स्वय आकर मुझे मुक्ति प्रदान की है।

हे तात ! हे पुत्र ! तुम बाल्यावस्था को पार कर चुके हो। यदि मेरी बात मानो, तो कहूँगा कि वही परमतत्त्व, जिससे परे और कोई तत्त्व नहीं है, हमारी दृष्टि के गोचर बनकर, ( मनुष्य-रूप में ) अपने चरणो को धरती पर रखे और कर में धनुष धारण करके उपस्थित हुआ है। अज्ञान में डालनेवाली जन्म-रूपी व्याधि की यह ( राम ) ओषधि है। यह जान लो और इसको नमस्कार करो।

हे स्वर्णमय आभरणधारी। इसने मेरे प्राण हरण किये—यह बात किंचित् भी न सोचना। तुम अपने प्राणों की रक्षा करो। यदि इस ( राम ) का शत्रुओ के साथ युद्ध छिडे, तो तुम इसका साथी बनना। यह ( राम ), सब जीवो का उनके सस्कार के अनुसार, हित करनेवाला है। इसके कमल सदृश-चरणो को अपना शिर पर धारण करके जीना।

इस प्रकार के हित-वचन कहने के उपरांत पर्वत से भी अधिक दृढ कधोंवाले वानर-राज ने अपने पुत्र ( अंगद ) का अपनी दीर्घ बाँहो से आलिंगन कर लिया। फिर, स्वर्णमय रत्नखचित आभरण पहननेवाले रक्षक राम को देखकर बोला—

हे असत्य मनवालो के लिए अदृश्य ज्ञान-स्वरूप ! यह मेरा पुत्र ऐसे कंधोवाला है, जो घृत लगे दीर्घ त्रिशूलधारी कालवर्ण राक्षस-सेना-रूपी तूल-समुदाय के लिए अग्नि-स्वरूप है। दोषहीन आचरणवाला है। यह तुम्हारी शरण मे है।—यों कहकर वाली ने उसे राम को दिखाया। तब—

वह ( अंगद ) राम के चरणो पर नत हुआ। कमल-सदृश विशाल नयनोंवाले राम ने अपने सुन्दर करवाल को अंगद के आगे बढाकर उससे कहा—यह लो। तब सातों लोक उन ( राम ) की प्रशसा कर उठे। वाली अपना शरीर छोडकर उत्तम लोको के परे रहनेवाले परमपद को जा पहुँचा।

उस समय वाली के हाथ शिथिल पड़ गये। वेगवान् बाण वाली के यम-समान कठोर वक्ष मे न रहकर उसको पार करके निकल गया और ऊपर उठ गया। फिर, पवित्र समुद्र के जल में धुलकर, देवताओं के दिये पुष्पहारो से विभूषित होकर, प्रभु ( राम ) की पीठ से कभी न हटनेवाले विजयी तूणीर मे जा पहुँचा। ( १-१५३ )

●

# अध्याय ८

## शासन पटल

वाली स्वर्ग को सिधारा। वटपत्र पर शयन करनेवाले (विष्णु के अवतार राम) उसको अनंत आनंद (अर्थात्, मोक्ष) देकर अपने सम्मुख खड़े सूर्यपुत्र के अरुण हस्त को अपने कर में लिये, अंगद को भी साथ लेकर वहाँ से चले गये। जब शूल-जैसे नयनोंवाली तारा ने (वाली की मृत्यु का) समाचार पाया, तब वह वहाँ आकर उसके शरीर पर गिर पड़ी।

वाली के शरीर से बहनेवाले भयकर रक्त-प्रवाह से, उसके पर्वतोपम स्तन, जिनका अग्रभाग मुकुलित था, कुकुमरस-लिप्त जैसे हो गये। उसके घुँघुराले केश लाल हो गये। वह, वहाँ गिरे हुए मनोहर तथा विशाल कंधोंवाले वाली के वक्ष पर इस प्रकार लोटने लगी, जिस प्रकार सूर्य के अरुण किरणों से आवृत विशाल गगन में कोई विद्युत् कौंध रही हो।

तारा विषण्ण हुई। दीन और व्याकुल हुई। आह भरी। द्रवितहृदय हुई। अपने दोनों करों को सिर पर जोड़कर रखा। शिथिल हुई। उसका केश-पाश गलित होकर बिखर पड़ा। वह ऊँचे स्वर में निम्नलिखित प्रकार के वचन कह-कहकर रो पड़ी। उसके कंठ की ध्वनि से बाँसुरी, मधुर नादवाला याक् और वीणा के नाद भी लज्जित हो गये :

हे मेरे अत्युत्तम अपूर्व प्राण! हे मेरे हृदय! हे मेरे प्रभु! तुम्हारी पर्वत-सदृश भुजाओं के मध्य, नित्य सुरक्षित रहती हुई, मैंने कभी वेला-हीन दुःख-सागर को देखा भी नहीं था। अब मैं तुम्हारी यह दशा देखकर बहुत त्रस्त हो रही हूँ।

तुम कभी मेरे प्रतिकूल नहीं हुए। तुम्हारे इस दुःख को देखकर भी मैं प्राण छोड़े बिना जीवित हूँ। अतः, अब तुम मुझे अपने निकट नहीं बुलाओगे। हे मेरे भाग्य-देवता! प्राणों के जाने पर क्या देह जीवित रह सकती है?

हे मेरे प्रभु! क्या यमदेवता यह नहीं जानते कि तुम्हारे द्वारा सुरभिमय अमृत दिये जाने के कारण ही वे अमर बने हुए हैं? क्या वे इतने क्षुद्र हैं कि अपने प्रति (तुम्हारे द्वारा) किये उपकार का स्मरण नहीं करते?

तुम सब दिशाओं में जाकर, सच्ची भक्ति के साथ, न कुम्हलानेवाले पुष्पों से, अपने अर्धांग में उमादेवी को धारण करनेवाले देव की पूजा किये बिना, इतनी देर तक यहीं पड़े हो। क्या यह उचित है?

हे प्रभो! पुष्पशय्या पर, मृदु वस्त्रों के आवरण पर, शयन करनेवाले तुम अब भूमि पर पड़े हो। यह देखकर मेरा मन द्रवित हो रहा है। मैं तुम्हारे सम्मुख खड़ी होकर आँसू बहा रही हूँ। फिर भी, तुम मुझसे कुछ नहीं कह रहे हो। मुझसे कौन-सा अपराध हुआ है?

हे कभी असत्य न बोलनेवाले पुण्यात्मा! मैं यहाँ रहकर इस प्रकार दुःखी हो रही हूँ और तुम सत्य-परायण देवों के लोक में जाकर सुख भोग रहे हो। हे प्रभु! क्या

तुम्हारा यह कथन असत्य ही है कि मै तुम्हारा प्राण हूँ ? (अर्थात्, तुम जो यह कहते थे कि तुम मेरे प्राण हो, क्या वह कथन झूठ ही था ?)

युद्ध के अभ्यस्त कंधोंवाले ! यदि यह सत्य है कि मै तुम्हारे हृदय मे हूँ, तो शत्रु का शर मेरे प्राण भी हर लेता। यदि यह सत्य है कि तुम मेरे हृदय में रहते हो, तो तुम निश्चय ही जीवित रहते। हम दोनों ही एक दूसरे के हृदय मे नही थे।

हे मेरे प्रभु ! देवताओं ने तुम्हारा यह उपकार स्मरण करके कि तुमने उन्हे अमृत ला दिया था, जिससे वे अमर बन सके, अब क्या (तुमको स्वर्ग में आये हुए देखकर) उन्होंने तुम्हें कल्पपुष्प प्रदान करके, तुम्हें अपना मित्र समझकर, तुम्हारी आवभगत करके तुम्हारा सत्कार कर रहे हैं ?

तुम तो अमरता प्रदान करनेवाला अमृत भी (देवों को) ला देनेवाले हो। छिपे रहकर शर छोड़ने के लिए तैयार होकर आया हुआ राम यदि अपने मुँह से माँगता, तो क्या तुम अपना सर्वस्व भी उसको नहीं दे देते ?

मैंने पहले ही कहा था (कि राम सुग्रीव की सहायता करने के लिए आया है)। मेरा कहना न मानकर, यह कहते हुए कि वह राम वैसा अनुचित कार्य नही करेगा, तुम अपने भाई से युद्ध करने लगे और युगात तक जीवित रहने योग्य तुम मृत्यु को प्राप्त हो गये। मै तुम्हे फिर कब देखूँगी ?

यदि तुम प्रहार करते, तो मेरुपर्वत भी चूर-चूर हो जाता। आह ! एक शर ने तुम्हारे सामने होकर तुम्हारे वक्ष को कैसे विदीर्ण कर दिया ? क्या यह देवो की माया है ? मैं नही समझ रही हूँ। अथवा यहाँ जो मरा पड़ा है, वह कोई दूसरा ही वाली है ?

हे नाथ ! तुम्हारे भाई ने उत्तम यश की गरिमा से युक्त रहकर तुम से वैर किया, जिसके परिणाम-स्वरूप तुम मृत्यु को प्राप्त हुए और हमारा सर्वस्व विनष्ट हो गया। हाय ! तुम हमारी यह दशा क्यों नहीं देखते ?

अपूर्व अमृत के समान विपदाओं को दूर करनेवाले उस राम ने अब एक वीर का अहित सोचकर क्या कार्य कर दिया ! क्या यह वचन केवल कथन ही है (किंतु, यथार्थ नही है) कि धर्म पर स्थिर रहनेवालों की कसौटी, उनके कार्य ही होते हैं ?

इस प्रकार के अनेक वचन कहकर, अति दुःखित हो, बुद्धिभ्रष्ट हो वह निश्चेष्ट पड़ी रही। उसकी वह दशा देखकर नीतिनिपुण तथा दृढ पर्वत के सदृश हनुमान् ने—

वानर-स्त्रियों के द्वारा उसको उसके निवास पर पहुँचवा दिया और वाली के अंतिम कृत्य करवाये। फिर, श्रीरामचन्द्र के पास जाकर सब वृत्तात सुनाया।

तब सूर्यदेव, जो अपने प्रकाश से अंधकार को निर्मल कर देता है, अपने गम्य-स्थान अस्ताचल पर जा पहुँचा। वह (सूर्य) पर्वत-सदृश वानरराज (वाली) के मुख की समता कर रहा था (अर्थात्, रक्तवर्ण दीखता था)।

सध्या के समय सूर्य अस्त हुआ। उदारशील (राम) सीता का स्मरण करते हुए, विश्रात होकर शिथिल तथा द्रवितहृदय हो उठे। और, इस प्रकार (कष्टों से) भरे हुए उस निशा-सागर को बड़ी कठिनाई से पार किया।

सूर्य, यह सोचकर कि उसका पुत्र ( सुग्रीव ) स्वर्ण-मुकुट धारण करनेवाला है, बड़ी उमंग से भर गया। ( उस राजतिलक के उत्सव में ) सहयोग देने के लिए लक्ष्मी का भी आगमन हो—इस उद्देश्य से, उस ( सूर्य ) ने अपने अरुण करों से उत्तम कमल-दल-रूपी कपाट खोल दिये।

उस समय, करुणानाथ ( राम ) ने अपने उत्तम मतिवाले अपने अनुज को देखकर यह आदेश दिया—हे तात। तुम अपने हाथों से सूर्य-पुत्र को यथाविधि राज्य पर अभिषिक्त कर दो।

आज्ञापालक, महिमावान् लक्ष्मण ने तुरत ही जाकर नीति से स्खलित न होनेवाले तथा युद्ध में कुशल हनुमान् से कहा—हे वीर! इस शुभ कार्य के लिए आवश्यक समस्त सामग्री को तुम अभी ले आओ—तब,

अभिषेक के योग्य तीर्थ-जल, मंगल-द्रव्य, प्रशंसनीय स्वर्णमुकुट आदि उपकरण—सब हनुमान् के द्वारा लाये गये। पुरुषोत्तम ( राम ) के भाई लक्ष्मण ने महिमा-भरे सुग्रीव से व्रत आदि कर्त्तव्य कराये। फिर—

ब्राह्मण लोग आशीर्वाद दे रहे थे। देव मधु-पूर्ण पुष्प बरसा रहे थे। सद्धर्म के पथपर चलनेवाले मुनि ( पुरोहित बनकर ) कृत्य करा रहे थे। धर्मात्माओं के बताये विधि से लक्ष्मण ने उस महाभाग ( सुग्रीव ) को मुकुट पहनाया।

स्वर्णमय किरीट धारण करके सुग्रीव ने असत्य-रहित प्रभु ( राम ) के महिमामय चरणों को प्रणाम किया। तब प्रभु ने, जो अर्थपूर्ण वाणी के भी परे हैं, अपने सुन्दर वक्ष से उसे लगा लिया, और कहा—

हे वीर! तुम यहाँ से अपने प्राकृतिक निवास-स्थान ( अर्थात्, किष्किन्धानगर) में जाओ, और अपने द्वारा करणीय कार्यों का ठीक-ठीक विचार कर, यथाविधि उन्हें पूरा करो। यों जिस राज्य-भार को तुमने अपने ऊपर लिया है, उसके लिए आवश्यक सब कार्य करो और युद्ध में मरे हुए वाली का जो प्रिय पुत्र है, उसके साथ उत्तम ऐश्वर्य के साथ चिरकाल तक जीते रहो।

सत्य से भरित, विवेकपूर्ण मन्त्रियों के साथ तथा दोष-रहित सदाचारी एवं पराक्रमी सेनापतियों के साथ पवित्र मैत्री का भाव रखो, और तुम स्वयं भी त्रुटिहीन कार्य करते हुए इस प्रकार रहो कि वे (मन्त्री तथा सेनापति) तुम्हारे अति निकट या अति दूर न रहकर तुम्हें देवता के समान मानकर व्यवहार करें।

संसार इतना विवेक-पूर्ण है कि यदि कहीं धूम दिखाई पड़े, तो यह अनुमान कर लेता है कि वहाँ जलती आग भी होगी। अतः, तुम्हें चाहिए कि तुम शास्त्रज्ञों के द्वारा कथित कूटनीति को भी अपनाओ। तुम हँसमुख रहो। मधुर वचन बोलो और दूसरों के स्वभाव को जानकर, इस प्रकार आचरण करते रहो कि उनसे तुम्हारे प्रति वैर रखनेवालों का भी हित हो।

वह दोष-रहित महान् ऐश्वर्य, जिसे देखकर देवलोग भी मुग्ध होते हैं, तुमको प्राप्त हुआ है। तो उस संपत्ति के महत्त्व को ठीक-ठीक पहचानकर सदा सजग रहो। क्योंकि,

तीनो लोकों के निवासी ऐसे होते हैं, जो मुनियो के प्रति भी घनी मित्रता रखते हैं, कुछ उनके वैरी होते हैं, तो कुछ तटस्थ स्वभाव रखते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के स्वभाववालो मे से तुम किसी के प्रति अहित कार्य न करना। अपने कर्त्तव्य कार्य पूरा करना। यदि कोई तुम्हारी निंदा करे, तो भी उसके प्रति निंदा-रहित मधुर वचन कहना। दूसरों के धन का अपहरण करने का लोभ न रखना। ये सब धर्म किसी व्यक्ति का, उसके बधु-परिवार-सहित, उद्धार करनेवाले होते हैं। अतः, तुम इसी प्रकार के धर्म का आचरण करना।

हे पुष्ट कंधोंवाले! किसी को बलहीन जानकर उसे दु:ख न देना। मै (अपने बाल्यकाल में) इस धर्म-मार्ग की सीमा को पारकर गया था और शरीर से विकृत होकर भी बुद्धि से बढी हुई कुबड़ी के कारण राज्यभ्रष्ट हो गया[1] और कठोर दुःख-सागर मे डूबा।

यह निश्चित जानो कि स्त्रियो के कारण पुरुषो को मृत्यु प्राप्त होती है। वाली का जीवन ही इसका प्रमाण है और उन्ही स्त्रियों के कारण दुःख और अपवाद भी उत्पन्न होते हैं। यह तुम मेरे जीवन से जान सकते हो। इस विषय के ज्ञान से बढकर अन्य हित-कारी शिक्षा क्या हो सकती है?

अपनी प्रजा की इस प्रकार रक्षा करना कि वे यह कहे कि, हमारे राजा राजा नही हैं, किन्तु हमारा लालन-पालन करनेवाली माता हैं। ऐसा आचरण करते हुए भी यदि कोई व्यक्ति तुम्हारा अहित करे, तो उसे धर्म से स्खलित न होते हुए दड देना।

यथार्थ का विचार करें तो (विदित होगा कि) जन्म और मृत्यु सर्वदा, अपने-अपने कार्यों के परिणामस्वरूप ही होती है। कमलभव ब्रह्मा ही क्यो न हो, धर्म से स्खलित होने पर विनाश को प्राप्त होता है। धर्म का अंत जीवन का अत है—यह बडे लोगो का कथन है, अब अन्यों के बारे में क्या कहा जाय?

परस्पर के आघात से उन्माद उत्पन्न करनेवाले मल्लयुद्ध मे कुशल वीर। सपन्नता और निर्धनता—दोनो जीवों के पुण्य और पाप के फलो के अतिरिक्त और भी कुछ है, इसे अनुपम शास्त्रो मे निपुण विद्वान् भी नही जानते (अर्थात्, प्राणियों के पाप-पुण्य के फलस्वरूप ही निर्धनता और सपन्नता होती है)। अतः, पुण्य को छोड़कर क्या पाप को ग्रहण करना कभी उचित हो सकता है?

यही राजाओ के योग्य कर्त्तव्य है। विधि के अनुसार तुम राज्य करो और समीप आई हुई वर्षा ऋतु के व्यतीत होने के पश्चात् अपनी समुद्र-सदृश विशाल सेना को लेकर मेरे पास आओ। अब तुम जाओ—यो उस सुन्दर (राम) ने कहा। तब सुग्रीव ने कहा—

हे उदार। वृक्षो तथा जलाशयो से भरा हुआ (किष्किन्धा के) पर्वत वानरो का निवास है, केवल यही तो इसमे दोष है। अन्यथा यह स्थान सभा-मडप से विभूषित

---

१. इस पद्य में उस घटना की ओर सकेत है कि रामचन्द्र बचपन में अपने धनुष से मथरा के कुबड़ को लक्ष्य करके मिट्टी की गोली मारते थे, जिससे मथरा मन-ही-मन चिढ़ती थी। इसी का बदला लेने के लिए मथरा ने ऐसा उपाय किया, जिससे रामचन्द्र को राज्य-भ्रष्ट होकर वन जाना पड़ा।—अनु०

स्वर्ग से भी अधिक मनोहर है। अतः, तुम कुछ दिन हमारे यहाँ आकर ठहरो, जिससे हम तुम्हारी करुणापूर्ण आज्ञा का पालन कर सकें।

हे अरिंदम! तुम्हारी शरण में आकर हम तुम्हारी करुणा के पात्र बने हैं। तुमसे वियुक्त होकर जो ऐश्वर्य हम पायेंगे, वह दरिद्रता से भी अधिक गर्हित होगा। अतः, जबतक तुम्हारी देवी का अन्वेषण करने का समय न आवे, तबतक तुम हमारे साथ (नगर में) आकर ठहरने की कृपा करो—यों कहकर सुग्रीव (राम के) चरणों पर गिर पड़ा।

यह वचन सुनकर महाभाग ने मधुर मदहास करते हुए कहा—राजाओं के निवास-योग्य नगर, मेरे जैसे व्रतधारियों के लिए योग्य नहीं है और यदि मैं वहाँ आऊँ, तो मेरी सेवा में ही तुम्हारा सारा समय लग जायगा। तुम, विचार कर किये जाने योग्य शासन-कार्य से, स्खलित हो जाओगे।

हे चिरजीव! मैंने यह प्रण किया है कि चौदह वर्ष वन में रहूँगा। अतः, (इस अवधि में) मैं राजाओं के निवास में नहीं ठहर सकूँगा। हे दृढ तथा सुन्दर कंधोंवाले! वीणा-नाद-सदृश स्वरवाली अपनी देवी के विना क्या मैं सुख भोग सकूँगा? यह तुमने कदाचित् सोचा नहीं।

हे तात! यह अपवाद क्या त्रिभुवनों के विनाश होने पर भी मिट सकेगा कि, राक्षस के द्वारा अपनी पत्नी के बंदी बनाकर रखे जाने पर भी राम, स्वयं, अपने प्यारे मित्रों सहित, अपार सुखों का भोग करता रहा।

जिन लोगों ने गृहस्थाश्रम का त्याग नहीं किया है, वैसे लोगों के लिए योग्य धर्म को मैंने पूरा नहीं किया। युद्ध में धनुष लेकर किये जानेवाले कर्त्तव्य को भी मैंने पूर्ण नहीं किया। यों व्यर्थ जीवन बितानेवाले मुझ-जैसे के लिए सब (सुग्रीव के साथ नगर में रहना इत्यादि) महत्त्वहीन क्षुद्र कार्य हैं। उत्तम गृहस्थ-धर्म को छोड़कर, वानप्रस्थ व्रत का आचरण करके मैं अपने पापों का परिहार करूँगा।—यों राम ने कहा।

फिर कहने के लिए सुकर, किंतु करने के लिए दुष्कर सच्चारित्र्य में स्थिर रहनेवाले (राम) ने आगे कहा—हे वीर! शासन के सब कार्यों को यथाविधि पूर्ण करके चार मास व्यतीत होने पर, उत्तुंग तरंगों से पूर्ण समुद्र-सदृश अपनी सेना को साथ लेकर मेरे निकट आओ। यही तुमसे मेरी प्रार्थना है।

वानरों का नेता इसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सका। यह सोचकर कि गगनोन्नत (गंभीर) आकारवाले तथा तपस्वी वेषधारी (राम) के मन के अनुसार करना ही दोष-मुक्त बनने का उपाय है, अपने विशाल नयनों से अश्रु बहाता हुआ दंडवत् किया और अकथनीय दुःख को मन में भरकर वहाँ से चला।

वाली-पुत्र (अंगद) राम के चरण-कमलों में प्रणत हुआ। उसे सकरुण देखकर नीले मेघ-जैसे उस महान् ने कहा—तुम शीलवान् हो। इस (सुग्रीव) को अपने पिता का भाई जानकर उसकी आज्ञा में स्थिर रहो।

इस प्रकार के वचन कहकर सुग्रीव के साथ उसको भेज दिया। तब तुरत ही यशस्वी तथा गुणवान् अंगद, उनके उत्तम चरणों को नमस्कार करके विदा हुआ। फिर,

प्रभु ने मारुति को देखकर कहा—हे सुन्दर वीर ! तुम भी उस राजा ( सुग्रीव ) के शासन के योग्य कार्य अपने विवेक से पूरा करते रहो।

प्रेम से परिपूर्ण तथा असत्य-रहित मनवाले हनुमान् ने यह कहकर कि, यह दास यहीं रहकर ( आपकी ) आज्ञा के अनुसार योग्य सेवा करता रहेगा, उनके पदयुगल पर गिर पड़ा। तब सत्य में दृढ रहनेवाले प्रभु ने कहा—

एक प्रतापी राजा के द्वारा शासित अपार ऐश्वर्य से युक्त राज्य को जब दूसरा कोई वीर बलात् हस्तगत कर लेता है, तब उससे सदा भलाई ही हो, ऐसी बात नहीं। किन्तु, उससे कभी बुराई भी उत्पन्न हो सकती है। अतः, हे तात ! वैसा राज्य तुम-जैसे बड़े दायित्व का वहन कर सकनेवाले विवेकी पुरुष से ही स्थिर रह सकता है।

( गुणों से ) परिपूर्ण उस ( सुग्रीव ) के राज्य को स्थिर बनाकर, उसके पश्चात् मेरे कार्य को पूरा कर सकनेवाला ( पुरुष ) तुमसे बढ़कर और कौन है ? अतः, तुम मेरी इच्छा के अनुसार, साकार धर्म-जैसे उसके पास जाओ।

चक्रधारी के ये वचन कहने पर मारुति ने नमस्कार करके कहा—हे प्रभु ! आप विजयी हों ! यदि आपकी यही आज्ञा है, तो यह दास वैसा ही करेगा। और, वहाँ से चला गया। पुरातन सृष्टि के नायक ( राम ) भी मुखपट्टधारी बड़े हाथी के सदृश अपने भाई के साथ एक ऊँचे पर्वत पर चले गये।

आर्य (राम) की आज्ञा से सुग्रीव विशाल किष्किन्धा में जा पहुँचा और महिमा-वान् मन्त्रियों तथा बधुजनों से युक्त होकर तारा को प्रणाम किया और उसको अपनी माता तथा अपने अग्रज के उपदेशों को ही अपना पिता मानकर, उत्तम रीति से शासन करता रहा।

वह अपार ऐश्वर्य को प्राप्त कर, आनंद से शासन करता रहा। अन्य वानर उसके अनुकूल आचरण करते रहे। उसका शासन-चक्र दिगन्तों में व्याप्त हुआ। अपार पराक्रम-युक्त अंगद को उसने राज्य का युवराज-पद दिया।

उदार (राम), वहाँ से चलकर मतंग महर्षि के आवासभूत गगनस्पर्शी (ऋष्यमूक) पर्वत पर जाकर ठहरे, जहाँ उनके उस भाई ने, जिसके मन की सच्ची भक्ति को भर-भरकर लिया जा सकता है, प्रेम से पर्णशाला बनाई थी। यों वे विश्राम करते रहे। (१–५४)

# अध्याय ९

## वर्षाकाल पटल

सूर्य, महिमा-भरी उत्तर दिशा से ( दक्षिण दिशा की ओर ) चल पड़ा, मानों चित्रप्रतिमा-समान उज्ज्वल तथा लावण्ययुक्त ( सीता ) देवी का अन्वेषण करने के लिए देवाधिप ( राम ) के द्वारा पहले भेजा गया दूत हो।

सजल मेघ इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, जिस प्रकार अनेक फनवाले सूर्यराज के द्वारा धारण की गई पृथ्वी-रूपी दीपक मे शब्दायमान समुद्र रूपी तैल के मध्य मेरुपर्वत-रूपी वत्ती की सूर्य-रूपी ज्वाला से उत्पन्न अजन हो।

घने वादलो के छा जाने से अधकार-भरा आकाश का रग ऐसा था, जैसे समुद्र से उत्पन्न अति भयंकर हलाहल विष को पीनेवाले ललाट-नेत्र (शिव) का कंठ हो। उससे सूर्य की किरणें भी तापहीन हो शीतल हो गई।

नील आकाश, विष के समान, शीतल तथा विशाल सागर के समान, तरुणियों के अजन-लगे नयनो के समान, (उनके) बिखरे केश-पाशों के समान, मायावी राक्षसो के शरीरो के समान, (उनके) पापकर्मों के समान और (उनके) मन के समान ही कालिमा-मय हो गया।

वे मेघ, जिन्होने अनेक दिनों से शीतल समुद्र के जल को अपनी जिह्वा से अघाकर पिया था और जिनमें बिजलियाँ चमक रही थी, ऐसे लगते थे, जैसे करवालधारी वीरो के युद्ध में करवालों के आघात से घायल होकर मदजलस्रावी गजराज पड़े हों।

उदर में जल से भरी हुई काली घनी घटाएँ बड़े-बड़े काले हाथियों की पंक्तियों के समान थीं और उनके उमड़ने से ऐसा घोर शब्द होता था, मानो तरग-समान काले समुद्र का विशाल जल ही अनन्त आकाश में छा गया हो।

कौंधनेवाली बिजलियाँ, इन्द्र आदि देवताओ के चमकते हुए आभरणो की जैसी थी, पर्वतों में फैलकर सब वस्तुओं को जलानेवाली अग्नि के समान थी तथा अनिन्दनीय दिशाओं की हँसी की जैसी थीं।

वर्षाकालिक काली घन-घटा एक भट्ठी की समता करती थी, जहाँ दिशा-रूपी लुहार, सब वस्तुओं से अधिक कालिमापूर्ण आकाश-रूपी कोयले की राशि में उत्तर दिशा की अतिवेगवान् पवन-रूपी बड़ी भाथी लगाकर तीक्ष्ण अग्नि-ज्वालाओं को भड़का रहा था।

आकाश में तथा दिशाओं में बिजलियाँ इस प्रकार कौंध उठीं, जैसे अपने प्रियतम के वियोग में तरुणियाँ तड़प उठी हों, धरती के गर्भ में स्थित सर्प जलकर तड़प उठे हो, या सूर्य-किरणों को काट-काटकर दिशाओं में फेंक दिया गया हो, अथवा वज्र की लपलपाती जिह्वाएँ तडप उठी हों।

वे बिजलियाँ ऐसी थीं, जैसे मणिकिरीटधारी मायावी विद्याधरों के द्वारा कोश से निकालकर घुमाये जानेवाले (शत्रुओं के) रक्त-सिंचित करवाल हों, अथवा दिक्पालों के साथ यात्रा करनेवाले दिग्गजों के मुखपट्ट हों, जो हिल-डुलकर चमक रहे हों।

वे बिजलियाँ यों चमक उठी, मानों अष्ट दिशाओ में धरती को धारण करनेवाले अष्ट महानागों की जिह्वाएँ व्याप्त हो रही हों। उस समय झंझावात यों वह चला, मानो विष्णु की काति के समान काली बनी हुई घटाएँ (अपने गर्भ के भार से) निःश्वास भर रही हो।

वह वर्षाकालिक पवन ऊँच-नीच का भेद किये विना पर्वतों, वृक्षों तथा अन्य सब प्रदेशों मे वारनारियों के उस चचल मन के समान फैल गया, जो (मन) केवल धन की कामना करके धन देनेवाले किसी भी व्यक्ति के समीप जा पहुँचता है।

उत्तर दिशा का वात, अपने प्रियतमों के विरह में पीडित रहनेवाली तरुणियों के तप्त स्तन-तटों को और भी तपाता हुआ बह चला और उस प्रकार बढ चला, मानों कोई पिशाच हो, जो (उन स्तनों को) पुष्ट मांसखंड समझकर उनको काटकर खा डालने के लिए चल पड़ा हो।

बड़े शब्द के साथ धूलि ऊपर उठकर आकाश को रूँधने लगी, बिजलियाँ तीक्ष्ण तलवारों के समान घूम-घूमकर चमकने लगी। मेघ पुष्प-मालाओं से अलंकृत बडे नगाडों के जैसे गरजने लगे। आकाश एक बड़े युद्ध-रंग के समान दृष्टिगत होने लगा।

मधुर मदहास करनेवाली जानकी से बिछुड़े हुए रामचन्द्र पर मन्मथ पुष्प-बाण बरसा रहा हो—उसी प्रकार बिजलियों से पूर्ण मेघ-मण्डल उस स्वर्णमय पर्वत पर जल-धाराएँ बरसाने लगा।

जल-धाराएँ मेघों के मध्य-स्थित धनुष से प्रयुक्त शरों के समान वेग से पहाड़ों पर आकर गिरती थी, मेघों से उत्पन्न रक्तवर्ण वज्राग्नि के कण ऐसे गिरे, जैसे रात्रि के समय अत्युज्ज्वल रत्न-कण बरस रहे हों।

योद्धा लोग शत्रुओं के बडे हाथियों पर चमकते हुए बरछे प्रयुक्त कर रहे हो—ऐसे ही मेघ पर्वत पर जल-धाराएँ बरसा रहे थे। उन अवार्य जल-धाराओं के प्रहार से शिलाखंड टूट-टूटकर ऐसे लुढक रहे थे, जैसे लाल बिंदियोंवाले उत्तम लक्षण-सम्पन्न गज आहत होकर लुढक जाते हों।

मेघ, मीनकेतन (मन्मथ) था, इन्द्र-धनुष ईख का कमान था, बरसती जल-धाराएँ पुष्प-शर थी, पर्वत की दीर्घ घाटियाँ विरहीजन थी, उन पर्वत-शिलाओं पर जल-धाराएँ यों गिरती थी, जैसे मांसल शरीर में शर चुभ जाते हों।

देवता, यह कहकर कि पवित्र मूर्त्ति (श्रीराम) तथा कपिगण दोनों मिलकर अब हमारे शत्रुओं (रावणादि राक्षसों) को शीघ्र ही मिटा देंगे गर्जन कर उठे हों—यों मेघ गरज उठे, जल-बिन्दु पुष्प-वर्षा के समान बरस पडे।

सुन्दर धनुष धारण करनेवाला राक्षस रावण, जब करवाल लिये हुए (सीता को) उठाकर आकाश-मार्ग से त्वरित गति से ले जा रहा था, तब उस नारी-रत्न, आभरण-भूषित देवी (सीता) के नयन जिस प्रकार अश्रुवर्षा करने लगे थे, उसी प्रकार मेघ बरस पडे।

शिर पर चन्द्र को धारण करनेवाले भगवान् (शिव) आकाश-मार्ग में उडनेवाले तीनों पुरों को दग्ध करने के लिए अग्निमुखी शर प्रयुक्त कर रहे हों—ऐसी लगती थी चमकती हुई बिजलियाँ, वे सान पर रगड़कर पैनाये गये और चमकते हुए बरछों के समान ही विरह-तप्त पुरुषों के मन को दग्ध कर रही थी, जिससे विरहीजन तडप उठे।

वे वर्षाकालिक संपत्ति का अर्जन करने के लिए दूर देशों में गये हुए जनों के वियोग में निष्प्राण बनी हुई विरहिणियों को उनके प्रियतम-रूपी प्राणों को चक्रवाले रथों पर शीघ्र ला देते थे, अत मूर्च्छा उत्पन्न करनेवाली विरह-व्याधि-रूपी सर्प के विनाश के लिए वे (मेघ) गरुड के समान थे।[1]

---

१ वर्षाऋतु में प्रवास में गये हुए प्रेमी अपने घर वापस आ जाते हैं, अत मेघ विरहिणियों का, वियोग में दुःख को दूर करनेवाला, साथी है।— अनु०

बड़े मेघ, बारी-बारी से गरज रहे थे. और जल बरसाते हुए एक-दूसरे के निकट आकर टकराते थे, जैसे बड़े-बड़े हाथी गरजते हुए और मदजल को बहाते हुए क्रोध के साथ दौड़कर एक दूसरे से टकरा जाते हों।

हवाएँ बारी-बारी विभिन्न दिशाओं से बहती थी। मेघ अपने चचल तथा छोटे जल-बिन्दुओं को शरों की बौछार के समान अपने लक्ष्य पर प्रयुक्त करते थे। वह दृश्य ऐसा था, जैसे एक दिशा दूसरी दिशा से युद्ध कर रही हो।

अपनी प्रियतमाओं को छोड़कर दूसरे राज्यों पर विजय प्राप्त करने के लिए गये हुए राजा लोग ( वर्षा के आगमन पर ) लौटकर आ गये हों और उनके आगमन से पहले निष्प्राण बनी हुई ( उनकी पत्नियों की ) देह में प्राण के लौट आने से वे तरुणियाँ निःश्वास भर उठी हों—उसी प्रकार वृक्षों की सूखी शाखाएँ वर्षा के आगमन से पल्लवित होकर नव सौन्दर्य के साथ विकसितमुख-सी दिखाई पड़ती थी।

पाटलवृक्ष ( पुष्पहीन हो ) दरिद्रता प्रकट करते थे। दिनकर शीतल बन गया, श्वेतकुमुद समृद्ध बन गये। कुवलय-पुष्प निर्धन बन गये। मयूर सपत्ति पाये हुए व्यक्ति के समान नाच उठे। कोकिल वियुक्त प्रियतमों के जैसे शिथिल हो चुप हो रहे।

उन पर्वत-सानुओं में जहाँ विविध रंगवाले भ्रमर तथा तितलियाँ उत्तम रत्नों के समान विश्राम करती थी, मधु के भार से झुककर हिलनेवाले अर्द्ध-विकसित रक्त कांदल-पुष्प ऐसा दृश्य उपस्थित करते थे, मानों विशाल धरती-रूपी तरुणी वर्षाकाल के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, यह विचार कर कि वसंत को भी इस वर्षाकाल ने जीत लिया है, अपने हाथ हिलाती वसन्त ऋतु का तिरस्कार कर रही हो।

करवाल-समान तीक्ष्ण दतोंवाले सर्प, दीर्घनाल, श्वेतकुमुद की लताओं से जोडन ( सर्पों ) के फन के जैसे ही पुष्पों को शिर पर धारण किये हुए थे, प्रेम से लिपट जाते थे और उनसे हटते नही थे। वे श्वेतकुमुद भी उन काममत्त सर्पों के समान ही होकर उनसे उलझे पड़े रहते थे।

इन्द्रगोप इस प्रकार फैले थे कि धरती पर तिल रखने का भी स्थान नही था, वे चिरकाल के प्रवास के उपरात लौटे हुए अपने प्रियतमों से मिलनेवाली अगरु तथा पुष्प-वासित कुतलोंवाली तरुणियों के द्वारा बार-बार थूकी हुई पान की पीक के समान ही बिखरे हुए थे।

उस गगनचुंबी मेरुपर्वत से, जिसपर मधुर जबूफलों से भरे हुए वृक्ष होते हैं, स्वर्ण को बहाकर ले चलनेवाली ( जबू-नामक ) नदी जिस प्रकार बहती है, उसी प्रकार जलधाराएँ कर्णिकार, वेंगे आदि पुष्पों को बहाती हुई उस पर्वत से बह रही थी।

सुन्दर तथा दीर्घनाल रक्तकुमुद तथा कर्णिकार मनोहर इन्द्रगोपों से भरे हुए ऐसे लगते थे, जैसे पृथ्वी देवी मधुरगान करनेवाले भ्रमरों को अपने विकसित करों को उठाकर स्वर्ण तथा रत्न प्रदान कर रही हो।

धैवत स्वर मे गानेवाले भ्रमर 'याल्' के समान थे। बिजली, गर्जन तथा वर्षा से युक्त मेघ चर्म से आवृत 'मर्दल' के समान थे। मयूर, ककण-धारिणी नायिकाओं के समान थे।

रक्तकुमुद नाट्य-रंग पर रखे हुए दीपों की पंक्तियों के समान थे। कोमल 'करुविल' पुष्प दर्शकों के नेत्रों के समान थे।

भ्रमर और भ्रमरी के वेग से उड़कर आने से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि, उनके टकराने से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि—दोनों ध्वनियाँ—देवांगनाओं के नृत्य की ध्वनि की समता करती थी। 'कूदाल' के विशाल पुष्प ऐसे विकसित थे, जैसे उन ( देवांगनाओं ) के अमृत-समान आर्यभाषा ( संस्कृत ) के गीतों के गायन के उपयुक्त बड़े झाल हों।

पुन्नाग के वनों से बहनेवाली नदियाँ अपने पुत्रों के लिए पुष्ट पर्वत-रूपी स्तनों से स्रवित धरतीमाता की दुग्ध-धाराओं के समान थीं। कर्णिकार वृक्ष ऐसे थे, मानों धन की इच्छा से आकर याचना करनेवालों को सदा दान देने के लिए अपनी शाखाओं में स्वर्ण-खंडों को लटकाये हुए खड़े हों।

पुष्प-भरे वनों में सर्वत्र मधुर गान करनेवाला विविध चित्तियों से युक्त भ्रमर आदि कीड़े भरे हुए थे, जो दर्शकों को बड़ा आनन्द देते थे, हरिण अपने मार्ग में पड़नेवाले वृक्षों से रगड़ खाते हुए और उस कारण से ( चन्दन, अगरु आदि ) विविध सुगंधों से युक्त होकर आते थे और हरिणियाँ उन्हें ( उनकी गंध के कारण ) कोई दूसरा मृग समझकर उनसे रूठ जाती थी।

अपने प्रियतम के रथारूढ होकर प्रवास में चले जाने पर जिस प्रकार विरहिणी तरुणियों के भाले-सदृश नयन आनन्दहीन हो मुकुलित हो जाते हैं, उसी प्रकार कुवलय-पुष्प बंद हो गये। मन्मथ-सदृश अपने प्रियतमों के आगमन पर जिस प्रकार उमंग से भरी उन तरुणियों का किंचित् दंत-प्रकाशन से युक्त मंदहास छिटक पड़ता है, उसी प्रकार कुंदलताएँ पुष्पित हो उठीं।

पर्वत से प्रवहमाण जलधाराएँ स्वर्ण को बहुलता से दोनों ओर बिखेरने लगीं, मानों आनन्द-नृत्य करनेवाले मयूरों को देखकर उन्हें नटवर्ग समझकर राजा लोग उन्हें भूरि-भूरि पुरस्कार दे रहे हों। कमललताएँ जल-मध्य इस प्रकार उठी हुई थीं, मानों गगनपथ में आनेवाले मेघों को देखकर उन्हें अतिथि समझकर आनन्दित हुई ( गृहस्थ-धर्म में निरत ) तरुणियों के वदन हों।

कामशास्त्र में निपुण विटों के समान ही भ्रमर सद्योविकसित मधुपूर्ण पुष्पों का आलिंगन करते हुए उनके मधु का संचय करने लगे। वे ऐसे थे, मानों कविगण भरतशास्त्र के अनुसार नाटक का निर्माण करने के उद्देश्य से सफल अर्थ-व्यवस्था के अनुकूल रस-संचय कर रहे हों।

हिरण अत्यन्त आनन्दित हो उठे, मानों यह सोचकर ही वे ऐसे प्रसन्न हुए हों कि हमें अपनी चितवन से परास्त करनेवाली सूक्ष्म कटि-युक्त अति सुन्दरी ( सीता ) को एक राक्षस ने हमारा ही रूप धारण कर दुःसह दुःख दिया है, इस कारण से उत्पन्न अपने आनन्द को हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाते।

हंस छोटी नदियों में गोते लगाकर इस प्रकार आनन्दित होने लगे, मानों

दीर्घकाल के विरह से पीडित होने के कारण अब अति प्रेम के साथ अपनी प्रियतमाओं से मिलकर भरपूर आनन्द उठा रहे हों।

अपार सागर से जल भरकर चलनेवाले काले मेघों के निकट ही पंक्ति बाँधकर उड़नेवाले अति धवल बगुलों का झुण्ड कृष्ण नामक काले वर्णवाले भगवान् के वक्ष पर शोभायमान मुक्ताहार के सदृश लगता था।

सारस पक्षी, जो पंक्ति बाँधकर एक-दूसरे से सटकर वर्षाकालिक काले मेघ के निकट हो गगन में उड़ रहे थे, वे दिव्य देवों के द्वारा लक्ष्मी के नायक के रूप में वर्णित अनुपम भगवान् के वक्ष पर शोभायमान उत्तरीय वस्त्र की समता करते थे।

अधिक ताप उत्पन्न करनेवाले धूप-रूपी राजा के हट जाने तथा उत्तम सद्गुणों से भरे वर्षाकाल-रूपी राजा के आगमन के कारण विशाल पृथ्वी देवी अपने महिमामय मन में आनन्दित और शरीर से रोमाञ्चित हो उठी हो—हरियाली इस प्रकार का दृश्य उपस्थित कर रही थी।

मयूर ऐसे लगते थे, मानों मधुवर्षी कमलपुष्प में उत्पन्न ब्रह्मा अति ज्ञानवान्, (देव) तत्त्व-ज्ञान के नायक (अर्थात्, वेद आदि के द्वारा प्रशंसित विष्णु के अवतार श्रीरामचन्द्र) के दुःख को देखकर उनका उपकार करने के उद्देश्य से कानन में सर्वत्र अपनी आँखें फैलाये हुए देवी सीता का अन्वेषण कर रहे हों।

कमलपुष्प ऐसे शोभित हो रहे थे, जैसे तरुणियों के वे चरण हों, जिनमें (शत्रुओं के रक्त से) रक्तवर्ण हुए भालों तथा दृढ धनुषों को धारण करनेवाले वीर पुरुषों के केशों को भी नया रंग देनेवाले महावर का रस लगा हुआ हो। (भाव यह है कि तरुणियों के चरण महावर से अंजित थे। प्रणय-कलह के समय वे तरुणियाँ अपने प्रियतमों के सिर पर पदाघात करती, तो उससे उन पुरुषों के काले केश भी लाल रंगवाले बन जाते थे।)

कोकिल मौन हो रहे, मानों उनके प्रति राघव के यह आदेश देने पर कि तुम अपनी जैसी ही बोलीवाली देवी को ढूँढ़कर लाओ; पृथ्वी में सर्वत्र घूम-घूमकर (देवी सीता को) बुलाते रहे हों और अब थककर चुप हो गये हों।

वर्षा-सिंचित भूमि पर उगी हुई हरी घास को अघाकर चरनेवाली गायें यत्र-तत्र उगे हुए 'मालान' नामक छोटे पौधों को अपने खुरों से उखाड़ देती थी। वे पौधे, जिनमें सफेद पुष्प लगे थे, बिखरे हुए गाढ़े दही का दृश्य उपस्थित करते थे। 'पिडव' नामक पौधे के पुष्प, मधु-सदृश मीठी बोलीवाली कुड्मल-सदृश स्तनोंवाली ग्वालिनों के घटों में से छलकनेवाले दूध के झाग का दृश्य उपस्थित करती थीं।

'वेंगें' नामक वृक्ष, भीलनियों के केशों के समान सुरभित थे। पुन्नाग-वृक्ष मछुआ-स्त्रियों के केशों के समान गंध से युक्त थे, जिनसे शीघ्रगामी भ्रमरकुल आकृष्ट हो रहा था। उत्पल-पुष्प अन्त्यज जाति की स्त्रियों के केशों के समान गंध से युक्त थे। नवोद्विकसित कुंदलताएँ ग्वालिनों के केश के समान महक रही थीं।

श्रीरामचन्द्र ने देवी सीता के वदन को नहीं, किन्तु मरणदायक मन्मथ को असंख्य सहस्र पुष्पबाण प्रदान करनेवाले वर्षाकाल को ही देखा। वे दुःख-सागर का पार नहीं देख पा

रहे थे। वे मूर्च्छित हो गये, नही तो वे किसको देखकर अपने प्राण को वश मे रख सकते थे?

सीमाहीन वर्षाकाल के आगमन से मनुष्य शिथिलमन हो जाते हैं—यह कथन तपस्या करनेवाले मुनियों के विषय में भी सत्य सिद्ध होता है तब उन प्रभु के दुःखी होने में क्या आश्चर्य हो सकता है, जो मधु तथा अमृत से भी अधिक मधुर बोलीवाली धवल ( शख )-वलयधारिणी सीता की भुजाओं का आलिंगन-सुख प्राप्त करते रहते थे।

नीलोत्पल, नीलकमल, अतसी-पुष्प आदि की समानता करनेवाले वे प्रभु शोकोद्विग्न हुए। वे ऐसी आशका उत्पन्न करते थे कि कदाचित् इनकी देह मे प्राण नही हों। इस प्रकार, व्याकुल होकर हसिनी-सदृश सहज सुन्दरी सीता देवी के सबध में निम्नलिखित वचन कह उठे—

हे काले मेघ! राक्षसों ने कचुकाबद्ध स्तनोवाली सीता को कहाँ ले जाकर छिपा रखा है? उन ( राक्षसों ) का आवास कहाँ है? यह भी मै नही जान पाया हूँ, तो भी मैं जीवित हूँ। तुम जल से भरे हो, तो भी क्या तुम मे दया नही है? मेरे प्राणों को क्यो व्याकुल कर रहे हो?

तुम विद्युत्-रूपी दंतों से भयकर हो। अपने काले रूप को गगन मे सब ओर फैलाकर तुम बढ़ते हो। पापी तथा मायावी राक्षसों की समता करनेवाले तुम क्या मेरे प्राणों का हरण किये विना नहीं हटनेवाले हो?

हे मयूर! वरछे तथा तीर के समान तीक्ष्ण नयनोवाली तथा समुद्र मे उत्पन्न दिव्य अमृत एवं कोकिल के सदृश बोलीवाली मेरी देवी को ढूँढ़कर नहीं लाते हो। तुम बड़े कठोर हो। मुझ एकाकी तथा निद्राहीन रहनेवाले की मनोव्यथा को जानते हुए भी क्यो अपना बल दिखाकर मुझे सताते हो?

हे लता! वर्षाकालिक उत्तरी पवन के अनुसार तुम हिल-डुलकर मेरे प्राणों मे घुस जाती हो। तुम अब पुष्पमय हो गई हो और उज्ज्वल ललाटवाली सीता की कटि के समान ही लचक-लचककर क्यों मेरे प्राणों को गला रही हो?

हे हरिण! किसी भी स्पृहणीय वस्तु को मैं अब नही चाहता हूँ। पराक्रमपूर्ण कार्य भी कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। प्रज्ञा के मिट जाने से अब मैं कैसे जीवित रह सकूँगा? मेरे प्राण-समान देवी मुझसे वियुक्त हो चली गयी है। तुम कहो कि वह अब कहाँ है?

हे मेरे प्राण! पाद-कटक से भूषित तथा रुई के समान मृदुल चरणोवाली दोषहीन जानकी के साथ ही क्या तुम भी मुझे छोड़कर जाना चाहते हो? यदि ऐसा करना था, तो जब देवी मुझसे वियुक्त हुई, तभी तुम भी निश्शक होकर मुझे छोड़ जाते। हे मिटनेवाले, ( मेरे प्राण )! क्या तुम्हे उस देवी के साथ का अपना सम्बन्ध तब ज्ञात नहीं हुआ था?

हे निष्ठुर! 'कानरै' वृक्ष, जानकी के केशों के साथ तुम्हारा वैर था, अतः तुम मेरे साथ भी कड़ा वैर निकाल रहे हो? तुम उस ( जानकी ) को मुझे नहीं ला देते। उसके बारे मे कुछ कहते भी नहीं, भला तुम कब मेरे हितकारी रहे?

कुरवक पुष्प-सदृश तीक्ष्ण एव उज्ज्वल दंतोंवाले घोर सर्प विष के समान ही यह कोमल पुष्पों से भरित कुदलता भी प्राणहारी बन गई है। दुस्सह पीडाग्नि को प्रज्वलित कर

मुझे निरन्तर सताते रहनेवाले यह ( इन्द्रगोप ) क्या एक ही हैं ? (अर्थात्, पीडा देनेवाले अनेक हैं)। इस 'रावणकोप' के रहते हुए यह इन्द्रगोप[1] भी क्यो मुझे सताने लगा है ?

स्वर्णमय ललाट-पट्ट ( ताज ) पहनने योग्य ललाटवाली सीता को धोखे से हरण करने के लिए मारीच एक स्वर्णमय हिरण के रूप मे आया था। अब यम ( मेरे प्राणो का हरण करने के लिए ) उत्तरी पवन के रूप मे आया है। अहो, अहित करनेवालो को अपने इच्छानुसार रूप धरना भी सभव होता है।

भयंकर कृत्यवाले राक्षसों के समान आकाश मे घोर गर्जन करनेवाले हे मेघ! तुम वार-वार चमककर कमल-पुष्प के आवास को तजकर ( मिथिला में ) अवतीर्ण हुई उस (लक्ष्मी) देवी को दिखा रहे हो। क्या तुम्हारे मन में मुझपर इतनी दया उत्पन्न हो गई है कि उस सीता को लाकर मुझे देनेवाले हो ?

हे मोर ( प्राणियों को पीडा देनेवाला हे मन्मथ)! विरह-ताप मेरे अन्तर मे न समाकर उमड़ रहा है और मेरे प्राणो को जला रहा है। अब ( प्राणो के जल जाने के वाद भी ) तुम मेरे अन्दर मे पुनः-पुनः शर छोड़कर घाव कर रहे हो। यह तुम्हारा कार्य व्यर्थ है। प्रशसनीय विद्या से युक्त मेरा अनुज यदि तुम्हे एक वार भी देख ले, तो फिर उसके क्रोध को रोकना असंभव होगा।

हे अनंग! धनुष और तीक्ष्ण वाण इसलिए नही है कि भयकर युद्ध से डरे हुए योद्धाओ पर उनका प्रयोग किया जाय, उनका प्रयोग तो उनपर करना चाहिए, जो (प्रयोग करनेवाले के) पराक्रम का आदर नही करते हों। तुम तो निर्दय हो, यह सोचकर कि तुम्हारा वल हम जैसे दुर्बलो पर ही सफल होगा, रात-दिन हमे सताया करते हो। क्या तुम्हारा यह कार्य प्रशंसा के योग्य है ?

इस प्रकार के वचन कहकर शिथिल तथा दुःखित होनेवाले, अपने भाई को, जो अपना उपमान स्वयं ही था, देखकर लक्ष्मण व्याकुल हुआ और अपने सिर पर कर जोड़कर इस प्रकार सात्वना के वचन कहने लगा—हे महात्मन्! आपने अपने को क्या समझा है ?

विवेक एव विद्या से सुसपन्न हे सिंह! हे तपःसंपन्न! वर्षाकाल का भी अन्त होता है। आप क्यो इस प्रकार दुःखी हो रहे हैं ? क्या आप इसलिए चिंतित हैं कि वर्षा का आगमन हो गया है ? अथवा काले राक्षसों के पराक्रम का विचार करके आप दुःखी हो रहे हैं ? या यह सोच रहे हैं कि वाली के द्वारा निर्मित वानर-सेना अभी तक देवी के अन्वेषण के लिए आई नही है ?

वेद भले ही भ्रम में पड़ जाय, चन्द्र अपने स्थान से विचलित हो जाय, गगन तथा गभीर समुद्र से आवृत धरती भी हिल उठे, किन्तु तुझमें वैसी अस्थिरता ( चाञ्चल्य ) कभी सभव नही है। अनेक चन्द्रकला-समान वडे दाँतो से युक्त अज्ञ राक्षसो का प्रभाव क्या तुम्हारे भव्य भृकुटि-रूपी धनुष के वक्र होने मात्र से विनष्ट नही हो जायगा।

---

१. 'कोप' और 'गोप'—दोनों शब्द तमिल में एक ही जैसे लिखे जाते हैं। अत, तमिल में 'रावणगोप' और 'इन्द्रगोप शब्दों को 'रावणकोप' और 'इन्द्रकोप' भी पढ़ा जा सकता है।—अनु०

हे ज्ञानवान् ! हनुमान् नामक व्यक्ति के (ज्ञान, शक्ति इत्यादि गुणों के) परिमाण को हमने जान लिया है। किन्तु, अंगद आदि ५६० समुद्र सख्यावाले वानरों के स्वरूप को हमने देखा नहीं है। पाप के समान दुःखदायक (वर्षाकाल के) मास भी शीघ्र बीत रहे हैं, आपकी धनुष-समान भौंहोवाली देवी सुलभता से आ पहुँचेगी, यह निश्चित है, (अतः) आप शोक छोड़ें।

हे प्रभो! पहले जब अरण्यवासी वेदों के पारगामी मुनि तुम्हारी शरण में आये थे, तब तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'तुम लोगों को सतानेवाले मायावी राक्षसों को परास्त करके तुम्हारे कष्ट दूर करूँगा।' विधिवश तुम्हारे प्रति भी उन (राक्षसों) ने अपराध किया है, अतः उन राक्षसों का विनाश करो और मधुर यश प्राप्त करो तथा और देवों को भी स्वर्गलोक दिलाओ। अब इस प्रकार प्रज्ञाहीन हो रहना उचित नहीं है।

हे मेरे प्रभु! शत्रु-विजय करने का श्रेय तुमको ही प्राप्त होगी, अन्यथा यह यश और किसको मिल सकता? शोक करना वीरता का कार्य नहीं है, वह तो दुर्बलता है। यह उचित है कि हम समय की प्रतीक्षा करें और उसके अनुसार कार्य करें। यदि आप अभी प्रयत्न करना चाहते हो, तो भी आपके लिए असाध्य कार्य कुछ नहीं है। आप शोक से उद्विग्न न हो—इस प्रकार (लक्ष्मण ने) कहा।

शिथिलप्राण हो निश्चेष्ट बैठे हुए आदि भगवान् (के अवतार रामचन्द्र) अनुज के वचनों से सात्वना पाकर शोक-मुक्त हुए, इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत हुए। एक रोग के शान्त होते ही दूसरा रोग उत्पन्न हो गया हो, ऐसे ही अब वर्षाकाल का उत्तरार्ध आरम्भ हुआ।

बड़े-बड़े जलाशय भर गये। उनमें तरंगें घनी होकर उठने लगीं। काले वर्णवाले कोकिल दुर्बल हुए, ऊँचे पर्वत ठडे हुए, विशाल दिशाएँ अदृश्य हुईं, अपने प्रियतमों से वियुक्त व्यक्ति दुःखी हुए, क्रौंचो के जोड़े एकप्राण होकर परस्पर गाढालिंगन से बँध गये।

उत्तरी पवन, स्वर्णमय आभरणों से भूषित अप्सराओं के अनिंदनीय विशाल जघन-तट के वस्त्रों तथा उनके झूलों का स्पर्श करके उनके प्रेम से पीड़ित हुए व्यक्तियों पर ऐसे जा लगता था, जैसे जले हुए घाव में तीक्ष्ण बाण चुभ गया हो।

समुद्र भर गये, सूर्य-किरणें अपना ताप तजकर ठडी हो गई। जल से आँके जानेवाले घटी-यन्त्र के द्वारा ही समय का ज्ञान सभव था, अन्यथा यह जानना असंभव था कि कब दिन हुआ है और कब रात।

मयूर-सदृश तरुणियों की कोमल मधुर बोली से पराजित होनेवाले तोते धान के पौधों में जा छिपते थे, जिससे धान की बालियाँ टूट जाती थी। (रमणियों के) धवल तथा मृदु दतों से पराजित मुक्ताएँ विशाल सागर की लहरों में छिपी पड़ी रहती थी। 'नेयिदल' प्रदेश (समुद्री तटों) की युवतियों के ऑगनो में उत्पन्न होनेवाले पुष्पित 'पुन्नै' वृक्ष मानो सोने की गठरी को खोल रहे थे।

ऊँचे हाथी उज्ज्वल तथा बड़ी बूँदों के गिरते रहने पर भी पर्वत के समान अचल तथा निद्राहीन स्थिर खड़े थे, जैसे काली रात तथा दिन के समय में निरंतर ध्यानरत रहनेवाले दृढचित्त तपस्वी हों।

शीत से कॉपनेवाले इस, चन्दन-वृक्ष के पत्तो से छायी हुई झोपड़ियो के भीतर, वेदिकाओ के निकट होम-कुण्डों में प्रातः और संध्या को जलाई जानेवाली अगरु की लकड़ियों के धुएँ मे घुस-घुमकर अपनी ठंड दूर कर लेते थे। वानरियॉ पर्वत-कंदराओ मे सोई पड़ी थी। वलिष्ठ वानर ऐसे सिकुड़े बैठे थे, जैसे अष्टागयोग की प्रक्रिया के द्वारा अपनी इंद्रियो का दमन करनेवाले अनुपम योगी हों।

मेघ घोर वर्षा कर रहे थे, जिससे निर्मल पर्वत निर्झरों की धाराएँ तरुणियो के केश-पाश की सुगन्धि से सुवासित नहीं हो पाती थी—( अर्थात् , तरुणियाँ उनमें स्नान नही करती थी )। रत्नमय स्तभों पर डाले गये झूले सूने पड़े थे। मंच, चमकते हुए रत्नों को आकाश में नही फेंकते थे (अर्थात् , अनाजो के खेत में बने मंचो पर खडे होकर अब कोई पक्षियो को उड़ाने के लिए रत्नमय पत्थरों को नही फेकता था। )

केतकी-वृक्षों के काले तथा शीतल पत्तो के मध्य कामोद्दीपक पुष्प पक्तियों मे खिले थे और उनके घेरे के मध्य सारसियॉ अपने विशाल तथा सुन्दर पखो को सिकोड़े ऐसे बंदी थी, जैसे अपने प्रियतम के विरह में पीडित स्त्रियाँ हो।

नाना विहग मृदंग के समान नाद कर रहे थे। विविध भ्रमर संगीत कर रहे थे। मयूर नृत्य की विविध भगियाँ दिखा रहे थे और अनेक प्रकार के नृत्य दिखानेवाली वेश्याओं की समता करते थे। और, हरिण-समुदाय, जो मेघ-गर्जन से भयभीत होकर वृक्षो के नीचे आ ठहरते थे, ( उस नृत्य के ) दर्शक बने थे।

कोमल पुष्प-शाखा को परास्त करनेवाली कटि से शोभित तरुणियॉ तथा युवक अगरु-धूम से आवृत होनेवाले दीपो के प्रकाश मे पर्यन्त पर शयन करते थे। शीत से कॉपनेवाले भ्रमर पुष्प का त्याग कर, चन्दन-वृक्ष के कोटरों में विश्राम करते थे।

मनोहर हंसो के जोडे कमल-शय्या को तजकर बड़े वृक्षो से भरे उद्यानो में आ ठहरे थे। सुगन्धित लकड़ियो से बने हुए झोपड़ो में धवल दतोवाली व्याध-स्त्रियो के साथ उनके प्रियपुरुष निद्रा करते थे।

ग्वाले लताओं से आवृत अत्युन्नत तथा छोटे पत्तोवाले वृक्ष के नीचे बकरियो के बच्चो को गोद मे लिये पड़े थे। चोरो के समान छिपकर फिरनेवाले भूत भी भूखे ही दाँत कटकटाते हुए एक स्थान मे खडे थे।

बड़े-बड़े दृढचित्तवाले हाथी आकाश के मेघो से बाण-सदृश पानी की बूँदो के अपने शरीर पर गिरने से सिकुड़ जाते थे और पर्वत के सानुओ के ऊपर जहाँ मधु के पुराने तथा असख्य छत्ते लगे थे, नही रह पाते थे और कन्दराओं के भीतर घुस जाते थे।

इस प्रकार के वर्षाकाल मे रात्रि का अंधकार भी आ पहुँचा। तब ज्ञानवान ( रामचन्द्र ) ने अजन-सदृश आँखोवाली तथा मदहास-युक्त जानकी की याद मे ज्वाला-सी निःश्वास भरते हुए लक्ष्मण से कहा—

आभरण-भूपिता, पीनस्तनी वह ( सीता ) मेघ के सदृश काले रगवाले तथा बिजली के सदृश दॉतोवाले राक्षस की माया का लक्ष्य बनकर पीडित हो अपने प्राण छोड़ेगी। मेरे लिए भी जीवित रहना सर्वथा असम्भव है। आह ! यह कैसी अवस्था है।

शुभ्र वर्णवाले तथा विनाशकारी शर मेरे तूणीर मे सोये पड़े हैं। मैं गगनोन्नत भुजावाला होकर भी इस प्रकार की पीडा भोग रहा हूँ। मेरी ऐसी दशा है, मानों मेरे कंठ मे बरछा चुभा हो, फिर भी मै निष्प्राण नही हुआ हूँ।

पक्षी जोड़ो के भीतर चमकते हुए जुगनुओं के प्रकाश मे अपनी संगिनियों के साथ सो रहे हैं। (मन्मथ के द्वारा) चुनकर फेंके गये पुष्पबाणो से मेरा हृदय छिन्न हो गया है और दुःसह पीडा से पीडित हो रहा हूँ। फिर भी, मै जीवित हूँ।

मेघ मे विद्युत् की कौंध को और वज्र के गर्जन को देखता तथा सुनता हुआ मे विषदतवाले सर्प के समान पीडित होकर चुप पड़ा हूँ। वनवास में मैंने जो कार्य किये हैं, उनपर स्वर्गवासी ( देवता ) और धरतीवासी ( मनुष्य ) हँसेंगे। अब (मेरे अपमान के लिए) और क्या आवश्यक है?

वेदना से पीडित होता हुआ मै ( सीता को ) भूलकर जीवित नही रह सकता हूँ। यदि वर्षा इसी प्रकार रहेगी, तो मेरा प्राण त्याग कर स्वर्ग पहुँचना निश्चित है। तो क्या मैं इस अपयश को अगले जन्म मे ही मिटा सकूँगा। कदाचित् अगले जन्म मे भी मै गृहस्थी से सन्यास लेकर ही यह अपयश मिटा सकूँगा।

हे वीर! इस स्थान पर रहकर यदि हम राक्षसो का पता लगावें, तो बहुत समय व्यतीत होगा। अतः, यह प्रयत्न ( सीता का अन्वेषण ) आवश्यक नही। मेरे लिए इसी मे यश है कि मै ( सीता की ) विरह-पीडा मे प्राण त्याग दूँ।

मै शर-सदृश उज्ज्वल कटाक्ष-पूर्ण नयनोंवाली तथा श्रेष्ठ आभरणो से भूषित (सीता) के प्रवाल वर्णयुक्त तथा कुमुद-सदृश अधर का अमृतपान करता रहा। यह वर्षा मानो ताँबे को पिघलाकर बरसा रही है और मेरे शरीर को जला रही है। तो, क्या अब ऐसे ही मरना मेरे लिए उचित है?

घृत की आहुति देकर प्रज्वलित की हुई अग्नि के समक्ष, जनक ने मुझसे कहा था कि यह (सीता) तुम्हारी शरण मे है। उनके उस वचन को मैंने असत्य कर दिया है। ऐसे मुझ अधार्मिक व्यक्ति मे सत्य कैसे टिक सकता है? अतः, अब मुझे मर जाना ही उचित है।

सांत्वना देने के लिए तुम हो। सात्वना पाकर सहन करने के लिए मैं हूँ। कंकण-धारिणी ( सीता ) अब यहाँ आ जाय—यह संभव नही है। इस पीडा को कौन दूर कर सकता है? क्या इस पीडा का कभी अन्त भी होनेवाला है?

मैं श्रेष्ठ शरो को चुन-चुनकर प्रयोग करूँ, तो उनसे जब सत्यलोक जल जाय, देवता प्रभृति सृष्टि के अतिप्राचीन व्यक्ति मिट जायँ तथा सभी लोक एवं वहाँ के प्राणी अशेष रूप से ध्वस्त हो जायँ, तभी क्या मैं मयूर-सदृश उस ( सीता ) को देख सकूँगा?

वज्र-निर्घोष-सदृश टंकार से युक्त धनुष को धारण करनेवाले हे वीर! इस प्रकार मैं सब लोकों तथा वहाँ के प्राणियों को न मिटाकर पीडा का अनुभव करता हुआ बैठा हूँ, तो यह इसी डर से कि ( वैसा करके ) मैं धर्म की रक्षा नहीं कर पाऊँगा; अन्यथा शत्रु-राक्षस सब देवताओं के साथ मिलकर मेरे विरुद्ध आवें, तो भी वे मुझसे बच नहीं सकते।—राम ने इस प्रकार कहा।

तब अनुज ने कहा—हे आज्ञा-रूपी चक्र से युक्त प्रभु! जिस वर्षा ऋतु को हमने यहाँ व्यतीत करना चाहा, वह अब व्यतीत हो चुका है। शरद्-काल भी अब समाप्ति पर आ गया है। अतः, उस चोर ( रावण ) के आवास को खोजकर पहचानने का समय आ पहुँचा है। अब आप क्यों शिथिलमन हो रहे हैं?

अरुण नयनवाले विष्णु भगवान् के यह आज्ञा करने पर कि तुम अमृत-तरंगो से पूर्ण विशाल क्षीरसागर से अमृत को दे सकते थे, फिर भी वैसी आज्ञा देना उचित न समझकर, पर्वत आदि सभी मथन-उपकरणो के द्वारा उसे मथकर ही अमृत को निकलवाया था।

चक्रधारी भगवान् यदि मन में संकल्प-मात्र कर लें, तो समस्त लोको के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें अपने मुँह में डालकर चबा डालें, तो भी वह वैसा नही करता, परन्तु अनेक बडे शास्त्रों को लेकर युद्ध करके ही सब ( दुर्जनों ) को वह विजित करता है।

हे महाभाग! ललाटनेत्र तथा परशुधारी शिव भगवान्, जब क्रुद्ध होकर, आकाश मे संचरण करनेवाले त्रिपुरो को ध्वस्त करने लगे, तब उन्होने जो-जो उपाय किये थे और जो-जो उपकरण जुटाये, उन्हे कौन जान सकता है?

यदि हम अपने अनुकूल रहनेवाले सब ( मित्रो ) को अपना साथी बना लें, मन्त्रणा करने योग्य सब विषयों को भली भाँति विचार कर निर्णय करें, फिर उचित समय को पहचानकर उचित ढंग से कार्य करें, तब 'विजय' नामक वस्तु क्या हमसे दूर रह सकती है?

बलवान् राक्षसो ने धर्म-मार्ग से विमुख होकर अधर्म-मार्ग को ही अपने लिए ग्राह्य मान लिया है, उचित सन्मार्ग से जब वे ( राक्षस ) भ्रष्ट हो गये हैं, तब यश और विजय दोनो ( तुम्हारे सिवा ) अन्य किसके पास होंगे?

स्वर्ण-आभरण पहननेवाली उन देवी के कष्टो को दूर करने का समय धीरे-धीरे आ पहुँचा है। अब आप दुःख-मुक्त हो जायँ? ऋषि-मुनियों की सहायता करनेवाले हम क्या राक्षसों के ( शस्त्रों के ) लक्ष्य बनेंगे? हे मनोहर धनुष धारण करनेवाले! आप ही कहिए।—इस प्रकार लक्ष्मण ने कहा।

युगो के अधिपति (विष्णु भगवान् के अवतार रामचन्द्र ने) लक्ष्मण के वचनो को उचित समझा। इसी प्रकार, जब वे यह सोचते हुए कि क्या इस वर्षाकाल का भी कभी अन्त होनेवाला है, कृश हो रहे, तब वर्षाकाल भी समाप्ति पर आ गया।

महान् दान-कार्य मे निरत कोई उदार व्यक्ति, धरती के सभी लोगों को उनके इच्छानुसार सभी पदार्थ का दान देकर निर्धन हो गया हो और फिर, किसी उत्तम याचक के द्वारा कुछ माँगे जाने पर उसे दान देने के लिए अपने पास कुछ न होने से लज्जित हो गया हो। इसी प्रकार सब मेघ श्वेत वर्ण हो गये ( अर्थात्, शरत्काल आ गया )।

पाप-पुण्य नामक दो कर्मों के फल को जानने से सद्विवेक के प्राप्त होने पर जिस प्रकार अविद्या के तम मिट जाते हैं, उसी प्रकार ( शरत्काल के आगमन पर ) वर्षाकाल का गाढ अन्धकार मिट गया।

जिस प्रकार घोर युद्ध के समाप्त होने पर युद्ध की भेरी निःशब्द हो जाती है, उसी प्रकार जल-भरे मेघ भी गर्जन करना छोड़कर निःशब्द हो गये। भयंकर बाणो के सदृश

वर्षा की बौछार भी थम गई। जैसे करवाल कोषों मे बद करके रख दिये गये हो, वैसे ही विद्युत् भी अदृश्य हो गई।

विशाल प्रान्तवाले ऊँचे पर्वत अपने सानुओ के निर्झरो से रहित हो गये। उनके केवल कुछ जल-स्रोत ही बहते रह गये। वे ( पर्वत ) ऐसे लगते थे, मानो वे यज्ञोपवीत और उत्तरीय के साथ श्वेत वस्त्र भी कटि मे धारण किये हों।

पर्वतो के ऊपर से मेघो के हट जाने से दिगंतों तक प्रवाहित होनेवाली नदियाँ जल-रहित हो गईं। अतः, वे (नदियाँ) सन्मार्ग पर न चलनेवाले उस व्यक्ति के समान थीं, जो उत्तम पुण्य के घट जाने पर निर्धन हो गया हो।

गड-स्थलों से मद-जल बहानेवाले हाथियो के समान स्थित काले मेघ गगन के प्रदेश को उन्मुक्त छोड़कर उड़े जा रहे थे। चन्द्रमा इस प्रकार चमक उठा, जिस प्रकार यवनिका के उठने पर विविध नाट्य-भंगियाँ दिखानेवाली नर्त्तकी का वदन हो।

उत्तरी पवन पुष्प-मकरन्द को बिखेरता हुआ इस प्रकार प्रवाहित हो उठा, जिससे स्वर्णमय आभरण धारण करनेवाली तरुणियो के विशाल तथा मनोज्ञ स्तनों पर अंकित चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम आदि का लेप सूख गया।

हंस गगन मे सभी दिशाओ में मानो यह सोचकर उड़ रहे थे कि दशरथ चक्रवर्ती के कुमार ( श्रीराम ) के दुःख को दूर करने के लिए उचित समय अब आ गया है। अतः, हम भी ( सीता ) देवी का अन्वेषण करने चलें।

सरोवरों का जल छल-कपट से रहित तपस्वी जनो के मन के सदृश स्वच्छ हो गया। उन जलाशयों में विचरनेवाले मीन, 'रुई पर चलना है'—इस कथन को सुनने मात्र से जिनके कोमल चरण लाल हो जाते हो, ऐसी सुन्दर युवतियो के अजन-लगे नयनों के समान घूम रहे थे।

नालो पर विकसित कमल-पुष्प रूठी हुई तरुणियो के वदन की समता करते थे। 'किडै' नामक पौधे, जिनमे अतिसुन्दर, सुगधित तथा रक्तवर्ण पुष्प भरे थे, सुरत-श्रात युवतियो के रक्त अधरो का दृश्य उपस्थित करते थे।

अनेक प्रकार के मेढ़क जो ( वर्षाकाल मे ) शिक्षा देने में चतुर अध्यापकों के पास पाठ सीखनेवाले कोलाहल से पूर्ण बटुकों के समान बोल रहे थे, अब उन बुद्धिमानो के समान ही मौन हो गये, जो अपना वचन जहाँ फलप्रद होता हो, वही बोलते हैं और अन्यत्र मौन रहते हैं।

मेघों की विशाल वर्षा से हीन होकर मयूर अपने पखों को सिकोड़े हुए दुःखी बने हुए और मन में कोई भी उमंग या फल की कामना से रहित होकर मिथिला-नगर के हंस ( अर्थात्, देवी सीता ) के समान ही व्याकुल हो दबे पड़े रहे।

समुद्र, मानो अपने तरग-रूपी करो से नदी-रूपी अपनी पत्नियों के उमड़ते हुए जल-रूपी सुन्दर आँचल को पकड़कर खीच रहे थे और वे नदियाँ मानो अपने बलवान् पति का आलिंगन करके मदहास कर रही थी, जो ( मंदहास ) मुक्ताजल का दृश्य उपस्थित करते थे।

गुवाक ( सुपारी )-वृक्षों के फल, शास्त्रों के ज्ञानमय वचनों का श्रवण करनेवाले

पुरुषो के समान तथा विरह से पीडित तरुणियो के समान ही धीरे-धीरे अपने पूर्व रंग का त्याग कर अनिन्दनीय सुनहले रंग को प्राप्त करने लगे।

मगर नामक प्राणी, अनेक दिनों तक जल में रहने से शीत की पीडा से व्याकुल होकर जलाशयो से बाहर धूप में ऐसे पडे हुए थे कि सूर्य की काति उनके शरीर पर बिखर रही थी। इस प्रकार, जलाशयो के तटो पर अनेक स्थानो मे अपने मुख को बन्द किये वे सोये पड़े थे।

'वजी' नामक लताएँ, जिनमे (बैठकर) तोते मधुर स्वर मे बोल रहे थे, जिनमे मनोहर पखोवाले भ्रमर केशों का दृश्य उपस्थित करते हुए उड़ रहे थे, जिनमे अतिसुन्दर पल्लव थे (जो कान की समता करते थे) और जो कटि के समान ही लचक-लचक जाती थी, तरुणियो के समान शोभायमान थी।

घोघे, जिनकी पीठ झुकी हुई थी, अपने नेत्रो को सिकोड़कर कीचड़ में धँस गये, मानो उनके द्वारा उत्पन्न किये गये मोती के (रमणियो के दाँतों से) पराजित हो जाने से वे हरिण-सदृश रमणियों के सम्मुख प्रकट होना नही चाहते हो।

वर्षा के कारण पुष्ट हुए समतल प्रदेशो के कमल-पुष्पो के विशाल पत्तो की छाया मे विश्राम करनेवाले दोषहीन केंकडे अब अपनी स्त्रियों के साथ अपने बिलो में उनके द्वारो को बन्द करके ऐसे पडे थे, जैसे लोभी व्यक्ति हों। (१—१२१)

●

## अध्याय १०

### *किष्किन्धा पटल*

इस प्रकार शरत् काल जब व्यतीत होने लगा, तब वीर अग्रज राम ने अपने अनुज को देखकर कहा—हे वीर! निश्चित अवधि व्यतीत हो गई। किन्तु, निद्रा मे पड़ा हुआ वह राजा (सुग्रीव) अभी तक नही आया। उसका यह कैसा कार्य है?

वह (सुग्रीव) दुर्लभ राज्य-सपत्ति को पाकर हमारे उपकारो को भूल गया है। अतः, उत्तम सदाचार से वह भ्रष्ट हो गया है, धर्म को भुला दिया है, इसके प्रति किये हमारे स्नेह की बात छोड़ दो. वह हमारे पराक्रम को भी भूल गया है। इस प्रकार वह सुखी जीवन मे मस्त हो गया है।

जो कृतघ्न होकर अपूर्व रूप मे प्राप्त स्नेह को भी भुला दे, उचित सत्य को मिटा दे एव अपने प्रण को पूर्ण न करे, उसको मारना दोष नही है। अतः, तुम जाओ और उसकी मनोदशा को जानकर लौट आओ।

तुम जाकर यह मेरा सदेश उस (सुग्रीव) को दो कि घोर पापियों को युद्ध मे निर्मल करके स्वर्ग भेजने तथा (लोक मे) धर्म को सुरक्षित बनाने के लिए मैने जो धनुष

उठाया है, वह अभी वर्त्तमान है। भयकर यम भी है। तुमलोगो को मारनेवाला बाण भी मेरे पास है।

विष के समान व्यक्तियो को दण्ड देना पाप नही है। मनु का यही विधान है। इस बात को तुम उस ( सुग्रीव ) के हृदय में बिठा दो, जिसने पाँच वर्ष ( की आयु ) मे कुछ नही जाना।

तुम उससे यह सत्य वचन भी कहना कि यदि वह चाहता है कि नगर, प्रजा, राज्य तथा अपने बन्धुजन—इन सबके साथ स्वय भी राज करता हुआ सुखी रहे, तो अविलब यहाँ चला आये। यदि वह इस प्रकार नही आयगा, तो ससार में वानरो का नाम तक शेष नही रहेगा।

यदि सुग्रीव प्रभृति वानर, हमसे भी अधिक बलवान् वीर को खोजने का विचार करें, तो उनसे कहना कि तुमको (अर्थात् , लक्ष्मण को) जीतनेवाला तीनों भुवनों मे तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नही है।

तुम पहले उन्हे नीतिमार्ग को समझाना। यदि उस वचन से उनका मन न बदले, तो तुम क्रुद्ध न होना और वही उन्हें मिटा न देना। किन्तु, उनके दिये उत्तरों को मेरे पास आकर कहना।—यों कहकर यशोभूषित ( रामचन्द्र ) ने लक्ष्मण को विदा किया।

रामचन्द्र की आज्ञा को सिर पर धारण करके, उनके चरणों को नमस्कार करके, किंचित् भी विलब न करके अपनी विशाल पीठ पर तूणीर बाँध तथा शर-प्रयोग के लिए अतिश्रेष्ठ धनुष को कर में लिये हुए, अनन्यचित्त से वह (लक्ष्मण) दुर्गम मार्ग पर चल पड़ा।

( राम की ) आज्ञा से चलनेवाला वह ( लक्ष्मण ) सुकुमार होते हुए भी ( पूर्व में सुग्रीव जिस मार्ग से उन दोनो को किष्किंधा तक ले गया था उसी ) पूर्व-प्रसिद्ध मार्ग से नही गया, किन्तु वृक्षो और शिलाओं को चूर-चूर करके उन्हें दूर फेंकता हुआ एक नया मार्ग बनाकर उसपर चला। ( भाव यह है कि सुग्रीव ने प्रसिद्ध मार्ग में कोई रुकावट अथवा हानिकारक उपाय कर रखा होगा, इस विचार से लक्ष्मण उस मार्ग से नही गये। )

वीर-ककण से भूषित लक्ष्मण के अरुण चरणों की चाप से, स्वर्ग को छूनेवाले मेरु पर्वत-जैसे ऊँचे उठे हुए पर्वत धरती में धँसकर समतल हो गये। पाताल में स्थित कर्ण-नेत्र ( अर्थात् , सर्प या आदिशेष ) भी लोगों की दृष्टि में आ गया।

बलिष्ठ वाली के भाई के पास जानेवाला मनुकुल श्रेष्ठ का अनुज, भयकर अरण्य को भेदकर अतिवेग से आगे बढ़ता हुआ, गगन-चुम्बी सालवृक्षो को छेदनेवाले ( राम के ) बाण की समता करता था।

किसी दिग्गज के बच्चे के खो जाने पर उसे ढूँढ़ता हुआ, उसके पद-चिह्नो का अनुसरण करके दूसरा कोई दिग्गज चल पड़ा हो—सुग्रीव को ढूँढता हुआ जानेवाला वह लक्ष्मण वैसे ही लगता था।

जिस प्रकार सूर्य ऊँचे उदयाचल से अस्ताचल पर जा पहुँचा हो, उसी प्रकार स्वर्ण की काति से युक्त शरीरवाला लक्ष्मण एक ऊँचे उज्ज्वल पर्वत से ( ऋष्यमूक से ) दूसरे पर्वत पर ( किष्किंधा पर ) शीघ्र जा पहुँचा।

अपने रक्षक अग्रज के अनुपम शर के समान वह अत्युन्नत किष्किन्धा-पर्वत पर जा पहुँचा। वह एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर फाँदकर जानेवाले स्वर्णरंग केसरी की समता करता था।

उसे देखकर वानर, ऐसे भागे, जैसे यम को देख लिया हो। वे वालिकुमार के निकट जा पहुँचे और उनसे कहा—हे प्रभु ! अतिक्रुद्ध रामानुज चंडवेग से यहाँ आ रहा है। यही सुनते ही—

वह कुमार भी, साहसिक कृत्य करनेवाले लक्ष्मण के आगमन का कारण जानने के लिए ( लक्ष्मण के ) समीप आया और उस चक्रवर्ती कुमार के मन का भाव पहचानकर स्वर्ण का वीर-कंकण धारण करनेवाले अपने पितृव्य ( सुग्रीव ) के प्रासाद में जा पहुँचा।

नल ( नामक वानर-शिल्पी ) के द्वारा निर्मित प्रासाद में पुष्प-दलों की शय्या पर पड़े उस सुग्रीव के निकट जा पहुँचा; जो दीर्घ कुंतलों तथा बाल-स्तनोंवाली रमणियों के द्वारा अपने सुन्दर पैरों को सहलाये जाते हुए, निद्रा का अतिथि बनने की इच्छा कर रहा था।

जो स्वच्छ ज्ञानवाले राम-लक्ष्मण के द्वारा प्रदत्त उस विशाल राज्य-सम्पत्ति-रूपी मदिरा का पान करके अतिमत्त हो गया था, जो अति उज्ज्वल स्वर्ण-पर्वत के मध्य ठहरे हुए ऊँचे रजत-पर्वत के समान शोभायमान था।

जो, सिंदुवार, साखू, अगरु, चंदन तथा सुगन्धित लताओं तथा सुरभित पुष्पों का स्पर्श करके बहनेवाले बाल-पवन के कारण सुख-निद्रा में मग्न था।

जो मधुर 'किडै' ( नामक फूल ) के समान अधखिली स्त्रियों के, धवल हास करनेवाले मुक्ता-सदृश पैने दंतों से मधु-समान जो रस उत्पन्न होता था, उसका पान करके उन्माद, मूर्च्छा तथा अन्य ( तंद्रा, शिथिलता आदि ) गुणों के बढ़ जाने से मत्त गज के समान पड़ा था।

जो, मुकुट, कुंडल आदि के कांति-पुंजों के व्याप्त होने से ऐसा उज्ज्वल लगता था, जैसे सूर्य-किरणों से आवृत हिमाचल हो।

वह सुग्रीव लेटा था। तारा के गर्भ से उत्पन्न वीर अंगद पहले उसके समीप गया और अपने विशाल करों को जोड़, उसे निद्रा से जगाने के लिए मृदु वचन कहने लगा—

हे मेरे पिता ! मेरे वचन सुनिए। उन रामचन्द्र का अनुज, अपने दुःख से अपने मन के महान् क्रोध को प्रकट करते हुए अपार वेग से आ पहुँचा है। अब आपका विचार क्या है ? कहिए।

वह ( सुग्रीव ) राज्य-सम्पत्ति के मोह से भूला हुआ था और सुगंधित मधु-रूपी विष भी उसके शिर पर चढ़ा हुआ था। अतएव प्रज्ञा-रहित हो कोमल पर्यंक पर पड़ा था; अंगद के वचनों को वह सुन नहीं सका।

यह दशा देखकर कनिष्ठावक्र एवं केसरी की समता करनेवाला वह युवराज ( अंगद ), यह सोचकर कि अब सुग्रीव के सम्मुख खड़े रहने से कुछ न होगा, दोषरहित चित्तवाले हनुमान् को बुलाने के लिए उनके पास गया।

इंद्रपुत्र का सुत ( अंगद ) मंत्रणा में अतिकुशल वायुकुमार को साथ लिये हुए उग्र सेनापतियों के साथ चलकर ( सुग्रीव के प्रासाद से ) बाहर निकलकर अपनी माता के प्रासाद की ओर चला।

वहाँ पहुँचकर उसने ( तारा से ) प्रश्न किया कि अब क्या करना चाहिए ? तब तारा ने उत्तर दिया—तुमलोग न करने योग्य पाप-कर्म सुलभता से कर डालते हो, फिर उन कर्मों के परिणाम को अनायास ही दूर करने का उपाय भी करना चाहते हो। क्या उपकार को भूलकर ( कृतघ्न होनेवाले ) तुमलोग ( पाप से ) मुक्त हो सकते हो ?

उसने फिर आगे कहा—विजयी ( रामचन्द्र ) ने तुम्हें सेना-सहित आने की जो अवधि दी है, यदि वह व्यतीत हो जायगी, तो तुम लोगों के जीवन की अवधि भी समाप्त हो जायगी—यों मेरे कहते रहने पर भी तुमलोगों ने कुछ सुना नहीं। अब देखो, तुमलोग कैसे फँस गये हो।

जिन वीर ने अपने धनुष को ऐसा झुकाया कि यम ने वाली के अपूर्व प्राणों का हरण कर लिया और जिन्होंने तुमलोगों को अतुलित राज्य-सम्पत्ति प्रदान की, वे भी आज तुम्हारी उपेक्षा-योग्य हो गये हैं। तुम्हारे जैसे स्वभाववाले लोगों के लिए यह कार्य ( रामचन्द्र की उपेक्षा करना ) ठीक ही तो है।

देवताओं से भी उत्तम वे ( राम ) अपनी पत्नी के वियोग में निष्प्राण-से हो मूर्च्छित पडे हैं। इधर तुम उनकी उस व्यथा को मन में भी न लाकर सद्योविकसित नीलोत्पल-समान नेत्रवाली रमणियों के प्रेमामृत का पान कर रहे हो।

( तुमलोग ) सत्य से मुकर गये हो, कृतघ्न हो गये हो। तुमलोगों के पापों का परिणाम अब दीख रहा है। तुमलोग इस प्रकार गुणहीन हो गये हो। यदि उन महावीर ( राम ) से युद्ध मोल लोगे, तो विनष्ट हो जाओगे।—जब तारा इस प्रकार उनकी भर्त्सना करती हुई बोल रही थी, तब—

उधर बडे-बडे पराक्रमी वानरों ने नगर के विशाल कपाट को, जो बड़ी अर्गला से बंद करने योग्य था, बन्द करके भीतर से अर्गला डाल दी और बड़ी शिलाओं को लाकर ( उस कपाट के पीछे ) चुन दिया।

वे वानर-वीर इस प्रकार नगर-द्वार को सुरक्षित करके और यह विचार कर कि ( यदि कदाचित् लक्ष्मण भीतर प्रविष्ट हो जाय तो ) उनसे युद्ध करने के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए, वृक्षों को तोड़कर एवं बड़ी शिलाओं को उखाड़कर हाथ में लिये हुए, प्राकार के समीप खडे रहे।

राजपुंगव ( लक्ष्मण ) ने यह सोचते हुए कि ये हमसे बचना चाहते हैं, क्रोध से मंदहास करके, लक्ष्मी के निवास कमलपुष्प की समता करनेवाले अपने चरण से, उस नगर के कपाट पर अनायास ही आघात किया।

उनके दिव्यचरण का स्पर्श पाते ही वह नगर-कपाट, सुरक्षा के लिए द्वार पर रखी शिलाएँ तथा दृढ प्राचीर, सब ऐसे विध्वस्त हो गये, जैसे अस्पृश्य पाप-पुंज हो।

वह दृढ कपाट, वह पुरातन नगर-द्वार, शिलाओं से निर्मित प्राचीर, सब सहज ही

ढहकर सब दिशाओं में दस योजन तक बिखर गये। तब वानर भय से विह्वल हो उठे।

उस दृढ तथा उन्नत प्राचीर और उस विशाल नगर-द्वार के ढहकर गिरने से पत्थरों के प्रहार में शिर में चोट खाये हुए वानर व्याकुल होकर दीर्घ दिशाओं में भागकर अपने अपूर्व प्राणों को बचा पाये।

अकथनीय घोर दुःख पाकर, अपना स्थान छोड़कर भागे हुए दोषहीन वे वानर, भयभीत होकर घोर शब्द करने लगे। उस ध्वनि से वह (किष्किन्धा) नगरी, उन्नत शिखरवाले मन्दर-पर्वत से मथे जानेवाले मीन-भरे तथा शब्दायमान समुद्र की समता करने लगी।

अनेक वानर, भयभीत होकर, किष्किन्धा पर्वत से हटकर समीपवर्ती वनों में जा छिपे। उससे वह ऊँचा ( किष्किन्धा ) पर्वत, ऐसा लगने लगा जैसा नक्षत्रपूर्ण आकाश नक्षत्रहीन होने पर दीखता है।

उस समय प्रतापी ( रामचन्द्र ) की आज्ञा-रूपी चक्र के जैसे लगनेवाले वे ( लक्ष्मण ) उस स्वर्णमय नगर की वीथियों में प्रविष्ट हो चलने लगे। तारा को घेरकर खड़े रहनेवाले ( अंगद आदि ) वानर कह उठे—अहो। वे आ गये हैं। अब क्या करें?

हे उत्तम कंकण धारण करनेवाली! उन ( लक्ष्मण ) का हृदय पुष्प के समान कोमल है। यदि आप राजप्रासाद के द्वार पर जाकर उन्हें रोक दें, तो वह वीर, जो विचारवान् हैं, उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे। यही उत्तम उपाय है।—यों हनुमान् ने कहा।

तब तारा ने ( उनसे ) वह कहकर कि, तुम सब लोग जाओ। मैं जाकर उन वीर ( लक्ष्मण ) के मन को शांत करूँगी—साहस के साथ पुष्पालंकृत केशोंवाली अन्य सखियों-सहित चल पड़ी। इधर अन्य वानर उनसे हटकर दूर पर खड़े हो गये।

कंठ में रस्सी ( का आभरण ) धारण किये हुए हाथी-जैसे लक्ष्मण, प्रसिद्ध वानरों के आनन्दपूर्ण आवास किष्किन्धा की राजवीथियों को पार कर विशाल राज-सौध में ज्यों ही प्रविष्ट होनेवाले थे, त्यों ही सहज सुगंध-भरित केशोंवाली तारा उनके मार्ग के मध्य उन्हें रोककर खड़ी हो गई।

मनोज्ञ लावण्य, धवल चन्द्र-सदृश मदहास, सुन्दर कटि, उत्तम तथा नित्य यौवन-पूर्ण मृदु स्तन—इनसे युक्त उत्तम मयूर-तुल्य रमणियों के साथ वह तारा उस श्रेष्ठमार्ग को रोके खड़ी रही।

रमणियों की सेना ने दृढता से ( लक्ष्मण को ) इस प्रकार घेर लिया कि (लक्ष्मण के ) धनुष तथा करवाल उनके आभरणों में चमक उठे। उन ( रमणियों ) के मंजीर, जिनमें छोटे-छोटे कंकड़ भरे थे, बज उठे। मेखलाएँ भी बड़ा कोलाहल कर उठीं। सर्वत्र विविध भ्रू-लताएँ फैल गईं।

शब्दायमान नूपुर नगाड़े बने थे। रमणियों के जघन बड़े रथ थे। परस्पर अनुरूप नयन-युगल बरछे थे। कठोर भौंहें युद्ध करनेवाले धनुष थीं। इस प्रकार, जब वे रमणियाँ घेरकर खड़ी हो गईं, तब स्वयं गौरव से भी गुरु होनेवाली भुजाओंवाले उन ( लक्ष्मण ) का

शांत न होनेवाला क्रोध भी शांत हो गया। वे अपने सिर को झुकाकर उनकी ओर दृष्टि उठाने से भी संकोच करते हुए खड़े रहे।

लक्ष्मण, अपना कमल-वदन नीचा किये, अपने विशाल धनुष को धरती पर टेके, ऐसे खड़े रहे, जैसे अपनी साँसों के बीच खड़े हों। तब मनोहर कंधों, परिशुद्ध हृदय और दीर्घ नयनोंवाली तारा, उन वानर-रमणियों में से, जो धरती की अप्सराएँ जैसी थीं, पृथक होकर गद्गद स्वर में ये वचन कहने लगी—

हे वीर! हमारा यह बड़ा भाग्य है कि तुम हमारे इस घर में पधारे हो। अनंतकाल तक तप करने पर ही ऐसा भाग्य प्राप्त होता है, अन्यथा इन्द्र आदि के लिए भी ऐसा भाग्य दुर्लभ है। (तुम्हारे आगमन से) हम कर्मरहित हो उत्तम-गति प्राप्त कर चुकी। इससे बढ़कर अन्य क्या सुकृत हो सकता है?

फिर, संगीत से भी मधुर बोलीवाली उस तारा ने प्रश्न किया—हे वीर! तुम उग्र रूप धारण करके यहाँ आये हो। तुम्हें देखकर वानर-सेना (तुम्हारे) आगमन का कारण न जानने से भयभीत हो रही है। तुम्हारा क्या उद्देश्य है? हे प्रभो! आज्ञा-रूपी चक्र को प्रवर्त्तित करनेवाले (चक्रवर्ती श्रीराम) के चरण-युगल को कभी न छोड़नेवाले तुम अब (उन्हें छोड़कर) किस कार्य से यहाँ आये हो?

पुष्पहार-भूषित वक्षवाले (लक्ष्मण) करुणा से आर्द्र हुए। उनका क्रोध कम हुआ। यह सोचते हुए कि कौन यह वचन कह रही है, उस तारा के मुख को, जो मानो दिन में धरती पर अवतीर्ण उज्ज्वल पूर्ण चन्द्र-जैसा था, निहारकर देखा। तब उसे देखकर उन्हें अपनी माताओं का स्मरण हो आया, जिससे वे व्याकुल हो उठे।

मंगल-सूत्ररहित, रत्नमय अन्य आभरणों से हीन, सुगंधित मधुपूर्ण पुष्पहार से आभूषित, कुंकुम, चंदन आदि के रस से अलिप्त, पीन एवं तापमय स्तनों तथा क्रमुकवृक्ष-सदृश अपने कंठ को (अपने आँचल से) ढके हुए उस नारीरत्न (तारा) को देखकर उदार स्वभाववाले वे (लक्ष्मण) अपने नयनों में अश्रु-भरे खड़े रहे।

उन (लक्ष्मण) के मन में यह विचार उठने से कि मेरी दोनों माताएँ (अर्थात्, कौसल्या और सुमित्रा) इसी वेश में रहती होंगी, वे शिथिलचित्त होकर दीर्घकाल तक वैसे ही खड़े रहे। फिर, यह सोचकर कि उनसे पूछे गये प्रश्नों का उन्हें कुछ उत्तर देना है, सुन्दर कुंतलोंवाली उस (तारा) को देखकर अपने उद्दिष्ट कार्य के बारे में यों कहने लगे—

सूर्यपुत्र सुग्रीव, मनुकुल के श्रेष्ठ नरेश (राम) के प्रति दिये अपने इस वचन को कि 'मैं अपनी सेना के साथ आपकी देवी का अन्वेषण कर उनका समाचार प्राप्त करूँगा' भूल गया है। मेरे अग्रज ने आदेश दिया है कि तुम शीघ्र जाकर उस सुग्रीव का हाल जानकर आओ। इसलिए मैं यहाँ आया हूँ। उसके उत्तम राज्य-शासन का हाल तुम बताओ—लक्ष्मण ने कहा।

हे प्रभु! क्रोध न करो। छोटे लोगों के अपराध को क्षमा करके तुम शांत हो जाओ। इस प्रकार क्षमा कर सकनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है? वह अपने वचन

को भूला नही है। उसने ससार मे सर्वत्र अपने अनेक दूतों को भेजा है और सब स्थानो से वानरों की सेना के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। (तुम लोगो के) उपकार का प्रत्युपकार भी क्या सभव है?

सहस्र कोटि वानर-दूत, सेनाओ को बुला लाने के लिए (सुग्रीव की) आज्ञा से गये हैं। उनके लौट आने का समय भी आ गया है। तुम जो शरणागत के लिए माता से भी अधिक हितकारी हो, अपने क्रोध को शात करो। यही धर्म है, यदि अपराधी ही न हो, तो दडनीय कौन होगा?[1]

तुम लोगो ने अपने शरणागत को अभयदान देकर जो अपार सपत्ति प्रदान की है, उसे प्राप्त कर यदि वह कभी तुम्हारी आज्ञा का उल्लघन करे, तो वह भी तुम्हारे ही कार्य का परिणाम होगा न? स्त्री के निमित्त होनेवाले युद्ध में (अपने मित्र के साथ जाकर) यदि कोई अपना शरीर न त्याग करे, तो क्या उसकी मित्रता टिक सकेगी?

तुम सरल स्वभाववाले ने उग्र शत्रु को मिटाकर (सुग्रीव को) राज्य का वैभव प्रदान किया और उसके साथ शाश्वत रहनेवाला महान् उपकार किया है। यदि वही तुम्हारी उपेक्षा करे, तो अपनी इस क्षुद्रता के कारण वह अपना महत्त्व ही नहीं खो बैठेगा, किंतु इसी जन्म मे दारिद्र्य को पाकर इह एव पर दोनों लोको के सुख से वञ्चित हो जायगा।

उस समय, युद्ध-कुशल वाली के प्रताप को मिटानेवाला एक ही बाण तो था। अब (यदि तुम इस सुग्रीव को मिटाना चाहो तो) तुम्हे किसकी सहायता अपेक्षित है? तुम्हारे धनुष से बढकर तुम्हारा अन्य सहायक कौन है? तुम्हे तो देवी का अन्वेषण करनेवाले लोगों की आवश्यकता है। तुम्हारे चरणो की शरण में आये हुए (सुग्रीव आदि) जन तुम्हारा कार्य करके कृतार्थ होंगे।

तारा के ये वचन सुनकर बहुश्रुत लक्ष्मण, करुणार्द्र होकर मन मे लज्जा का अनुभव करता हुआ खड़ा रहा। उसको इस दशा मे देखकर और समझकर कि, इनका क्रोध शात हो गया, घोर युद्ध मे सहायक बननेवाले दृढ कधों से युक्त हनुमान् उनके समीप आया।

क्रोध के समय मे भी अकुरित प्रेमवाले लक्ष्मण ने अपने समीप आकर चरणो को नमस्कार करके खडे हुए हनुमान् को देखकर कहा—तुम तो अपार शास्त्र-ज्ञान से युक्त हो। तुम भी कैसे पूर्व घटित वृत्तात को भूल गये? तब वचन-चतुर हनुमान् ने उत्तर दिया—हे प्रभो। सुनो—

अविकृत प्रेमवाली माता का, पिता का, गुरु का, दिव्य शक्ति से युक्त ब्राह्मणो का, गाय का, शिशुओं का और स्त्रियो का वध करनेवालों का भी कुछ प्रायश्चित्त हो सकता है। किन्तु, अनश्वर उपकार को भूल जाने का भी क्या कोई प्रायश्चित्त हो सकता है?

हे स्वामिन्। आप और वानराधिप सुग्रीव मे जो सच्चा स्नेह उत्पन्न हुआ, वह

---

[1]. भाव यह है कि जो अपराध करे और दड के योग्य हो वही क्षमा के योग्य भी होता है। यदि कोई अपराधी न हो और दंडनीय भी न हो, तो क्षमा का भाव कहाँ रहेगा? —अनु०

मेरा ही तो कार्य था। यदि वह मैत्री मिट जाय, तो उस पाप से क्या कोई मुक्त हो सकता है? उस कारण से हमारा भी चित्त मलिन हो जायगा न?

हे हमारे प्रभु! (हमारे) तप, सुकृत, धर्म-देवता तथा अन्य सब कुछ आप ही हैं। ऐसा मेरा सुदृढ विश्वास है। पर, यह सब रहने दीजिए। यदि त्रिलोक की रक्षा करनेवाले आप क्रोध करें, तो हमारे लिए अन्य आश्रय क्या रहेगा? (आपकी) करुणा ही (हमारे लिए) गति है।

वानरराज (आपके कार्य को) भूले नहीं हैं। उन्होंने बलवान् वानर-सेनाओं को एकत्र करने के लिए स्थान-स्थान पर दूत भेजे हैं और उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसीलिए विलंब हो रहा है। आप स्वयं धर्म के रक्षक हैं। यदि वह आपको दिये हुए अपने वचन को तोड़ दें, तो इस लोक में उसका जन्म ही व्यर्थ होगा और नरक से भी उसको मुक्ति नहीं मिलेगी।

हे मत्तगज-सदृश वीर! हमसे उपकार पाये बिना ही जो हमारा उपकार करता है, उसके लिए, यदि आवश्यकता पड़े, तो युद्ध में उसके सहायतार्थ जाकर, उसके शत्रुओं को निहत करना हमारा धर्म है। यदि हम उसके शत्रु का नाश न भी कर सकें, तो कम-से-कम उन शत्रुओं से आहत होकर अपने प्राण तो त्याग सकते हैं। इससे बढ़कर संसार में क्या उपकार हो सकता है?

हे प्रतापी सिंह-सदृश! यहाँ अब आपका खड़ा रहना उचित नहीं है। यदि हमारे शत्रु जान लेंगे, तो उससे आपकी और हमारी मित्रता भंग हो जायगी। आपकी प्रदान की हुई संपत्ति को तथा आपके ज्येष्ठ भ्राता (राम-सदृश) वानराधिप को अब चलकर देखें।

हनुमान् के वचन सुनकर पर्वत-समान पुष्ट भुजाओंवाले लक्ष्मण ने अपना क्रोध शांत करके मन में विचार किया—यह सुग्रीव, नई सम्पत्ति के प्राप्त होने से बेसुध हो गया है और अन्यत्र जाना नहीं चाहता है, अतएव संकीर्णबुद्धि हो गया है। यह राम की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला नहीं है।

यों सोचकर फिर वीरकंकण-भूषित चरण तथा बलिष्ठ भुजाओंवाले राजकुमार (लक्ष्मण) ने हनुमान् को देखकर कहा—अभी तुमसे एक बात और कहनी है। यह तुमसे कहना ही उचित है, तुम इसपर विचार करो; यह कहकर वह आगे कहने लगा— –

मैंने अपनी आँखों देखा है कि (सीता) देवी के अपहरण के कारण उत्पन्न क्रोध तथा मानभंग से उत्पन्न अग्नि किस प्रकार उनके प्राणों को सता रही है, राजधर्म छोड़कर दूसरों पर अत्याचार करनेवाले पापियों को उचित दंड देने का मैंने निश्चय कर लिया है। उससे मुझे भले ही अपयश प्राप्त हो, फिर भी मुझे उसकी कोई चिन्ता नहीं है।

अपने कोप को शांत करके मैं जीवित रहता हूँ, तो यह अपने प्रभु को सांत्वना देने के लिए ही, अनेक दिन व्यर्थ व्यतीत हो गये हैं, अन्यथा (हम दोनों के क्रोध से) त्रिभुवन भी दग्ध हो जायँगे; देव भी मिट जायँगे, इतना ही नहीं, उत्तम धर्म भी विनष्ट हो जायँगे; अविनाशी प्रारब्ध कर्म को कौन मिटा सकता है?

प्रभु ने (पहले) तुमको देखा (तुम्हारे द्वारा मित्रता करके) आपत्ति के समय में तुम्हारे स्वामी (सुग्रीव) की सहायता की और मेरे समान ही उस (सुग्रीव) को भी अपना भाई समझा; इसी कारण से उन्होंने इतने दिन यहाँ व्यतीत किये हैं; अन्यथा एक धनुष की सहायता से ही विद्युत्-सदृश देवी का अन्वेषण करना कोई बड़ी बात नहीं थी।

केवल आकाश में ही नहीं, किंतु इस सारे ब्रह्मांड में। जिसमें चतुर्दश भुवन, सात बड़े पर्वत और सात कुलपर्वत हैं। जहाँ भी सीताजी हो, उस स्थान को पहचान कर, उन्हें मुक्त करके लाना (श्रीराम के शर के लिए) कोई असंभव कार्य नहीं है; फिर भी, उस दिन तुमलोगों ने जो वचन दिया था, उसकी उपेक्षा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं।

तुम लोगों ने विलंब-मात्र नहीं किया। किन्तु, चिरकाल से गर्व से फूले हुए राक्षसों को जीवित रहने दिया। देवताओं को दुःखी होने दिया। परम्परा से आगत शास्त्रज्ञान तथा होमाग्नि से युक्त मुनियों को विपदा में पड़ने दिया, पाप को बढ़ने दिया। क्रोध न करनेवाले (श्रीराम) को क्रुद्ध कर दिया। तुम्हारा तो इससे अंत ही हो जायगा— यों (लक्ष्मण ने) कहा।

उत्तम कुल में अवतीर्ण (लक्ष्मण) के यह कहते ही मारुति ने उनको नमस्कार करके कहा—हे प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता! बीती बातों को मन में न रखो। यदि हम लोग अपने ऊपर लिये हुए कार्य को पूर्ण नहीं करेंगे, तो हम मरण के योग्य हैं: इसका साक्षी धर्म ही है। आप भीतर आइए और अपने ज्येष्ठ भ्राता (सुग्रीव) से मिलिए।

स्वर्ण-वलयों से भूषित धनुष को धारण करनेवाले (लक्ष्मण) यह कहकर कि, पूर्व में हमने तुम्हारे कहे अनुसार कार्य किया और अब भी हम तुम्हारे कहे अनुसार करने को तैयार हैं, सुग्रीव के मन की थाह लेने के लिए हनुमान् के संग चल पड़े।

तारा भी, भाले-सदृश नयन, रक्तकुमुद-सदृश अधर, धनुष-सदृश ललाट, हंस की गति, कलापी-तुल्य छवि, ध्वजायुक्त रथ-सदृश जघन, मुक्ता-सदृश दंत, वलिष्ठ बाँस-जैसी मृदु भुजाएँ, कोकिल-सदृश ध्वनि, स्वर्ण-कलश-तुल्य स्तन, बिजली-जैसी कटि, कुमिल (नामक) पुष्प-सदृश नासिका, कालमेघ-तुल्य केश—इनसे युक्त रमणियों के साथ वहाँ से (अंतःपुर में चली)।

वालिपुत्र (अंगद) भी चतुर मंत्रियों के साथ जाकर वीर (लक्ष्मण) के कमल-सदृश चरणों पर नत हुआ और भयमुक्त हो खड़ा रहा। तब धनुर्धारी (लक्ष्मण) ने उससे कहा—हे वीर, तुम शीघ्र जाकर अपने पिता को मेरे आगमन का समाचार दो। अंगद 'हाँ!' कहकर उन्हें नमस्कार करके चला गया।

दीर्घ बाहुवाला (अंगद) वहाँ से चलकर अपने चाचा के सौध में प्रविष्ट हुआ। वहाँ सुग्रीव के सुन्दर चरणों को दृढ़ता से पकड़ लिया और उसे निद्रा से जगाकर कहा— उस महान् (राम) का अनुज आपके सौध के द्वार पर उपस्थित है। उसका क्रोध मीनों से भरे समुद्र से भी विशाल है। फिर, उसने सारा वृत्तांत भी सुनाया।

अविमुक्त निद्रावाला (सुग्रीव) रमणियों के चलने से उत्पन्न कोलाहल को सुनकर जाग पड़ा। पूर्वघटित किसी भी वृत्तांत को न जानने के कारण उसने अंगद से प्रश्न

किया। घने स्वर्णहारों तथा पुष्पहारों से विभूषित हे वीर! हमने कोई अपराध नहीं किया। ऐसी अवस्था में उनका हमपर क्रोध करने का क्या कारण है?

(तब सुग्रीव से अंगद ने कहा—) हे पिता। निश्चित तिथि को आप (श्रीरामचन्द्र के समीप) गये नहीं। अपार संपत्ति प्राप्त करके गर्व में फूल गये। उपकार को भूल गये। इन कारणों से (लक्ष्मण का) क्रोध भड़क उठा है। नीतिशास्त्र के पंडित हनुमान् ने उनका क्रोध शांत करने के लिए उनसे प्रार्थना की, तब (लक्ष्मण ने) हमें जीवित रहने दिया।

वानर-वीरों ने (लक्ष्मण के) आगमन का वेग (उग्रता) देखकर किष्किन्धानगर के गगनचुंबी दरवाजे को बंद कर दिया और आसपास के एक भी पर्वत को छोड़े बिना, सब पर्वतों को लाकर (दरवाजे पर) रख दिया। एवं उमड़ते क्रोध के साथ उन (लक्ष्मण) से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो खड़े रहे।

पौरुषवान् (लक्ष्मण) ने (वानरों का) वह कार्य देखकर अपने सुन्दर कमल-सदृश चरण से (फाटक को) छुआ—(अर्थात्, पदाघात किया)। उसके छूने के पहले ही, दक्षिण से उत्तर तक फैली हुई, शिला-निर्मित प्राचीर, सुदृढ नगर-द्वार तथा फाटक पर चुने गये पर्वत, सब टूटकर बिखर गये और चूर-चूर हो गये।

यह देखकर बलवान् वानर-सेना किस दशा को प्राप्त हुई—मैं क्या कहूँ? कहाँ भागकर छिपी—मैं क्या कहूँ? (वानरों की) वह दशा देखकर माता (तारा) आभरण-भूषित रमणियों के साथ, बिजली-सदृश तथा पत्राकार बरछा धारण किये हुए (लक्ष्मण) के सम्मुख जाकर (उनके) मार्ग में खड़ी हो गई।

कुमार (लक्ष्मण) ने स्त्रियों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा, मन-ही-मन उमड़नेवाले क्रोध के साथ खडे रहे। तब नारी-रत्न (तारा) ने मधुर वचन कहकर प्रश्न किया—हे उत्तम। हमारे यहाँ आपका यों आगमन कैसे हुआ? तब उन कुमार ने अपने आगमन का कारण कह सुनाया।

माता (तारा ने) उनके आगमन का प्रयोजन ठीक-ठीक समझ लिया। उनके क्रोध का शांत करते हुए ये वचन कहे—(सुग्रीव) आपकी आज्ञा को नहीं भूला है। भयंकर सेना को शीघ्र लाने के लिए दूतों को पर्वतों तथा पत्थरों से भरी विविध दिशाओं में प्रेषित कर दिया है और उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। यही अब घटित वृत्तांत है।—यों (अंगद ने) कहा।

(अंगद के यों) कहते ही, सूर्यपुत्र कह उठा—यदि वे (राम-लक्ष्मण) क्रोध-करके उठ आयेंगे, तो इस धरती में तथा स्वर्ग में कौन उनके सम्मुख खडा रह सकेगा? धनुर्धीर वह कुमार (लक्ष्मण) जब इस प्रकार क्रोध के साथ, शीघ्र गति से आया, तो मुझे समाचार दिये बिना तुम लोगों ने क्या किया?

तब अंगद ने उत्तर दिया—विविध पुष्प-मालाओं से भूषित बलिष्ठ तथा उन्नत भुजावाले हे मेरे पिता! मैंने पहले ही आपसे निवेदन किया था। किंतु, तब आप मत्त होकर पड़े थे। अतः, आपने ध्यान नहीं दिया। फिर, अन्य कोई उपाय न देखकर मैंने

हनुमान् से जाकर कहा। अब शीघ्र ही आप जाकर (लक्ष्मण से) मिलें—यही कर्त्तव्य है।

(राम-लक्ष्मण के प्रति) स्नेह से पूर्ण मनवाले (सुग्रीव) ने कहा—हे कुमार! उन्होंने मेरा जैसा उपकार किया है, क्या वह अन्य किसी के द्वारा संभव है? मुझे जो संपत्ति प्राप्त हुई है, क्या उसका कोई अंत भी है? उन्होंने (रामचन्द्र ने) मुझसे अपने जिन कष्टों को दूर करने की आशा की थी, उन्हें मैं मदिरा के नशे में पड़कर भूल गया। अब मैं उन्हें (लक्ष्मण को) देखने के लिए लज्जित हो रहा हूँ।

मुझसे जो कार्य हुआ है, इससे बढ़कर अज्ञान-भरा कार्य और क्या हो सकता है। (मद्य पीने से) यह पत्नी है, यह माता है—ऐसा विवेक भी जब नहीं रह जाता, तब अन्य धर्म के विषय में क्या कहना? यह (मद्य-पान) पंच महापापों में एक है। यही नहीं, हम तो पहले ही से माया में पड़े हुए हैं, उसपर मद्य के नशे में भी चूर हो जायँ, तो फिर क्या कहना?

अविनश्वर ज्ञान से युक्त महात्माओं तथा वेदों ने कहा है कि जो माया-वशीभूत न होकर विवेक के साथ पापों से दूर रहते हैं, जन्म-मरण के दुःख से मुक्ति पायेंगे। पर, हम तो ऐसे हैं, जो मदिरा में पड़े हुए कीड़ों को निकालकर मद्य पी लेते हैं। हम ऐसे हैं, जैसे घर में लगी आग को घी डाल-डालकर बुझाने की चेष्टा करते हैं।

वेद-शास्त्र तथा अन्य सब यही कहते हैं कि यदि कोई अपना स्वरूप पहचान लेगा, तो उसका क्षुद्र जन्म मिट जायगा। हम तो पहले से ही, आत्म-स्वरूप को न पहचानने के कारण व्याधिपूर्ण गंदे शरीर को पाये हुए हैं। फिर, ऊपर से मद्य पीकर मति-भ्रष्ट भी हो जायँ, तो क्या यह उचित होगा?

अभयदान देकर (शरणागत की) रक्षा करनेवाले, पंचेन्द्रियों पर नियंत्रण रखनेवाले, तत्त्वज्ञान (के समुद्र) में निमग्न रहनेवाले, सुख-दुःख के द्वन्द्व को मिटानेवाले ऐसे व्यक्तियों को छोड़कर क्या वे लोग सद्गति पा सकते हैं, जो दूसरों की आँख बचाकर मद्य पीते हैं और संसार के सम्मुख प्रकट रूप में हँसते-खेलते रहते हैं?

शत्रुओं के द्वारा कृत हानि को, मित्रों के द्वारा कृत उपकार को, अधीत विद्या को, प्रत्यक्ष देखे पदार्थों को, शास्त्रज्ञों के उपदेशों को, अपने को प्राप्त गौरव के कारण को, अपने को प्राप्त दुःख को—यदि कोई जान ले, तो इससे बढ़कर हितकारी ज्ञान उसके लिए और क्या हो सकता है?

मद्यपान करनेवाले में वंचना, चौर्य, असत्य, मोह, परंपरा के विरुद्ध विचार, शरणागत को छोड़ देने का स्वभाव, दंभ—ये सब (दुर्गुण) आकर निवास करते हैं। कमल-पुष्प में निवास करनेवाली लक्ष्मी उन्हें तजकर चली जाती हैं। विष तो केवल खानेवाले के प्राण हरण करता है, किंतु नरक में नहीं पहुँचाता—(मद्यपान नरक का निवास भी देता है)।

मैंने सुना था कि मदिरा-पान से हानि होती है, वह सुना हुआ वचन अब प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गया। अब फिर कहने को क्या शेष रह गया है? हनुमान् की नय-निपुणता

से मै बचा। अन्यथा उग्र गति से आनेवाले वीर के क्रोध से मेरी मृत्यु होने में क्या सदेह था?

हे तात! इस मद्यपान[1] से उत्पन्न होनेवाले दुष्परिणाम से मै भीत हो रहा हूँ। उसका कर से स्पर्श ही नही, मन से स्मरण करना भी अच्छा नही है। यदि मै फिर, कभी उस (मद्य) की इच्छा करूँ, तो वीर (राम) के रक्त कमल-समान चरण मुझे विनष्ट कर दें—इस प्रकार सुग्रीव ने कहा।

फिर, अनेक सद्गुणो से पूर्ण (सुग्रीव) ने उपयुक्त प्रकार से कहकर अगद को यह आज्ञा देकर प्रेषित किया कि तुम लक्ष्मण के स्वागतार्थ आवश्यक सामग्री लेकर स्वय उनके समीप जाओ। वह स्वय भी अपनी सहधर्मिणी पत्नियों तथा परिवार के व्यक्तियों के साथ विशाल सौध-द्वार पर जा पहुँचा।

(लक्ष्मण के आगमन के समय) चदन-लेप, पुष्प, सुगधित चूर्ण, (अगरु आदि) का सुरभित धूम, पक्तियों मे रखे हुए स्वर्ण-कलश, दीपो की आवलियाँ, श्रेणियो में लटकनेवाले मुक्ताहार, वितानों में हिलनेवाले मयूरपंख, ध्वजाएँ, ऊँची ध्वनि करनेवाले शंख तथा मृदंग—ये सब वीथियो में भरे थे।

वह किष्किन्धानगर इस प्रकार शोभायमान हो रहा था कि उसकी शुद्ध, दृढ स्फटिकमय भित्तियो के मध्यभाग में तथा चारों ओर उत्तम रत्नो के बने स्तंभो के मध्यभाग मे (लक्ष्मण की) परछाइं पड़ने से दर्शको के मन में संदेह होता था कि क्या सहस्रो वीर हाथ में धनुष लिये आ रहे हैं।

अंगद उस समय समीप आकर (लक्ष्मण के) चरणो पर प्रणत हुआ। तब लक्ष्मण ने उससे पूछा—हे तात! तुम्हारे महाराज कहाँ हैं? अंगद ने उत्तर दिया—हे वीर केसरी! वे पुण्यवान् आपका स्वागत करने के लिए मेघस्पर्शी सौध-द्वार पर खड़े हैं।

चूड़ियो और ककणों से भूषित करोवाली वानर-रमणियाँ सुगधित चूर्ण और वस्त्रो को उछाल रही थी और विशाल चामरों को हिला-हिलाकर हवा कर रही थीं। श्वेत छत्र ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसा पूर्ण उज्ज्वल चन्द्रमा आसमान में चमक रहा हो—इस प्रकार कपिकुलराज, सुन्दर धनुष को धारण करनेवाले पराक्रमी वीर (लक्ष्मण) के सम्मुख आया।

पलाश-पुष्प-समान अधरोवाली रमणियाँ अर्घ्य इत्यादि के लिए उपयुक्त सामग्री लिये आ रही थी। नगाड़े मेघो के समान गरज रहे थे। ऋषिगण वेद-पाठ कर रहे थे। सगीत-नाद सब दिशाओं में फैल रहा था। इस प्रकार सुग्रीव आ रहा था, तो उसके नवीन वैभव को देखकर देवता लोग भी विस्मय में पड़ गये।

महिमावान् (लक्ष्मण) का स्वागत करने के लिए श्रीयुक्त सुग्रीव आ पहुँचा। (उसके साथ आनेवाली) स्पृहणीय स्तनोवाली वानर-स्त्रियाँ नक्षत्रो के समान चमक रही थीं और सुग्रीव स्वय उदयाचल पर उदित होकर आकाश में दृष्टिगत होनेवाले, कलाओं से

---

१. मद्यपान-सम्बधी ऊपर के कुछ पद्य प्रक्षिप्त-से लगते हैं।—अनु०

परिपूर्ण चन्द्रमा के समान शोभित था तथा उस उदयाचल पर उदित होनेवाले अपने पिता ( अर्थात्, सूर्य ) के समान प्रकाशमान था।

वीर लक्ष्मण ने अपने सम्मुख कपिकुल के राजा को प्रकट होते देखा। तब उनका क्रोध भड़क उठा। किन्तु, उन्होंने धर्म की व्यवस्था का विचार करते हुए अपने क्रोध को निर्मल विवेक से शात कर लिया।

उन दोनो ने लौह-स्तभो तथा पर्वतो से भी भारी भुजाओ से परस्पर आलिगन किया। फिर, वानर-स्त्रियो तथा वानर-वीरो के समुदाय के साथ स्वर्ण-निर्मित सौध के भीतर जा पहुँचे।

कपिकुलाधिप ने पहले से तैयार किये हुए एक उत्तम आसन को दिखाकर ( लक्ष्मण से ) कहा—हे वीर। इसपर आसीन होओ। तब ( लक्ष्मण ) मन मे सोचने लगे कि जब लक्ष्मी के नायक (राम) तृणमय पृथ्वी पर विश्राम करते है, तब ऐसे आसन पर बैठना मेरे लिए उचित नही है।

फिर ( सुग्रीव से ) कहा—पत्थर-जैसे ( कठोर ) मनवाली कैकेयी के लिए उज्ज्वल रत्न-किरीट को त्यागकर वन में आये हुए मेरे स्वामी ( राम ) जब तृण-शय्या पर सोते हैं, तब क्या स्वर्ण-विनिर्मित, पुष्पालंकृत मृदुल आसन पर बैठना मेरे लिए उचित है?

लक्ष्मण के यो कहने पर सूर्यपुत्र अपने कमल-सदृश नयनो मे आँसू भरकर खड़ा रहा। तब मनु के वंश में उत्पन्न उत्तम क्षत्रियकुमार ( लक्ष्मण ) पर्वत-जैसे ऊँचे उठे हुए उस प्रासाद की फर्श पर बैठ गये।

युवक, वृद्ध, असख्य स्त्रियाँ—सब उस समय अश्रुमय नयनो और मलिन दृष्टि के साथ, कुछ कह न सकने के कारण मौन रहे। मन की व्यथा से विह्वल हो रहे और पचेंद्रियो का दमन करनेवाले मुनियो के समान स्थित रहे।

महाराज ( सुग्रीव ) ने ( लक्ष्मण से ) कहा—आप यथाविधि स्नान करके मधुर भोजन करें, तो हम सब कृतार्थ हो जायेंगे। उसके यह कहने पर अंजनवर्ण ( राम ) के अनुज कहने लगे—

दुःख और अपवाद हमारे पेट को भर रहे हैं। इसीसे हम जीवित हैं, तो अब हमे मधुर लगनेवाला अन्य पदार्थ क्या चाहिए? अत्यन्त बुभुक्षा के होने पर भी, यदि दुःख के कारण मन फिरा हुआ रहता है, तो अमृत भी तो कड़ुआ ही लगता है।

प्रभु की देवी का अन्वेषण करके उनका पता लगा दोगे, तो तुम मानों हमारे अपयश-रूपी अग्नि को बुझाकर हमे गगाजल में स्नान करानेवाले होओगे। समुद्र मे उत्पन्न अमृत पिलानेवाले होओगे और हमे अन्य कोई दुःख नही रह जायगा।

पत्ते, कद, शाक-फल आदि प्रभु के आहार करने के पश्चात् शेष का आहार मै करता हूँ। वही मेरा भोजन है। उससे अन्य कुछ मै नही खा सकता। यदि वैसा कुछ खाना चाहूँ, तो वह कुत्ते के जूठन के बराबर होगा। इसमे सन्देह नही।

हे राजन्। इतना ही नही, एक बात और सुनो। यहाँ से जाकर मै शाक-कंद

आदि लाकर सन्नद्ध करूँगा, तो तुम्हारे मित्र ( राम ) भोजन कर सकेंगे, इसलिए अब एक क्षण भी मेरा यहाँ विलंब करना उचित नहीं है—यों लक्ष्मण ने कहा।

वानरपति ने यह कहकर कि जब वह मनुकुलाधिप दुःख में डूबा है, तब मैं सुखी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ—यह कर्म वानर-जाति में उत्पन्न हम-जैसे लोग ही कर सकते हैं, व्याकुल होकर अत्यन्त दुःखी हुआ।

सूर्यपुत्र तब झट उठा, अश्रु बहाता हुआ, ऐश्वर्यमय जीवन से विरक्त होकर, अत्यंत दुःखी तथा व्याकुल चित्त के साथ, उत्तम ( राम ) के निकट जाने की इच्छा से हनुमान् को देखकर कहने लगा—

हे नीति-निपुण। गये हुए दूतों के द्वारा जो सेना लाई जायगी, उसको तुम अपने साथ ले आना। उस समय तक तुम यहीं रहो।—यों हनुमान् को आदेश देकर शीघ्र प्रभु के आवास के लिए चल पड़ा।

अरुण किरणवाले ( सूर्य ) का पुत्र आशंका से मुक्त चित्तवाले ( लक्ष्मण ) का आलिंगन करके शीघ्रता से अपने भाई ( राम ) के आवास की ओर चल पड़ा। उसके साथ अंगद भी चला। वानर वीर आगे-आगे जा रहे थे। वानर-रमणियों का मन उनके पीछे-पीछे जा रहा था। मार्ग पीछे-पीछे छूट रहा था।

नौ सहस्र कोटि वानर उसके आगे और पीछे और दोनों ओर जा रहे थे। अति उत्तम बन्धुजन समीप में चल रहे थे। बिजली के समान उज्ज्वल आभरण धारण किये हुए सुग्रीव यों जा रहा था। उस समय—

ध्वजाओं के समुदाय सर्वत्र भर गये। बजनेवाले नगाड़ों की ध्वनि सर्वत्र भर गई। शंख सर्वत्र बज उठे। चमकनेवाले आभरणों की कांति-रूपी विद्युत्-पुंज सर्वत्र भर गये। ( धरती से ) धूल उठने लगी और आकाश में सर्वत्र छा गई।

स्वर्ण, मुक्ता, मनोहर एवं महीन वस्त्रों, उज्ज्वल रत्नों, स्फटिक-खंडों तथा रजत-खंडों से निर्मित शिविकाएँ समीप में आ रही थीं, श्वेत छत्र आकाश में ऊँचे उठे मनोहर ढंग से आ रहे थे।

रामचन्द्र के अनुज के उज्ज्वल अरुण चरण धरती पर चलने से, सूर्य-पुत्र भी, अपने चरणों के वीर-वलयों को शब्दित करता हुआ, अपनी पालकी के पीछे-पीछे (पैदल ही) धरती-रूपी रथ पर जा रहा था।

वीर-कंकण तथा मनोहर धनुष धारण करनेवाले लक्ष्मण तथा सुग्रीव, इतनी शीघ्रता से चलकर रामचन्द्र के आवास-पर्वत पर पहुँचे कि वानरों की सेना पीछे रह गई, अंगद भी उनके पार्श्व से पीछे रह गया। किन्तु, उनका ( रामचन्द्र के प्रति ) प्रेम आगे-आगे जा रहा था।

रणधीर अपार मर्यादा की आसक्ति त्यागकर प्रभु के चरणों की सेवा करने [illegible] अति-भक्ति आसन सुग्रीव स्थिर धर्म-स्वरूप ( राम ) के चरणों की [illegible] करनेवाले भक्त की समता करता था।

[illegible] ( अंगद, [illegible] ) [illegible]

रामचन्द्र इस प्रकार स्थित रहे, जिस प्रकार वे समस्त सृष्टि के विनष्ट हो जाने पर एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं। उन प्रभु के रक्त कमल-जैसे चरणो को सुग्रीव ने अपने शिर से यो स्पर्श किया कि उसके वक्ष पर के रत्नहार तथा मुक्ताहार शब्द करते हुए धरती पर लोटने लगे।

इस प्रकार, सुग्रीव के प्रणाम करने पर, प्रभु ने अपनी दीर्घ, लवी, मनोहर बाहुओ को फैलाकर उसे अपने वक्ष से गाढालिगन कर लिया। तब उनके वक्ष पर स्थित लक्ष्मी भी पीडित हो उठी। प्रभु का उमड़ता हुआ क्रोध शात हो गया और पूर्ववत् प्रेमभाव उमड़ आया। फिर, उससे आसीन होने को कहा।

रामचन्द्र ने ( सुग्रीव को ) अपने निकट सुखासीन करके पूछा—तुम्हारा शासन ठीक चल रहा है न? कोई विरोध नही है न? तुम्हारी मेघ-सदृश भुजाओ के द्वारा सुरक्षित सब प्राणी, तुम्हारे श्वेत छत्र की छाया में तापहीन होकर रहते हैं न?

अर्थ-गर्भित उन वचनो को सुनकर गगनचारी एक चक्रवाले रथ पर चलनेवाले ( सूर्य ) का पुत्र कह उठा—युगांतकालिक घने अधकार से आवृत पृथ्वी के लिए जब आप सूर्य बने हुए हैं और मैं आपकी कृपा का पात्र बना हूँ, तो ये कार्य ( शासन आदि कार्य ) असाध्य कैसे हो सकते हैं?

सुग्रीव ने फिर कहा—हे महिमाशालिन्! हे प्रभु! आपकी मधुर कृपा से मै संपत्ति प्राप्त कर सका। किन्तु, आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर मैंने अपनी क्षुद्र वानर-बुद्धि को प्रकट किया।

दीर्घ दिशाओ मे जाकर, अन्वेषण कर ( देवी सीता को ) लाने की शक्ति रखकर भी मैंने उस प्रकार नही किया। किन्तु, उत्तम आभरणधारिणी ( सीता ) के वियोग में जब आपका निर्मल अतःकरण व्याकुल हो रहा था, तब मै सुखी जीवन व्यतीत करता रहा।

वीर-कंकण तथा दृढ धनुष धारण करनेवाले हे उदारमना प्रभु! जब मेरा स्वभाव और विचार ऐसा है और आपकी मनोदशा ऐसी है, तो मै भविष्य मे क्या कर सकता हूँ। क्या पराक्रम दिखा सकता हूँ? इनके बारे मे आपसे क्या कहूँ? ( अर्थात्, अपने कार्य के बारे में मै आपसे कुछ निवेदन करने का साहस नही कर पा रहा हूँ। )

लक्ष्मी का निरतर आवास बने वक्षवाले प्रभु ने सुग्रीव से कहा—बडी कठिनाई से व्यतीत होनेवाला वर्षाकाल भी बीत गया। तुम्हारा यह अधिकार-पूर्ण वचन भी ऐसा है कि उससे ( देवी सीता का अन्वेषण ) कार्य पूरा करने की तुम्हारी दृढता व्यक्त होती है। अतः, वह ( वचन ) क्षुद्र कैसे हो सकता है? तुम ( मेरे लिए ) भरत-समान हो। ऐसे ( दीनतापूर्ण ) वचन कैसे कह रहे हो?

फिर, आर्य ने पुनः प्रश्न किया कि विशद ज्ञानवाला मारुति कहाँ है? तब सूर्य-पुत्र ने कहा—वह जल-भरे समुद्र के समान विशाल सेना को लेकर आ रहा है।

एक सहस्रकोटि दूत विशाल वानर-सेना को लाने के लिए शीघ्र गति से गये हैं। सेना को जुटाकर लाने की अवधि भी पूरी होनेवाली है। अतः, आज या कल, बलवान वानर-सेना के साथ वह ( हनुमान् ) भी आ जायगा।

आपकी नौ सहस्र कोटि की एक विशाल सेना अब मेरे साथ है। दूसरी सेना भी

अब मेरे साथ है। दूसरी सेना के आने की अवधि भी कल ही है। वह सेना भी आ जाय, तो तब आगे के कर्त्तव्य के बारे में विचार करना उचित होगा।—यों सुग्रीव ने कहा।

प्रेम-भरे रामचन्द्र ने कहा—हे वीर। तुम्हारे लिए यह ( सेना-संगठन ) कोई कठिन कार्य नहीं हैं। तुम्हारी विनम्रता भी अच्छी है। फिर, आगे कहा—अब दिन का अधिक भाग बीत गया है। अब तुम जाओ, अपनी सेना के आने के पश्चात् आओ—यों प्रभु के आदेश देने पर उन्हे प्रणाम करके सुग्रीव विदा हुआ।

अरुण कमलदल-सदृश नेत्रवाले ( रामचन्द्र ) ने अंगद के प्रति मधुर वचन कहकर यों आदेश दिया कि हे तात। तुम भी जाकर अपने पिता ( सुग्रीव ) के साथ विश्राम करो। फिर, अपने भाई तथा अपने ध्यान मे स्थित ( सीता ) देवी के साथ स्वयं भी उस रात को वहीं विश्राम करते रहे।

अति महान् कीर्त्तिवाले ने ( अपने अनुज के प्रति ) आदेश किया कि सुग्रीव के पास तुम्हारे जाने तथा वहाँ घटित अन्य सभी घटनाओं का वृत्तांत सुनाओ। तब सबको सत्य रूप में समझने की शक्ति रखनेवाले पराक्रमी लक्ष्मण ने ( सारा वृत्तांत ) कह सुनाया। ( १-१३६ )

●

## अध्याय ११

## *सेना-संदर्शन पटल*

उस दिन रात को वे ( रामचन्द्र ) वहीं ठहरे। प्राची दिशा के स्वर्णमय उन्नत गिरि पर सूर्य का प्रकाश फैलने के पहले ही किस प्रकार, बलवान् वानर-दूतों के द्वारा लाई गई पर्वत-समान सेना वहाँ आ पहुँची—अब यह हम उसका वर्णन करेंगे।

शतबली नामक वानर-वीर, दस लाख गजों के बल से युक्त एक सहस्र वानर-सेनापतियों को तथा सुचारु रूप से दलों में विभाजित, शंख-समान उज्ज्वल, अति मनोहर दस सहस्र कोटि सख्यावाली वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

सुषेण नामक उत्तम वानर-वीर, मेरु पर्वत को उखाड़नेवाली, सचेत होकर मदिरा का पान करने से स्वच्छ मनवाली शत सहस्र कोटि वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

अमृत-सदृश बोलीवाली रूमा का पिता, अड़तालीस सहस्र कोटि वानर-सेना को लेकर आ पहुँचा, जो अपार समुद्र को भी क्षणमात्र में कीचड़ बना सकती थी।

इस धरती तथा ऊपर के लोकों में भी अपनी कीर्त्ति को सुस्थिर बनानेवाले उत्तम ( हनुमान् ) को जन्म देनेवाला केसरी ( नामक वानर-वीर ) पचास लाख कोटि, उन्नत पर्वत-सदृश कंधोंवाले वानरों की सेना को लेकर ऐसे आ पहुँचा, मानो कोई समुद्र ही आ गया हो।

क्रोध करने पर एक-एक वानर सूर्य को भी प्रतापहीन कर देने तथा अपने बल का

अभिमान करने पर एक-एक वानर अकेले ही सारी धरती को मिटा देने की शक्ति रखनेवाले प्रसन्न चित्तवाले चार सहस्र वानर-वीरों की सेना को सचालित करते हुए, गवाक्ष आ पहुँचा।

अति वलवान् धूम्र नामक ऋक्षपति, दो सहस्र कोटि भालुओं की विशाल सेना को साथ लिये आ पहुँचा। ये ऋक्ष उज्ज्वल दतवाले उस आदि वराह के सदृश वलवान् थे, जिसने अपने दाँत पर धरती को उठा लिया था और ऋक्ष, जो इतने भयकर रूपवाले थे, मानो ऊँचे तथा विशाल, पर्वतों को अपने एक रोम-कूप में समा सकते थे।

चलते-फिरते किसी पर्वत के सदृश रूपवाला, क्रोध के कारण स्मरण करने मात्र से विष एव वज्र-जैसे ही कँपा देनेवाला, पनस नामक वीर, बारह सहस्र कोटि, कठोर क्रोधवाले वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा।

नील नामक वीर, वज्रघोष तथा समुद्रघोष को भी परास्त करनेवाली अपार कोलाहल ध्वनि से युक्त, अतिविशाल, वलवान् तथा कठोर यम की समानता करनेवाले पचास करोड वानरों की सेना लेकर आया।

दरीमुख नामक वानर-वीर, भारी भुजावाले, दृढ़ वक्षवाले, वलशाली, स्थिर (स्वभाववाले), उग्र, कठोर नेत्रों से अग्नि उगलनेवाले, तथा पर्वत से भी अधिक विशाल आकारवाले तीस करोड़ वानरों की सेना-रूपी समुद्र को लेकर आ पहुँचा।

प्रख्यात गज नामक वानर वीर, तीस हजार कोटि की सख्या मे, संसार-भर में फैले हुए कठोर क्रोध से सिंह-समूह को भी कँपा देनेवाले (सेना-रूपी) समुद्र के साथ आया, जिसकी सेना को देखकर ऐसा विचार होता था कि इसके लिए यह धरती भी पर्याप्त नहीं है। और दूसरी एक विशाल धरती की आवश्यकता है।

विशाल पर्वत के सदृश कधोंवाला जाववान् समुद्र की वीचियों-जैसे लपककर चलनेवाली एक सहस्र साठ सौ करोड़ सख्यावाली, समस्त प्रदेश पर छाई हुई चलनेवाली बड़ी वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

असमान वल से युक्त दुर्मुख नामक वानर-वीर, कमल मे उत्पन्न ब्रह्मा के यह आदेश देने से कि तुम जाकर राक्षसों को मिटा दो, दस लाख के दलो में विभाजित दो करोड़ वानर-सेना को साथ लेकर आया।

पुष्प-मालाओं से अलकृत, पर्वत-समान विशालकाय द्विविध नामक वीर, कठोर क्रोधवाले अनेक लाखों वानरों को लेकर ऊपर के गगन और पृथ्वी को धूल से आवृत करता हुआ आ पहुँचा।

साकार विजय-जैसे रूपवाला, प्रभूत पराक्रमवाला मैन्द नामक वानर, मल्लयुद्ध मे श्रेष्ठ गजगोमुख नामक वीर के साथ तथा अति क्रोधवाली शतलक्षसख्य वानर-सेना के साथ आ पहुँचा।

कुमुद नामक वीर, चरखी-जैसे (वेग से) चलनेवाली, पवन से भी अधिक वेगवाली तथा यम से भी अधिक कठोर, इस प्रकार चलनेवाली, जैसे उज्ज्वल वीचियोंवाला समुद्र अपने स्थान से उमड़कर जा रहा हो—ऐसे नौ करोड़ वलवान् वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा।

युगांत में समुद्र के उमड़ आने पर भी नाश न होनेवाला, पद्ममुख नामक वानर, उनचास कोटि वलवान्, सुन्दर तथा दीर्घ भुजावाले वानरों की सेना लेकर ऐसे आ पहुँचा कि धरती की धूल उड़कर गगन में छा गई।

ऋषभ नामक वीर, नौ सहस्र कोटि सख्यावाले ऐसे वानरो की सेना को लेकर आ पहुँचा, जिनकी भुजाएँ युगात मे भी विनष्ट न होनेवाले ऊँचे पर्वतो के समान वलवान् थी।

दीर्घपाद, विनत और शरभ नामक वानर-वीर तरगों से पूर्ण नीले महासमुद्र से भी अधिक विशाल रूपवाले, किसी के लिए भी गणना करने मे असाध्य, काले मुखवाले करोड़ो वानरों की सेना को लेकर, एक के पश्चात् एक ऐसे आ पहुँचे कि ब्रह्मांड के अतर मे और उसके वाहर भी धूलि व्याप्त हो गई।

मनोहर सहस्र किरणोंवाले सूर्य को देखकर भी भयभीत न होनेवाला हनुमान्, पचीस सहस्र कोटि वानरो को लेकर ऐसे आ पहुँचा कि सारी दिशाओ का अतर छोटा ज्ञात होने लगा और धरती एक ओर झुक गई।

देवशिल्पी विश्वकर्मा का मनोहर तथा मत्यनिष्ठ नल नामक पुत्र, शीघ्र एकत्र हुए लक्ष कोटि वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा, तो देवता भी अनुमान नही कर सके कि उसकी सीमा क्या है और यम भी भ्रात तथा व्याकुलचित्त हो उठा।

कुभ, शख इत्यादि वानर-सेनापतियों के साथ आनेवाली वानर सेना की गणना करना इस ससार के लोगों के लिए असभव है। यों कह सकते हैं कि वह सेना उतनी थी, जितनी राघव के तूणीर में वाण थे। इसके अतिरिक्त दूसरे ढंग से उसका वर्णन करना असभव है।

यदि वह वानर-सेना निमज्जित हो, तो सप्त महासमुद्रो का भी जल सूख जायगा और उसके स्थान में श्वेत धूलि फैल जायगी। यदि (वह सेना) एक ओर झुके, तो भूमडल और महामेरु भी एक साथ झुक जायेंगे। यदि (वह सेना) उठकर चलने लगे, तो इस पृथ्वी में तिल भर भी स्थान नही रह जायगा। यदि क्रोध कर उठे, तो कठोर अग्नि तथा सूर्य भी झुलस जायेंगे।

धरती पर एकत्र हुई उस वानर-सेना की गणना करने लगें, तो सत्तर सहस्र ब्रह्माओं से भी उसकी गणना नही हो सकती। यदि (वह वानर-सेना) खाने लगे, तो सभी अडगोल उनके लिए एक-एक मुट्ठी भरकर खाने के लिए भी पर्याप्त नही होगे। यदि (वह सेना) आँख उठाकर देखे, तो ललाट मे अग्निमय नेत्रवाले (शिव) को भी मात कर देगी।

वह वानर-सेना यदि तोडने लगे, तो उत्तर के मेरु को भी तोड़ देगी। यदि टकराना चाहे, तो विशाल आकाश के ढक्कन से भी टकरा जाय। यदि पकड़ना चाहे, तो महान् प्रभजन को भी पकड़ ले। यदि पीना चाहे, तो सप्त समुद्रों के जल को भी अजलि मे भरकर पी जाय।

वे वानर, प्रख्यात दिशाओं के उस पार भी कूद जा सकते थे। अपने प्रभु अनुपम सुग्रीव के सोचे हुए प्रत्येक कार्य को तुरत कर देने की क्षमता रखते थे। ऐसे सड़सठ

संख्या में वानर-सेनापति उत्तरोत्तर उमड़ आनेवाली विशाल सेना को एकत्र करके अनायास ही आ पहुँचे।

वे वानर-सेनापति ऐसी वानर-सेना को लेकर आये, जो सप्त समुद्रों की विस्तीर्णता से भी अधिक विशाल थी। 'एक चक्र तथा उत्तम अश्ववाले रथ पर चलनेवाले सूर्य के पुत्र ( सुग्रीव ) के चरण जीते रहें!'—यों जयघोष के साथ उन्होंने प्रणाम करके पुष्प बरसाये।

उस प्रकार की वानर-सेना के आ पहुँचते ही सूर्यपुत्र, दशरथ-पुत्र के निकट शीघ्र जा पहुँचा और कहा—पाप-कर्मों के लिए यम-सदृश आपकी यह विशाल सेना विचार करने के पहले ही ( अर्थात्, अति-शीघ्र ही ) आ एकत्र हुई है। आप उसे देखने की कृपा करें।

प्रभु, प्रसन्न हुए और उनके मन के समान ही उनका मुख भी विकसित हो उठा। वे इस प्रकार आनंदित हुए, जैसे देवी को ही देख रहे हों। वहाँ स्थित एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर वे जा पहुँचे। सूर्य-कुमार फिर, उस सेना के मध्य लौट गया।

सुग्रीव ने उस अपार वानर-सेना को यह आदेश दिया कि वह पंद्रह योजन के विस्तार में, उत्तर से दक्षिण की ओर पंक्तियों में खड़ी हो जाये। फिर, अतिक्रोधी वानर-सेनापतियों को साथ लेकर वह ( रामचन्द्र के निकट ) लौट आया।

सुग्रीव लौटकर रामचन्द्र के समीप आ पहुँचा और बोला—हे पराक्रमी, विजय-शील शूल धारण करनेवाले! आप उस ओर दृष्टि डालें—यों कहकर क्रमशः (अपने सेना-पतियों का ) परिचय कराया और वहीं खड़ा रहा। इधर एकत्र वानर-सेना तरंगायमान क्षीर-सागर के समान बड़े कोलाहल के साथ बढ़ चली।

अष्ट दिशाओं, धरती के विस्तृत प्रदेश, देवताओं के आवासभूत ऊपर के वर्तुला-कार लोक तथा वीचियों से पूर्ण सप्त समुद्रों को भी आवृत करके धूलि नीचे से ऊपर तक उठ चली, जिससे यह ब्रह्मांड धूलि से भरे हुए कुंभ के समान दीखने लगा।

यदि कहें कि ( इस सेना का ) समुद्र उपमान हो सकते हैं, तो ( यह कथन अनु-चित होगा, क्योंकि ) उन समुद्रों के परिमाण को पहचाननेवाले लोग भी हैं—( किन्तु उस वानर-सेना के परिमाण को जानना कठिन था। ) अब विद्वान् उस वानर-सेना का अन्य क्या उपमान दे सकते हैं? बीस दिन पर्यंत, दिन-रात लगातार देखते रहने पर भी राम-लक्ष्मण उस सेना के मध्य को भी नहीं देख पाये। फिर, उसकी अंतिम सीमा को कैसे देखा जाय?

रामचन्द्र—जो ऐसे थे कि विजय प्राप्त करने में उनके उपमान वे स्वयं ही थे और ऊपर के लोकों में, सुन्दर समुद्र से आवृत धरती पर तथा नागों के लोक में उनका उपमान अन्य कोई नहीं था. अपनी आँखों से, मन से, शास्त्र-ज्ञान से तथा सहज ज्ञान से भली भाँति विचार करके, महिमापूर्ण अपने अनुज को देखकर कहने लगे,—

हे विकसित पुष्पों की माला धारण करनेवाले! हमने अपनी बुद्धि से, इस विशाल वानर-सेना के कुछ भाग को तो किसी प्रकार देख लिया। इसकी सीमा को देखने का भी

कोई उपाय है ? लोग कहते हैं कि उन्होंने इस भूलोक में समुद्र की सीमा को देखा है। किन्तु, इस सेना-समुद्र की सीमा को भली भाँति देखनेवाले कौन हैं ?

हे सुगंधित पुष्पमाला को धारण करनेवाले। ईश्वर के स्वरूप को, दस दिशाओं को, पच महाभूतो को, सूक्ष्म ज्ञान को, उच्चारित शब्दो को, विभिन्न धर्मों के परस्पर के विभेद को तथा यहाँ एकत्र इस दोषहीन वानर-सेना को, सपूर्ण रूप से कौन देख सकता है ?

यदि हम इस विशाल सेना को यहाँ रहकर संपूर्ण रूप से देख लेंगे और फिर कार्य करने लगेंगे, तो उसीमें अनेक दिन व्यतीत हो जायेंगे। अतः, ठीक-ठीक विचार करके कर्त्तव्य कर्म पर मन लगाना ही उचित होगा—रामचन्द्र के यों कहने पर लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा—

हे देव। यहाँ एकत्र इन वानर-वीरो के लिए जिस लोक में जो कार्य करना है, वह अत्यन्त सुलभ है। इनके लिए अमुक कार्य कठिन है—यह कैसे कह सकते हैं ? देवी का अन्वेषण करना ( इनके लिए ) अत्यन्त सुलभ है। इस सेना से पाप परास्त हो गया और धर्म जीत गया।

तरगों से भरे जल मे उत्पन्न कमल से उद्भूत ब्रह्मदेव ने इस विशाल लोक में जिन महान् प्राणियों की सृष्टि की है, वह इसलिए ही कि वे सजीव पर्वत जैसे इन वानरों की सेना को गिनने के लिए संख्यासूचक चिह्न वन सकें।

हे महान् शास्त्रों में निपुण। आठों दिशाओं में अन्वेषणार्थ जानेवाले इन वानरो को सत्वर न भेजकर यहाँ रोक रखना ठीक नही—यों लक्ष्मण ने कहा। तब महिमामय ( प्रभु ) ने अलंकृत रथवाले सूर्य-पुत्र से कहा। ( १–४० )

## अध्याय १२

## *अन्वेषणार्थ प्रेषण पटल*

( श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव को देखकर कहा—) यह सेना श्रेणियों मे विभाजित है। ( इसके सैनिक ) अहकार और परस्पर के वैरभाव से रहित हैं। अतः, विशाल रूप में एकत्र यह सेना किसी से भी अभेद्य है, क्या इसका परिमाण भी कुछ है ?

( सुग्रीव ने उत्तर दिया—) बुद्धिमानो के द्वारा विचार कर निश्चय किया हुआ एक सख्यावाचक शब्द है—'वेल्लम' ( १८,३५,००८ करोड़ का एक वेल्लम होती है )। वैसे सत्तर वेल्लम के परिमाण मे यह सेना है। इसको छोड़कर, यह कहना असभव है कि इस सेना के परिमाण को सूचित करनेवाला अन्य कोई शब्द है।

इस सेना के वीरो मे अड़सठ करोड़ विजयी सेनापति हैं। इन सेनापतियो में सब से प्रमुख महासेनापति, कठोर यम को भी भस्म करने की शक्ति रखनेवाला नील ( नामक ) वानर है। यों ( सुग्रीव ने ) कहा।

यों कहनेवाले उष्णकिरण के पुत्र को देखकर विजयी धनुर्धारी ने कहा—यहाँ खड़े रहकर बातें करते रहने से क्या प्रयोजन है ? अब चलकर आगे के कार्यों के संबंध में विचार करें।

तब उस ( सुग्रीव ) ने महानुभाव हनुमान् को देखकर इस प्रकार आज्ञा दी—हे तात ! तुम अपने पिता (पवन) के समान ही त्रिभुवन में संचरण करने की शक्ति रखते हो, तो भी उस शक्ति को न पहचान कर व्यर्थ ही विलंब कर रहे हो। क्या तुम पहले दूसरे बड़े वेगवान् वानरों का कार्य देखना चाहते हो ?

तुम अब जाओ। उत्तम आभरणधारिणी देवी कहाँ है, इसका पता लगाओ। पहले तुम नागों के लोक ( पाताल ) में जाकर खोजो। धरती पर खोजो। तुम्हारा वेग तो ऐसा है कि तुम भोगभूमि स्वर्ग में भी जा सकते हो। तुम्हारा वह वेग भी तो अब प्रकट होना चाहिए।

मेरी बुद्धि कहती है कि रावण का विशाल ( लंका ) नगर दक्षिण दिशा में है। हे मारुति ! अब इस बलपूर्ण दिशा को जीतकर यश पाने का अधिकारी तुम्हें छोड़कर और कौन है ?

हे स्वच्छ ज्ञानवाले ! मेरा खयाल है कि उदारशील ( प्रभु ) की देवी का अपहरण करके दक्षिण दिशा की ओर ले जाते हुए हमने रावण को देखा था। तुम इसपर विचार करो।

तारा पुत्र ( अंगद ), जांबवान् आदि अनेक वीर बड़े गौरव के साथ तुम्हारे संग जावें। दो 'वेल्लम' संख्यावाली वानर-सेना भी अपने साथ ले जाओ।

पश्चिम दिशा में ऋषभ, कुबेर की उत्तर दिशा में शतबली तथा इन्द्र की प्राची दिशा में विनत, बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर जायँ—यों सुग्रीव ने कहा।

फिर, सुग्रीव ने उन ऋषभ आदि वानरों से कहा—हे विजयी वीरो, विजय करनेवाली दो 'वेल्लम' वानर-सेना के साथ घूम-घूमकर देवी का अन्वेषण करना और एक मास व्यतीत होने के पूर्व ही यहाँ लौट आना।

फिर, दक्षिण दिशा में जानेवाले वानरों को देखकर सुग्रीव ने कहा—तुम यहाँ से चलकर उस विन्ध्याचल पर्वत पर जाओ, जो अपने अतिसुन्दर सहस्रों उज्ज्वल शिखरों के कारण विष्णु के विराट् रूप-सा दिखाई पड़ता है और आगे बढ़कर प्रणाम करने योग्य है।

उस ( विन्ध्य ) पर्वत पर खोजने के पश्चात् नर्मदा नदी पर जाना, जिसमें देवता भी स्नान करते रहते हैं। जहाँ भ्रमर ( पुष्पों के ) मधु का पान करके पंचम स्वर में गाते रहते हैं तथा जहाँ के विविध रत्नों ( के प्रकाश ) से अंधकार दूर होता रहता है।

फिर, हेमकूट नामक पर्वत पर जाना, जहाँ धूम्रवर्ण के अशुभ पक्षी ( जो संगीत सुनकर तल्लीन हो जाते हैं ) मनोहर मेखलाधारिणी देव-रमणियों के आनन्द से गाये जानेवाले संगीत-रूपी मधु का पान करते हुए निद्रा लेते हैं।

शीघ्र ही उस ( हेमकूट ) पर्वत से चलकर वहाँ के अपने साथी वानरों के साथ आगे बढ़ जाना। फिर, काले रंगवाली पेन्ना नदी के तटों में उत्तम गुणवाली देवी को ढूँढना और वहाँ से सत्वर आगे बढ़ जाना।

सुगन्धित दीर्घ अगरु-वृक्ष तथा और ऊँचे बढे हुए चंदन-वृक्ष, जिस देश की बाड बने हुए हैं, उसे धीरे-धीरे पार करना और अनेक अन्य देशो को भी पीछे छोड़कर जल से समृद्ध दंडकारण्य में जाना।

दडकारण्य में मुडकोपवन नाम से प्रसिद्ध एक वन है, जहाँ प्राचीन अगस्त्य मुनि निवास करते हैं। तपस्या-निरत मुनियो से युक्त होने के कारण वह उपवन, दर्शन-मात्र से मन की पीडा को दूर करनेवाला है। तुमलोग वहाँ भी देखना।

पुष्प-भरित वह उपवन, उत्तम धार्मिक व्यक्तियो की सपत्ति के समान शोभायमान है, जिसका उपभोग सारे ससार के लोग करते हैं। वहाँ के वृक्ष उत्तम शील-संपन्न सुन्दरियो के अधरो के समान अकाल मे भी फले रहते हैं। वह दृश्य भी तुम लोग देखना।

वहाँ के निवासी सदा अपलक रहते हैं। कभी गाढी निद्रा मे नही सोते। वह स्थान सूर्य के लिए भी दुर्गम है। सभी प्रकार की भोग्य वस्तुएँ वहाँ प्राप्त होती हैं।

उस स्थान को पार कर, उससे आगे पाडुगिरि नामक पर्वत पर जाना, जो गगन में स्थित चन्द्र को छूता है और जिसे देखकर अरुणकिरण सूर्य भी यह विचार करता है कि इसपर किंचित् विश्राम करके ही आगे बढना चाहिए।

उस पर्वत के समीप एक नदी बहती, है जिसकी अनादि धारा मोतियों को बहाती हुई, स्वर्ण-धूलि को बटोरती हुई, रत्नो को लुढकाती हुई, ग्वालों के आँगनों से मथानियों को समेटती हुई, वृक्षों को ढहाती हुई, पर्वत-शिलाओ को ढकेलती हुई, मृगों को भी खीचती हुई बहती है। वह धारा किसी भी व्यक्ति को, पुत् नामक नरक में जाकर क्लेश भोगने से बचाती है। उस पावन धारा का नामक गोदावरी है।

उस नदी को पारकर उसके आगे सुवर्ण नामक नदी पर जाना, जो धर्म-मार्ग के समान है, निर्मल करुणा के अभिलषणीय मार्ग के समान है, जिसके दोनों कूलों पर शीतल तथा विकसित पुष्पों से पूर्ण घने वृक्ष यों छाये रहते हैं कि सूर्य की किरणें भी उसके भीतर प्रवेश नही पाती। जिसमें रत्न ऐसे चमकते हैं कि अधकार का नाम भी मिट जाता है और जहाँ देवताओ की प्रार्थना से छह मुखवाला विलक्षण देव ( कार्त्तिकेय ) एकात में रहता था।

सुवर्ण नदी को पारकर उस सूर्यकात पर्वत को जाकर देखना, जहाँ की ( कृषक ) बालाएँ जब फदे में रखकर पत्थर के टुकडे फेंकती हैं, तब वे पत्थर धूप-जैसी कांति को बिखरते हैं। वहाँ से आगे चलकर चद्रकात पर्वत को भी देखना। उन पर्वतो को लाँघकर अनेक विशाल देशो को पार करना। फिर, कोंकण देश मे जाना, जहाँ आदि-शेष, पक्षिराज ( गरुड ) से डरा हुआ, छिपकर अपना जीवन बिताता है। फिर, कुलिन्द देश मे जाना।

जो इस बात पर झगड़ते रहते हैं कि शिव बडे हैं या विश्व को नापनेवाले हरि बडे हैं, ऐसे ज्ञान-हीन लोगों के लिए जिस प्रकार सुगति दुर्गम होती है, उसी प्रकार दुर्गम रहनेवाला अरुन्धति नामक एक पर्वत वहाँ है, जो आकाशगगा के अति निकट रहता है। जिसके गगनोन्नत शृ गों पर दोनो ज्योतिष्पिण्ड ( सूर्य-चद्र ) विश्राम करते हैं, जिसमें ऐसी

शक्ति है कि उसको नमस्कार करनेवालों को वह सब अभीष्ट प्रदान करता है। उसको प्रणाम करके आगे बढ़ना।

भयंकर तथा जलते हुए रेगिस्तानों, नदियों, विशाल जल-स्रोतों, ऊँचे पर्वतों, जो अगरु, चंदन आदि वृक्षों एवं मेघों से आवृत रहते हैं, तथा समृद्धि-युक्त देशों को पीछे छोड़कर आगे के मार्ग पर बढ़ जाना। फिर, मरकत पर्वत के पास जाना, जहाँ गरुड़ ने विषमुख नागों को अमृत देकर अपनी माता विनता को (दासता से) मुक्त किया था। उस (पर्वत) को नमस्कार करके उसके पार्श्वमार्ग से आगे जाना।

फिर, उस ऊँचे वेंकटाचल पर जाना, जो उत्तरी भाषा तथा दक्षिणी भाषा (तमिल) की सीमा-रेखा बना है, जिसपर स्वयं भगवान् विराजमान रहते हैं, जो वेदों तथा शास्त्रों में प्रतिपादित सब पदार्थों की सीमा है, जो स्वयं सब धर्मों की पराकाष्ठा है, जिसका उपमान बनने योग्य कोई वस्तु नहीं है, जो ऐसा शोभायमान है, जैसा साकार धर्म हो और जिसके सानुओं में मधु के छत्ते भरे रहते हैं।

उस वेंकटाचल पर ऐसे महात्मा लोग रहते हैं, जो दोनों प्रकार के (पाप और पुण्य) फलों से संबद्ध कोई कर्म नहीं करते, जो देवताओं से प्रशंसित संपन्न जीवन तथा दूसरों पर निर्भर रहनेवाला दरिद्र जीवन—दोनों को समान मानते हैं तथा जो ऐसे अपार आत्मज्ञान से संपन्न हैं, जिससे इस जन्म के कारणभूत कर्म-बंधन मिट जाते हैं। वे ऐसे महान् हैं कि हमारे द्वारा यहाँ से भी नमस्कार करने योग्य हैं।

वहाँ ऐसी नदियाँ हैं, जिनमें कपटहीन उत्तम ब्राह्मण स्नान करते हैं। ऐसे आश्रम हैं, जिनमें वेद तथा प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता मुनि निवास करते हैं। ऐसे रत्नमय पर्वतशृंग हैं, जिनके मध्य मेघ विश्राम करते हैं। ऐसे स्थान हैं, जहाँ देव-रमणियों के संगीत के उप-युक्त किन्नरवाद्य की तंत्रियों से उत्पन्न नाद से गजों तथा व्याघ्रों के बच्चे सो जाते हैं।

ऊँचे शिखरों से युक्त उस वेंकटाचल के निकट जाओ, तो तुम लोगों के सभी पाप मिट जायेंगे और मोक्ष प्राप्त कर लोगे। अतएव (उस पर्वत के निकट न जाकर) वहाँ से दूर हटकर जाना। फिर, वहाँ से आगे स्थित जल से समृद्ध 'तोंडै' देश में जाना। वहाँ खोजने के पश्चात् फिर, गंभीर गतिवाली, 'पोन्नि' नामक महिमामय शीतल जल से पूर्ण दिव्य कावेरी नदी के किनारे पर जाना।

तुम उस चोल देश में जाना, जहाँ (कावेरी नदी का) जल इतना स्वच्छ है, जितना स्वर्ग को प्राप्त किये हुए महात्माओं का मन होता है। जहाँ प्रारब्धकर्म से मुक्त पुरुष गुप्त रूप से निवास करते हैं। उसे पार करके तुम लोग तत्पर आगे बढ़ जाना और निद्राशील व्यक्ति जिस परिणाम को पहुँचते हैं, उसका स्मरण करके वहाँ से हट जाना। फिर, रत्नमय पर्वतों से युक्त मलय देश में जाकर ढूँढ़ना। उसके पश्चात् विशाल तमिल देश—पाण्ड्यदेश में जाना।

दक्षिण में स्थित, तमिल देश में विशाल पोदिय नामक पर्वत है, जहाँ मुनिश्रेष्ठ (अगस्त्य) का तमिल-संघ है। वहाँ जाकर उन मुनि के निरंतर आवासभूत उस पर्वत को नमस्कार करके आगे बढ़ना। फिर, सुन्दर जलधारा से युक्त ताम्रपर्णी नदी को पार करके

गजों के आवास बने ऊँचे सानुओं से शोभित महेंद्र पर्वत को एवं दक्षिण के समुद्र को देखोगे।

उस स्थान को पार कर आगे जाना और वहाँ सर्वत्र खोजकर, एक मास की अवधि में तुम यहाँ लौट आना। अब तुम लोग शीघ्र विदा हो—( सुग्रीव के ) इस प्रकार आज्ञा देने पर, त्रिविक्रम ( के अवतारभूत राम ) ने मारुति को कृपा-भरी दृष्टि से देखकर कहा—हे नीतिनिपुण! सीता के लक्षण सुनो, जिनसे तुम्हें उनका अन्वेषण करने में सुविधा हो। फिर, आगे कहने लगे—

हे तात। ( सीता की ) पादांगुलियाँ ऐसी हैं, मानो क्षीरसागर में उत्पन्न प्रवाल के खंडों में महावर लगाकर उनके ऊपरी भाग में अनेक चंद्रों को रख दिया गया हो। प्रसिद्ध कमल तथा अन्य पदार्थ भी उन पादों के उपमान नहीं बन सकते। इतना कहने के अतिरिक्त उन पादयुगल का उपमान क्या कहा जाय?

हे तात! जिन कच्छप को, बुद्धिमानों ने, कंकण-पंक्तियों से भूषित रमणियों के चरणों के ऊपरी भाग का उपमान बताया है, उससे रात्रिकाल की वीणा से भी अधिक मधुर बोलीवाली सीता के चरणों की उपमा देना उन (चरण-युगल) का अपमान करना है। इसे निश्चित जानो।

हे सत्यनिरत! चित्रकारों के लिए जिनके चित्र खींचना दुस्साध्य है, वैसे केश-पाशों से विशिष्ट उस देवी की जानुएँ ऐसी हैं कि बहुत सोच-विचार करने पर भी कोई उनका उचित उपमान नहीं पा सकता। विद्वान् लोग, गर्भिणी 'वराल' ( नामक मछली ), तूणीर, पुष्ट धानका गाभा,[1] इत्यादि को जानुओं के उपमान कहते हैं। ऐसा तो कोई भी कह सकता है। उसे पुनः मैं कहूँ, तो इसमें क्या रस है?

केशपाश से सुशोभित सुन्दरियों की जाँघों के अति उत्तम उपमान बननेवाले जो कदली-वृक्ष हैं, वे भी जब उन (सीता की) जाँघों से परास्त हो गये हैं, तब उन जाँघों की अन्य उपमा क्या दी जाय? वीणा की ध्वनि को, अमृत-समान मधु को और जल में पूर्ण खेतों में उत्पन्न ईख के रस को भी परास्त करनेवाली बोली से युक्त उस (सीता) की जाँघ इतनी सुन्दर है।

हे उत्तम! कंचुक-बद्ध, चक्रवाक एवं कलश-समान स्तनों से युक्त, 'वंजि' लता-समान ( पतली) कटिवाली उस ( सीता ) के, मेखला-भूषित, चक्राकार वस्त्रावृत जघन-रूपी समुद्र का क्या उपमान हो सकता है—यह मैं तुम-जैसे को क्या कहूँ, जिसने समुद्रावृत धरती को शिर पर धारण करनेवाले आदिशेष के फन को देखा है तथा हिम को दबाकर ऊपर उठनेवाले एक चक्रवाले ( सूर्य के ) रथ को भी देखा है।

वह ऐसी है कि उसके आकार को देखकर ही ( ब्रह्मा ) अन्य किसी सुन्दरी का निर्माण कर सकता है। उसकी सूक्ष्म कटि के आकार का वर्णन यदि तुम सुनना चाहो, तो उसके लिए उपमान ढूँढ़ना व्यर्थ है। उस कटि को आँखों से नहीं देखा जा सकता है, वरन् मैं साथ के भाग से ही उसे जान सकता हूँ। अन्य किसी उपाय से उसका वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं है।

१. [illegible]

साधारण दृष्टि से यह कथन कि ( सुन्दरियों के ) उदर, वटपत्र, चित्र से अंकित सूक्ष्म चित्र-फलक, दुग्ध-सदृश मृदुल रजत-फलक, वर्तुलाकार दर्पण—ऐसे ही अन्य पदार्थों के समान होते हैं, अत्युक्तिपूर्ण कथनमात्र होता है। किंतु, सीता का उदर इतना सुन्दर है कि उन वस्तुओं के साथ उसकी उपमा देना भी उचित नहीं है।

हे समुद्र से भी अधिक विस्तृत ज्ञानवाले! यदि ( सीता देवी की ) नाभि का उपमान निर्दोष 'कुवालि' ( नामक पुष्प ) तथा 'नंदि' ( नामक पुष्प ) को कहें, तो वे भी क्षुद्र ही होंगे। हाँ, मैं सोचता हूँ कि नदी की भँवर उसका उपमान हो सकती है। गंगा ( की भँवर ) को देखकर तुम यह बात समझ सकते हो।

लता-सदृश उस ( देवी ) के उदर पर जो रोमावली है, वह मेरे प्राणों की धारा ही है। यदि उसकी कोई उपमा देनी हो, तो उस अलान से दी जा सकती है, जिसपर दोषहीन कटि के तुल्य कोई छोटी लता स्थिर होकर लिपटी हो।

वह सीता, यह सोचकर कि कमल-दल पर रहने से उसके कोमल शरीर को कष्ट होता है, कमल का आसन छोड़कर धरती पर अवतीर्ण हुई है। उसके उदर पर स्वर्णवर्ण की त्रिवली ऐसी है, मानो मन्मथ ने तीनों भुवनों की सुन्दरियों की ( सीता से ) पराजय को सूचित करने के लिए ही तीन रेखाएँ अंकित कर दी हों।

उसके स्तनों के उपमान रत्न-संपुट ( रत्न की डिबिया ) कहूँ, स्वर्ण-कलश कहूँ, रक्तवर्ण कोमल नारिकेल कहूँ, प्रवाल को सान पर चढ़ाकर बनाई हुई चौसर की गोटी कहूँ, दिन में प्रकट हुए चक्रवाक कहूँ? क्या कहूँ? उसके स्तनों का कोई भी उचित उपमान मैंने नहीं देखा है।

गन्ने को देखने पर या सुडौल बाँस को देखने पर, मेरी आँखों से अश्रु की वर्षा होने लगती है। इस प्रकार पीडा का अनुभव करने के अतिरिक्त, भ्रमरों से गुंजरित पुष्प-माला को धारण करनेवाली उस ( सीता ) की भुजाओं के उचित उपमान खोजने या कहने की दृढता मुझमें नहीं है। अब और क्या कहूँ?

( सीता के ) करों के सदृश कोई पदार्थ त्रिभुवन में कहीं है—ऐसा कहना भी अनुचित है। यदि कुछ उपमान कहने भी लगें, तो क्या 'कांदल' पुष्प को उनका उपमान कहें? वह तो ( सीता के करों के सामने ) अत्यन्त कठिन है। यदि मकरवीणा को उसका उपमान कहें, तो कुछ गुणों में समान होने पर भी अन्य गुणों में वह उसके अनुरूप नहीं है। जो स्वयं अत्यन्त सुन्दर है; उससे भी अधिक सुन्दर क्या वस्तु हो सकती है?

मनोहर अशोक-वृक्ष के पल्लव तो दूर रहें। कल्पवृक्ष के नवपल्लव या कमल-लता के कोमल दलवाले पुष्प भी उसकी हथेली के उपमान नहीं हो सकते। वे, सूत्र-सदृश सूक्ष्म कटिवाली उन सीता के नूपुरों से मुखर, चरणों के भी उपमान जब नहीं बनते, तब उनकी हथेली के उपमान कैसे हो सकते हैं?

धवल दंत, अरुण अधर और चमकते आभरणों से युक्त, यौवनपूर्ण, मनोहर पुष्प-शाखा-सदृश उन सीता के नोकदार हस्त नखों के उपमान कहना असंभव है। तोते, पलाश-पुष्पों पर इसलिए क्रुद्ध रहते हैं कि उन्हीं के कारण ( जो सीता के नखों के उपमान

बनते हैं ) उन ( तोतों ) के चञ्चु सीता के नखों के उपमान नही रह गये हैं, और उन ( पलाश-पुष्पो ) को फाड़ते रहते हैं। अब उन नखो के और क्या उपमान कहे ?

हे उत्तम। ( सीता के ) अरुण कर एव अरुण चरण देखकर जिस प्रकार तुम्हें लाल कमल स्मरण आयेंगे, उसी प्रकार रक्त कुमुद-सदृश मदभरे दिव्य नयनोवाली उस ( सीता ) का कठ देखकर, यदि तुम्हें बढ़नेवाला क्रमुक-वृक्ष तथा जल मे उत्पन्न होनेवाला शंख स्मरण आवें, तो तुम उन्ही को उपमान मान लेना।

नील कुवलय के समान, काजल-लगे नयनोवाली सीता का मनोहर मुँह ऐसा है कि 'किडै' ( नामक लाल सेवार ), बिंवफल, नवीन रक्तकुमुद, इन्द्रगोप, पलाश-पुष्प इत्यादि उपमान के योग्य पदार्थ भी, उस मुँह के सम्मुख श्वेत-से पड़ जाते हैं। ऐसे रक्त तथा अमृत-भरे उस मुख का उपमान वही मुख है।

रक्तवर्ण का अमृत नही होता। उस रग का मधु भी नही होता। यदि वैसा अमृत और मधु कही होते भी हो, तथापि उनका पान करने पर ही वे मधुर लगते होगे। स्मरणमात्र से वे आनददायक नही होगे। अतः, उज्ज्वल ललाटवाली सीता के प्रवाल-सम अधर के उपमान यदि हम अपने मन की पसद के कोई पदार्थ बतावें, तो क्या वे उचित उपमान हो सकते हैं ? ( अर्थात्, नही हो सकते )।

हे अनुपम महिमावान्। (सीता के) दत कुद मोर-पखो के मूल, मुक्ता इत्यादि की समता करते हैं—यह कथन ऐसा ही है, जैसा यह कहना है कि उसकी वाणी अमृत, दुग्ध तथा मधु की समता करती है। वास्तव में, उन दाँतो के उपयुक्त उपमान कुछ नहीं हैं। यदि (देव) अमृत का कोई उपमान हो सकता है, तो उन (दाँतो) का भी उपमान हो सकता है।

हे अपार ज्ञानयुक्त। गिरगिट (की नाक), तिल-पुष्प, रध्र-सहित कुभिल ( नामक पुष्प ) सीता की नासिका के उपमान हैं—यदि ऐसा कहे भी, तो वे सब उपमान, निखारे गये स्वर्ण तथा उज्ज्वल रत्न की समता नही करते ( सीता की नासिका तो स्वर्ण एवं रत्न के समान भी है )। वह (नासिका) निपुण चित्रकार के लिए भी अकित करने को दुस्साध्य है। तुम इसका विचार कर स्वयं समझ लो।

'वल्लै' लता के पत्र और कैंची—ये कानो के उपमान होते हैं ?—यह बच्चो का कथन-मात्र है। यदि बड़े लोग भी इसी को दुहरायेंगे, तो वह उनका पागलपन होगा। तुम यह समझो कि शुक्रतारा के समान उज्ज्वल ताटको ने जो तपस्या की थी, वह तपस्या ( सीता के कानो को प्राप्त कर ) सफल हुई। जो ससार की सब वस्तुओ के स्वय उपमान हैं, उनके उपमान कहाँ मिल सकते हैं ?

( सीता के ) करवाल-सदृश दीर्घ नयनो के, जो देवाधिदेव ( विष्णु ) के समान काले हैं तथा श्वेत वर्ण से भी युक्त हैं, अति-विशाल समुद्र भी उपमान नहीं हो सकते। अहो! यदि कोई दूसरा उपमान खोजना भी चाहें, तो वे नयन किसीके मन मे ही नही समाते।

यदि करवाल-सदृश नेत्रवाली सीता की भौंहो का वर्णन करने लगें, तो क्या उपमान दें ? यदि ऐसा उपमान दें, जो पूर्ण रूप से उपमेय की समता न करें, तो वह अधम होगा। यदि किसी पदार्थ को सुन्दर मानकर उसे उपमान कहें, तो भी उससे (सीता की भौंहों

की ) सहधर्मिता सिद्ध नही हो सकेगी। दोनो छोरो पर झुके हुए दो मन्मथ चाप नहीं होते। अतः उसके भौंहो के उपमान भी कही नही हैं।

शुक्लपक्ष की प्रथमा का चन्द्रमा, यदि उस सीता के ललाट की शोभा का अनेक दिनों तक ध्यान करता रहे और पूर्णिमा के दिन भी पूर्ण न होकर अर्द्ध ही बना रहे, तो उस सीता के ललाट की कुछ-कुछ समता कर सकेगा, जिसके चरणो की सुन्दरता मे दिन में प्रफुल्ल कमल-प्रभा भी लजा जाती है।

हमारे अरण्य-वास मे आने के उपरान्त ( सीता के केशो को ) सजाने के लिए कोई ( दासी ) नही रही। ऐसा होने पर भी उन केशों की सुन्दरता घटी नही। कघी करने से नही, किन्तु स्वभाव से ही उसके केश घुँघराले हैं। नीलरत्न के समान वे अलक नित-नवीन रहते हैं। अतः, उनका कोई उपमान नही है।

ब्रह्मदेव ने, काले मेघ के टुकड़े को, लाल कुमुद को झुके हुए धनुषों को, 'वल्लै' (नामक लता ) के पत्तों को, उत्तम मीनों को, तथा उज्ज्वल मुक्ताओं को चन्द्रमा मे जोड़कर उसको सीता का वदन बना दिया। जब उस पुडरीक (-सदृश वदन ) के दर्शन तुम करोगे, तभी इस कथन को सच्चा मानोगे।

अनेक सूक्ष्म केशो से भारी बना हुआ अति सुगन्धित उसका केशभार ऐसा है, मानो काले मेघ को काटकर उसपर मधु, अगरु-धूम आदि की सुगन्ध चढ़ा दी गई हो, फिर उसे घने अधकार के द्रव मे डुबो दिया गया हो और उसे ही घने तथा दीर्घ केश-पाश का नाम दिया गया हो।

दिव्य कमल-पुष्प मे भी आवरण के दल लगे रहते हैं। सौंदर्य की सीमा बना हुआ चन्द्र भी कलक से युक्त है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी उत्तम पदार्थों में कोई ऐसा नही है, जिसमें कुछ-न-कुछ दोष न हो। हंसिनी-समान मनोहर गतिवाली सीता के अंग मे सब गुण-ही-गुण हैं। कही कुछ दोष नही है।

हे तात। विचार कर देखने पर ( विदित होता है कि ) उत्तम नारी के सभी लक्षण मनोहर तथा सुरभित कमल मे निवास करनेवाली लक्ष्मी में भी नहीं होते। किन्तु, कोकिल-सदृश मधुर बोली, मनोज्ञ मीन-सदृश नयनो, अरुण अधर तथा अप्सराओं को भी लज्जित कर देनेवाले स्तनो से युक्त उस ( सीता ) मे सभी लक्षण विद्यमान हैं।

कमलासन ( ब्रह्मा ) ने बाँसुरी, वीणा, पिक, शुक, तोतली बोली आदि की सृष्टि करके अच्छी कुशलता प्राप्त करने के पश्चात् ही हार-युक्त स्तनोवाली ( सीता ) की मधुर-वाणी की सृष्टि की है। उस निर्दोष वाणी का कोई उपमान उस ब्रह्मदेव ने नही उत्पन्न किया है। क्या भविष्य मे कभी करेगा भी?

स्वर्ग, भूमि और पाताल—तीनो भुवन अतिविशाल रूप मे फैले हैं। इनमे कहीं मीन-सदृश नयनवाली उस ( सीता ) की मधुरवाणी का उपमान कोई वस्तु नहीं है। यदि कह सकते हैं, तो एक मधु है और एक क्षीर है। तो भी वे दोनो श्रवण को मधुर नहीं लगते। एक दूसरा उपमान अमृत भी है, पर वह भी केवल रसना को स्वाद देनेवाला ही है, ( श्रवण-सुखद नहीं है )।

हे उत्तम गुणवाले ! कमल-पुष्प में निवास करनेवाली मधुर वोलीवाली राजहंसिनी तथा मनोहर वालकरिणी ऐसी सुन्दर गतिवाली होती हैं कि उन्हें देखकर देवता भी विस्मय करते हैं। किन्तु, मुझे ( यह ) निश्चय नहीं होता है ( कि वे सीता के उपमान हो सकती हैं या नहीं )। हाँ, कविता करने में निपुण, प्राचीन कवि द्वारा विरचित सरस शब्द-गुफन से युक्त कविता की गति ही उस ( सीता ) की गति की समता कर सकती है।

( सीता की देह-काति का क्या उपमान दें ? ) आम्रवृक्ष का कोमल पल्लव भी ( सीता के सम्मुख ) गाढ़ा दीख पड़ता है। सोने का रग मंद पड़ जाता है। रत्नों की काति-पूर्ण समता नही करती। विद्युत् की चमक ( सीता से ) लज्जित होकर छिप जाती है और वाहर नहीं निकलती। कमल का रंग पीछे रह जाता है। तो, अब अन्य कौन-सा रंग उपमान के योग्य है ? सीता की देह की कांति का उपमान उनकी देह ही है।

हे उत्तम गुणवाले ! उस ( सीता ) की समता करनेवाली स्त्री कोई भी नही है— केवल इस विचार को ही मन में दृढ रख लो और अपने चित्त से सीता को, उसके स्थान में पहचान लो, फिर उसके समीप जाकर ये अभिज्ञान-वचन कहो—यों कहकर ( रामचन्द्र ) आगे कहने लगे—

मैं पूर्व मे ( विश्वामित्र ) मुनि के संग जल-संपन्न प्राचीन मिथिला नगरी में दीर्घकेशधारी जनक महाराज के यज्ञ को देखने के लिए गया था। तव उस परिखा के समीप, जिसमें हंस खेल रहे थे, कन्या-निवास के सौध में स्थित सीता को मैंने देखा। यह वात तुम उससे कहना।

अपार समुद्र से भी अधिक (विशाल तथा गभीर) पातिव्रत्य धर्म से युक्त सीता ने प्रतिज्ञा की थी कि पर्वत-समान धनुष को तोड़नेवाला व्यक्ति, यदि वह मुनि के संग आया हुआ राजकुमार ( राम ) न होगा, तो मै अपने प्राण त्याग दूँगी। यह वात उसे सुनाना।

उस दिन, जनक महाराज की सभा मे मैने उस सीता को देखा। वह अपने मनोहर स्तन-रूपी गिरि-युगल का भार वहन करती हुई इस प्रकार आई, जिस प्रकार कोई मत्तगज, मुखपट्ट से आवृत परस्पर तुल्य दंतद्वय को लिये आ रहा हो। वह ( स्तन-भार के कारण ) गगन की विद्युल्लता के समान लचकती हुई आई थी।

तुम उस ( सीता ) से मेरे ये वचन कहना, जिन्हे मैंने उससे पहले कहा था— 'हे मुग्धे! तुम मेरे सग ऐसे भयकर कानन में जाना चाहती हो, जिसे पहले तुमने देखा भी नही है। अवतक तुम मेरे लिए मुझे सुख देनेवाली रही। मेरे अपूर्व प्राणों के अनुकूल वनी रही। अव क्या तुम दुःख देनेवाली वनना चाहती हो ?'

तव सीता ने कहा—'हे अपने स्वत्व-राज्य-को भी त्यागकर वन मे जानेवाले प्रभु ! क्या अव मेरे अतिरिक्त अन्य सव पदार्थ आपके लिए आनन्ददायक हो गये ?' और वह अपने मीन-सदृश तड़पते हुए विशाल कमल-दल की समता करनेवाले नयनों से अश्रु वहाती हुई, शरीर से निकलने के लिए तड़पते हुए अपने प्राणों के समान ही अत्यत व्याकुल हो गई और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।—यह भी उससे कहना।

जव हम समृद्ध (अयोध्या) महानगर को छोड़कर चले थे, तव चन्द्र को छूनेवाली

पत्थरों के बने ऊँचे प्राचीर के सुन्दर द्वार को पार करने के पूर्व ही वह ( सीता ) कह उठी—सीमाहीन घोर अरण्य कहाँ है ?—यह भी उससे कहना।

( रामचन्द्र ने हनुमान् से ) इस प्रकार के वचन कहे। फिर, यह कहकर कि सुख से जाओ, उत्तम रत्न से जड़ी मुँदरी भी दी और कहा—'हे बुद्धिमान्! तुम्हारे सब कार्य सफल हों'—ऐसा आशीष देकर रामचन्द्र ने हनुमान् को विदा किया। हनुमान् वीर-वलय-धारी ( रामचन्द्र ) की कृपा को आगे करके चल पड़ा।

अंगद प्रभृति वीर वानर, जिनका क्रोध शत्रुओं को विनष्ट कर सकता था, सूर्यपुत्र के प्रति नतशिर होकर फिर उत्तम धनुर्धारी ( राम-लक्ष्मण ) को भी नमस्कार करके, विशाल समुद्र-सम सेना के साथ दक्षिण दिशा की ओर चले। ( १–७४ )

●

# अध्याय १३

## *बिल-निष्क्रमण पटल*

अंगद प्रभृति वे वीर, दक्षिण दिशा की ओर चले। उनके चले जाने के पश्चात् सूर्यपुत्र दक्षिण के अतिरिक्त सब दिशाओं में अन्य वानरों को भेज दिया। वे वानर आदेश दिये हुए कार्य ( सीतान्वेषण ) को संपन्न करने के लिए सारे संसार को भी जीतनेवाली विशाल सेना को लेकर, एक मास की अवधि के भीतर लौट आने का निश्चय करके, प्रबल गति से चल पडे।

पर्वत-सदृश कंधोवाले वानर, विद्युल्लता-समान कटिवाली ( सीता ) का अन्वेषण करते हुए किस प्रकार पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में गये—यह न कहकर, हम समृद्ध तमिल ( भाषा और साहित्य ) से संपन्न दक्षिण दिशा में गये हुए वानरों के कार्यों का वर्णन करेंगे।

वे वीर, सिंदूर और पुंजीभूत माणिक्य की कांति फैलने से संध्याकालिक गगन की समता करनेवाले तथा सर्पों से, चंद्र से एवं नदियों से संयुक्त रहने के कारण शिवजी की जटा की समता करनेवाले विंध्य-पर्वत के सानुओं पर शीघ्र जा पहुँचे।

उन दोष-रहित वीरों ने, उस दीर्घ पर्वत के मध्य उज्ज्वल रत्नों से पूर्ण शिखरों पर, मनोहर घाटियों में स्थित कंदराओं में, पर्वत के सानुओं तथा दीर्घ एवं सुन्दर प्रान्त-प्रदेशों ( तलहटियों ) में इस प्रकार ढूँढ़ा कि अनेक दिनों तक अन्वेषण करने का कार्य एक ही दिन में समाप्त कर लिया।

(धरती की) सीमाओं पर स्थित समुद्र ही जिनके उपमान हैं, ऐसी वह वानर-सेना उन सीता के, जो समृद्ध भूमि को निष्पाप करने के लिए अवतीर्ण हुई थी और जो सोने की पट्टी से अलंकृत अंधकार-सदृश केशोंवाली थी—रहने के स्थान को खोजते हुए उस भू-प्रदेश

मे ( विंध्य-प्रांत में ) ऐसे फैल गई कि उनके अतिरिक्त अन्य किसी के लिए वहाँ स्थान ही नही रहा।

उत्तम बुद्धिवाले वे वानर, पृथक्-पृथक् होकर चलते। कुछ ( घाटियो मे ) उतरकर चलते। कुछ (शिखरों पर) चढ़कर चलते। कुछ गगन-मार्ग से उछलकर चलते। उस पर्वत के पेड़ो के मध्य तथा जल की धाराओ मे रहनेवाले जीवों में से कही कोई ऐसा नही रहा, जिसे उन वानरो ने नही देखा हो। ऐसा कोई हो, तो वह ब्रह्मा की सृष्टि में ही नही है।

धरती के शिरोभूषण के समान रहनेवाली दक्षिण दिशा ( देश ) में शीघ्र गति से जानेवाले वे वानर-वीर, चौदह योजन दूर गये और उस नर्मदा नदी पर जा पहुँचे, जहाँ भैंसो के बछड़े काले मेघो की पंक्तियों के मध्य मिले पडे रहते हैं।

हंसों के क्रीडा-स्थल, देव-रमणियों के स्नान के घाट, स्वर्गस्थ देवो के विहार-स्थान, मधुपान से मत्त भ्रमर-कुलो के गान से गुंजरित प्रदेश—सर्वत्र घूम-घूमकर उन वानरो ने ( सीता का ) अन्वेषण किया।

वे वानर, जो अपूर्व नारी ( सीता ) का अन्वेषण करने के लिए चले थे, काली मिट्टी-रूपी केश-पाश को, अलक-रूपी भ्रमरों से आवृत सुगंधित कमल-रूपी वदन को तथा ( लहरों से छिटकाई जानेवाली ) मुक्ता-रूपी दाँतो को देखते थे, किंतु कही सीता के पूर्ण रूप को नही देख पाते थे।

युद्ध करने के उत्साह से पूर्ण शरीरवाले, अनन्य चित्तवाले, धर्म एवं करुणा से पूर्ण स्वभाववाले वे वानर, उस नर्मदा नदी को पार करके गये, जिसमे मत्तगज और करिणियाँ पैठकर क्रीडा करती थी।

फिर, हेमकूट नामक एक ऊँचे पर्वत पर आ पहुँचे, जिसके उज्ज्वल शिखरो मे लहराती हुई जल-धाराएँ बह रही थी, जिसपर कांति-पुंज से भरे हुए रत्न-जल पडे थे और जो प्रसिद्ध दक्षिण दिशा की रक्षा करता है।

वह पर्वत अपने चारों ओर इतना महान् प्रकाश फैलाता था कि आस-पास के सभी पर्वत, वृक्ष तथा अन्य पदार्थ भी तपाये हुए सोने के समान चमक रहे थे। वह मुक्तो के लोक ( स्वर्ग ) से भी अधिक ज्योतिर्मय था।

वह पर्वत सब वस्तुओ पर अपनी घनी स्वर्ण आभा को इस प्रकार फैलाता था कि उससे उस पर्वत पर निवास करनेवाले पक्षी तथा विविध मृग, स्वर्ण-धूलि से अंकित रहनेवाले अत्युन्नत मेरु के निवासियो के समान बन जाते थे।

सर्वत्र फैलनेवाली स्वर्ग-कांति के व्याप्त होने से स्वच्छ कांतिवाले लाल पद्मराग समूह के साथ झड़नेवाले निर्झर एवं नदियाँ ऐसी लगती थी, जैसे भड़कती अग्नि-ज्वाला मे पिघला हुआ स्वर्ण बह रहा हो।

( उस पर्वत पर आये हुए ) विद्याधरो के संगीत का नाद, स्वर्ण से उतरी शंख-समान ( धवल ) वलयधारिणी एवं रूई-सदृश कोमल चरणोवाली अप्सराओ के नृत्य एवं ताल का नाद, हाथियो का चिंघाड़, वाद्यमान मृदंग के समान मेघ-ध्वनि—ये सब मिलकर उस पर्वत में गूँज रहे थे।

वानरों ने उस पर्वत को देखा। भ्रम से यही सोचकर कि यह पर्वत तीक्ष्ण शूलधारी रावण का निवास है, उमग से भर गये और क्रोध से आँखें लाल करके चिनगारियाँ उगलने लगे।

इस पर्वत में हम मुग्धा हरिणी ( समान देवी सीता ) के दर्शन करेंगे और प्रभु के मन के ताप को दूर करेंगे।—यों विचार कर हर्ष से उत्फुल्ल हो निश्शक उस पर्वत पर चढने लगे।

( उन वानरो को देखकर ) हाथी और शरभ डरकर भागने लगे। सर्वत्र व्याप्त हिंस्र सिंह अस्त-व्यस्त होकर भागे। पर्वत पर सर्वत्र ढूँढने पर भी सीता को कही न देखकर वे वानर समझ गये कि ( वह रावण का आवास नही, किन्तु ) यह दूसरा कोई स्थान है। तब वे वहाँ से चले गये।

वे वानर, शत योजन विस्तीर्ण, स्वर्ग को छूनेवाले उस स्वर्णमय पर्वत मे दिन-भर खोजते रहे। वहाँ देवी सीता की टोह न पाकर फिर वहाँ से उतर चले।

अगद आदि सेनापतियो ने दो 'वेल्लम' सख्यावाली अपनी सेना को आज्ञा दी कि तुमलोग स्वच्छ जल के पूर्ण दक्षिण दिशा के सारे भू-भाग में खोजकर महेद्र पर्वत पर आ जाओ। फिर, वे उस उन्नत हेमकूट पर्वत से पृथक्-पृथक् दिशाओं मे चल पड़े।

वज्रमय कधोंवाले उत्साही तथा विजयी हनुमान् आदि वानर-वीर झुड बाँधकर चल पड़े। उस मार्ग में वे एक ऐसे मरु-प्रदेश मे जा पहुँचे, जहाँ जल का नाम तक नही था और जिसे देखकर सूर्य भी भयभीत हो जाता था।

वहाँ कोई पक्षी नही था। कोई जंतु भी नही था। मधुपूर्ण पुष्पोवाले वृक्ष और घास का चिह्न तक नही था। वहाँ पत्थर भी जलकर भस्म बन गये थे। वहाँ शून्य के अतिरिक्त और कुछ नही था। वहाँ सब वस्तुएँ धूल बनकर उड़ती थी।

वहाँ पहुँचने पर उन वानरो की सब इन्द्रियाँ काँप उठी। उनकी मति भ्रष्ट हो गई। उनके शरीर तपकर पसीने-पसीने हो गये और वे दक्षिण दिशा मे स्थित ( कुंभी-पाक आदि ) अग्निमय नरक मे पड़े हुए अस्थिहीन कीटो के समान तड़प उठे।

वे अपनी जिह्वा को निकाले हुए थे। ज्यो-ज्यों अपने चरण धरती पर रखते थे, त्यो-त्यो ताप से उनके पैरो मे छाले निकल आते थे। उनके शरीर वहाँ की बालू से भी अधिक तप उठे, जिससे वे यों तड़पने लगे, जैसे जले हुए पत्थर से चिनगारियाँ निकल रही हों।

कही विश्राम करने के लिए थोड़ी भी छाया न देखकर वे ऐसे व्याकुल हुए कि उनके प्राण शरीर से निकलने को हो गये। उनकी वह वेदना अपार थी। उस ताप से बचने के लिए उपाय करके अत मे एक विवर के विशाल द्वार पर आ पहुँचे।

उन्होने विचार किया—अब उस रेगिस्तान में मरने के सिवा आगे जाना असभव है। यदि इस विवर मे प्रवेश करेंगे, तो कम-से-कम इस उष्णता से तो बच जायेंगे। यो उस विवर के भीतर देखने का निश्चय करके वे उसमे उतर पड़े।

उस विवर के भीतर जाकर वे एक ऐसी कदरा में प्रविष्ट हुए, जिसमें चारो

साथ संयुत करके, ( सब अंगों को ) समेटकर, श्वास को रोककर बैठी थी, जिससे उसकी अत्यन्त कंपनशील सूक्ष्म कटि बिलकुल निःस्पन्द हो गई थी और उभरे स्तनों का भार थम गया था।

कमल-पुष्पों के उपमान बननेवाले उसके अति सुन्दर पल्लव के समान कर, मनोहर स्वर्ण-जाँघों के मध्य स्थिर रूप में संयुत पड़े थे। ( उसके हृदय में ) कामादि अंतःशत्रु का समूल विनाश हो गया था। उसमें कामना का नाम तक नहीं रह गया था। उसकी इंद्रियाँ सद्ज्ञान में निमग्न हो गई थी।

घने, दीर्घ तथा काले रंगवाले उसके केश-पाश घनी जटा बनकर पृथ्वी पर लोट रहे थे। काम-बंधन उसे छोड़कर चला गया था। मन का पाश ( आसक्ति ) भी छूट चुका था। उसके नयनों से करुणा फूट रही थी।

वह तपस्विनी इस प्रकार आसीन थी। उसके समीप पहुँचकर वानरों ने उसको प्रणाम किया और अरुन्धती कहने-योग्य सीता ही समझकर उतावले हो उठे। फिर, हनुमान् से उन ( वानरों ) ने कहा—क्या यही ( सीता ) देवी हैं? ( राम के द्वारा ) बताये चिह्नों को देखकर कहो?

मारुति ने उत्तर दिया—(देवी सीता का) कौन-सा गुण, कौन-सा चिह्न इसमें है—मैं क्या बताऊँ? (अर्थात्, कोई भी चिह्न इसमें नहीं है)। 'क्या इस प्रकार के लक्षणवाली कहीं राम की पत्नी हो सकती है? यदि अस्थियों की माला मुक्ताहार की समता कर सके, तो यह स्त्री भी सीता की समता कर सकेगी।

उस समय, उस दिव्य स्त्री ने अपना ध्यान भंग करके उन वानरों को देखा। उनका अपने सम्मुख आना अनुचित समझकर वह क्रुद्ध हो उठी और उनसे प्रश्न किया—मेरे इस नगर में किसी का प्रवेश करना असंभव है। तुम इस नगर के निवासी भी नहीं हो, तो तुम यहाँ क्यों आये? कौन हो तुम? बताओ।

वानरों ने उत्तर दिया—उपद्रवी राक्षसों ने माया और वंचना करके सीता का अपहरण किया है। दोषरहित धर्ममार्ग की रक्षा करनेवाले रामचन्द्र के हम दूत हैं और उस स्थान की खोज में इस संसार में घूम रहे हैं, जहाँ राक्षस ने सीता को छिपा रखा है।

वानरों के यह कहते ही, बैठी रहनेवाली वह (स्वयंप्रभा) उठकर खड़ी हो गई। उसके हृदय में उन (वानरों) पर दया उत्पन्न हुई और वह पर्वत-सदृश आनन्द से फूल उठी। फिर, उन ( वानरों ) से यह कहकर कि आप सबका स्वागत है, ( आपके आगमन से ) मैं आनन्दित हुई—दोनों नयनों से आनंदाश्रु बहाने लगी।

नवीन तथा मनोहर हरिण के सदृश दीर्घ नयनोंवाली उस तपस्विनी ने प्रश्न किया—रामचन्द्र कहाँ रहते हैं? तब कठोर आसक्ति से हीन मारुति ने ( रामचन्द्र का ) सारा वृत्तांत, आदि से अंत तक, कह सुनाया।

उन वचनों को सुनकर वह बोली—अपने दोषरहित तप के प्रभाव से आज मुझे शाप से विमुक्ति प्राप्त हुई। यह कहकर उन वानरों के प्रति आदर-भाव दिखाने लगी।

उन्हे सुगंधित जल से स्नान कराकर, अमृत-समान सुस्वादु भोजन दिया और मन को मोद देनेवाले मधुर वचन कहे।

मारुति ने उस तपस्विनी के पुष्प-चरणों को नमस्कार करके प्रश्न किया—सार्व-भौम यश के योग्य तपस्या करनेवाली हे देवी। आप मुझसे कहें कि इस नगर के अधिपति कौन हैं? तब घनी जटाधारिणी उस तपस्विनी ने सारा वृत्तात कह सुनाया।

हे उत्तम! हरिणमुख मय ने, शास्त्रोक्त विधान से, अपना मुँह ऊपर की ओर उठाये, धूप और वायु का ही आहार करते हुए कठोर तपस्या की थी। उसी के फलस्वरूप चतुर्मुख ने यह विशाल नगर उसको प्रदान किया।

इसी प्रकार यह नगर उत्पन्न हुआ। उस दानव (मय) ने अप्सराओं में से एक सुन्दरी का संग प्राप्त करना चाहा। वह सुन्दरी मेरी प्राण-सखी थी। उस असुर की प्रार्थना पर मै स्वर्णनगर (अमरावती) से उस सुन्दरी को इस विवर के भीतर ले आई।

वह अप्सरा और वह दानव—दोनो चक्रवाक के जोडे के समान समागम-सुख मे मत्त होकर, सब कुछ भूलकर अनेक दिनों तक इस विशाल नगर में निवास करते रहे। तांटक-धारिणी उस अप्सरा के साथ गाढ़े स्नेह-पाश मे बँधी हुई मैं भी यही रहने लगी।

हे बलशालिन्! जब अनेक दिन व्यतीत हुए, तब देवेंद्र उस उत्तम आभरण-धारिणी अप्सरा का अन्वेषण करने लगा। फिर, क्रोधी होकर उसने उस बलवान् असुर को मिटा दिया और मयूरपंख के मूल भाग के समान धवल-हासवाली उस अप्सरा से क्रोध से कहा कि तुम्हारा कार्य अत्यन्त क्षुद्र है।

देवेंद्र ने यों क्रुद्ध होकर उससे कहा—तुम सारी घटनाओं को कह सुनाओ। भली भाँति पके हुए बिंबफल-जैसे अधरवाली (हेमा नामक) उस अप्सरा ने आँखो के संकेत से सूचित किया कि इस मेरी सखी के कारण ही यह अपराध हुआ। तब इन्द्र ने सत्य को जानकर मुझसे कहा—तुम इसी नगर में इसकी (नगर की) रक्षा करती हुई पड़ी रहो।

उसकी यह आज्ञा होते ही, उसे नमस्कार कर मैने उससे पूछा—इस दुःख से मुझे कब मुक्ति मिलेगी? कुछ अवधि निर्धारित कीजिए। तब इन्द्र यह कहकर अदृश्य हो गया कि जब राम की आज्ञा से बलवान् वानर इस नगर में आयेंगे, तब तुम्हारी विपदा का अत होगा।

हे उत्तम! यहाँ मेरे भोजन के लिए फल आदि हैं, लेप के लिए चदन आदि हैं, पुष्प हैं, इतना ही नही, मनोहर वर्णवाले अनेक वस्त्र हैं, अन्य (आभरण आदि) वस्तुएँ भी हैं। किंतु इन सबका त्याग कर, आपके आगमन की ही प्रतीक्षा करती हुई चिरकाल से मैं तपस्या करती रही हूँ?

हे उत्तम! यह विवर शत योजन विस्तीर्ण है। इस विवर से बाहर के लोक मे जाने का मार्ग मै नही जानती! यदि तुम लोग मेरी सहायता करो, तो मेरे उद्धार का मार्ग निकल आयगा। उसका कोई उपाय अपने मन मे सोचो—यों उसने कहा।

स्वयप्रभा के इस प्रकार कहने पर हनुमान् ने इन्द्रियों पर दमन करनेवाली उस

तपस्विनी के कमल-समान चरणों को प्रणाम करके कहा—तुम्हें मैं देवताओं के निवासभूत स्वर्ग प्रदान करूँगा।

अन्य वानरों ने हनुमान् से विनती की—हे महिमामय! तुमने इस विवर के द्वार के घने अंधकार में प्रवेश करके मृत्यु के मुख से हमें बचाया। अब आगे का कर्त्तव्य भी तुम्हीं सोचो। अवर्णनीय महिमावाले हनुमान् ने वैसा ही करने का निश्चय किया।

हनुमान् ने अन्य वानरों से यह कहा कि तुम लोग डरो नहीं और मंदहास के साथ सिंह-जैसे उठ खड़ा हुआ। उसने अपने हाथों को ऊपर उठाकर, अपने शरीर को गगनतल तक यों बढ़ाया कि वह विवर, जो ऊपर के गगन से बहुत नीचे स्थित था, फट गया और गगन से एकाकार हो गया।

वायुपुत्र के दोनों हाथ दो उज्ज्वल दंतों के समान ऊपर उठे हुए थे। जब वह विवर को भेदता हुआ ऊपर की ओर उठा, तो देखनेवालों के मन भय से भर गये। (उस समय) वह क्रोध के साथ पृथ्वी को उठा लानेवाले महावराह के समान दृष्टिगत हुआ।

उस समय वह (हनुमान्) उस वामन भगवान् के सुन्दर चरण की समता कर रहा था, जिस (वामन) ने (बलि से) तीन पग वसुधा माँगकर, दो पग से सारी सृष्टि को मापते हुए, कमल में निवास करनेवाले, उत्तम स्वरूपवाले ब्रह्मा की सृष्टि (अर्थात्, ब्रह्माण्ड) को आवृत करनेवाले आकाश-रूपी आवरण को छेद दिया था।

हनुमान् ने एक शत चतुर्दश योजन दूर तक उस विवर को भेद दिया और विवर में स्थित उस नगर को उखाड़कर पश्चिम के समुद्र में फेंक दिया। फिर, मेघ के समान गरज उठा। वह दृश्य देखकर देवता भी काँप उठे।

हनुमान् के द्वारा फेंका गया वह नगर अब भी पश्चिमी समुद्र में, विवर-द्वीप के नाम से प्रख्यात है। विशाल ललाटवाली स्वयंप्रभा के साथ, पर्वत के समान कंधोंवाले वानर-वीर वहाँ से बाहर निकले और अपने मार्ग पर आये। सुन्दर ललाटवाली स्वयप्रभा स्वर्णमय स्वर्ग में जाने के लिए उद्यत हुई।

मेरु-सदृश सुन्दर स्तनोंवाली वह अति सुन्दरी स्वयप्रभा, अत्युत्तम हनुमान् की अनेक प्रकार से प्रशसा करने के पश्चात् कल्प वृक्षों से युक्त स्वर्णमय स्वर्गलोक में जा पहुँची. जहाँ हेमा नामक उसकी सहेली निवास करती थी।

पराक्रमी वानर हनुमान् के बल-विक्रम की प्रशसा करते हुए चल पड़े। वे दिन-भर चलकर एक जलाशय के तटपर जा पहुँचे। उस समय रथारूढ प्रतापी सूर्य भी अस्ताचल पर जा पहुँचा। (१—७४)

●

# अध्याय १४

## *मार्ग-गमन पटल*

वानरों ने उस सुन्दर जलाशय को देखा। उसके मधुर जल को अंजलि मे भर-भर कर पिया। उसके तट पर स्थित मधुर फल और मधु का आहार किया। वहाँ एक मनोहर स्थान पर सुखद निद्रा की। उनके सोते समय, एक असुर वहाँ आ पहुँचा।

वह पर्वत की समता करता था। विशाल समुद्र की बराबरी करता था। कठोर हिंसक यम की तरह लगता था। क्रूरता का आगार जान पड़ता था। किंचित् भी सद्गुण से नितान्त विहीन था। गगनगत चन्द्रकला के सदृश एव विष-समान दाँतोंवाला था और अपनी आँखों से कोपाग्नि उगल रहा था।

बड़े-बड़े मेघ, जो सृष्टि के आदिकारण थे, उसकी बाँहों पर एव उसके महदाकार शरीर पर फैले हुए थे, जिससे उसके शरीर पर अनुपम जल-धारा बहती रहती थी। अतः, वह निर्झरों से युक्त पर्वत के समान था।

वह दुष्ट असुर इतना प्रतापी था कि देव और असुर—दोनो के लिए वह अजेय था, तो अन्य कोई उसके साथ युद्ध करने का विचार तक कैसे अपने मन में ला सकता था।

चमकते हुए लाल-लाल केशोवाला, अपनी गति से चाक की समता करनेवाला वह असुर अपने हाथों को मलता हुआ उन वानरों के पास, जो धर्म से पूर्ण चित्तवाले थे और मार्ग-गमन से श्रांत होकर निद्रा मे मग्न पड़े थे, जा पहुँचा।

यम-सदृश उस (तुमिर नामक) असुर ने, यह कहता हुआ कि यह मेरा जलाशय है, यह जानते हुए भी यहाँ आनेवाले ये क्षुद्र प्राणी कौन हैं? यह कैसा आश्चर्य है? उत्तम अंगद के पुष्पालकृत वक्ष पर हाथ से प्रहार किया।

वीर अंगद निद्रा से जगकर और यह सोचकर कि यह असुर ही लंकेश्वर है, अपने को मारनेवाले उस असुर को ऐसा मारा कि युद्ध में निपुण वह असुर निष्प्राण हो गिर पड़ा।

उस समय, बिजली गिरने से टूटनेवाले पर्वत के समान, आहत होकर चिल्लाता हुआ जब वह असुर गिरा, तब भूतग्रस्त-से होकर सोये पड़े रहनेवाले सब वानर अगद नामक आभरण से भूषित अपनी भुजाओं पर ताल ठोंकते हुए उठ खड़े हुए।

मारुति ने तारा-पुत्र से पूछा—यह कौन है? इसने क्या किया? अगद ने उत्तर दिया—हे सत्यनिरत! मैं कुछ नही जानता।

तब जाम्बवान् ने कहा—मैंने भली भाँति सोचकर जान लिया कि यह असुर कौन है। मांस-लगे शूल को धारण करनेवाला यह असुर तुमिर नामधारी दैत्य है और इस गभीर सरोवर का रक्षक है।

मार्ग-गमन से विश्रांत वे वानर-वीर, यह सोचकर कि इस असुर के समान ही यहाँ और भी कई असुर होंगे, अपनी मीठी निद्रा त्याग कर उठ बैठे और जब अरुणकिरण

प्राची दिशा मे निकला, तब सद्योविकसित कमल पर आसीन लक्ष्मी (के अवतारभूत सीता) को ढूँढ़ने लगे।

सीता का अन्वेषण करनेवाले वे वानर पेन्ना ( उत्तर पेन्नार) नदी-रूपी सुन्दरी के पास जा पहुँचे, जो चक्रवाक को लज्जित करनेवाले पुलिन (सैकत-राशि) रूपी स्तनों, अमृतरस से पूर्ण, जल से स्थित रक्तकुमुद-रूपी अधर, मनोहर तथा उज्ज्वल दंतों एव प्रकाशमान वदन से युक्त थी।

ज्ञान की सीमा पर पहुँचे हुए उन वानर-वीरों ने, पर्वत की घाटियो मे, जहाँ मयूर नृत्य करते थे, नदी के मध्य में स्थित टापुओं में, पुष्प-वाटिकाओं में, शीतल किनारोंवाले पोखरो मे, शुभ्र पुष्पों से भरे हुए सरोवरो मे और निर्मल स्फटिक-शिलाओं मे— सर्वत्र ( सीता को ) खोजा।

फिर, वे उस नदी के ( दक्षिणी ) तट पर आ ठहरे, जो ( नदी ) अपने जल मे स्नान करनेवाले लोगों की जन्म-व्याधि को वहा देती थी और अपने अलंघ्य भँवरों में उत्तम रत्नो को बिखेरती थी।

( सीता के ) अन्वेषण मे लगे वे वानर, स्नान करने के योग्य उस नदी को तैरकर अनेक अरण्यो एव पर्वतो को पारकर, लहरानी जलधाराओ से युक्त उस ( दशनव नामक ) देश मे जा पहुँचे, मानो वे मुक्तिलोक में ही पहुँच गये हों।

चंपक-वनों से युक्त तथा सस्यों से समृद्ध उस दशनव (.दशार्णव ) नामक देश को पार कर, अति प्रख्यात उस विदर्भदेश में जा पहुँचे, जहाँ उशनस् नामक कवि (शुक्राचार्य) उत्पन्न हुए थे।

वे वानर, वैदर्भ की भूमि में आकर, वहाँ के सब ग्रामों में गये और वहाँ दर्भ एव यज्ञोपवीत से शोभित शरीरवाले मुनियो के दर्शन करते हुए ( सीता का ) अन्वेषण करते रहे।

वे ज्ञानवान् वानर-वीर, इस प्रकार अन्वेषण करते हुए, रक्त धान की फसलो मे भरे विदर्भ देश को भी शीघ्र पारकर उस दडकारण्य मे जा पहुँचे, जहाँ आत्मध्यान मे निरत अनेक मुनि तप करते थे।

जहाँ मुनि, अपने शरीर मे विषयों का उपभोग करते हुए निवास करनेवाले पचेंद्रिय-रूपी शत्रुओ के लिए कठोर यम बनकर तपस्या करते रहते थे, ऐसे दंडकारण्य मे जाकर ( सीता को ) ढूँढते हुए मुडकमर नामक स्थान मे पहुँचे।

उस सरोवर का जल देवस्त्रियों के पीनस्तनो पर चदन-लेप एवं पुष्प-मालाओ के समर्ग से अत्यन्त सुगधित हो रहा था। उसमे स्थित पक्षी भी वहाँ की ( सुगधि से भरी ) मछलियों को नही खाते थे।

वहाँ विद्याधरों के विरह मे पीडित स्त्रियाँ, वीणा-वाद्य का श्रवण कर, मन मे अत्यन्त द्रवित होकर, व्याकुलता से काँप उठती थी और उनकी आँखों से अश्रुजल यो वह चलता था कि हाथी भी उसमें डूब सकते थे।

रक्तकुमुद के समान मुँहवाली, कोकिल को लज्जित करनेवाली, मन्मथ के शरपुंज-

सदृश दृष्टियाँ एव उस ( मन्मथ ) के धनुष के सदृश ही भौंहों से शोभित एवं अमृत-सदृश संगीत गानेवाली सुन्दरियाँ क्रमुक-वृक्षों पर लगे झूलों में बैठकर झूलती रहती थी।

इस प्रकार के सुन्दर मुंडकसर के तट पर पहुँचकर वे वानर-वीर मन से भी अधिक तीव्र गति से ढूँढ़ने लगे। किंतु ( पंचविध ) शैलियों[1] में सजाने योग्य सुन्दर केश-पाशोंवाली लक्ष्मी के अवतार सीता को कहीं भी न देखकर अत्यन्त खिन्न होकर त्वरित गति से आगे बढ़ चले।

फिर, वे वानर, विशाल गगन को व्याप्तकर रहनेवाले उस पांडुपर्वत पर जा पहुँचे, जो ऐसा लगता था, मानों त्रिविक्रम के दीर्घ चरण के कारण (आकाश के छिद जाने से ) गगन-तल से गंगा की धारा ही नीचे उतर रही हो।

वह पर्वत अपनी कांति से समस्त अंधकार को मिटा देता था। आकाश के चंद्रमा को भी मंद कर देता था। वह करुणाहीन बलवान् राक्षस ( रावण ) को दबानेवाले कैलाश-पर्वत की समता करता था।

उस गगनोन्नत उज्ज्वल पर्वत के पास पहुँचकर वानर-वीर दत्तचित्त हो सीता को ढूँढ़ने लगे। किंतु, कहीं भी मधुर राग-सदृश बोलीवाली सीता को न देखकर मन में अत्यन्त व्याकुल और शिथिल हुए।

पवन के समान वेगवाले, निष्ठुर दृष्टियुक्त व्याघ्र के समान बलवाले, वे वानर-वीर उस पांडुपर्वत के प्रदेश को छोड़कर आगे बढ़े। फिर, वे गोदावरी नदी के समीप जा पहुँचे, जो राक्षस के द्वारा अपहृत हो जानेवाली सीता के केश-पाश से धरती पर खिसककर गिरी हुई पुष्पमाला से समान लगती थी।

उस गोदावरी नदी की तरंगायमान जलधारा, मुक्ता के सदृश स्वच्छता लिये हुए वह रही थी। वह ऐसी थी, मानों पृथ्वी देवी, सर्वपूज्य जनक के द्वारा वेदपाठ के साथ यज्ञार्थ धरती को जोतते समय उत्पन्न अनुपम सीता के दुःख से व्याकुल होकर अश्रु बहा रही हो।

वह ( गोदावरी ) नदी, जो रत्नों को और स्वर्ण को बहाती हुई अनेक अरण्यों से होकर मनोहर गति से प्रवाहित हो रही थी, ऐसी थी, मानों इस धरती को नापने का सूत्र हो। या जटायु के साथ युद्ध करते समय रावण के वक्ष पर से ( जटायु के द्वारा ) खींचकर फेंका गया रत्नहार हो।

वे वानर-वीर, जो भले-बुरे का विवेचन करने में चतुर थे, उस गोदावरी नदी में भली भाँति ढूँढ़कर, उत्तम कंकण-धारिणी सीता को कहीं भी न पाकर आगे बढ़ चले और बहुत दूर चलकर, सब पापों को मिटानेवाली सुवर्णनदी के तट पर पहुँचे।

स्वर्णकीट, मधुमक्खी, काले भ्रमर, हंस तथा अन्य पक्षिगण—सबके समीप से होकर जानेवाले वानर, लाल धान तथा कमल-युक्त सरोवरों से भरे हुए जल-समृद्ध समतल

---

1. तमिल के प्राचीन ग्रन्थों में केश को सजाने की पाँच शैलियों का वर्णन है।—अनु०

प्रदेशों को पार कर, अमृतसम जल से पूर्ण नारिकेल-फलों के बागों से भरे कुलिंद-देश को पार कर गये।

उन्होंने सप्तकोंकण-प्रदेशों को पार किया। पश्चिमी समुद्र तट पर उन प्रदेशों को, जहाँ मुक्ताराशियों, शंख, नीलोत्पल आदि से पूर्ण अनेक जलाशय थे, पार किया। फिर, उस अरुंधती-पर्वत के निकट पहुँचे, जिसके शिखर की परिक्रमा चंद्र की कला करती थी और देवता जिसे प्रणाम करते थे।

अरुंधती-पर्वत के निकट जाकर, वहाँ सुन्दरता को भी सुन्दर बनानेवाली सीता को कहीं न देखकर वे आगे बढ़ चले। फिर, उस मरकत-पर्वत पर जा पहुँचे, जहाँ गोपांगनाएँ आकर ( पार्वत्य स्त्रियों से ) दधि के बदले में मधु ले जाती थीं। फिर, वहाँ से चलकर ( तमिल-देश की उत्तरी ) सीमा बनी हुई वेंकटाचल-पर्वत पर जा पहुँचे।

उस वेंकटाचल-पर्वत के निर्झरों में मुनि, वेदज्ञ ब्राह्मण, पूर्वजन्म के पापों को मिटानेवाले तत्त्ववेत्ता, देव, अमरस्त्रियाँ, सिद्ध—सभी नित्य आकर स्नान करते हैं।

उस पर्वत पर देवता अपनी पंचेन्द्रियों को, तीव्र काम-वासना को, दूसरों के निंदा-वचनों को, रमणियों के सुन्दर दृष्टिबाणों को, जीतकर उत्तम तपस्या का आचरण करते रहते हैं।

उस वेंकटाचल पर, जो विजयी चक्रधारी कालमेघ-सदृश भगवान् के उज्ज्वल चरणों को धारण किये है, निवास करनेवाले जीव-जंतु भी मोक्ष-पद प्राप्त करते हैं, तो उन तपस्वियों के संबंध में क्या कहा जाय, जो सत्य ज्ञानवाले हैं!

इस प्रकार के उस वेंकटाचल को अपूर्व तपस्या-संपन्न भाग्यवान् लोग ही प्राप्त करते हैं। वे वानर-वीर, शाश्वत सुख को प्रदान करनेवाले प्रभु ( श्री-निवास ) के चरणों की नित्य सेवा करनेवाले उन तपस्वियों के चरणों पर प्रणत हुए।

कामरूप धारण करनेवाले उन वानर-वीरों ने ( उन तपस्वियों की ) चरण-धूलि को शिर पर धारण करने के पश्चात् उस वेंकटाचल पर, घुँघराले केशोंवाली, कलापितुल्य ( सीता ) देवी को ढूँढ़ा और फिर, ब्राह्मण का वेष धारण कर उस तोंडमंडल प्रदेश में जा पहुँचे, जो स्वच्छ एवं तरंगायमान जलाशयों से भरा है।

वहाँ ( तोंडमंडल ) के सब प्रदेशों में, पर्वतों की घाटियों, गोपों के आँगनों को घेरे हुए उद्यान, प्रभूत जल से संपन्न प्रदेश और स्वच्छ वीचियों से युक्त समुद्र से आवृत विशाल खेत हैं।

वहाँ कृषक झुंड बाँधकर हल जोतते हैं। जब वे अपने हाथ की छड़ी हिलाकर हाँक लगाते हैं, तब चर्ममय पैरोंवाले हंस उड़कर उन खेतों से भाग जाते हैं, जहाँ शालिधान, कटहल के पेड़ों की जड़ में लगे (पके) फलों से प्रवाहित मधु से सिंचित होते हैं। वे हंस अपने पैरों से धान के अंकुरों को रौंद देते हैं।

सुन्दरियों के केशों तक फैले हुए नयनों-जैसे मधु-भरे नीलोत्पल-समुदाय जिन खेतों के प्रांतों में उगे रहते हैं, उनमें ग्वालिनों के जाँघों के सदृश कदली-वृक्ष लगे रहते हैं और उन कदली-वृक्षों पर सारस एवं कोकिल सोये रहते हैं।

वीथियों में अनेक वाद्यो की बड़ी ध्वनि को सुनकर मयूर, ( ससार की ) वृद्धि के कारणभूत मेघ का घोष समझकर नाच नहीं उठते।[1] नृत्य करनेवालो के मृदग की ध्वनि को सुनकर हस भी (उसे मेघ-गर्जन समझकर) उड़ नहीं जाते। क्योंकि (ऐसी ध्वनियो से) चिर परिचित रहनेवाले प्राणी उनको सुनकर भ्रम कैसे कर सकते हैं?

अलंकृत रथ-सदृश नारिकेल-वृक्ष के कोमल तथा मुकुलित पुष्पो को देखकर मीन उन्हे सारस समझते हैं और भय से कपित हो उठते हैं। मेढ़क, नुकीले कोरवाले शीतल कुमुद पुष्पों को देखकर, उन्हे अपने को निगलने के लिए आये हुए सर्प समझ लेते हैं और डर से चिल्ला उठते हैं।

केंकड़ो को पकड़नेवाली पंचम जाति की युवतियाँ, अति धवल शखो से उत्पन्न मोतियों को देखकर उन्हे चित्तियोंवाले सारस पक्षियो के अंडे समझ लेती हैं और उन्हे ( खाने के लिए ) कछुए की पीठ पर तोड़ने लगती हैं।

शिशु-मर्कट के अत्यन्त छोटे हाथ मे, शाखाओ पर पकनेवाले कटहल का कोया है। उसपर पुष्पो से भरे उद्यान मे जिस प्रकार भौंरे मँडराते रहते हैं, उसी प्रकार मक्खियाँ मँड़रा रही हैं।

उस तोडमडल-प्रान्त मे निवास करनेवाले लोग—संपन्न, सस्कृत एव तमिल के पारगत विद्वान् हैं, दुष्टो को दमन करनेवाले हैं, दानी हैं—इत्यादि विशेषताओ से प्रशसित होते हैं। अतः, क्या कामधेनु भी ऐसे गृहस्थ-जनो की समता कर सकती है?

वे अनुपम वानर-वीर उस सुन्दर तोडमडल को पारकर विशाल कावेरी नदी से सयुत चोल देश मे जा पहुँचे और लाल धान, ईख, सुपारी आदि से सकुल मार्गों से होकर कठिनाई से आगे बढ़ने लगे।

वहाँ के उन जलाशयो के तटों पर, जहाँ उभरी चोचवाले सारस पक्षी निवास करते हैं, नारिकेल के वृक्ष बढ़े हुए हैं। वानर, कभी उन वृक्षों के कठभाग पर से खूब पककर नीचे गिरे हुए अति मनोहर मधुर फलो से टकराकर गिरते, तो कभी वहाँ प्रवाहित होनेवाली मधुधारा मे फिसलकर गिर पड़ते थे।

काले रगवाले जलकौवे, बाजो की-सी ध्वनि करनेवाले ईख के कोल्हुओं के पास इक्षुरस से भरे बड़े-बड़े पात्रो को देखकर उन्हे जलाशय समझ लेते थे और पक्तियो मे जाकर उनमे गोते लगाते थे।

पुष्पो से भरे, भ्रमर-समूहों से सकुल उद्यानों से मधु की धारा बहती रहती थी। उन प्रवाहो के यथार्थ रूप को न जानकर वानर, उन्हे मीनों से पूर्ण सरोवर समझकर उनमे हट जाते थे और वृक्षों पर जाकर विश्राम करते थे।

वहाँ के केतकी-वृक्ष फूलों के गुच्छों से लदे रहते हैं। उनके पास उगे हुए आम के पेड़ों के झुके हुए फल, केतकी-फूलों के पुष्प-रज से भर जाने से वैसी ही गंध ले महँकने

---

[1] भाव यह है कि वहाँ सदा वाद्यो के घोष तथा मृदंग की ध्वनि होती रहती है और मयूर तथा हस उन शब्दों से भली भाँति परिचित रहते हैं।—अनु०

लगते हैं। सस्य के अंकुरों के समीप का कीचड़ लाल कुमुदपुष्प की गंध से सुगंधित रहता है।

पाप से रहित वे वानर-वीर, कावेरी नदी से सिंचित चोल देश को पारकर गृहस्थ धर्म से सुशोभित पर्वतमय चेर देश ( मलयदेश ) में जा पहुँचे। फिर, वहाँ से मधुर तमिल भाषा से युक्त दक्षिण ( पाड्य ) देश में पहुँचे।

वह ( पाड्य ) देश सप्तलोकों में विख्यात मुक्ताओं को एव त्रिविध तमिल[१] को प्रदान करने की महिमा से पूर्ण है। अतः, यदि यह कहें कि वह देश देवलोक के सदृश है, तो यह उपमा कैसे उचित होगी?

सरल चित्तवाले वे वानर, इस प्रकार के पाड्यदेश में सर्वत्र ढूँढकर और घने केशपाशोंवाली ( सीता ) देवी को कहीं भी न देखकर दुःखी हुए और ऐसे शिथिल होकर चलते रहे, जैसे उनकी मृत्यु ही निकट आ गई हो।

फिर, वे वानर, दक्षिण समुद्र से चलनेवाले पवन से युक्त भूभाग को तय करके अत में दिग्गज-सदृश प्रसिद्ध महेंद्र पर्वत पर जा पहुँचे। ( १—५५ )

●

# अध्याय १५

## संपाति पटल

वानर-वीरों ने दक्षिण के समुद्र को देखा, जो जल-भरे बादलों से पूर्ण आकाश के समान गरज रहा था और गगन को छूनेवाली ऊँची तरग-रूपी हाथों को उठाकर उन वानरों के सम्मुख आकर उनका यथाविधि स्वागत कर रहा था और कह रहा था कि हरिण-सदृश विशाल नयनोंवाली सीता लका में है।

अगद आदि वीरों ने जिस सेना-समुदाय को आज्ञा देकर चारों ओर भेजा था कि तुमलोग आठों दिशाओं में अन्वेषण करके महेंद्र-पर्वत पर आ जाओ, वह सेना-समुदाय भी ऊँची तरगों से पूर्ण एक दूसरे समुद्र के समान वहाँ आ पहुँचा।

सब वानर बिना कुछ बाधा के वहाँ आ पहुँचे। किन्तु, कमल से उत्पन्न घुँघराली अलकों से भूषित, अनुपम पातिव्रत्य से युक्त लक्ष्मी को कहीं नहीं देखा। वे अपने अगले कर्तव्य को न जानते हुए अटपटे शब्दों में कुछ कहने लगे।

( सुग्रीव के द्वारा निश्चित ) एक मास की अवधि बीत गई। हम अपने कार्य में सफल नहीं हुए। अब श्रीरामचन्द्र भी अपने प्राण छोड़ देंगे। हमने अपने राजा ( सुग्रीव )

१. त्रिविध तमिल : तमिल में साहित्य के तीन अग माने गये हैं—इयल् = कविता, इसै = सगीत और नाटक = नाटक।

की आज्ञा का तो पूरा पालन किया (अर्थात्, सीता का अन्वेषण किया)। अब हमारे लिए करने को और कुछ नही रह गया है—यो कहते हुए अनेक प्रकार से विचार करने लगे।

क्या हम यही रहकर तपस्या करें? यदि वह न हो, तो असाध्य विष को पीकर प्राण-त्याग करें? इन दोनो में से जो उचित हो, वही करेंगे। वे वानर, जिन्हे अपने प्राणो का भी भय नही था, यो सोचने लगे।

बलवान् सिंह के सदृश युवराज अंगद बहुत खिन्नचित्त हुआ और उन वानरो को देखकर जो तट पर टकराती हुई बड़ी वीथियों से युक्त समुद्र के निकट रहनेवाले महेन्द्र-पर्वत पर ऐसे खड़े थे, जैसे अनेक मेरु-पर्वत पक्ति बाँधकर खडे हो, कहने लगा—तुमलोगों से मुझे कुछ कहना है।

हमलोगो ने पुरुषोत्तम रामचन्द्र के समक्ष, बड़ी भक्ति रखनेवालो के जैसे ही, प्रण किया था कि हमलोग आकाश से आवृत विश्व मे सर्वत्र जाकर सीता का अन्वेषण करेंगे। हमारा वह प्रण केवल गर्वमात्र नही था। उससे हम बड़े अपयश के पात्र हो गये हैं।

'हम पूरा करेंगे'—यों कहकर जो कार्य हमने अपने ऊपर लिया, उसे पूरा नही कर पाये। अवधि के भीतर ही लौटकर यह कहना भी हमसे नही हो सका कि हम ढूँढ़कर भी सीता को कही नही देख सके। अब आगे भी यह कार्य पूरा हो सकेगा—इसका भी कोई लक्षण नही दीखता, ऐसी अवस्था में हमारा जीवित रहना क्या उचित है?

(अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात्, यदि हम लौटकर भी जायँ, तो) मेरे पिता (सुग्रीव) क्रुद्ध होंगे। हमारे प्रभु राम को भी बहुत दुःख होगा। उस दशा को मैं अपनी आँखो से नही देख सकूँगा। अतः, मै अपने प्राण त्याग देना चाहता हूँ। हे ज्ञानवान् लोगो! मेरे इस निश्चय के बारे मे तुमलोग अपनी सम्मति दो—यो अंगद ने कहा।

तब जाबवान् ने कहा—हे लौह-स्तभ तथा पर्वत की समता करनेवाली भुजाओ से युक्त। तुमने ठीक कहा, पर यदि तुम अपने प्राण छोड़ दोगे, तो क्या हम यहाँ तुम्हारे लिए रोते बैठे रहेगे? या प्रेमहीन होकर लौट जायँगे और (सुग्रीव की) सेवा मे लग जायँगे?

हे युवराज तथा पौरुषवान् वीर! लौट आकर कहने के लिए हमारे पास है ही क्या? हमारा भी यही निर्णय है कि हम भी अपने प्राण त्याग देंगे। अतः, तुम्हारे लिए जीवित रहना ही उचित है।

जाबवान् का कथन सुनकर अगद ने वानरो से कहा—हे पर्वत-तुल्य कंधोवाले वीरो! तो क्या यह उचित है कि तुम सब यहाँ मृत्यु को प्राप्त होओ और अकेले मैं लौटकर आऊँ? क्या संसार को यह भायगा?

इस विशाल ससार के निवासी यह कहे कि बड़े लोगो के अपवाद से डरकर जब इसके प्राण-प्रिय साथियों ने प्राण त्याग दिये, तब यह जीवित ही लौट आया, इससे पहले ही मैं स्वर्गलोक मे जा पहुँचूँगा। यह कहकर उसने फिर आगे कहा—

तो, मृत्यु-समाचार कोई-न-कोई मेरी माता और मेरे पिता सुग्रीव को देगा ही। यह समाचार पाकर कदाचित् वे अपने प्राण त्याग देंगे। वह देखकर धनुर्धर वीर (राम)

एव उनके अनुज भी निष्प्राण होंगे। फिर, वह समाचार जब अयोध्या में विदित होगा, तब भरत आदि क्या जीवित रह सकेंगे ?

भरत, उनका अनुज, उनकी माताएँ, ( अयोध्या ) नगर के निवासी—सब मर जायँगे, यह निश्चित है। हाय ! मैं मिटा ! हाय ! जानकी नामक जगत्-प्रसिद्ध तपस्या-संपन्न दीप-समान नारी के कारण संसार के सब लोगों को कैसी अपार विपदा उत्पन्न हो गई है !—यों कहकर अंगद दुःखी हुआ।

पर्वत-समान दृढ कंधों तथा युद्धोत्साह से युक्त सिंह-सदृश अंगद के वचनों से जाम्बवान् के मन में ऐसी व्याकुलता उत्पन्न हुई, जैसे किसी ने अवार्य ज्वाला को उभाड़ दिया हो। भालुओं के राजा ने बड़े प्रेम से अंगद को देखकर कहा—

तुम और तुम्हारे पिता ( सुग्रीव ) दोनों को छोड़कर तुम्हारे वंश में और कोई पुत्र नहीं है (जो शासन-कार्य सँभाल सके), यही सोचकर हमने कहा (कि तुमको जीवित रहना है )। यदि यह कारण न भी हो, फिर भी नायक की मृत्यु की बात जिह्वा पर लाना उचित नहीं है।

हे विजयशील ! तुम जाओ। राम और सुग्रीव जहाँ रहते हैं, वहाँ पहुँचकर उन्हें बताना कि सीता का पता नहीं मिला और हम सबने प्राण त्याग दिये—तुम उन लोगों के दुःख को शांत करने का प्रयत्न करना—यों अपार पराक्रमवाले जांबवान् ने कहा।

जाम्बवान् के यों कहने पर हनुमान् ने कहा—हे सूर्यसदृश वेगवालो ! हमने अभी तक त्रिभुवन के एक भाग में भी पूरा-पूरा ढूँढ़कर नहीं देखा है; तो भी तुम लोग क्यों इस प्रकार शिथिल हो रहे हो, जैसे आगे चलने की शक्ति ही नहीं रह गई हो या कुछ सोचने का सामर्थ्य नहीं रह गया हो ?

फिर, हनुमान् कहने लगा—पाताल में, ऊपर के लोक में, स्वर्णमय मेरु के शिखर पर तथा ब्रह्मांड के अन्य स्थानों में यदि हम उज्ज्वल ललाटवाली सीता का अन्वेषण करेंगे, तो हमारे राजा अवधि के व्यतीत हो जाने पर भी कुछ न कहेंगे।

अतः, अब भी सीता का अन्वेषण करना ही अच्छा है और इसी कार्य में, जिस प्रकार पुष्पालंकृत केशोंवाली देवी की विपदा को रोकने के लिए जटायु ने प्राण त्याग किये थे, उसी प्रकार हमें भी अपने प्राण छोड़ना उचित होगा। वैसा न करके यदि हम सभी प्राण छोड़ देंगे, तो इससे अपयश ही होगा—यों हनुमान् ने कहा।

हनुमान् के यह कहते ही, गृध्रों का राजा संपाति, यह सुनकर कि उनका अनुज, अमोघ शक्तिवाला जटायु, मृत्यु को प्राप्त हो चुका है, शोक से भर गया और एक पर्वत के समान चलकर उन वानरों के निकट आ पहुँचा।

वह यह सोचकर कि हाय, नीतिवान् मेरा भाई मर गया, विक्षुब्धमन हो रहा था। उसका शरीर काँप रहा था। वह ऐसे चल रहा था, जैसे देवेंद्र के कुलिश से परों के कट जाने पर कोई पर्वत पैदल ही जा रहा हो।

मेरे बलवान् भाई का वध करने की शक्ति रखनेवाला ऐसा शस्त्रधारी इस धरती

पर कौन है?—यों सोचता हुआ वह अपनी आँखों से इस प्रकार अश्रु बहाने लगा, जो धारा के रूप में बहकर समुद्र को भी भर दे।

वह संपाति ऐसा था कि उसके आभरणों में स्थित, सान पर चढ़ाये गये रत्न विद्युत् की कांति बिखेर रहे थे। मद्धिम कांतिवाली उसकी आँखों से अश्रु-बिंदु झर रहे थे। मन की व्यथा के कारण वह मुँह खोलकर रो रहा था। वह ऐसा था, मानो कोई मेघ गरजता हुआ धरती पर चल रहा हो और बरस पड़ा हो।

वह शीघ्र गति से इस प्रकार चल रहा था कि उसके पैरों के नीचे आकर लता, वृक्ष, पर्वत आदि चूर-चूर हो रहे थे। उसका आकार ऐसा था, मानों रजताचल ( कैलास-पर्वत ) अति प्रबल प्रभंजन के चलने से लुढ़कता आ रहा हो।

इस प्रकार वह ( संपाति ) आ पहुँचा। वहाँ स्थित वानर उसे देखकर भयभीत हो काँपने लगे। केवल ज्ञानवान् हनुमान्, अपनी आँखों से अग्नि-कण निकालता हुआ क्रोध-पूर्ण वचन कह उठा कि हे धूर्त ! तुम कोई कपटी राक्षस हो, जो मायावेष धारण करके आये हो। मेरे सामने पड़कर अब कैसे बच सकते हो? और उस (संपाति) के सम्मुख जाकर खड़ा हो गया।

किन्तु, हनुमान् ने उसकी मुखाकृति से पहचान लिया कि यह पापहीन चित्त-वाला है। मन में दुःखी है। वर्षा के समान आँखों से अश्रु बरसा रहा है, अतः निष्कपट है।

उस (संपाति) को आते हुए देखकर सूक्ष्म-शास्त्र ज्ञानवाला हनुमान् खड़ा हुआ। वह अपने मुँह से एक शब्द निकाले, इसके पहले ही संपाति ने प्रश्न किया—किसके लिए अजेय जटायु को किसने बड़ी वीरता से आहत किया? विस्तार के साथ सारा वृत्तांत बताओ।

तब हनुमान् ने कहा—यदि तुम अपना यथार्थ परिचय दोगे, तो मैं सब घटनाएँ सविस्तर तुम्हें सुनाऊँगा। तब गृध्रराज अपना वृत्तांत कहने लगा।

हे विद्युत्-समान दाँतोंवाले ! मैं अभी तक मृत प्राणियों में सम्मिलित नहीं हुआ और फिर भी मेरा भाई मुझसे वियुक्त हो गया है, ऐसा दुर्भाग्य है मेरा। मैं उस (जटायु) का पूर्वज (बड़ा भाई) होकर उत्पन्न हुआ हूँ—यों अपने जीवन के बारे में (संपाति ने) कहा।

उसके कहे वचनों को सुनकर, दोषहीन हनुमान् दुःख के समुद्र में डूबने-उतराने लगा और बोला—वैरी रावण की तलवार से तुम्हारे अनुज की मृत्यु हुई।

हनुमान् का वचन सुनते ही संपाति ऐसे गिरा, जैसे वज्राहत पर्वत ढह गया हो। फिर, उष्ण निःश्वास भरकर व्याकुलप्राण हो निम्नलिखित वचन कहकर रोने लगा—

हे मेरे अनुज। मेरे दीर्घ पख ( सूर्य के ताप से ) झुलसकर नष्ट हो गये। पख खोकर बँधे हुए-से पड़े रहने की अपेक्षा प्राण जाना ही उचित था। किन्तु, अविनाशी एक रथवाले ( सूर्य ) के अति उग्र आतप से भी भयभीत न होनेवाले ( हे मेरे अनुज )! यह कैसा आश्चर्य है? ( कि मेरे पहले ही तुम्हारी मृत्यु हो गई। )

कमल में उत्पन्न ब्रह्मदेव स्थिर हैं, धरती और आकाश स्थिर हैं, अविनश्वर धर्म भी अभी बना है, शाश्वत कल्पवृक्ष भी मिटा नहीं है। किन्तु तुम नहीं रहे; यह कैसी दशा है!

हे वेगवान् गरुड से भी अधिक वेगवाले ! पूर्वकाल मे दो अंडो के एक साथ उत्पन्न होने पर, हम दोनो एक साथ ही जनमे थे, हम दोनो दीर्घकाल तक जीवित रहे। किन्तु, अब मुझे जीवित ही छोड़कर तुम अकेले वीरता-पूर्ण कार्य करके मृत हो गये। यह क्या उचित था।

हे वीर ! रावण ने, यद्यपि त्रिभुवन मे अपने शत्रुओ का वध किया था, तथापि क्या वह तुम्हारे सामने टिक भी सकता था ? उसने तुम्हे मार डाला ? यह कैसा समाचार है !

इस प्रकार कहकर रो-रोकर संपाति अत्यन्त शिथिल पड़ गया और मरणासन्न हो गया। तब अतिबली पर्वत-समान कंधोवाले हनुमान् ने समय के अनुकूल सांत्वना के वचन उससे कहे।

हनुमान् की सांत्वना पाकर संपाति कुछ शान्त हुआ। पूछा—यमतुल्य जटायु ने, उसको मारनेवाले करवालधारी रावण से किस कारण से युद्ध किया ? तब वायु-पुत्र यह वृत्तांत सुनाने लगा।

हमारे प्रभु की देवी, नीति से अस्खलित शासनवाले (जनक) महाराज की पुत्री और उत्तम लक्षणो से पूर्ण सीता, कठोर मायावी के कपट के कारण अपने पति से वियुक्त हो गई।

धर्म-मार्ग से कभी न हटनेवाले तुम्हारे भाई ने सीता का अपहरण करके ले जानेवाले राक्षस को देखा और (रावण से) यह कहकर कि भ्रमरो से अलंकृत कुतलोवाली देवी को छोड़कर तुम हट जाओ, बलवान् रथ से युक्त उस रावण के साथ क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगा।

उस सत्यव्रत (जटायु) ने उस निष्ठुर पापी के रथ को ध्वस्त कर दिया। उसकी भुजाओ को छिन्न कर डाला। यो धीरे-धीरे जब इस प्रकार उसने उस (रावण) की शक्ति को भग्न किया, तब उसने महादेव के द्वारा प्रदत्त करवाल का प्रयोग किया, जिससे जटायु निहत हुआ—यो हनुमान् ने कहा।

हनुमान् का कथन सुनकर अश्रु-भरित नयनोवाला संपाति, यह कहकर अत्यंत प्रसन्न हुआ कि हे सत्यपूर्ण ! निर्मल अंतःकरण से ही जिसकी पवित्र मूर्त्ति जानी जा सकती है, ऐसे प्रभु के निमित्त मेरे भाई ने प्राण छोड़े। यह कार्य उत्तम है ! उत्तम ही है।

हे वीर ! मेरा भाई, नव-पुष्पधारी हमारे रामचन्द्र की देवी, अरुण चरणोवाली एवं 'वंजी'-लता सदृश सीता की रक्षा के निमित्त अपने प्राण छोडे। अतः, अनन्त कीर्त्ति का भाजन बनकर अमर हो गया। उसे मृत मानना उचित नही है।

धर्म-रूप प्रभु से प्रेम के साथ बंधुत्व स्थापित करके मेरे भाई ने अपनी इच्छा से प्राण-त्याग दिये। ऐसे दुर्लभ पुरुषार्थ से युक्त उस जटायु की मृत्यु से क्या हानि हो सकती है ? इस भाग्य से बढकर सुखदायक वस्तु और क्या हो सकती है ?

वह (संपाति) यो अनेक प्रकार से रोता रहा। फिर, शीतल जलाशय मे जाकर अनुपम बलवाले उस संपाति ने स्नान किया। तदनंतर घनी मालाओ से भूषित वानरो के प्रति ये वचन कहे—

हे वीरो ! तुमलोग बहुश्रुत हो, इसलिए पापहीन हो गये हो। तुमलोग असत्य-रहित भी हो। तुमलोगों ने यहाँ आकर मुझे जीवन ही प्रदान किया। मेरे भाई की मृत्यु का समाचार देकर मुझे दुःख-सागर में नहीं डुबोया, किन्तु मेरी विपदा ही दूर की।

हे मधुरभाषियो ! सत्य की वृद्धि करने की महिमा से युक्त हे वीरो ! तुम सब उसी राम-नाम का जप करो। वैसा करने पर उस प्रभु की अत्युत्तम करुणा मुझे प्राप्त होगी।

संपाति ने यों कहा। तब वानर यह सोचकर कि हम इस कथन की परीक्षा करेंगे, वैसे ही खड़े रहकर नीलवर्ण उस प्रभु के हितकारी नाम का उच्चारण करने लगे। तब बलवान् भुजावाले संपाति के पंख निकल आये।

उज्ज्वल शरीरवाला संपाति, सब लोकों में व्याप्त महाविष्णु ( के अवतार राम ) की कृपा को प्राप्त कर पंखों से युक्त हुआ। उसको पंख क्या मिल गये, मानों धुँआधार अग्नि को उगलनेवाले करवाल को कोष मिल गया हो।

सभी वानर, प्रख्यात रामचन्द्र का नाम उच्चारण करने से, पहले लुढ़कते हुए आनेवाले ( संपाति ) का हित होते हुए देखकर विस्मय से भर गये। वे प्रसन्न हुए और स्तब्ध भी हो गये। फिर, देवाधिदेव ( राम ) की प्रशस्ति गाने लगे।

उन वानरों ने उस ( संपाति ) को नमस्कार किया। फिर, प्रश्न किया कि तुम अपना सारा पूर्व-वृत्तांत कह सुनाओ। उनका वचन सुनकर संपाति अपने जीवन के बारे में कहने लगा।

हे मातृ-तुल्य मित्रो। हम दोनों, ( संपाति और जटायु ) तरंगायमान समुद्र से आवृत धरती के अंधकार को मिटानेवाले सूर्य के सारथी अरुण के पुत्र होकर जनमे और मनोहर रंगवाले पंखों से युक्त अति वेगवाले गिद्धों के राजा बने।

हम दोनों, स्वर्ग में स्थित देवलोक का दर्शन करने का विचार करके आकाश में बहुत ऊपर उड़े, किन्तु उष्णकिरण ( सूर्य ) का रथ देखकर भी पूर्ण रूप से उसे नहीं देख पाये। तब अग्नि को भी तपानेवाले दिव्य अरुण किरणों से युक्त सूर्य हम पर क्रुद्ध हो उठा।

ऊपर उड़े हुए मेरे अनुज के शरीर को, सूर्य का आतप अत्युग्र होकर तपाने लगा। तब वह बोला—हे मेरे बड़े भाई। मुझे बचाओ। तब मैंने अपने पंखों को उस ( जटायु ) पर फैला दिया और वह मेरी छाया में आ गया। मैं मरा तो नहीं। किंतु मेरे पंख झुलस गये और मैं धरती पर आ गिरा।

मुझ धरती पर गिरे हुए को आकाश में चमकनेवाले सूर्य ने देखा और अपार करुणा से भर गया। उसने यह कहा कि जनक की प्रिय पुत्री का अपहरण हो जाने पर ( उसका अन्वेषण करते हुए ) आनेवाले वानर जब राम-नाम का उच्चारण करेंगे, तब पहले-जैसे ही तुम्हारे पंख निकल आयेंगे।

जब मेरे पंख झुलस गये, तब मैं उष्ण निःश्वास भरता हुआ, लोकसारंग नामक महान् तपस्वी के निवासभूत पर्वत के सानु पर आ गिरा। मेरा शरीर और मन शिथिल हो गये थे। पीडा के बढ़ने से प्राणों का भार भी मैं वहन नहीं कर सकता था। मैंने प्राण-त्याग

करने का निश्चय कर लिया। इतने मे अपूर्व तपस्या-सपन्न लोकसारग मुनि ने मेरे सम्मुख आकर मुझे सात्वना दी।

( उन्होंने कहा—) अशिक्षित मूढ़जनो के समान मन के ( अनुचित ) उत्साह के कारण तुमने देवताओ के सुरक्षित लोक मे जाने का प्रयत्न किया। तुम्हारे बहुत ऊपर उड़ जाने से तुम्हारे पख झुलस गये और तुम धरती पर आ गिरे हो। अब और कुछ दिनो तक अपने प्राणो को सुरक्षित न रखकर उनको त्यागने की चेष्टा करना उचित नही है। (अर्थात्, सूर्य के कथनानुसार वानरो के आगमन तक तुम्हे प्राण रखे रहना ही उचित है)।

फिर सपाति ने कहा—हे अति बलाढ्य वीरो! उस दिन उन मुनिवर ने करुणा करके मुझसे यह भी कहा था कि जो घमंडी होता है, उसका विनाश निश्चित है। मायावी ( रावण ) के द्वारा जब सीता हरी जाकर अदृश्य हो जायगी, तब उसका अन्वेषण करते हुए वानर लोग आयँगे। उनके राम-नाम का उच्चारण करने पर तुम्हारे पख निकल आयँगे। अतः, तुम दुःखी मत होओ।

हे देवविस्मयकारी कार्य करनेवाले, उत्तम वीरो! मेरे दुःख से दु.खी जटायु, मेरी आज्ञा का भंग करने से डरकर, गगनगामी गिद्धो का राजा बना। यही हमारा वृत्तान्त है। अब तुमलोग इस स्थान पर आने का अपना वृत्तांत भी सुनाओ।

सपाति के यह कहने पर वानरो ने राम के प्रति नमस्कार करके उससे कहा—हे मातृ-तुल्य। नीच कृत्यवाला राक्षस ( रावण ) दक्षिण दिशा में सीता देवी को ले गया है। यही सोचकर हम उस ( देवी ) को ढूँढ़ते हुए यहाँ आये हैं। वानरो का यह कथन सुनकर सपाति ने कहा—तुमलोग चिंता मत करो। मैं इस सबंध में तुम्हें कुछ बातें बताऊँगा।

शर्करा-रस के समान मधुर बोलीवाली सीता को जब वह पापी राक्षस ले जा रहा था, तब मैंने उसे देखा। वह उसे लंका मे ले गया है। व्याकुल चित्तवाली उस देवी को घोर बंधन मे डाल रखा है। वह देवी अब भी वही है। तुम लोग जाकर देखो।

शब्दायमान समुद्र से आवृत वह लंका यहाँ से सौ योजन पर स्थित है। उस लका पर, कठोर पाश से युक्त यम भी अपनी दृष्टि नही डाल सकता। उस क्षुद्रगुणवाले राक्षस का क्रोध अग्नि को भी शान्त करनेवाली दूसरी अग्नि है। हे दोषरहित एव सद्गुणो से पूर्ण वीरो। तुम्हारे लिए उस लका मे जाना कैसे सभव होगा?—यो सपाति ने पूछा।

आगे उसने कहा—चतुर्मुख और अर्द्धनारीश्वर की बात तो दूर, क्षीर-समुद्र मे शेषनाग पर शयन करनेवाला विष्णु भी हो और यम भी हो, तो उनके लिए भी विशाल समुद्र के पार-स्थित उस लंका मे प्रवेश करना असभव है। हे चिरजीवियो! भावी कार्यो के परिणामो को सोचकर आगे बढ़ो।

उस प्राचीन ( लका ) नगरी मे तुम सबका प्रवेश करना असभव है। यदि किसी मे सामर्थ्य हो, तो वह अकेले वहाँ जाय। अदृश्य रूप मे, वहाँ रहकर सीता देवी को ( प्रभु का दिया हुआ ) सदेश देकर उसके दुःख को शांत करे और लौट आये। यदि ऐसा सामर्थ्य तुममें से किसी में नही है, तो मेरी बात पर विश्वास करो और रामचन्द्र के पास जाकर उन्हें समाचार दो।

शासक के न होने से सारा गृध्र-समाज अपने आवास को छोड़कर बिखर जायगा। उस दुर्दशा को रोकने के लिए मुझे शीघ्र जाना आवश्यक है। हे मित्रो! जिसमें हित हो, वही कार्य करो।—यों कहकर संपाति अपने पंखों से आकाश को ढकता हुआ उड़ चला। (१-६६)

## अध्याय १६

### महेन्द्र-शैल पटल

कुछ वानर, यह निश्चय कर कि गृध्रराज झूठ बोलनेवाला नही है, अन्य वानरों से कहने लगे—कर्त्तव्य को शीघ्र संपन्न करनेवाले हे वीरो! हमने (सीता के समाचार को) हाथ के आँवले के समान पूरा जान लिया है। जीवन देनेवाला एक वचन हमने सुन लिया। अब कर्त्तव्य का ठीक-ठीक विचार करके कुछ करो।

यदि हम सूर्यपुत्र और उज्ज्वल धनुष को धारण करनेवाले को नमस्कार करके सारा वृत्तात उन्हें सुना दें, तो हमारा कर्त्तव्य पूरा हो जायगा। फिर, भी वीरता का कार्य तो यही होगा कि हम स्वय समुद्र को पार कर सीता के दर्शन करें। हममें से समुद्र को पार करने का सामर्थ्य रखनेवाला कौन है?—यों परस्पर प्रश्न कर वे एक-एक करके अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करने लगे।

पहले हमने मरने का साहस किया। सदा अमिट रहनेवाले अपयश को लेकर लौटने का भी साहस किया। अब उन दोनो कार्यों से छुटकारा पाने का एक अच्छा मार्ग (सपाति के द्वारा) हमने प्राप्त किया है। अब समुद्र को पार कर काले राक्षसों को मिटाने का सामर्थ्य रखनेवालो! हमारे प्राणो को बचाओ।

युद्ध मे विजय से भूषित होनेवाले नील आदि उत्तम वीरों ने, समुद्र पार करने की अपनी असमर्थता को स्पष्ट कह दिया। वीरता से पूर्ण युद्ध मे विजयी वाली-पुत्र ने कहा—मै समुद्र के उस पार तो जा सकता हूँ, किंतु लौट आने की शक्ति मुझमें नही है।

चतुर्मुख (ब्रह्मा) के पुत्र (जाम्बवान्) ने कहा—हे भुजबल से पूर्ण वीरो! वेदों के लिए भी दुर्जय भगवान् (विष्णु), सारी धरती को एक ही पग से नापने लगा था। उस समय, मैं आठों दिशाओं मे उस (त्रिविक्रम) की परिक्रमा करता हुआ गया और (उस भगवान् के अवतार होने की) घोषणा करता हुआ घूमने लगा था। मेरु के आघात से मेरे पैर दुखने लगे थे। अतः अब इस महान् समुद्र पर उछलकर जाने और लका की परिखा के पार बने हुए प्राचीर पर कूदने और उस नगर के राक्षसों को भयभीत कर सीता का अन्वेषण करने की शक्ति मुझमें नहीं रह गई है।

फिर, ब्रह्मपुत्र जांबवान् ने अंगद से कहा—वानर-वीरो मे उत्तम सिंह-सदृश हे कुमार! हम अब अत्यन्त दुःखी होकर किसके पास जाकर प्रार्थना करें कि तुम समुद्र के पार जाओ। ऐसा विचार करने से भी तो हमारा यश मिटता है।

अब हमारे यश को सुरक्षित रखनेवाला वह मारुति ही है, जिसने पूर्व मे रामचन्द्र के सम्मुख जाकर (सुग्रीव को) उनका सखा बनाया था। वही (मारुति) कर्त्तव्य का ठीक-ठीक विचार करके उसे पूरा करने का सामर्थ्य रखता है। उसकी समानता करनेवाला और कोई नही है। इस प्रकार कहकर फिर, जाबवान् हनुमान् के भुजबल की प्रशसा करते हुए ये वचन कहने लगा।

(जांबवान् हनुमान् को देखकर कहने लगा—) ब्रह्मदेव भी मर सकता है, किन्तु तुम्हारी मृत्यु कभी नही होगी। तुमने सर्वशास्त्रो का गहन अध्ययन किया है। विषयो का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने की शक्ति भी तुममे है। तुम्हारे बल और क्रोध को देखकर काल भी काँप उठता है। तुममें कर्त्तव्य कर्म करने की दृढता है। विष का पान करनेवाले शिवजी के समान ही तुममें घोर युद्ध करने की शक्ति भी विद्यमान है।

अत्युष्ण रक्तवर्ण अग्नि से, जल से तथा वायु से भी तुम मरनेवाले नही हो। अनेक-विध प्रसिद्ध दिव्य आयुधो से भी तुम्हारा विनाश नहीं हो सकता। तुम्हारा उपमान कुछ बताना हो, तो केवल तुम्ही अपने उपमान हो। एक बार कूदो, तो तुम इस ब्रह्मांड से परे भी जा पहुँचोगे।

अच्छे गुणों को ही नही, बुरे गुणो को भी पहचान कर स्पष्ट कहने की सामर्थ्य तुममें है। स्वय ही कर्त्तव्य को जानकर उसे पूर्ण करने की शक्ति तुममें है। तुम (शत्रुओं पर) विजय पा सकते हो। (लका में जाकर) लौट आने की शक्ति भी तुम रखते हो। यदि वे अपना बल दिखावें, तो उन्हें मारने की शक्ति भी तुममें है। तुम्हारा भुजबल कभी घटता नही।

तुम्हारी महिमा मेरु से भी ऊँची है। मेघ से बरसनेवाले जल की बूँद में भी प्रवेश कर जाने की शक्ति तुममें है। धरती को भी उठा लेने का बल तुममें है। कोई भी पाप-भावना तुममें नही है। तुम्हारी ऐसी शक्ति है कि सूर्य को भी अपने सुन्दर करों से छू सकते हो।

तुमने उचित उपायो को ठीक-ठीक सोचकर, धर्म का नाश किये बिना, युद्ध-कुशल वाली का वध करवाया। तुम्हारा बुद्धि-कौशल ऐसा है। प्रसिद्ध देवेन्द्र ने जब वज्र से तुम पर आघात किया था, तब तुम्हारा एक छोटा-सा रोयाँ भी टूटकर नही गिरा।

तुम्हारी भुजाओं में ऐसी शक्ति है कि यदि तीनो लोक भी तुम्हारा सामना करने आयें, तो उन भुजाओं के लिए त्रिभुवन की वस्तुएँ भी कुछ चीज नही होगी। धरती के अधकार को मिटानेवाले सूर्य के निकट, उसके रथ के आगे-आगे चलते हुए, तुमने सस्कृत (के व्याकरण) का ज्ञान प्राप्त किया था।

तुम नीति में स्थिर हो, सत्य-पूर्ण हो, मन में कभी स्त्री-संगति का विचार

तक नही लाते। सब वेदो का अध्ययन किया है। ब्रह्मा की आयु से भी अधिक आयु-वाले हो। तुम भी ब्रह्माओ मे से एक कहलाते हो।

उस महिमामय प्रभु ( राम ) की भक्ति से युक्त हो। अपने कर्त्तव्य का पूर्ण ज्ञान रखते हो। तुमने अपने ऊपर ( सीता का अन्वेषण करने का ) दायित्व लिया है। विना किसी बाधा के उसे पूर्ण करने का सामर्थ्य भी तुममें है। तुमने अपने मन में दृढ रूप से यह स्थापित कर लिया है कि एकमात्र पुण्य ही सदा स्थिर रहनेवाला है।

समय अनुकूल न होने पर तुम दवकर रह सकते हो। यदि युद्ध छिड़ जाय, तो उसमें सिह के समान शक्तिमान् हो सकते हो। सोच-विचार करके जो कार्य आरंभ किया हो, केवल उसी को नही, किंतु, किसी भी कार्य को पूर्ण करने की शक्ति तुममें है। कठिन वाधाएँ उत्पन्न होने पर भी तुम पीछे हटनेवाले नहीं हो।

विजयशील इन्द्र से लेकर, सव व्यक्ति तुम्हारे चारित्र्य को ही आदर्श मानकर चलते हैं। तुम अत्यन्त सहनशील हो। अतः, सव कार्यों को ठीक ढग से सोचकर करने का सामर्थ्य तुममें है। सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करने की शक्ति भी तुममें है।

तुम्ही इस समुद्र को पार करने की शक्ति रखते हो। अतः, यहाँ से शीघ्र जाओ और हम सबको जीवन देकर यश प्राप्त करो। इससे तुम्हारी माता-तुल्य सीता देवी भी प्रसन्न होंगी और विपदा-रूपी अपार सागर को पार कर सकेंगी—इस प्रकार ब्रह्मपुत्र ( जांववान् ) ने कहा।

जांववान् ने जव ऐसा कहा, तव अत्यन्त ज्ञानवान् हनुमान् के दीन मुख पर मंदहास इस प्रकार विकसित हुआ, जिस प्रकार कमलपुष्प के मध्य रक्तकुमुद विकसित हो उठा हो। उसके कमल-जैसे कर मुकुलित हो गये। सव वानरो के आनंदित होते हुए, उसने अपने भावों को इन शब्दों में प्रकट किया—

तुम लोग ऐसे हो कि कुछ सोचने के पूर्व ही, ऊँची तरगो से पूर्ण सातो समुद्रों को पार कर सकते हो, सब लोकों को जीत सकते हो और सीता देवी का अन्वेषण करके उन्हे ला सकते हो। ऐसा होने पर भी मुझ ज्ञानहीन की लघुता को प्रकट करने के लिए ही तुमने मुझे यह आदेश दिया है। अब मेरे समान भाग्यवान् और कौन होगा?

यदि तुम लोग कहोगे कि लकापुरी को उखाड़कर ले आओ, या यदि कहोगे कि लोक-कटक राक्षसो को मिटाकर, स्वर्णमय ताटकधारिणी कलापी-तुल्य सीता को ले आओ, तो मै तुम्हारे आदेश के अनुसार ही वह कार्य करूँगा। शीघ्र ही तुम अपनी आँखों से देखोगे।

जिस प्रकार विष्णु भगवान् ने धरती को नापा था, उसी प्रकार एक शतयोजन को एक पग में समाता हुआ मैं इस विशाल समुद्र को पार करूँगा। यदि इन्द्र आदि देवता भी आकर (रावण की ओर से) मेरे साथ युद्ध करेंगे, तो भी लंका में निवास करनेवाले सव राक्षसों का विनाश करके अपने कार्य को मैं अवश्य पूरा करूँगा।

यदि समुद्र उमड़कर सारी धरती को डुबोने लगे, या यह सारा ब्रह्माड ही टूटकर अंतरिक्ष में उड़ जाय, तो भी मैं, मेरे प्रति दिखाई गई तुम्हारी कृपा और प्रभु की आज्ञा इन